अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के साहित्य का मनोविज्ञानिक चिन्तन : एक तुलनात्मक अध्ययन

A

Thesis

Submitted to

For the award of

DOCTOR OF PHILOSOPHY (Ph.D)

In

HINDI

By

PRABHJOT KAUR

41500048

Supervised By

DR. VINOD KUMAR

LOVELY FACULTY OF BUSINESS AND ARTS
SCHOOL OF SOCIAL SCIENCES AND LANGUAGES
LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
PUNJAB

2019

शपथ-पत्र

*मैं प्रभजोत कौर अनुसन्धित्सु शपथपूर्वक यह निवेदन करती हूँ कि, **"अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के साहित्य का मनोविज्ञानिक चिंतन : एक तुलनात्मक अध्ययन"** शीर्षक से प्रस्तुत किया गया यह शोध प्रबंध लवली प्रोफैश्नल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा के अंतर्गत मेरी कृति अथवा अनुसंधान है और पी.एच.डी उपाधि हेतु प्रस्तुत है। इस शोध प्रबंध के विषय पर किसी अन्य विश्वविद्यालय में पी.एच.डी. उपाधि हेतु अथवा प्रकाशनार्थ प्रस्तुत नहीं किया है और न ही इसका कोई भाग अन्य किसी भी उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया है।*

प्रभजोत कौर

अनुसन्धित्सु

जालंधर

प्रमाण-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि प्रभजोत कौर ने *'अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के साहित्य का मनोविज्ञानिक चिन्तन : एक तुलनात्मक अध्ययन'* विषय पर शोध प्रबंध मेरे निर्देशन में लवली प्रोफैश्नल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा की पी.एच.डी हिन्दी उपाधि हेतु प्रस्तुत किया है। यह उनकी मौलिक कृति है। इसे परीक्षणार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की जाती है।

शोध-निर्देशक

तिथि:

विषयनुक्रमणिका

भूमिका 1-29

प्रस्तावना, समस्या कथन, शोध समस्या औचित्य, शोध के उद्देश्य, परिसीमांकन, सम्बन्धित शोध में चुनौतियाँ, शोध पद्धति, साहित्यावलोकन।

प्रथम अध्याय: 30-84

मनोविज्ञान की सैद्धांतिक अवधारणा

मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ, मनोविज्ञान का स्वरूप, मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, मनोविज्ञान के प्रकार/क्षेत्र, मनोविज्ञान का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध, अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई का व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

अध्याय दो : 85-147

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में सामान्य मनोविज्ञान

सामान्य मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ, सामान्य व्यक्तित्व के आधार या विशेषताएँ, संवेदना, यथार्थ एवं आत्म मूल्यांकन, प्रेम और समर्पण, निष्कर्ष

अध्याय तीन: 148-241

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान

असामान्य मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषएँ, असामान्य व्यवहार के लक्षण, अहम से ग्रस्ति व्यक्तित्व, संवेदनशीलता,

क्रोधाभास, ईर्ष्यायुक्त व्यक्तित्व, कुंठित व्यक्तित्व, अन्तर्द्वन्द्व, अकेलापन-पराएपन के बोध का अनुभव, निष्कर्ष

अध्याय चार : 242-352

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास सहित्य में नारी मनोविज्ञान

नारी मनोविज्ञान का अर्थ, नारी प्रश्नों का स्वरूप, नारी की भूमिका, त्याग एवं क्षमाशीलता की मूर्त नारी, नारी में आत्म-बलिदान भावना, विचारवान एवं विद्रोही नारी, स्वच्छंद व्यक्तित्व में आस्था, शंकालु एवं संदेहशील स्वभाव, भावुकता के कारण अन्तर्द्वन्द्वात्मक व्यक्तित्व, अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा-साहित्य में समस्याएँ- शोषण की समस्या, नारी स्वतंत्रता की समस्या, प्रेम की समस्या, विवाह की समस्या, निष्कर्ष

अध्याय पाँच : 353-444

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास सहित्य में समाज मनोविज्ञान

समाज मनोविज्ञान का अर्थ, परिभाषाएँ एवं स्वरूप, समाज मनोविज्ञान का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध, समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र तथा मानदण्ड, समाज और साहित्य, समाजीकरण-परिवारिकस परिवेश, व्यक्तित्व निर्माण एवं पारिवारिक विघटन, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, धर्म एवं संस्कृति, सामाजिक जन रीतियाँ रूढ़ियाँ, धर्म और राजनीति, समाजीकरण की समस्याएँ, निष्कर्ष

अध्याय छह: **445-515**

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास सहित्य में अभिव्यंजना पक्ष/ लेखन शैली का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

शिल्प विधि का स्वरूप और महत्व, देशकाल एवं वातावरण, कथोपकथन, शिल्पगत प्रयोग: प्रयुक्त विविध शैलियाँ, अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई उपन्यासकार के रूप में, निष्कर्ष

अध्याय सात: **516-551**

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के साहित्य में मनोविज्ञान: एक तुलनात्मक अध्ययन

उपसंहार **552-557**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची **558-562**

अधार ग्रन्थ

सहायक ग्रन्थ

पत्र-पत्रिकाएँ

कोशग्रन्थ

परिशिष्ट **563-568**

भूमिका

प्रस्तावना

मनुष्य से सम्बन्धित कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है जिसे प्रत्येक भाषा के साहित्य ने स्पर्श न किया हो या उस पर अपना प्रभाव न डाला हो। हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में भी ऐसा ही होता आया है। भाषा के माध्यम से ही विद्वानों ने, साहित्यकारों ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और संस्कृतिक, कला की विविधता हेतु एक नए मार्ग का निर्माण किया है। इसी कारण साहित्य लेखन कला में विभिन्न प्रकार के बदलाव आते रहे हैं तथा भविष्य में भी जारी रहेंगे। अतः साहित्य ने मानव जाति के विभिन्न पहलूओं का अध्ययन करके, उसका विश्लेषण किया है और उनकी कमियों को दूर कर मार्ग-दर्शन के रूप में सुझाव भी दिए हैं।

'साहित्य' शब्द का शाब्दिक अर्थ ही स-हित है। अर्थात सब का हित चाहने वाली रचना। कोई भी ऐसी रचना जो मानव एवं समाज कल्याण में अपना सहयोग डालती हो, उसके मार्गदर्शन का कारण बनती हो, उसे साहित्य की कोटी में ही गिना जाएगा। बैजनाथ सिंहल अपनी पुस्तक शोध स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि में कहते हैं, "साहित्य जीवन के प्रति एक विशेष रुख, विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण का नाम है। इसलिए जीवन के प्रति इस रूझान से रहित, जो कुछ भी लिखा गया हो, वह साहित्य नहीं कहला सकता।" (शोध स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि 47) वैसे तो कहानी, नाटक, निबंध, रिपोर्ताज, एकांकी, उपन्यास इत्यादि को साहित्य के दायरे में सम्मिलित किया गया है, किन्तु व्यापक अर्थों में धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, भूगोल इत्यादि भी साहित्य में शामिल हैं। साहित्य चाहे किसी भी भाषा से सम्बन्धित हो मानव एवं समाज कल्याण हेतु आदर्शवाद के रूप में ही विद्यमान रहेगा।

समय के बदलाव ने जीवन के हर पहलू पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है, जिससे हर वस्तु, हालात, व्यवहार व विचारधारा में बदलाव आना

स्वाभाविक है। साहित्य एवं साहित्यकार पर भी इसका पूर्णरूप से प्रभाव देखने को मिलता है। रामधारी सिंह दिनकर अपनी पुस्तक साहित्य और समाज में साहित्य के विषय में कहते हैं, "साहित्य का स्वभाव है कि पुरानी परम्परा आज भी साहित्य का विषय बन जाती है, किन्तु नवयुग का कवि उन्हें नई दृष्टि से देखता है और शिक्षा भी वह उनमें से नई ही निकालता है।" (साहित्य और समाज 37) साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। समाज बदलता है तो साहित्य में भी बदलाव होते हैं। नई साहित्यिक विचारधाराओं से सामाजिक बदलाव भी वाँछनीय है। वर्तमान लेखन पद्धतियाँ तथा सामाजिक रहन-सहन में भी फर्क आया, इसी कारणवश साहित्यिक रचनाओं तथा उनके शीर्षकों में भी नयापन है। यह नयापन ही सामाजिक बदलावों का सूचक है। लेखन कला के दायरे में बहुत बड़ा बदलाव और विस्तार हुआ है। आधुनिकीकरण तथा वैश्वीकरण ने समकालीन लेखकों की मानसिकता पर भी प्रभाव डाला है, जिस कारण आधुनिक रचनाओं में खुलापन है। खुली कविताएँ, छोटी कहानियाँ, लय-मुक्त दोहे, उपन्यासों में आ रही कमी, शब्दों में हलकापन यह सभी आधुनिकीकरण की वजह से ही है। मानव मन स्वभावतः नई-नई जिज्ञासाओं से सम्बद्ध क्षेत्रों में नए-नए प्रयोगों के द्वारा अन्वेषणों में प्रवृत रहता है। जिस कारण विभिन्न नई बातों से, नई विचारधाराओं से एवं नये सम्बन्धों से हम अवगत होते हैं, किन्तु शोध बिना सोचे समझे अपनायी किसी भी एक पद्धति से किया गया कार्य नहीं होता। बैजनाथ सिंहल अपनी पुस्तक में शोध के विषय में कहते हैं कि,

शोध का मुख्य कार्य जहाँ एक तरफ किसी समस्या का समाधान करना है वहीं दूसरी ओर इसमें नये नियम, नये सिद्धांत, नई सूचनाएँ, नए तथ्य को शामिल करने के साथ- साथ पुराने तथ्यों की पुष्टि एवं जाँच करना भी शामिल होता है। अस्तु, किसी भी भाषा तथा उसके साहित्य को लेकर किया गया शोध, उस भाषा तथा साहित्य की जनक, संस्कृति की पौराणिक, इतिहास, समसामायिकता तथा भावी सम्भावनाओं के महत्व का दिगदर्शन करता है। (शोध स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि 11)

मनुष्य का मन रहस्यमय है, जिसे जाने बिना उसकी पहचान तो सम्भव नहीं। यही कारण है कि अब कथा-साहित्य वर्णन और विवरण से हटकर मन के विवेचन और विश्लेषण तक आ पहुँचा है। अब मनुष्य को उसके व्यवहार व आचरण से नहीं, उसके मन की तह से निकालकर समझना समीचीन होगा।

हिन्दी साहित्य में अपनी विशेष भूमिका रखे हुए मनोवैज्ञानिक लेखक अज्ञेय का साहित्य विशेषकर महत्व रखता है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक लेखक डॉ. अजय शर्मा और अँग्रेजी साहित्य की आधुनिक लेखिका अनीता देसाई के कथा-साहित्य के समाज-मनोवैज्ञानिक अध्ययन को तुलनात्मक विषय के रूप में चुनने का खास कारण रहा है। मनोविज्ञान ही एक ऐसा विषय है जिसमें मानव-मन का अध्ययन किया जाता है। उसकी बुद्धि, आत्मा एवं व्यक्तित्व, आदतें, सीखना-भूलना, सामाजिक-व्यवहार, कौशल, मनोविकार एवं अभिवृति आदि का अध्ययन किया जाता है। स्वस्थ और अस्वस्थ मानसिकता से उत्पन्न व्यवहार से समाज पर पड़ने वाले अनुकूल या प्रतिकूल असर का अध्ययन किया जाता है। मानव कल्याण के लिए मन में आए विचारों की प्रस्तुति का नाम ही साहित्य है तो इस रूप से इन दोनों विषयों का घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह स्वयं सिद्ध हो जाता है।

मन के विज्ञान को मनोविज्ञान कहा जाता है। भारतीय वाङ्मय में उसकी प्रकृति पश्चिम के मनोविज्ञान के समान शैक्षणिक नहीं होकर अध्यात्मिक है। अतः उसे 'मन का ज्ञान' कहना अधिक सार्थक प्रतीत होता है। प्राचीन भारत में मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान और चेतना के विज्ञान के रूप में लिया जाता है। भारतीय मनीषी आध्यात्मिक साधना, जिसमें ध्यान, समाधि और योग भी सम्मिलित था, के द्वारा जो अनुभव एवं अनुभूतियाँ प्राप्त करते थे, उनके आधार पर मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान भी तलाशा जाता था। रामकलप तिवारी के अनुसार, "मनोविज्ञान, व्यवहार और अनुभूति का एक निश्चित विज्ञान है, जिसमें व्यवहार को अनुभूति के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है।" (मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ 7) मनोविज्ञान के विकास की लंबी यात्रा के दौरान मनोवैज्ञानिकों एवं मनीषियों ने चिंतन मनन किया तथा

मनोविज्ञान के स्वरूप को निर्धारित किया। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को निम्नानुसार परिभाषित किया है। स्किनर के अनुसार, "मनोविज्ञान व्यवहार और अनुभव का विज्ञान है।" (मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ 9) मन्न के अनुसार, "आधुनिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यवहार की वैज्ञानिक खोज से है।" (मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ 12)

मनोविज्ञान एक प्रगतिशील विज्ञान है। शैशवकाल में होते हुए भी इस विज्ञान ने प्रयोगों के क्षेत्र में अद्वितीय उन्नति की है। मनोविज्ञान को दर्शन का अंग समझा जाता है और दर्शनिकों द्वारा ही यह विज्ञान पढ़ाया जाता था। आज देश देशांतर में मनोविज्ञान की बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ स्थापित हो चुकी हैं और बाल-मनोविज्ञान, पशु-मनोविज्ञान, चिकित्सा-मनोविज्ञान अर्थात मनोविज्ञान के अंग-अंग पर खोज या प्रयोग जारी हैं। कुछ ही वर्षों के समय में इस विज्ञान के अनेक विभाग हो चुके हैं और इन विभागों की भी अनेक शाखाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं। यों तो मनोविज्ञान की बहुत सी शाखाएँ है किन्तु उनमें से मुख्य निम्नलिखित है-

सामान्य-मनोविज्ञान, पशु-मनोविज्ञान, तुलनात्मक-मनोविज्ञान, वैयक्तिक-मनोविज्ञान, सामाजिक-मनोविज्ञान, असामान्य-मनोविज्ञान, चिकित्सा-मनोविज्ञान, बाल-मनोविज्ञान, उद्योग-मनोविज्ञान, वणिज्य-मनोविज्ञान और शिक्षा-मनोविज्ञान। मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य की परम्परा प्रगतिवादी आंदोलन के आरम्भ के कुछ ही बाद मनोविज्ञान या मनोविश्लेषण से प्रभावित एक और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय हुई थी जिसे सन् 1943 के बाद प्रयोगवाद नाम दिया गया। इसी का संशोधित रूप वर्तमानकालीन नई कविता और नई कहानियाँ हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि द्वितीय महायुद्ध और उसके उत्तरकालीन साहित्य में जीवन की विभीषिका, कुरूपता और असंगतियों के प्रति अंसतोष तथा क्षोभ ने कुछ आगे पीछे दो प्रकार की प्रवृत्तियों को जन्म दिया। एक का नाम प्रगतिवाद है, जो मार्क्स के भौतिकवादी

जीवनदर्शन से प्रेरणा लेकर चला था, दूसरा प्रयोगवाद था, जिसने परम्परागत आदर्शों और संस्थाओं के प्रति अपने अंसतोष की तीव्र प्रतिक्रियाओं को साहित्य के नवीन रूपगत प्रयोगों के माध्यम से व्यक्त किया। इस पर मनोविज्ञान का गहरा प्रभाव पड़ा। प्रगतिवाद से प्रभावित कथाकारों में यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर और नागार्जुन आदि विशिष्ट हैं। आलोचकों में रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, विजय देव नारायण साही प्रमुख हैं। कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। निबन्ध विधा के इस दौर में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्या निवास मिश्र और कुबेरनाथ राय ने विशेष ख्याति अर्जित की। मनोविज्ञान से प्रभावित प्रयोगों के लिए श्रेष्ठ कथाकारों में अज्ञेय प्रमुख हैं। मनोविज्ञान से गम्भीर रूप में प्रभावित इलाचंद्र जोशी और जैनेद्र हैं। इन लेखकों ने व्यक्तिमन के अवचेतन का उद्घाटन कर नया नैतिक बोध जगाने का प्रयत्न किया। जैनेद्र और अज्ञेय ने कथा के परम्परागत ढाँचे को तोड़कर शैलीशिल्प सम्बन्धी नए प्रयोग किए। परवर्ती लेखकों और कवियों में वैयक्तिक प्रतिक्रियाएँ अधिक प्रखर हुईं। समकालीन परिवेश से वे पूर्णत: सशक्त हैं। उन्होंने समाज और साहित्य की मान्यताओं पर गहरा प्रश्नचिह्न लगा दिया है। व्यक्ति-जीवन की लाचारी, कुंठा, आक्रोश आदि व्यक्त करने के साथ ही वे वैयक्तिक स्तर पर नए जीवनमूल्यों के अन्वेषण में लगे हुए हैं। उनकी रचनाओं में एक ओर सार्वभौम संत्रास और विभीषिका की छटपटाहट है तो दूसरी ओर व्यक्ति के अस्तित्व की अनिवार्यता और जीवन की सम्भावनाओं को रेखांकित करने का उपक्रम भी। हमारा समकालीन साहित्य आत्यंतिक व्यक्तिवाद से ग्रस्त है और यह उसकी सीमा है। पर उसका सबसे बड़ा बल उसकी जीवनमयता है जिसमें भविष्य की सशक्त सम्भावनाएँ निहित हैं।

लेखक सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', और 'अपने-अपने अजनबी' को पढ़ने के उपरांत झुकाव

इनकी ओर हुआ। इन उपन्यासों में 'अज्ञेय' ने पात्रों की आत्मिक भावनाओं और द्वन्द्व का वर्णन बड़ी ही संजीदगी से किया, इसी प्रकार आधुनिक लेखक 'अजय शर्मा' के उपन्यास 'बसरा की गलियाँ', 'चेहरा और परछाईं', 'नौं दिशाएँ', 'शहर पर लगी आखें', 'भगवा', 'कागद कलम न लिखणहार, 'खुली हुई खिड़की', 'अकाश का सच', 'काल-कथा', 'समंदर और सफ़ेद गुलाब' इत्यादि उपन्यासों में उन्होंने आज के मानव-मन में उठ रही जिज्ञासाओं, मनोवृति और भाव एवं कुंठाओं का सजीव चित्रण किया है। इसी के चलते क्योंकि रूझान अँग्रेजी साहित्य को पढ़ने की तरफ भी है, और मनः भाव मात्र पुरुष के ही नहीं नारी के भावों और मनः स्थिति को समझना अति आवश्यक है। इसलिए अँग्रेजी साहित्य की सुप्रसिद्ध आधुनिक लेखिका अनीता देसाई के प्रसिद्ध उपन्यास 'क्रॉय द पीकॉक', 'वेयर शैल वी गो इन दिस्स सम्मर', 'ज़िगज़ेग वे', 'जर्नी टू इथाका', 'फॉस्टिंग फीस्टिंग', 'वॉयस्स इन द सिटी', 'फॉयर ऑन द मांउन्टेन', 'बॉम्गार्टनर्स बॉम्बे', 'बॉय-बॉय ब्लैक बर्ड', 'इन कस्टडी', 'क्लियर लाइट ऑफ डे' इत्यादि उपन्यासों में उनकी मनः स्थिति और पात्रों के मनोवेग, वृत्ति, कुंठा की तुलना आधुनिक हिन्दी लेखक अजय शर्मा के पात्रों से मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन करने की उत्कुंठा हुई, क्योंकि इन लेखकों के ऊपरलिखित उपन्यासों में पात्रों की कार्यवृति, क्रिया-कलाप में कहीं समानता पाई जाती है और कई स्थानों पर समय और वातावरण के प्रभाव के कारण असमानता। एक नारी के मनः भाव और पुरुष के मनः भावों की दृष्टि के अनुसार समाज हित के लिए रचा गया साहित्य क्या विशेषता और भिन्नता लिए हुए है, यह भी शोध का एक बिन्दु है। इन लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से रचना काल, रचना स्थिति तथा रचना स्थान का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में वर्णन किया है। इनकी रचनाओं के गहन अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि जिस भी धारणा, घटना, या स्थिति को उजागर करने की कोशिश की, उसका पहले तो खुद गहन अध्ययन व स्वानुभूति की, तत्पश्चात कलम के माध्यम से प्रस्तुत किया।

इस शोध कार्य में यह प्रयास रहा है कि लेखकों के मन की उन सभी अवस्थाओं को उजागर किया जा सके, जिनकी इच्छापूर्ति के लिए लेखकों ने रचनाएँ की हैं, साथ

ही साथ उन सभी सैद्धांतिक व सामाजिक कारणों का भी उद्घाटन किया गया है, जिन्होंने लेखकों की मानसिकता को प्रभावित किया तथा कलम चलाने को बाद्य किया।

समस्या कथन : *अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के साहित्य का मनोवैज्ञानिक चिन्तन : एक तुलनात्मक अध्ययन*

शोध समस्या औचित्य

समाज में अगर हम सकारात्मक बदलाव चाहते हैं तो हमें कुछ ऐसे मुद्दों को उठाना चाहिए जो सामाजिक बदलावों में सहायक हों। समाज में आने वाली चुनौतियों, जैसे अमीरों की गरीबों प्रति उदासीनता, नई-पूरानी पीढ़ी में लगाव की कमी, संयुक्त की अपेक्षा अकेलेपन से प्रेम, मनोविकारों से भरपूर मनुष्य मन और सामाजिक व मानसिक बिमारियाँ पल-पल अपना प्रभाव जमा रही हैं। अगर हम इन समस्याओं के निवारण हेतु मानव मन की सोच को सामाजिक दृष्टि के माध्यम से बदल सकें, उनके विचारों और दृष्टिकोण में बदलाव ला सकें तो सही अर्थों में साकारात्मक बदलाव सम्भव है तथा साहित्यिक शोध के माध्यम से इस प्रकार के बिन्दु व मुद्दे उठाना आधुनिक समाज की आवश्यकता भी है।

इन सभी सामाजिक व मानसिक समस्याओं को ध्यान में रखकर तथा उनके निवारण की दिशा में साहित्य के सहयोग से प्रस्तुत शोध विषय में कार्य करने के लिए सोचा गया। क्योंकि इनके उपन्यास साहित्य में एक आप-बीती कथाएँ झलकती हैं। चाहे वह उपन्यास साहित्य, अजय शर्मा या अनीता देसाई का ही क्यों न हो, सभी ने वर्णन और विस्तार इस ढंग से प्रस्तुत किया है जैसे वह खुद इन परिस्थितियों को झेल रहे हों। इन्होंने प्रत्येक समस्या को बहुत नजदीक से देखा, उसे महसूस किया और कलमबद्ध किया है। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में मानवीय संवेदना, आत्म तथा व्यक्तित्व, दृढ़ इच्छा-शक्ति, आत्मविश्वास, मानसिक बदलाव, उदासी, जिज्ञासा, छोटी-छोटी खुशियाँ, दोहरे व्यक्तित्व, सामाजिक दहशत जैसे न जाने कितने ही मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों को आधार बना कर कथाओं की रचना की तथा मानव को, समाज को और

आधुनिक मानवता की आन्तरिक मानसिकता को अंकित किया है। एक नए और अंतर-भाषी साहित्यकारों की सामाजिक व मानसिक समस्याओं पर आधारित साहित्य लेखनी पर कार्य करने तथा भावी समाज के लिए साकारात्मक बदलावों के साथ-साथ नई शोध हेतु अनेक रास्ते खोलने की ओर एक पहल मात्र है।

शोध के उद्देश्य

मानव व्यवहार के किसी भी कार्य को अंजाम देने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उद्देश्य निर्धारित होते हैं। तात्पर्य यह कि प्रत्येक कार्य का आरम्भ एक निश्चित उद्देश्य हेतू शुरू होता है तथा उसकी पूर्ति उपरांत ही समाप्त होता है। किसी भी शोध कार्य की पूर्ति के लिए भी यही प्रक्रिया प्रयुक्त होती है। समान्यतः शोध या अन्वेषण करने का मुख्य उद्देश्य समस्या का हल निकालने से है। अपने इस शोध कार्य *"अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के साहित्य का मनोवैज्ञानिक चिन्तन : एक तुलनात्मक अध्ययन"* में भी कुछ उद्देश्य निर्धारित किए गये है जो कि इस प्रकार हैं-

1. साहित्य, समाज तथा मनोविज्ञान के घनिष्ठ सम्बन्ध को प्रदर्शित करना।

प्रत्येक विषय का अपना एक महत्त्व होता है किन्तु फिर भी आन्तरिक रूप से प्रत्येक विषय का दूसरे विषय के साथ अप्रत्यक्ष रूप से कोई न कोई सम्बन्ध बना रहता है। कोई भी व्यक्ति जब किसी विशेष विषय के बारे में अध्ययन करता है तो दूसरे विषयों से कट जाता है और उसे महसूस होता है कि अमुक विषय के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं है। परन्तु वास्तव में अप्रत्यक्ष रूप से वह दो, तीन या इससे भी अधिक विषयों का अध्ययन कर रहा होता है।

साहित्य के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। अक्सर साधारण जन से सम्बन्धित लोग हिन्दी विषय को केवल बोल-चाल या सरकारी कार्यों की दफ़तरी भाषा के रूप में लेते हैं। साहित्य से सम्बन्धित कवि, लेखक या आलोचक वर्ग के लोग इसे अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम या इसे समाज के दर्शन का प्रतिबिम्ब मानते हैं।

जबकि साहित्य में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए यथार्थता के साथ-साथ कल्पना का भी सहारा लेना पड़ता है। यथार्थता के चित्रण के लिए उसे लयबद्ध करने के लिए समाज में विचरित लोगों की भावनाओं को समझना पड़ता है, लोगों के व्यवहार को पढ़ना पड़ता है, लोगों की अनकही बातों को शब्दावली में पिरोना पड़ता है, लोगों के व्यवहार को समझ उसकी समीक्षा करनी पड़ती है, उसके व्यवहारिक कारणों को समाजिक असर से जोड़ना पड़ता है तथा अपनी कल्पनाओं को भी पंख लगाने पड़ते हैं। इन सभी बातों से पता चलता है कि यह अप्रत्यक्ष रूप से मनोविज्ञान विषय तथा उसकी शाखाओं जैसे समान्य-मनोविज्ञान, असमान्य-मनोविज्ञान, समाज-मनोविज्ञान, शिक्षा-मनोविज्ञान इत्यादि का साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य ही यही है कि इस शोध के माध्यम से साहित्य, समाज एवं मनोविज्ञान का आपसी सम्बन्ध उदघाटित किया गया है।

2. मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं से प्रभावित लेखन की सम्भावनाओं को स्पष्ट करना।

जैसे-जैसे मानव जाति ने अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए विकासात्मक प्रवृति को अपनाया है उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु, विचारधारा, शिक्षा, नीतियों, परम्पराओं इत्यादि में भी परिवर्तन की झलक देखने को मिलती है। शिक्षा के क्षेत्र में विकासोन्मुखी बदलाव के कारण साहित्य लेखन की शैली व प्रवृति में भी बदलाव आया है।

मनोविज्ञान विषय का शिक्षा के कार्य क्षेत्र में विस्तार के कारण प्रत्येक साहित्यकार के मन में आदर्शोन्मुखी लेखन प्रवृति की लौ जगी है। भावी लेखकों पर इस विषय और इसकी विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा है। वह यथार्थ चित्रण के साथ-साथ आदर्शवाद को भी पकड़े हुए हैं। उनकी लेखन शैली में सुधार व विस्तार हो रहा है। मनोविश्लेषण के अध्ययन उपरांत साहित्यकारों द्वारा ऐसी रचनाएँ लिखी जा रही हैं जिसे पढ़ने के उपरांत पाठक की छोटी-छोटी मानसिक समस्याएँ तो तुरंत हल हो रही हैं और साथ ही उस समय, स्थान व वातावरण के कारण वहाँ के लोगों की मानसिकता

का स्तर भी स्पष्ट हो रहा है, जिस कारण वहाँ की मानसिकता के सुधार के नये आयाम खोजे जा सकते हैं।

आदर्शोन्मुखी प्रवृति से ओतप्रोत साहित्य लेखन से पाठकों की भावी समस्याओं के हल भी निकलकर बाहर आ रहें है और यदि यह सिलसिला निर्विघ्न चलता रहा तो लोगों की साहित्य अध्ययन के प्रति लगन भी बढ़ जाएगी।

3. लेखकों के कथा साहित्य में छिपे मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं से अवगत कराना।

साहित्य में ऐसे अनेक बिन्दु हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध मनोविज्ञान से होता है। जैसे कहानी में जब हम किसी घटना को उठाते हैं तो हम उसमें किन्ही दो या तीन पात्रों के आपसी व्यवहार का क्रिया-कलाप किसी एक बिन्दु पर दिखाते हैं। उसमें हम पात्रों की मानसिक स्थिति, उनकी बुद्धि, उनके आत्म, उनके भय, उनके सीखने या समझने की शक्ति इत्यादि को स्पष्ट कर रहें होते हैं। जब हम किसी सामाजिक घटना को कल्पना मिश्रित करके पेश करते हैं तो मुख्य रूप से हम उसमें सामाजिक मनोविज्ञान का चित्रण कर रहे होते हैं। कई बार किसी भी एक पात्र की मानसिक कुंठा या हताशा को मूल रूप बनाकर उसके व्यवहार का दूसरे पात्रों के साथ समन्वय बना देते हैं। वैसे तो आजकल प्रत्येक आधुनिक मनुष्य ऐसी कहानी या उपन्यास पढ़ते समय स्वयं को मुख्य पात्र के रूप में रखता है, क्योंकि आधुनिक दौर मानसिक परेशानी व द्वन्द्व का दौर है, तो असल में हम पाठक के समक्ष मनोविश्लेषणात्मक स्थिति का प्रदर्शन कर रहे होते हैं। इसी प्रकार ढेरों ऐसे और भी बिन्दु हिन्दी साहित्य में भरपूर मात्रा में मौजूद हैं, जिनका विवरण सामान्य पाठक तक पहुँचाना शोध का उद्देश्य बन जाता है।

4. साहित्य में उद्धृत मनोविकारों को दूर करने के साधनों को स्पष्ट करना।

जैसे कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि साहित्य तो मानव-कल्याण हेतु उठाया एक ऐसा विशेष कदम है जो अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक यथार्थता तथा आदर्शवाद पेश करता आया है। जब भी किसी साहित्यकार ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि

को ध्यान में रखते हुए अपनी कलम चलायी है तो पाठकगण को सदैव ही अपना अस्तित्व नज़र आया है और धीरे-धीरे ऐसी रचनाओं के गहन अध्ययन से उसके मनोविकारों का दूर होना कदाचित सम्भव है।

5. स्वस्थ समाज-निर्माण एवं संस्कार का निर्देशन करना।

जैसे-जैसे समाज ने तरक्की की है, सुख-सुविधाओं का प्रचलन शुरू हुआ है वैसे ही मानसिक परेशानियों का दौर भी चला है। आज व्यक्ति पदार्थवादी सोच के साथ पैसे कमाता हुआ सुख की आस करता है, किन्तु उतना ही दुखी होता है। उसकी शारीरिक व मानसिक परेशानियाँ बढ़ती जा रही है। ऐसे हालात में साहित्यिक दृष्टि से भावी लेखकों का यह फर्ज और कर्म बन जाता है कि वह अपनी सोच को मनोविश्लेषणात्मक बनाये और इसी सोच के साथ ही, ऐसे उद्देश्यों को ध्यान में रखकर इस प्रकार की रचना करें जिनके अध्ययन मात्र से जो पाठक वर्ग समाज में मनोविकारों से ग्रस्त हैं, उनको अपने विकारों के प्रति स्थिति स्पष्ट हो और उसके निवारण हेतु वह अग्रसर हों। लेखक भी अपनी भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ पाठक की मानसिक स्थिति पढ़े एवं एक अच्छे मार्ग-दर्शक के रूप में प्रस्तुत हों।

इस प्रकार के विषय अध्ययन से केवल एक विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किया गया है कि अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के साहित्य में से मनोविज्ञान के प्रत्येक पहलू को खोजकर निकाला जाएँ जिससे यह ज्ञात हो कि किस प्रकार उन्होंने व्यक्ति की तथा घटना की मानसिक स्थितियों को समझा और किस प्रकार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक कल्याण हेतु मानसिक स्थिति में सुधार लाने की कोशिश की। उन्होंने मानसिक द्वन्द्व के किन-किन पहलूओं को उठाया है। वर्तमान समाज में किस प्रकार के विभिन्न व्यक्तियों ने अपने व्यवहार में क्या-क्या तथा किस प्रकार के बदलाव किए हैं, क्या वह वर्तमान समाज में प्रासंगिक है ? इस प्रकार के व्यवहार को अगर आधार बनायें तो किस प्रकार के भावी साहित्य लेखन की संभावनायें हैं तथा समकालीन साहित्य से किस प्रकार व्यक्ति का मन व व्यवहार प्रभावित होंगे।

परिसीमांकन

कार्य कोई भी हो उसकी सीमाएँ निश्चित होती है और प्रत्येक कार्य की सीमाएँ या कार्य क्षेत्र का एक निश्चित दायरा होता है। उस दायरे के सीमांकन के चलते ही उस कार्य की गुणवत्ता बनी रहती है। इस शोध कार्य में भी कुछ सीमाएँ है जो इसकी प्रमाणिकता को बनाएँ रखने में मदद करती है। इस शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन करना है। अगर साहित्य की बात करें तो साहित्य में उपन्यास, कहानी, निबन्ध इत्यादि वह सभी अंकित किया जाता है जो किसी लेखक ने रचा है। किन्तु इस शोधकार्य में तीनों लेखकों के उन उपन्यास साहित्य को ही सम्मिलित किया गया है जिसमें शोध में उठाए मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं को पाया गया। जैसे-अज्ञेय के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', और 'अपने-अपने अजनबी' और अजय शर्मा के उपन्यास 'बसरा की गलियाँ', 'चेहरा और परछाईं', 'नौं दिशाएँ', 'शहर पर लगी आखें', 'भगवा', 'कागद कलम न लिखणहार, 'खुली हुई खिड़की', 'अकाश का सच', 'काल-कथा', 'समंदर और सफ़ेद गुलाब' और अनीता देसाई के प्रसिद्ध उपन्यास 'क्रॉय द पीकॉक', 'वेयर शैल वी गो इन दिस्स सम्मर', 'ज़िगज़ेग वे', 'जर्नी टू इथाका', 'फॉस्टिंग फीस्टिंग', 'वॉयस्स इन द सिटी', 'फॉयर ऑन द मांउन्टेन', 'बॉम्गार्टनर्स बॉम्बे', 'बॉय-बॉय ब्लैक बर्ड', 'इन कस्टडी', 'क्लियर लाइट ऑफ डे' में शोध विषय के अनुसार मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं को पाया गया और शोधकार्य की सीमाओं को निश्चित किया गया।

सम्बन्धित शोध में चुनौतियाँ

वैसे तो शोध कार्य करना अपने आप में एक चुनौती है किन्तु जब किसी विशेष समस्या को ध्यान में रखकर शोध किया जाता है तो उसमें कई प्रकार की समस्याएँ आती है। शोध कार्य को शुरू करने से लेकर अंत तक विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। धर्म, आस्था, सिद्धांतों, वर्ण, जाति, भाषा, क्षेत्रीय, तकनीकी,

शोध प्रक्रिया की विधियों, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सैद्धांतिक और न जाने इससे सम्बन्धित कितनी ही प्रकार की हो सकती है। प्रस्तुत शोध कार्य में मनोवैज्ञानिक आधार ढूँढने में, सैद्धांतिक मतभेद, भाषा की समस्या, विषय सामग्री की उपलब्धता में, वित्तीय व समय से सम्बन्धित, इत्यादि चुनौतियों का सामना करना होगा लेकिन चुनौतियों से दो चार हुए बिना कोई भी लक्ष्य सानन्द एवं सार्थक नहीं हो सकता। क्योंकि यह शोध प्रबन्ध एक तुलनात्मक शोध प्रबन्ध है इसलिए अँग्रेजी भाषा को अपनी शब्दावली देने में थोड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। वित्तीय चुनौतियों से भी दो-चार होना पड़ा। किन्तु फिर भी इस शोध-प्रबन्ध के उद्देश्यों की पूर्ति को पूर्णरूप से करने में सहायक हो पाए हैं।

शोध पद्धति

किसी भी कार्य की गुणवत्ता पहचाने के लिए विभिन्न विधियाँ महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य होती हैं। किसी भी कार्य को न तो एक विधि से किया जा सकता है, और न ही एक कार्य में सभी विधिओं का इस्तेमाल किया जा सकता है। इसी प्रकार शोध के लिए भी विभिन्न प्रकार की विधियाँ पाई जाती है जैसे- सर्वेक्षण पद्धति, आलोचनात्मक पद्धति, काव्यशानारीय पद्धति, समाजशानारीय पद्धति, भाषावैज्ञानिक पद्धति, मनोवैज्ञानिक पद्धति, समस्यामूलक पद्धति, तुलनात्मक पद्धति, वर्गीय अध्ययन पद्धति, आगमन-निगमन पद्धति इत्यादि।

कुछ खास कार्यों की सम्पूर्णता और शुद्धता के लिए पद्धतियों का प्रयोग करना आवश्यक होता है। इस अध्ययन विषय के लिए तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक, समाजशानारीय और आगमन-निगमन पद्धतियों का प्रयोग किया गया है, जो कि विषय के अनुसार अनुकूल बैठती है। प्रत्येक विधि का इस्तेमाल अपने शोध उद्देश्य की पूर्ति हेतू किया गया है।

तुलनात्मक शोध पद्धति

'तुलनात्मक शोध' जैसा कि इस शब्द से ही पता चलता है किन्हीं दो रचनाओं, लेखकों, काव्यांदोलनों या किन्हीं साहित्यिक पक्षों को लेकर एक ही भाषा अथवा दो भाषाओं के स्तर पर किया जाने वाला शोध है। इस विधि का प्रयोग शोध विषय के तीसरे उद्देश्य की पूर्ति हेतू किया गया है। संसार की प्रत्येक वस्तुएँ भिन्नता लिये हुए होती हैं। प्रत्येक दो व्यक्तियों में भी न केवल आकृति के आधार पर अंतर लक्षित होता है, बल्कि उनकी प्रकृति, विचारधारा और चिंतन-मनन में भी यह अंतर स्थूल स्तर तक दिखाई पड़ता है। यह अंतर भावगत भी होता है और शिल्पगत भी। साहित्य भी मानव भाव और विचार की एक विशिष्ट अभिव्यक्ति है। इसलिए किन्हीं दो साहित्यकारों का साहित्य सर्वथा एक जैसा नहीं हो सकता। अलग-अलग संस्कृतियों, परिवेशों और भाषाओं तथा भिन्न कालों के लेखकों में तो होना सम्भव ही नहीं, परन्तु सूक्ष्म स्तर पर समानता फिर भी मिलती है।

तुलनात्मक शोध अंततः सैद्धांतिक शोध में परिवर्तित हो जाता है। यदि हम दो वस्तुओं की तुलना करेंगे तो तुलना का आधार सैद्धांतिक ही होगा। यदि हम किन्हीं दो कृतियों की तुलना करते हैं तो यह तुलना कृतियों के शानारीय आधार पर ही की गयी है। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन व्यवहारिक रूप में एक प्रकार से सैद्धांतिक तात्विक अध्ययन हो जाता है। इस तरह तुलनात्मक अध्ययन किन्हीं दो कृतियों, लेखकों और भाषाओं के तात्विक आधार पर किया जाता है। विषमता बताने के लिए साम्य की खोज और साम्य बताने के लिए विषमता का शोध, इस प्रकार के शोध को गति प्रदान करता है। हिन्दी में यह कार्य अभी प्रारम्भिक स्थिति में है। इस दिशा में शोध की अभी बहुत सम्भावनाएँ और व्यापक क्षेत्र पड़े हैं। इसके अंतर्गत अन्य क्षेत्रों व साहित्य के अध्ययन के क्षेत्र में तुलना की बहुत गुंजायश है। अँग्रेजी और हिन्दी के छायावादी कवियों, और विचारधाराओं के अनुसार व्यापक तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों और कवियों में भी तुलनात्मक साम्य-वैषम्य को लेकर शोध किया जा सकता है।

तुलनात्मक शोध में तुलनीय ग्रंथों के सभी तत्वों को अलग-अलग करना होता है। कथावस्तु, पात्र, दर्शन, धर्म और मनोविज्ञान आदि तत्वों को अलग-अलग लेकर साम्य व वैषम्य की तुलना करनी होती है। एक ग्रंथ से दूसरे ग्रंथ के अध्ययन के द्वारा अद्योपांत निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाने चाहिए। यह अध्ययन किसी विशिष्ट पहलू या क्षेत्र-विशेष को लेकर भी किया जाता है। धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान, सौंदर्यशास्त्र, संस्कृति इत्यादि क्षेत्रों में से किसी एक आधार पर जब तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है तो इसकी सीमाएँ अंतर्विद्यावर्ती शोध का स्पर्श करके चलने लगती है। सिद्धांत-पक्ष के स्वरूप-निर्धारण के लिए सम्बद्ध विद्या-शाखा का अध्ययन करना होता है। यह अध्ययन रचना में सम्भावित रूप में प्रयाप्त दृष्टि को रखकर ही किया जाता है।

मनोविश्लेषणात्मक शोध पद्धति

मनोविज्ञान अँग्रेजी के 'साईकोलॉजी' अर्थात मनोविज्ञान मन, मन की संरचना, क्रिया और व्यवहार का अध्येता विज्ञान है। इस अध्ययन के अंतर्गत मनुष्य के व्यवहार को समझना, उसके भावी रूप का पता लगाना और उस पर नियंत्रण करना ही प्रमुख ध्यान देने योग्य बातें हैं। 'साईकोलाजी' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सत्रहवीं शती में देखने को मिलता है, लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं कि इससे पूर्व मानव ने अपने मानसिक किया-व्यपारों अथवा व्यवहार पर कभी विचार किया ही नहीं था। यदि भारतीय दृष्टि का अध्ययन करें तो पता चलता है कि वैदिक काल से ही मानव मन (हृद्य) शब्द का प्रयोग मिलता है। डॉ. हरिशचंद्र वर्मा की खोज के अनुसार, "फ्रायड द्वारा प्रवर्तित आधुनिक मनोविश्लेषणशास्त्र में जिस कामकुंठा का विवेचन है, उसके व्यवहारिक उदाहरण 'ऋग्वेद' में सुलभ हैं।" (शोध स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि 38) इससे पता चलता है साहित्य पर मनोविज्ञान के प्रभाव का पता बहुत पहले से रहा है। प्रस्तुत विधि का प्रयोग शोध के सभी उद्देश्यों की पूर्ति हेतू किया जाएगा। शोध का पहला उद्देश्य, साहित्य समाज तथा मनोविज्ञान के घनिष्ठ सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। शोध का दूसरा उद्देश्य मनोवैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित

लेखन की सम्भावनाओं को भी स्पष्ट करता है। तीसरा उद्देश्य लेखकों के साहित्य में छिपे मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं से अवगत कराता है। चौथा उद्देश्य साहित्य में उद्धृत मनोविकारों को दूर करने के साधनों को स्पष्ट कराता है। मनोविकारों को दूर करने में यह पद्धति सहायक सिद्ध होती है। शोध का आधार मनोवैज्ञानिक होने के नाते इस पद्धति का प्रयोग अनिवार्य है।

मनोविज्ञान की कई शाखाएँ और सम्प्रदाय विकसित हुए हैं- बाल-मनोविज्ञान, मनोविकृति या असामान्य-मनोविज्ञान, चिकित्सा-मनोविज्ञान, औद्योगिक-मनोविज्ञान तथा फ्रायड का मनोविश्लेषण सम्प्रदाय, गेस्टाल्ट मनोविज्ञान और प्रेरणावादी-मनोविज्ञान। लेकिन साहित्य शोध इन सम्प्रदायों अथवा शाखाओं के अधीन उतना अपेक्षित नहीं है जितना कि मनोविज्ञान के समवेत रूप से है। साहित्य में भावों और मनोवेगों का चित्रण रहता है और भावों तथा मनोवेगों का अध्ययन मनोविज्ञान का केन्द्र-बिन्दु है। इसलिए मानवीय व्यवहार के यथार्थ स्वरूप की पहचान के लिए साहित्य का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन अनिवार्य है। हर्बर्ट रीड के अनुसार, "मनोवैज्ञानिक (मानसिक) प्रक्रिया तक पहुँचने के लिए रचना का विश्लेषण करता है।" (साइको-एनेलिसिज्ज एडं क्रिटिसीज्म 40) इस तरह कला उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी महत्वपूर्ण अन्य कोई भी मानसिक अभिव्यक्ति। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक शोध साहित्यशानारीय सिद्धांतों में भी कुछ-न-कुछ नया जोड़ने की क्षमता रखता है।

साहित्य की मनोवैज्ञानिक शोध के कई प्रकार और आधार हो सकते हैं। साहित्य में प्रतीकों का बहुत महत्व रहता है। मनोविज्ञान प्रतीकों के मूल तक जाकर उनका विश्लेषण करता है। इस प्रकार साहित्य, मनोविश्लेषण के लिए जीवन प्रवाह में से मूल बिम्बों और सहज अनुभवों में, बाह्य यथार्थ में समाजपरक व्याख्या के आधार जुटाता है। मनोविज्ञान के अनुसार प्रेरणा के सन्दर्भ में कलाकार एक स्तर पर अपने चेतन नियंत्रण से मुक्त होकर अवचेतन में प्रवेश करता है जहाँ उसे नई तात्विक शक्ति प्राप्त होती है, जो असम्बद्ध अतिकल्पना होते हुए भी समृद्ध होती है। मनोविज्ञान ही एक

ऐसी विद्या-शाखा है जो भक्ति, रहस्यवाद, धर्म, दर्शन, अध्यात्मिकता और सौंदर्यशानारीय व्याख्या के क्षेत्रों में भी उपादेय है। निष्कर्ष यह है कि मनोवैज्ञानिक शोध के आयाम अंतर्विद्यावर्ती शोध-स्तर पर अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है।

समाजशानारीय शोध पद्धति

हिन्दी का 'समाजशास्त्र' शब्द अँग्रेजी के 'सोशलॉजी' का हिन्दी रूपांतरण है जिसका अर्थ है- 'समाज' और 'अध्ययन' अथवा विज्ञान। संसार की सभी भौतिक-अभौतिक वस्तुओं का एक स्वरूप होता है और इस स्वरूप के निर्माण में अनेक अंतर्वस्तुओं का योगदान रहता है। "समाज के सन्दर्भ में जहाँ प्रतिस्पर्दा, सहयोग, अधीनता, श्रमविभाजन आदि सामाजिक सम्बन्धों के कुछ स्वरूप हैं, वहीं राजनीति, धर्म, अर्थ, दर्शन आदि अंतर्वस्तुएँ इन स्वरूपों के निर्माण में अमूर्त रूप से सक्रिय रहती हैं।" (शोध स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि 39) इसी आधार पर इसका अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध भले ही सीमित रहता है, परन्तु रहता अवश्य है। प्रत्येक घटना समाज का ही एक आधार होती है इसलिए जो भी समाज में घटित होता है वह किसी न किसी मानसिकता को उजागर करता है। इस विधि का प्रयोग शोध के पहले उद्देश्य, साहित्य समाज तथा मनोविज्ञान के घनिष्ठ सम्बन्ध को प्रदर्शित करने के लिए किया जाएगा, इसलिए प्रस्तुत विधि का प्रयोग शोध के लिए अनिवार्य है।

हिन्दी में समाजशानारीय अध्ययन हो रहा है, लेकिन सम्भावनाओं की तुलना में अभी यह शोध बहुत कम हुआ है। वास्तव में अंतर्विद्यावर्ती शोध का हिन्दी में अभी सूत्रपात ही हुआ है। शोधार्थी का ध्यान इधर जा रहा है और भविष्य में इस दिशा में पर्याप्त प्रमाणिक और उत्तम शोध की आशा की जा सकती है।

आगमन-निगमन पद्धति

ये पद्धतियाँ उपर्युक्त प्रकारों की तरह की पद्धतियाँ नहीं हैं। यह तो अध्ययन के सभी प्रकारों में दृष्टि रूप में विद्यमान रहती हैं। आगमन पद्धति से अभिप्राय है

साधारण से मुश्किल की तरफ जाना अर्थात उदाहरणों से सिद्धांत की तरफ अग्रसर होना। निगमन पद्धति से भाव मुश्किल से साधारण की तरफ आना अर्थात सिद्धांत से उदाहरणों की तरफ आना। शानारीय अध्ययन इन दोनों पद्धतियों से हो सकता है, लेकिन शोध में सामान्यतः निगमनात्मक पद्धति ही अपनाई जाती है।

साहित्यावलोकन

शोध एक ऐसा कार्य है जिसमें जितना प्रवेश करते जायेंगे उतनी ही विस्तृत जानकारियाँ हासिल करते जाएँगे। इन जानकारियों को किस दिशा में हासिल करना है, वह सबसे अहम कदम है। किसी भी विषय पर शोध-कार्य करने से पूर्व अध्ययन आवश्यक होता है कि शोध-कार्य से सम्बद्ध सैद्धांतिक एवं व्यव्हारिक जो भी साहित्य शोध प्रबन्ध, आलोचनात्मक ग्रन्थ, शोध-पत्र, आलेख आदि के रूप में उपलब्ध हों, उसका सांगोपांग अवलोकन किया जाए और सम्भावित भावी शोध में पुनरावृति-दोष से बचते हुए शोध-अन्तराल को पूर्ण करने की दिशा में प्रयास किया जा सके।

सैद्धांतिक मनोविज्ञान से सम्बद्ध साहित्य

अपने शोध से सम्बन्धित पूर्व साहित्यवलोकन को हमने तीन भागों में बाँट कर देखने का प्रयास किया है-

1. मनोविज्ञान के सैद्धांतिक रूप से सम्बद्ध साहित्य
2. विविध साहित्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष से सम्बद्ध साहित्य
3. शोध केन्द्रित साहित्यकारों से सम्बद्ध साहित्य

इससे सम्बन्धित कई विचारकों के विचार और पुस्तकों का अध्ययन किया गया। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें बुद्धि, विवेक, कर्म की शक्ति, भावनाएँ विद्यमान हैं। मनोविज्ञान एक ऐसा ही विज्ञान है, जिसके माध्यम से मानव मन के विचार, भावनाएँ, मनोवेगों, अनुभूतियों, उद्वेगों के आधार पर हो रहे कार्य व्यवहार

को समझने का प्रयत्न किया जाता है। इसके आधार पर अलग-अलग विद्वानों द्वारा दिए गए विचारों, परिभाषाओं को पढ़ने के बाद यह ज्ञात होता है कि मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार के अध्ययन का एक ऐसा व्यवस्थित विज्ञान है, जो इसकी दिन-प्रतिदिन बदल रहीं क्रियाओं को सूक्ष्मता से अध्ययन, चिन्तन व मनन करता है तथा समाज पर पड़ने वाले व्यहार की जाँच करता है।

सैद्धांतिक मनोविज्ञान की पुस्तकें : सैद्धांतिक मनोविज्ञान की पुस्तकों में मनोविज्ञान से सम्बन्धित पुस्तकों को लिया गया है अर्थात सिद्धांत से सम्बन्धित पुस्तकों का वर्णन इसमें किया गया है। उदाहरणस्वरूप मनोविज्ञान किसे कहते है? मनोविज्ञान का अर्थ, मनोविज्ञान के सम्प्रदाय, मनोविज्ञान के प्रकार, मनोविज्ञान का इतिहास, मनुष्य में मनोविज्ञान किस प्रकार से कार्य करता है आदि सभी वर्णन इसके अन्तर्गत किए गए है।

1. बृज कुमार मिश्र, 'मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन', दिल्ली: पी.एच. आई बुक हाउस, 2012: यह पुस्तक मनोविज्ञान पर आधारित है। इस में मनोविज्ञान के बारे मे पूर्ण विस्तार से बताया गया है। मनोविज्ञान क्या होता है ? उसका अर्थ, उसकी परिभाषाएं ।मनुष्य में मनोविज्ञान किस प्रकार से कार्य करता है? इस लिए इसका प्रयोग अपने शोध कार्य में किया है।
2. हंसराज भाटिया, 'सरल मनोविज्ञान' दिल्ली: राजकमल प्रकाशन', 2005: इस पुस्तक में सरल मनोविज्ञान विषय पर चर्चा की गई है। सामान्य मनोविज्ञान का अर्थ, उसकी परिभाषाएँ तथा उसके स्वरूप पर विस्तार से विचार-विमर्श किया गया है। सामान्य मनोविज्ञान के तत्वों पर भी प्रकाश डाला गया है। सामान्य मनोविज्ञान को अच्छी तरह से समझने के लिए इस पुस्तक का अध्ययन आवश्यक है। इसलिए अपने शोध को सफल बनाने के लिए इस पुस्तक का अध्ययन किया।

3. डॉ. मैथिली प्रसाद भारद्वाज, 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत', चण्डीगढ़: हरियाणा साहित्य अकादमी,1988: इस पुस्तक में पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत तथा पाश्चात्य विद्वान जैसे प्लेटो, अरस्तू, होरेस, विलियम वर्डस्वर्थ, क्रोचे आदि विद्वानों द्वारा दिए सिद्धांतों का गहराई से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त साहित्य, समाज और साहित्य का समाजशात्र आदि विषयों की महत्ता पर भी प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से शोधार्थी साहित्य तथा सिद्धांत को समझ जाता है तथा उसका प्रयोग अपने शोध कार्य में करता है।

4. डॉ. मनमोहन सहगल, डॉ. हुक्मचंद राजपाल, 'इन्दु बाली और उनका रचना संसार', कश्मीरी गेट दिल्ली: आत्माराम एन्ड संस, 1991: इस पुस्तक में हिन्दी की प्रसिद्ध लेखिका इन्दु बाली के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं का विस्तृत वर्णन किया गया हैं। इसके अतिरिक्त उनके उपन्यासों जैसे कि 'वाँसुरिया वज उठी', 'नारी मन की टीस' तथा इसके साथ- साथ समीक्षात्मक शोधपरक निबंध जैसे 'नारी मन की अप्रतिम चित्रकार', 'विखरती आकृतियों में झाँकती नारी' का भी वर्णन किया गया है। लेखिका इन्दु बाली के सभी उपन्यास नारी की मानसिक स्थिति अर्थात नारी मनोविज्ञान पर आधारित है। इस लिए इस पुस्तक का प्रयोग अपने शोध कार्य में किया है।

5. डॉ.आर.एन सिंह, 'समाज मनोविज्ञान' आगरा: एच.पी.भार्गव बुक हाउस, 2007: इस पुस्तक में डॉ.आर.एन सिंह ने समाज मनोविज्ञान' के बारे में अपने गहन विचार प्रकट किए है, कि समाज मनोविज्ञान' किसे कहते है, इसके स्वरूप तथा इसके तत्वों जैसे कि भीड़, समुदाय, श्रोता आदि का वर्णन किया है। इस पुस्तक के अध्ययन के बाद शोधार्थी समाज-मनोविज्ञान तथा उसके तत्वों के बारे मे ज्ञान प्राप्त कर लेता है, जो मनोवैज्ञानिक शोध के लिए आवश्यक है।

विविध साहित्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष से सम्बद्ध साहित्य

1. सतीश कुमार, 'आधुनिक हिन्दी रामकाव्य में समाज मनोविज्ञान', शो. प्र.(महात्मा गांधी विश्वविद्यालय,कोट्टयम, 2001): इस शोधप्रबन्ध में आधुनिक हिन्दी रामकाव्य में समाज मनोविज्ञान को वर्णित किया गया है। इसके अतिरिक्त समाज मनोविज्ञान को पूरी तरह से रेखांकित किया गया है, जिसमें समाज मनोविज्ञान की परिभाषा तथा उसके तत्वों का वर्णन भी किया गया है। इस शोधप्रबन्ध को पढ़ने के बाद शोधार्थी समाज मनोविज्ञान तथा उसके तत्वों का ज्ञान उसे हो जाता है। इस शोधप्रबन्ध का अध्ययन मनोवैज्ञानिक शोध के लिए अति आवश्यक है।

2. अगस्टिन जोन, 'इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण: मनोवैज्ञानिक परिपेक्ष्य', शो.प्र. (महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, कोट्टयम,1997): यह शोधप्रबन्ध इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों के पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्र पर आधारित है। इस शोधप्रबन्ध में इलाचन्द्र जोशी के विभिन्न उपन्यासों जैसे सन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया तथा निर्वासित में पात्रों के अहम, काम वासना, क्रोध, लज्जा, हिंसा की भावना को बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मनोवैज्ञानिक शोध के लिए यह शोधप्रबन्ध शोधार्थी के लिए एक नई रोशनी का मार्ग प्रस्तुत करता है।

3. अजीत कुमार सी. एस. 'जैनेन्द्र के उपन्यासों में अहम् का साक्षात्कार: एक मनोविश्लेणात्मक अध्ययन', शो. प्र. (एन. एस. एस, हिन्दु कॉलेज, चंगनाचेरी 2005): इस शोधप्रबन्ध में जैनेद्र के उपन्यासों में पात्रों के अहम् को प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ-साथ ऑल्फ्रेड एडलर जिन्होंने अहं को व्यक्ति में सर्वोपरि माना है, कि विचारधारा का भी वर्णन किया है। उनकी विचारधारा के अध्ययन के बाद शोधार्थी अहं के रूप को समझ जाता है तथा पात्रों के संवादों के द्वारा उसको प्रकट करता है।

अज्ञेय के कथा-साहित्य पर किया गया शोध कार्य

शोध कार्य सम्बन्धित लेखक अज्ञेय के कथा साहित्य पर अब तक जितना भी कार्य हुआ है वह अलग-अलग विचारधाराओं को मद्देनज़र विश्वविद्यालयों के तहत लघु शोध प्रबंध व शोध प्रबंध के तहत हुआ है जो कि इस प्रकार है-

1. अर्चना, 'अज्ञेय के उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन' (कालीकट विश्वविद्यालय, 2012) प्रस्तुत अध्ययन में अज्ञेय के उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक ढंग से अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय का सम्बन्ध 'अज्ञेय' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से है। दूसरे अध्याय में उपन्यासों का कथावस्तु विन्यास पर विचार किया गया है। तीसरे अध्याय में उपन्यासों के पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन मनोविज्ञान के प्रणेता सिगमण्ड फ्रायड के मूल सिद्धांतों के आधार पर किया गया है। चौथे अध्याय में उपन्यासों में विभिन्न समस्याओं और भाषा-सौष्ठव एवं शैली का अध्ययन किया गया है। अज्ञेय ने पात्रों के अंतः सत्यों का यथार्थ विश्लेषण करने के लिए मनोविज्ञान की दृष्टि को स्वीकारा है। जीवन की अनुभूतियाँ जीवन से ही ली गई है। मनोविज्ञान की पोथियों से नहीं। जीवन की अनुभूतियाँ मनोविज्ञान के आलोक में विश्लेषित की गई है। अनुभूतियों के विविध आयामों को अनुभूतियों के जटिल-संश्लिष्ट सम्बन्धों को बारीक से बारीक, बोधों को या बोध के बारीक स्तरों को इन उपन्यासों में कलात्मक माध्यम से उद्घाटित किया गया है। इस शोध-प्रबंध के निष्कर्षों के आधार पर अज्ञेय ने अपने तीनों उपनायासों में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का सार्थक प्रयोग किया है।

2. स्वास्थी, 'अज्ञेय और यशपाल के उपन्यासों में नारी: एक तुल्नात्मक अध्ययन' (परियार विश्वविद्यालय,2006) प्रस्तुत अध्ययन में अज्ञेय और यशपाल के उपन्यासों में नारी से सम्बन्धित हर दृष्टि पर विचार किया गया है। एक ही काल और जीवन में कुछ समय सक्रिय क्रांतिकारी होने जैसी समानताओं के बावजूद

अज्ञेय और यशपाल के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण से विचार करते हैं, वहीं अज्ञेय की दृष्टि मनोविश्लेषणात्मक के साथ-साथ रूमानी भी है। यशपाल ने अपने उपन्यासों में नारी समस्या को बहुत गहरे स्तर पर उठाया है जैसे- शोषण की समस्या, प्रेम की समस्या, विवाह की समस्या आदि की गहराई से पड़ताल की है और इसके मूल में छिपे कारणों की तलाश का प्रयास किया है। इसके विपरीत अज्ञेय के उपन्यासों में नारी समस्या के सन्दर्भ में सिर्फ प्रेम की समस्या को ही मूल रूप से उठाया गया है। प्रेम की समस्या में रूमानियत का भाव अधिक और यथार्थ बहुत कम दिखाई देता है। अज्ञेय और यशपाल के उपन्यासों में एक प्रमुख भिन्नता जो उभर कर आती है वह यह कि यशपाल के उपन्यासों के केन्द्र में नारियाँ हैं, जबकि अज्ञेय के उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु पुरुष हैं। इस प्रकार एक ही काल और जीवन की परिस्थिति में कुछ समानता के बावजूद दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण दोनों उपन्यासकारों की नारी दृष्टि में अनेक भिन्नताएँ विद्यमान हैं।

3. रमेश, 'अज्ञेय के कथा-साहित्य का शिल्प-विधान' (बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, 2006) प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में अज्ञेय के कथा-साहित्य का शिल्प विधान और साथ ही अज्ञेय के समकालीन शिल्प विधान के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। अज्ञेय की प्रसिद्धि हर प्रकार के साहित्य के लिए मानी गई है चाहे वह कहानी, उपन्यास, कविता, निबन्ध या संस्मरण ही हो। अज्ञेय का यहां कथ्य जितना विशिष्ट है वहीं उसको प्रस्तुत करने का तरीका अर्थात शिल्प भी उतना ही विशिष्ट है। अज्ञेय का शिल्प अत्यंत संगठित एवं उत्कृष्ट है और इनका प्रभाव परवर्ती उपन्यासों के शिल्प पर पर्याप्त पड़ा, विशेषकर मनोविश्लेषणात्मक धारा पर। कथ्य में चरित्रों को महत्व देना, उनके नाम पर नामांकन करना मनोविश्लेषण पर व्यक्ति की स्थापना, नए-नए शिल्प-प्रयोग करना आदि कुछ विशेषताएँ हैं जो अज्ञेय ने परवर्ती कथा-साहित्य के शिल्प को प्रदान किए हैं। अज्ञेय ने हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा और सार्थक अभिव्यक्ति को कलात्मक मोड़ देकर शिल्प को भी प्रतिष्ठित किया है।

4. तन्नु रसतोगी, 'अज्ञेय के कथा-साहित्य में आधुनिकता बोध' (बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, 2004) प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में अज्ञेय के कथा-साहित्य में आधुनिकता बोध पर अध्ययन किया गया है। आधुनिकता के अर्थ, स्वरूप को बताते हुए आधुनिकता बोध के कारक तत्वों, विविध आयामों का विस्तार पूर्वक अध्ययन कर अज्ञेय के कहानी और उपन्यासों में आधुनिकता बोध को देखने का प्रयास किया गया है। अज्ञेय के कथा-साहित्य में यथार्थवाद और नगरीकरण के वरदान एवं अभिशाप को भी विस्तार रूप में दर्शाया गया है। साहित्य पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव और मानवतावाद को भी परिलक्षित किया गया है। अज्ञेय के कथा शिल्प एवं आधुनिकता बोध को औपन्यासिक शिल्प, कहानी शिल्प और भाषागत प्रयोग के आधार पर देखा गया है। अज्ञेय के उपन्यासों और कहानियों की दृष्टि से आधुनिकता बोध स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ता है।

5. भारती शर्मा, 'अज्ञेय के उपन्यासों का मनो-सामाजिक अध्ययन' (कालीकट विश्वविद्यालय, 2001) प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में अज्ञेय के उपन्यासों का मनो-सामाजिक अध्ययन किया गया है। अज्ञेय के उपन्यासों की विशिष्टता यह है कि उन में वैयक्तिक जीवन और सामाजिक जीवन के सरोकारों को प्रमुखता दी गयी है। व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों का चित्रण करने के सन्दर्भ में अज्ञेय की विचारधारा परिष्कृत रूप में लक्षित होती है। व्यक्ति की विचारधारा के निर्माण में प्रेरक सामाजिक तत्वों की भूमिका को उपन्यासकार अज्ञेय स्वीकार करते हैं। इस विषय में व्यक्ति को केन्द्र में रखकर सामाजिक यथार्थ का निरूपण करना और व्यवस्था को केन्द्र में रखकर व्यक्ति-जीवन के आंतरिक यथार्थ का विश्लेषण करना सम्भव हो गया है। मनो-सामाजिक यथार्थ के धरातल पर अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में मानव जीवन की स्थितियों की संश्लिष्टता को चित्रित किया है। उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को और उनकी अंतः क्रियाओं के माध्यम से एक-दूसरे पर प्रभाव-प्रक्षेपण को निरूपित किया गया है। व्यक्ति और समाज के आंतरिक यथार्थ

को इन उपन्यासों में अभिव्यक्ति मिली है। अज्ञेय के जीवन की घटनाओं से, उनके आरम्भिक दोनों उपन्यासों की कुछ घटनाओं का आभास जुड़ा हुआ मिलता है। व्यक्ति के अंतरंग का और युगीन परिवेश का सूक्ष्म परीक्षण करने की शक्ति, परिवेश-बोध की विकसित चेतना, अनुभूतियों की ईमानदार अभिव्यक्ति और अदभुत कल्पना-शक्ति के सामर्थ्य के बल पर अज्ञेय ने उपन्यासों की रचना की है और अपनी सृजनधर्मिता का परिचय दिया है।

अज्ञेय के कथा-साहित्य पर किए गये अन्य शोध कार्य-

6. रोय जोसफ़, 'यथार्थ की परिकल्पना : अज्ञेय और मोहन राकेश के उपन्यासों में', (एन. एस.एस. हिन्दु कॉलेज, छत्तीसगढ़, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय,2002)
7. अगस्टिन एम. जोसफ, 'हिन्दी कहानियों में सन्त्रास की भावना- अज्ञेय, मोहन राकेश और निर्मल वर्मा के विशेष सन्दर्भ में', (सेंट जीर्जस कॉलेज, अरुवित्तुरा, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, कोट्टयम,1999)

डॉ. अजय शर्मा के कथा-साहित्य पर किया गया शोध कार्य-

1. कंचन, 'डॉ. अजय शर्मा के उपन्यासों में परिवेश', (पंजाब यूनिवर्सिटी, 2011) यह शोध प्रबन्ध अभी पंजीकृत हुआ है। इस पर शोध कार्य चल रहा है। यह शोध प्रबन्ध डॉ. अजय शर्मा के उपन्यासों में परिवेश पर आधारित हैं। जिसमें शोधार्थी ने उनके उपन्यासों के पारिवारिक परिवेश, सामाजिक परिवेश, राजनैतिक परिवेश, आर्थिक परिवेश पर प्रकाश डाला है।
2. प्रो. हरमहेन्द्र सिंह बेदी, डॉ. सुधा जितेन्द्र (संपा.), 'डॉ. अजय शर्मा का कथा-संसार' (जालंधर: साहित्य सिलसिला प्रका, 2010) डॉ. अजय शर्मा का कथा-संसार इस पुस्तक का सम्पादन प्रो.हरमहेन्द्र सिंह बेदी (विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविघालय अमृतसर) तथा डॉ. सुधा जितेन्द्र (रीडर हिंदी विभाग,

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर) ने किया है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में पचास से अधिक भिन्न-भिन्न लेखकों ने डॉ. अजय शर्मा के उपन्यासों पर अपनी कलम चलाई है।

3. विकास पराश्र, 'डॉ. अजय शर्मा कृत 'नौ दिशाएं' उपन्यास का मनोवैज्ञानिक अध्ययन', (लवली प्रोफैश्नल विश्वविद्यालय, पंजाब, 2016) प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में अजय शर्मा के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'नौ दिशाएं' में मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। इस में पात्रों का उनके चरित्र में आए सामान्य, आसामन्य, नारी, समाजिक मनोवैज्ञानिक तत्वों के आधार पर विश्लेषण किया गया है।

अनीता देसाई के कथा-साहित्य पर किया गया शोध कार्य:

1. अलका, 'अनीता देसाई और शशि देश्पांडय के उपन्यासों में घरेलु सम्बन्धों का वर्णन', (एन. ए. एस कॉलेज, चरन सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, 2002) यह शोध कार्य अनीता देसाई और शशि देश्पांडय के कुछ चुने हुए उपन्यासों में घरेलु सम्बन्धों के व्यवहार, मुख्यतः बिगड़े हुए मानवीय सम्बन्धों और भारतीय मध्यवर्गीय परिवारों में मन मुटाव और विरक्ति की भावना को चित्रित करता है। स्वाभाविक आयोग्यता जो कि अकेलेपन को ज्यादा संगीन करता है, बोलचाल में अभाव/कमी, भगौड़ापन, अलगाव और पहचान को खोजना ही इसके पीछे मुख्य कारण है। गरीबी, अमीरी, युद्ध, राजनीतिक मुद्दे और सामाजिक बुराईयाँ इन उपन्यासों के विषय नहीं हैं, परन्तु यह घरेलु सम्बन्धों के सम्बन्ध में मुख्यतः बेमेल शादियों और आदमी-औरत के बेताल सम्बन्धों पर आधारित हैं। अनीता देसाई और शशि देश्पांडय आधुनिक युग की लेखिकाएँ होने के नाते परम्परागत नीतियों को नहीं मानती, परन्तु उनके उपन्यासों का मुख्य विषय मानवीय सम्बन्धों की आधुनिक सभ्यता के अनुसार व्याख्या करना है, और इस तरह वह सामाजिक समानता में अपना योगदान देना चाहती हैं।

2. रेणुका देवी जेन्ना, 'अरुन जोशी, अनीता देसाई और झुम्पा लाहिरी के उपन्यासों में अस्तित्ववाद: एक तुल्नात्मक अध्ययन', (श्री जगदीश प्रसाद झबर्मल तिबेर्वाला विश्वविद्यालय, राजस्थान, 2014) इस शोध कार्य के माध्यम से अनीता देसाई, अरून जोशी और झुम्पा लहिरी के उपन्यासों में से अस्तित्ववाद के तत्वों को समझाकर विवेचनात्मक और तुल्नात्मक अध्ययन किया गया है। अस्तित्ववाद एक विशाल शब्द है, जिसके भीतर मानवी व्यवहार के कई हैरान करने वाले रहस्य विद्यामान है। जिसको समझना और विहार करना काफी जटिल और रहस्यात्मक प्रतीत होता है। इससे सम्बन्धित प्रख्यात दार्शनिकों द्वारा 1940-50 में विस्तार से चर्चा और परिभाषित किया जा चुका है। इस विषय में दिए गये अस्तित्ववादी चरित्र, कारण, बाधक साधन, अप्रिय सम्भाव्य घटना और उपाय को इस शोध कार्य द्वारा व्याख्यायित किया गया है।

3. सुनीता झा., 'अनीता देसाई और अरुन जोशी के उपन्यासों में आत्मिक तत्व की खोज: एक तुलनात्मक अध्ययन', (पं. रविशंकर शुकला विश्वविद्यालय, रायेपुर, छत्तीसगढ़,2012) यह शोध कार्य अनीता देसाई और अरून जोशी के उपन्यासों में आत्मिक तत्व की खोज पर आधारित है। यह चरित्रों के आत्मिक तत्व की खोज पर एक तुलनात्मक अध्ययन है। इनके विषय के माध्यम से औरत के चरित्र-चित्रण, एकांतवास, आज़ादी के अभाव और समाज में उचित स्थान को लेकर उठाये अनीता देसाई के योग्य प्रश्नों के द्वारा ही विषयों को निर्मित किया गया है। स्वाभाविक बुद्धि और प्रेरणा से अरुन जोशी ने मानवीय मनोविज्ञान के आत्मिक रहस्य को गहराई से मापा है। यह शोध कार्य स्वभाविक तौर पर सार्वजनिक समस्याओं पर आधारित है जो आधुनिक मनुष्य आज बेकार और अर्थहीन समस्याओं का सामना करता है यहीं अर्थहीन समस्याएं मनुष्य के मनोविज्ञान को दर्शाती हैं।

4. रश्मि अर्जारिया, 'अनीता देसाई के उपन्यासों में नारी पात्र : एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन', (बुंदेलखण्ड कॉलेज, झाँसी, 2006) इस शोध का उद्देश्य अनीता देसाई के उपन्यासों के संसार में से उभरती हुई नारी पात्रों की चेतन्यता का निरीक्षण करना है। इस शोध के माध्यम से अनीता देसाई के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक तत्वों का मूल्यांकन किया जाएगा। पाश्चात्य देशों और भारत में सचेतन/ सूक्ष्मता, विचार और समझ विस्तृत ढ़ंग से विवेचनात्मक ध्यान दिया गया है। लेखिका ने जिन्दगी का निरीक्षण कर और अपनी लेखनी के माध्यम से यादगार चित्रण का निर्माण किया है। व्यक्तिगत और सचेतनता लेखिका को दूसरे लेखकों से भिन्न रखती है।

5. वि. रमेश, 'अनीता देसाई और कमला मार्कन्दया के उपन्यासों में नारीवाद', (परियार विश्वविद्यालय, सेलम, 2009) इस शोध के माध्यम से अनीता देसाई और कमला मार्कन्दया ने प्रत्यक्ष ढंग से एकेलेपन और कुण्ठा के अंधेरे में साहस और उम्मीद की किरण को ढूँढ रही नारी को प्रभावी और सम्भावित ढंग से दिखाया गया है। इस शोध कार्य में नारी के एक नए ढंग से काम करने की आज़ादी और जो मनुष्य संघर्षमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं उनके लिए एक प्रेरणा बनकर सामने आती है, इसे दिखाने का प्रयास किया गया है।

6. तन्नु रस्तोगी, 'अनीता देसाई के उपन्यासों में स्वत्व की खोज', (हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड,2008) उपन्यासों में स्वत्व की खोज मुख्य पहलू इस शोध कार्य में प्रामाणिक किया गया है। आरम्भिक अध्याय में पात्रों की मनोस्थिति के बारे में अनीता देसाई की चिन्ता को गहराई से देखा गया है। अनीता देसाई के उपन्यासों में अधिक्तर केन्द्रीय स्थान में रहने वाले पात्र, चाहे वह पुरुष पात्र हो या नारी जिनके इर्द-गिर्द उपन्यास की सारी कहानी घूमती है वे अपनी स्वाधीनता/ स्वत्व की खोज के लिए हर तरह से कठोर संघर्ष कर रहा है।

स्वाधीनता/ स्वत्व की खोज करने के लिए सभी पात्र अपने ही ढंग से संघर्ष करते देखाई देते है।

7. शैली शुक्ला, 'अनीता देसाई के उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान और पारिवारिक सम्बन्ध', (गुरू घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, 2011) इस शोध कार्य में अनीता देसाई के उपन्यासों में मनोविज्ञान का तकनीकी ढंग से अनुमान लगाया गया है। एक अच्छे उपन्यासकार की भाँति कथा में, पात्रों की सटीक नियुक्ति, स्थिति, वार्तालाप, और अन्य तत्वों का समायोजन अनीता देसाई के उपन्यासों में किया गया है। उपन्यासकार ने जो पूरी ज़िन्दगी में अकेलापन महसूस किया कथा का विषय ढांचा उसी स्थिति और दृश्य को दर्शाता है। अनीता देसाई असामान्य मनोविज्ञान के पहलू के विषय को एक नए अर्थ देकर प्रस्तुत किया है। इस तरह के विभिन्न पहलूओं को अन्य उपन्यासों में भी दर्शाया गया है।

अध्याय एक:

मनोविज्ञान की सैद्धांतिक अवधारणा

किसी भी शोध-प्रबन्ध को करने के लिए सैद्धांतिक अवधारणा की जरूरत होती है क्योंकि इन्हीं सिद्धांतों को आधार बनाकर शोध-प्रबन्ध में से तथ्यों पुष्टी की जाती है। विद्वानों द्वारा दिए गए सिद्धांतों को मानक मानकर शोध-प्रबन्ध में आगमन-निगमन पद्धति का प्रयोग करके शोध को आगे बढ़ाया जाता है। इस शोध-प्रबन्ध में मनोविश्लेषणात्म अध्ययन होने के कारण मनोविज्ञान सिद्धांत के बारे में जानना बहुत जरूरी अंग बन जाता है। मनोविज्ञान का अर्थ, परिभाषाएँ, स्वरूप, इतिहास और क्षेत्र को निम्न देखा जा सकता है।

मनोविज्ञान का अर्थ

मनोविज्ञान मानव मन का विज्ञान है। मनोविज्ञान प्राणियों के व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। मन भावों, मनोविकारों और अनुभूतियों का कोष है। मनोविज्ञान के द्वारा इन्हीं भावों, मनोविकारों और अनुभूतियों की व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। मनोविज्ञान के विषय की ओर मनुष्य का मन सदा आकर्षित रहा है। उसे अपने और दूसरों के स्वभावों, गुणों, व्यवहारों, सम्बन्धों, प्रयासों, सुख-दुखों तथा अन्य अनुभवों में रुचि रही है। मनुष्य की इस सब उधेडबुन की सदियों तक प्रेक्षणों, अनुमानों, वाद-विवादों एवं खोजों की अनेक धाराएँ चलती रही है। उन्हीं में से मनोविज्ञान का जन्म एवं विकास हुआ।

मनोविज्ञान शब्द की उत्पत्ति

मनोविज्ञान शब्द का पहला प्रयोग सत्रहवीं शताब्दी में हुआ। मनोविज्ञान को अंग्रेज़ी में Psychology कहते है। इस शव्द की उत्पति ग्रीक भाषा के ‘Psyche’ और

'Logos' शब्दों के मेल से हुई है। Psyche का अर्थ है 'आत्मा' और Logos का अर्थ है 'विचार करना'। इस प्रकार साइकोलॉजी का अर्थ है- आत्मा का अध्ययन। ऐसा भी कहा जाता है कि ग्रीक भाषा के सुखी शब्द से 'सैक्किक' शब्द निकला है। प्लेटो, अरस्तु जैसे यवन आचार्यों ने इस शब्द के लिए जीवन, चेतन, आत्मा जैसे अर्थो का प्रयोग किया है। इस के आधार पर कहा जा सकता है कि सैक्किक से सम्बन्धित शास्त्र है साइकोलॉजी (मनोविज्ञान)।

मनोविज्ञान की परिभाषाएँ

मनोविज्ञान की निश्चित परिभाषा देना कठिन कार्य है क्योंकि मन की क्रियाशीलता को विज्ञान के नियमों में बांधना सरल कार्य नहीं है। जितनी इसकी खोज होती है उतनी ही नई परते खुलती जाती है। मनोविज्ञान एक अध्ययन प्रक्रिया है, जिसके आधार पर मन की गतिविधियों को कार्य कारण में बांधने का प्रयास किया जाता है। समय-समय पर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने चिंतन, मनन, परीक्षण एवं अध्यनन के आधार पर विभिन्न विचार प्रकट किए है। जो कि निम्नलिखित हैं। जिनको पढ़ने के पश्चात हम मनोविज्ञान को अच्छी तरह से जान पाएँगें।

पाश्चात्य विचारधारा के अनुसार मनोविज्ञान

1. वेब्स्टेर्स डिक्शनरी के अनुसार, "मन एवं मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों, इच्छाओं इत्यादि से सम्बन्धित विज्ञान मनोविज्ञान है।" (1454)
2. आक्सफोड डिक्शनरी के अनुसार, "मानव की आत्मा तथा मन की प्रकृति कार्यो का विज्ञान मनोविज्ञान है।" (1552)
3. जेम्स के अनुसार, "मनोविज्ञान वह विज्ञान है, जो मनुष्य तथा पशु के व्यवहार का अध्ययन करता है। जहाँ तक व्यवहार का अर्थ है यह व्यवहार अन्तर्जगत के मनोभावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति है।" (The study of Mental Life 212)

4. वुड्वर्थ के अनुसार, “मनोविज्ञान सम्बन्धित वातावरण में व्यक्ति की क्रियाओं का विज्ञान है।” (मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ 129)
5. वॉटसन के अनुसार, “मनोविज्ञान, व्यवहार का निश्चित या शुद्ध विज्ञान है।” (प्रिंसीपल आफ साइकालॉजी 169)

भारतीय विचारधारा के अनुसार मनोविज्ञान

1. बृहत हिन्दी कोश के अनुसार, “मनोविज्ञान मानव मन की प्रकृति, वृत्तियों आदि का विवेचन करने वाला विज्ञान एवं मानस शास्त्र है।” (बृहत हिन्दी कोश 1050)
2. मानक हिन्दी कोश में, “मनोविज्ञान वह विज्ञान या शास्त्र है जिसमें मनुष्य के मन उसकी विभिन्न अवस्थाओं तथा क्रियाओं, उस पर पड़ने वाले प्रभावों आदि का अध्ययन तथा विवेचन होता है।” (मानक हिन्दी कोश 263)
3. डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, “मनोविज्ञान के अंतर्गत मस्तिष्क की विविध क्रियाओं एवं शक्तियों का तथा मानव स्वभाव एवं कार्यो की मूल प्रवृत्तियों एवं प्रेरणाओं का अध्ययन किया जाता है।” (मानविकी परिभाषा कोश 237)

मनोविज्ञान का स्वरूप

यदि ‘मनोविज्ञान’ शब्द पर विचार करें तो इसके मनोविज्ञान के वास्तविक अर्थ या स्वरूप के बारे में कोई संकेत नहीं मिलता है। यह शब्द जो इंगित करता है और आज के युग में मनोविज्ञान वस्तुतः जिस रूप में स्थापित या मान्यताप्राप्त है, इनमें परस्पर विरोधाभास है। यदि ‘मनोविज्ञान’ शब्द को आधार मानकर इसका अर्थ अनुमानित करें तो इसे मन का विज्ञान मानना पड़ेगा। एक समय ऐसी ही विचारधारा

प्रचलन में थी। परन्तु आज इसे प्राणियों के व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने वाले विज्ञान के रूप में जाना जाता है।

ऐसा नहीं है कि मनुष्य स्वयं को या अन्य मनुष्य या प्राणियों के व्यवहारों को जानने तथा समझने में आज रूचि लेने लग गया है। वास्तविकता तो यह है कि लोग सृष्टि की रचना के साथ ही एक-दूसरे को समझने, प्रभावित करने, मूल्यांकित करने, किसी या स्वयं के व्यवहारों को निर्धारित करने वाले कारकों एवं जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन स्थापित करने जैसे कार्यों में रूचि लेते रहे हैं। परन्तु, अतीत के लोगों की सोच जहाँ दार्शनिक विचारों पर आधारित थी, वहीं आज के लोगों की सोच वैज्ञानिक चिन्तन पर आधारित है। आज के मनोवैज्ञानिक, व्यक्ति या प्राणी के व्यवहार के कारणों को वस्तुनिष्ठ आधार पर जानने का प्रयास करते हैं ताकि यह निष्कर्ष दिया जा सके कि उत्पन्न होने वाले व्यवहार या किसी प्राणी द्वारा किए गये कार्य के पीछे वास्तव में कारण क्या है ?

मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

आज मनोविज्ञान को प्राणियों के व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का विज्ञान माना जाता है। परन्तु, इसका अतीत इस विचार से पूर्णतः भिन्न रहा है। अतः मनोविज्ञान के वर्तमान स्वरूप को विधिवत समझने के लिए इसके इतिहास का आवलोकन आवश्यक है।

ऐसी मान्यता है कि दर्शनशास्त्र विभिन्न विज्ञानों की जननी है। इसी से विभिन्न विज्ञानों का जन्म हुआ हौ। तो मनोविज्ञान भी इसका अपवाद नहीं है। इसकी उत्पत्ति ही उससे नहीं हुई है बल्कि काफी दीर्घ काल तक यह दर्शनशास्त्र की सोच से प्रभावित भी रहा है। इतिहास साक्षी है कि प्रारम्भ में मनोविज्ञान को आत्म, मन या चेतना... आदि के विज्ञान के रूप में समय-समय पर मान्यता मिलती रही है। प्रस्तुत समीक्षा से यह स्पष्ट हो रहा है।

प्रारम्भिक विचारधाराएँ

दर्शन एवं चिन्तन का जनक यूनानी दार्शनिकों को माना जाता है। इनमें डेमोक्रिटस (460-370 BC), प्लेटो (427-347 BC), एवं अरस्तु (348-322 BC) का नाम आज दुनिया के हर कोने में जानने वाले हैं। डेमोक्रिटस ने विश्व को छोटे-छोटे परमाणुओं या गतिशील तत्वों से निर्मित बताया। हमें जो कुछ होता या घटता दिखाई पड़ता है, वह ऐसे ही परमाणुओं में होने वाली अन्तरक्रिया का परिणाम है। प्लेटो ने यह मत व्यक्त किया कि व्यवहार, मन से प्रभावित होता है। प्लेटो ने इस प्राचीन विचारधारा का समर्थन किया कि आत्मा एवं शरीर स्पष्टतः भिन्न-भिन्न चीज़े हैं। आत्मा अमर होती है। इन्होंने आत्मा को अभौतिक बताया है और यह भी कहा है कि इसमें अमूर्त सम्बन्धों को समझने, गणितीय योग्यता तथा दार्शनिक योग्यता होती है। इन्होंने शरीर को भौतिक स्वरूप वाला कहा है। इस प्रकार प्लेटो ने 'मनोभौतिक द्वैतवाद' का समर्थन किया।

प्लेटो के शिष्य अरस्तु ने दर्शन एवं चिन्तन के क्षेत्र में बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इन्हें सार्वभौतिक प्रतिभावान माना जाता है। इन्होंने प्लेटो द्वारा प्रस्तुत विचार, कि आत्म एवं शरीर में अत्यधिक खाई है, से असहमत होते हुए मानसिक एवं भौतिक या शारीरिक प्रक्रियाओं में सम्बन्ध खोजने का प्रयास किया। इन्होंने आत्मा या मन को समग्र प्राणी का आकार बताया। मन को एक प्रक्रिया के रूप में अध्ययन करने का प्रयास भी किया और कहा कि इन कार्यों में साहचर्य से सीखने आदि में सहायता मिलती है। इन्होंने घटनाओं के वस्तुनिष्ठ निरीक्षण पर अत्यधिक बल दिया ताकि ठोस निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकें। एक अन्य दार्शनिक, ऑगस्टाइन (354-430 BC) ने शुद्ध ज्ञान प्राप्त करने के लिए अन्तर्दर्शन पर बल दिया। आर्कमिडीज (287-212 BC) के सिद्धातों के प्रकाशन के बाद वस्तुपरक या विधायक दृष्टिकोण को बढ़ावा मिला। इसके बाद वैज्ञानिक अन्वेषणों की गति धीमी पड़ गई।

सत्रहवीं शताब्दी में मनोविज्ञान

मनोवैज्ञानिकों का मत है कि लाइबनिज (1646-1760) ने पहले-पहल न्यूमेटोलेजी शब्द का प्रयोग किया। शब्द 'मनोविज्ञान' की रचना फिलिप मेलन्कथान (1497-1560) द्वारा की गई। लॉन्जे ने अपनी पुस्तक 'भौतिकवाद का इतिहास' में 'मनोविज्ञान' शब्द का प्रयोग पहली बार किया।

मनोविज्ञान के इतिहास की विस्तृत समीक्षा की जाए तो स्पष्ट होगा कि सत्रहवीं शताब्दी में एक बार पुनः वैज्ञानिक चिन्तन, खोज एवं निष्कर्षों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। इसी अवधि में कोपरनिक्स (1473-1543), केपलर (1571-1630), गैलीलियो (1564-1642) और न्यूटन (1642-1727) आदि के वैज्ञानिक कार्य प्रकाश में आए। ज्ञान की अन्य शाखाओं की भाँति मनोविज्ञान भी उपर्युक्त विद्वानों के इस क्षेत्र में हुए कार्यों से प्रभावित हुआ।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी विचारक डेकार्ट (1596-1650) ने व्यवहार की व्याख्या का क्रमबद्ध प्रयास किया। इनके अनुसार मन एवं शरीर में अन्तरक्रिया को परिणामस्वरूप मनुष्य व्यवहार करता है, मन और शरीर दोनों एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। हॉब्स (1588-1679) ने भौतिक गति को मानसिक प्रक्रियाओं का कारण बताया है। कुछ मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि इसी शताब्दी में मनोविज्ञान को मन के विज्ञान के रूप में मान्यता मिली। विचारकों ने मन के स्थान पर आत्मा को मनोविज्ञान की विषयवस्तु के रूप में स्वीकार करके एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया।

अठारहवीं शताब्दी में मनोविज्ञान

अठारहवीं शताब्दी में अनेक क्रान्तिकारी खोजें की गई और उनका सम्पूर्ण विश्व पर प्रभाव भी पड़ा। इसी शताब्दी में जान लॉक (1632-1704) ने एक पुस्तक प्रकाशित की और यह मत व्यक्त किया कि ज्ञान का आधार अनुभव है। अनेक प्रकार के आनुभवों से अनेक प्रकार के ज्ञान प्राप्त होते हैं और वे यौगिक रूप धारण करते जाते हैं।

इनके अनुसार, जिन विचारों मे सहचर्य होता है वे परस्पर मिल जाते हैं इसके बाद बर्कली (1685-1753) ने दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित करके उल्लेखनीय कार्य किया। बर्कली के दार्शनिक उत्तराधिकारी के रूप में ह्यूम (1711-1776) ने विचार एवं अवधारणा में अन्तर स्थापित किया। इस शताब्दी में ह्यूम की तुलना में हार्टले (1705-1757) का कार्य काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इन्होंने 'विचार का सहचर्य' पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उपर्युक्त ब्रिटिश वैज्ञानिकों के अतिरिक्त स्काटलैंड में भी कई वैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान के स्वरूप को सँवारने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी में मनोविज्ञान

मनोविज्ञान के विकास के दृष्टिकोण से उन्नीसवीं शताब्दी को परिवर्तनों एवं क्रांतिकारी विकासों की शताब्दी कही जाती है। इस शताब्दी के प्रमुख मनोवैज्ञानिक वुण्ट (1832-1920), जेम्स (1842-1910), टिचनर (1867-1927), फेकनर (1801-1887) एवं हेम्महाज (1821-1894) इत्यादि हैं। फेकनर ने मनोभौतिकी की स्थापना करके मनोविज्ञान में कारण तथा प्रभाव के प्रयोगिक अध्ययन का मार्ग प्रस्तुत किया और वुण्ट ने जर्मनी के लिपजिग नामक स्थान पर मनोविज्ञान की पहली प्रयोगशाला स्थापि करके अभूतपूर्व कार्य किया। वुण्ट के एक प्रमुख शिष्य टिचनर ने वुण्ट के विचारों को और भी आगे बढ़ाया और इस प्रकार मनोविज्ञान भी प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति अपना अलग-अलग अस्तित्व स्थापित करने में सफल हो सका। वैसे इस समय तक भी मनोविज्ञान का स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट, वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक स्वरूप वाला हो चुका था।

बीसवीं शताब्दी एवं मनोविज्ञान

मनोविज्ञान को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने में वर्तमान शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत विचारों एवं निष्कर्षों का विशेष महत्त्व है। इस शताब्दी के थोड़ा पहले से ही मनोवैज्ञानिक विचारों के सम्प्रदाय अस्तित्व में आने शुरू हो गये थे

और वर्तमान शताब्दी के प्रथम अर्द्ध अवधि तक विभिन्न सम्प्रदायों का मनोवैज्ञानिक अध्ययनों पर बोलबाला रहा है और आज भी इनका प्रभाव देखने को मिलता है। यहाँ पर सम्प्रदाय से तात्पर्य उन विद्वानों या शोधकर्त्ताओं के समूह से है जिनके विचारों या सिद्धांतों में समानता हो। अन्य विज्ञानों की अपेक्षा मनोविज्ञान के विकास पर सम्प्रदायों एवं पद्धतियों का प्रभाव अधिक पड़ा है। अतः इस प्रसंग में मनोविज्ञान के सम्प्रदायों के योगदान की समीक्षा अपेक्षित है।

संरचनावाद सम्प्रदाय: संरचनावाद की नींव उण्ट (जर्मनी) द्वारा डाली गयी और इसका प्रसार टिचनर (अमेरिका) द्वारा किया गया। इसकी प्रमुख गतिविधियाँ 1880-1920 के बीच हुई। इन लोगों ने मनोविज्ञान को दर्शनशास्त्र से अलग करने का प्रयास आरम्भ किया तथा यह सम्प्रदाय कम ही समय में लोकप्रिय हो गया। परन्तु इस सम्प्रदाय का महत्त्व आगे चलकर कम हो गया क्योंकि इस सम्प्रदाय की विधियाँ वैज्ञानिक स्तर की नहीं थी और विषय भी संकुचित बना दिया गया था।

प्रकार्यवाद सम्प्रदाय: इस सम्प्रदाय का दृष्टिकोण संरचनावाद की तुलना में अधिक वैज्ञानिक तथा व्यापक रहा है। प्रकार्यवाद की मुख्य गतिविधियाँ सन 1900 के आसपास केन्द्रित रही हैं। इसके प्रमुख समर्थकों में विलियम जेम्स, जान डेवी, हार्वे कार (शिकागो) एवं वुडवर्थ (कोलम्बिया) आदि माने जाते हैं। प्रकार्यवादियों ने मनोविज्ञान की विषय सामाग्री के रूप में प्राणी के समायोजन को महत्त्व दिया और यह सुझाव दिया है कि मनोविज्ञान में पर्यावरण तथा उसके प्रति समायोजन के बीच प्रकार्यात्मक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाना चाहिए। वुडवर्थ तथा कार ने अधिगम एवं अभिप्रेरणा के क्षेत्र में महत्त्वपुर्ण योगदान दिया है परन्तु इस सम्प्रदाय की अवधारणाओं में सैद्धांतिक विशिष्टताओं का अभाव रहा है।

व्यवहारवाद सम्प्रदाय: व्यवहारवाद की स्थापना वॉटसन (1912) द्वारा की गई थी। वॉटसन ने प्रकार्यवाद की आलोचन करते हुए कहा कि प्रकार्यवाद के आधार पर मनोविज्ञान को वैज्ञानिक रूप नहीं दिया जा सकता है। वॉटसन के अतिरिक्त स्किनर

(हारवर्ड) ने भी इस अवधारणा के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। व्यवहारवादियों ने मनोविज्ञान में बाह्य पर्यावरण में सम्बन्ध के अध्ययन पर बल दिया है एवं वस्तुनिष्ठता को महत्त्व देते हुए मानसिक घटनाओं के अध्ययन का विरोध किया है। इस सम्प्रदाय की मुखय गतिविधियों 1915-1960 के बीच हुई मानी जाती हैं। इस सम्प्रदाय की आलोचना मुख्यतः इस आधार पर की जाती है कि व्यवहारवादियों ने व्यवहार के अध्ययन में आन्तरिक प्रक्रियाओं को महत्त्व नहीं दिया है तथा व्यवहार को पद्धति के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

गेस्टाल्ट सम्प्रदाय : गेस्टाल्ट सम्प्रदाय की स्थापना जर्मनी में की गयी थी। इस सम्प्रदाय के प्रमुखों में बर्दाइमर (बर्लिन), कोकपा (फ्रेंकफुर्ट) एवं कोहलर (फ्रेंकफुर्ट का नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानों ने चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया था। इनका विचार है कि व्यक्ति किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण समग्र रूप में करता है। यह विचारधारा प्रायोगिक सिद्धान्तों की अपेक्षा तार्किकता पर अधिक बल देती है।

क्षेत्र सिद्धान्त : क्षेत्र सिद्धान्त की स्थापना कर्ट लेविन द्वारा की गई। इसके प्रभाव की अवधि 1920-1950 मानी जाती है। लेविन पर भी गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों का प्रभाव था परन्तु इन्होंने स्वयं की विचारधारा प्रस्तुत की। लेविन ने भी कोहलर आदि की भाँति परिस्थिति को संगठित रूप में प्रत्यक्षित करके व्यवहार करने की प्राणी की विशेषता को महत्त्व दिया है। परन्तु लेविन ने प्रत्यक्षीकरण के अतिरिक्त अभिप्रेरणा, व्यक्तित्व एवं समूह-गतिकी के भी अध्ययन पर अधिक बल दिया है। लेविन ने सामाजिक परिवेश में प्रयोग को महत्त्व दिया। इस अवधारणा की प्रमुख कमी यह है कि इसके सिद्धान्त तथा अध्ययन में प्राप्त प्रदत्तों में समन्वय स्थापित करना कठिन होता है।

मनोविश्लेषण : मनोविश्लेषणात्मक सम्प्रदाय की स्थापना फ्रायड (वियाना) द्वारा की गई। इसकी गतिविधियां की मुख्य अवधि सीमा 1900-1950 मानी जाती है।

फ्रायड ने अपने अध्ययनों में अचेतन प्रेरणाओं, इच्छाओं एवं व्यवहार सम्बन्धी विकृतियों के लिए लैंगिक भावनाओं के दमन को अधिक महत्त्व दिया है। स्वतंत्र साहचर्य एवं स्वप्न विश्लेषण को अध्ययन की विधियों के रूप में विकसित किया। फ्रायड ने व्यक्तित्व के विकास में बचपन की अनुभूतियों एवं अचेतन द्वन्द्वों को अधिक महत्त्व दिया है। आगे चलकर इस विचारधारा की काफी आलोचना हुई और युंग, एडलर एवं हार्नी आदि ने नव मनोविश्लेषणवाद प्रस्तावित किया और व्यवहार की व्याख्या में अचेतन द्वन्द्वों के अतिरिक्त सामूहिक या सामाजिक कारकों को भी महत्त्वपूर्ण माना गया।

उपर्युक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त साहचर्य एवं प्रयोजनवाद का भी कुछ समय तक मनोविज्ञान के क्षितिज पर प्रभाव था। परन्तु ये सम्प्रदाय अब केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही रखते हैं। इस समय मनोविज्ञान के क्षेत्र में किसी भी सम्प्रदाय का बोल-बाला नहीं है। सम्प्रदायों का दृष्टिकोण संकीर्ण तथा विधियों पूर्णतया वैज्ञानिक न होने के कारण बहुत दिनों तक इनका प्रभाव स्थापित नहीं रह पाया। विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले विकासों का प्रभाव मनोवैज्ञानिक उपागमों पर भी पड़ा और इनमें भी वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग बढ़ने लगा। आज की स्थिति पहले से पूर्णतः भिन्न है।

मनोविज्ञान की भारतीय परम्परा

प्राचीन भारत में मनोविज्ञान प्रत्येक विषय के रूप में प्रचलित नहीं था। लेकिन मानव की चित्तवृत्तियों के विविध पहलूओं का अध्ययन करने के लिए भारतीय आचार्यों ने विशेष बल दिया। वेदान्त, न्याय, साहित्य के माध्यम से इसका अध्ययन किया जाता था। भारतीय मनोविज्ञान का प्रारम्भिक रूप उपनिषद काल में मिलता है। जिसमें मानव मनोविज्ञान का अध्ययन किया गया है जिसमें मुख्य है-जीव और आत्मा। आत्मा को स्वतंत्र माना गया है और उसकी चार अवस्थाएँ बताई गई हैं- जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और मुक्ति। इन सब का उल्लेख भगवदगीता सत, रज, तम जैसे गुणों के आधार पर

किया गया है। भारतीय संस्कृति के अनुसार भगवदगीता एक मनोवैज्ञानिक ग्रंथ है। गीता में भगवान कृष्ण ने काम का महत्त्व स्वीकार करते हुए कहा है, "काम को वश में किया जा सकता है। मनुष्य ही आत्मा है और आत्मा किसी भी पक्ष पर अपना अधिकार जमा सकती है अर्थात आत्मा काम को वश में कर सकती है" (कर्मयोग (अध्याय-3 श्लोक- 6) जैन सम्प्रदाय में भी आत्म विकास की प्रकिया और आत्मा के स्वरूप की व्याख्याएँ मिलती हैं। बौद्ध चिंतकों में मन तथा ज्ञान के स्वरूप और प्रकिया का अध्ययन मिलता है। गौतम के न्यायदर्शन और कपिल के संख्य दर्शन में बुद्धि, अहंकार, मन, कामेंद्रिय, ज्ञानेन्द्रिय आदि मानसिक क्रिया व्यापारों से सम्बन्धित स्पष्ट दर्शन हमें मिलते हैं। भारतीय दार्शनिकों ने मन को अपने शरीर का भाग समझा है और प्रकृति को नियंत्रक। इसके द्वारा भावना, अनुभूति और सौंदर्यबोध से प्रेरित मानसिक भावों की पुष्टि होती है। बीसवी शताब्दी में महर्षि अरविंद ने चेतन का सूक्ष्म विश्लेषण किया। भारतीय चिंतकों में आत्मा का विकास, चरित्र-निर्माण, मानव-व्यवहार, पशु-मनोविज्ञान, यौन-मनोविज्ञान, मानसिक-रोग, बाल-स्वभाव, चिकित्सा-पद्धति आदि मनोविज्ञान के विभिन्न पक्षों की जानकारी हमें दी है। कुछ लोग मनुस्मृति के रचयिता मनु से मानव की उत्त्पति मानते हैं। 'कामायनी' नामक महाकाव्य में प्रसाद जी ने मनु को मन का प्रतीक माना है। मनुष्य जीवन के उतार-चढाव, उसकी विभिन्न प्रवृतियाँ, अच्छाई-बुराई आदि की पहचान मन पर केंद्रित हैं। इसलिए मन से 'मानव संज्ञा' निकली है। विभिन्न मनोभावों, भिन्न-भिन्न इच्छा-अनिच्छाओं, परिवर्तित मानव वृत्तियाँ आदि मनुष्य में दृष्टिगत होती हैं। मनुष्य जन्म से मृत्यु तक की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न मनोभावों का अनुभव करता है। समय और सन्दर्भानुसार यह बदलता रहता है।

भारतीय मनोविज्ञान के बारे में डॉ. सीताराम जसवाल इस प्रकार लिखते है, "भारतीय मनोविज्ञान अध्यात्मिक चिंतन का फल है। वह जीव, आत्मा, मन में भेद करता है। भारतीय चिंतन अतिसामान्य तथ्यों और पुनर्जन्म जीव के आवागमन

इत्यादि के प्रति निष्ठावान है।" (मनोविज्ञान 30) और यह भी कहते हैं, "भारतीय मनोविज्ञान दर्शन की एक शाखा के रूप में पल्लवित पोषित हुआ है जब कि पाश्चात्य काव्य शास्त्र का उद्गम स्त्रोत यूनानी मनोविज्ञान में खोजा जाता है।" (प्रिंसीपल ऑफ साइकलॉजी 220)

आधुनिक मनोविज्ञान और प्रमुख विचारक

आधुनिक मनोविज्ञान दिन-प्रतिदिन प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है। यह मानव के सर्वांगीण विकास की ओर उन्मुख है। मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य मानव की समस्याओं का समाधान करना है। यदि मनुष्य की समस्या का समाधान न किया जाए तो वह कुंठा, हीन भावना आदि का शिकार हो जाता है। जो समाज के लिए हानिकारक है तथा स्वयं मनुष्य के लिए भी। मनोविज्ञान व्यक्ति की जटिल मानसिकता का अध्ययन वैज्ञानिक रीति से करता है और भविष्य में उसके जीवन को सरल से सरल बनाता है। आधुनिक मनोविज्ञान व्यक्ति की चेतना, स्मृति, कल्पना जैसी मानसिक शक्तियों का वैज्ञानिक परीक्षण करके उनका समुचित विकास करता है। शिक्षा, न्याय, धर्म, अर्थ, समाज तथा व्यापार की समस्याओं का समाधान कर देश के विकास में अपना योगदान देना आधुनिक मनोविज्ञान का प्रथम लक्ष्य है। आधुनिक मनोविज्ञान के प्रमुख विचारको में 'फ्रायड', 'एडलर', 'युंग', 'आटोरांक', 'सेण्डर', 'फेरंजी', 'एलैक्सैण्डर', 'केरन हार्नी', 'कोल्हर' तथा वॉटसन' हैं। पाश्चात्य विचारकों में प्रमुख रूप से फ्रायड ने मनोविश्लेषण के क्षेत्र में युंग ने विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में तथा एडलर ने वैयक्तिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में विशेष बल दिया है। इन सभी विचारकों के विचारों को हिन्दी साहित्यकारों ने अपने साहित्य में आत्मसात किया।

सिगमंड फ्रायड

सिग्मण्ड फ्रायड का जन्म आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य के फ्रीबर्ग (Freiberg) शहर में हुआ। उनके माता-पिता यहूदी थे। फ्रायड के पिता ऊन के व्यापारी थे और माता

इनके पिता की तीसरी पत्नी थीं। फ्रायड अपने सात भाई-बहनों में सबसे बड़े थे। 3 साल की उम्र में फ्रायड के पिता लिपजिग (Leipzig) आ गए और उसके एक साल बाद वियना चले गए, जहाँ वे करीब 80 सालों तक रहे। फ्रायड ने वियना विश्वविद्यालय से 1881 में डॉक्टर ऑफ मेडिसिन किया। सन् 1938 में हिटलर के नाजी विद्रोह के कारण फ्रायड भागकर लन्दन चले गए। लन्दन में ही सन् 1939 के सितम्बर महीने में उनकी मृत्यु हो गई।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ के कुछ समय पहले मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में विकसित हुआ। इससे पहले मनोविज्ञान को दर्शन के अंतर्गत पढ़ा जाता था। उस वक्त मनोविज्ञान का उद्देश्य वयस्क मानव की चेतना का विश्लेषण और अध्ययन करना था। फ्रायड ने इस परम्परागत 'चेतना के मनोविज्ञान' का विरोध किया और मनोविश्लेषण सम्बन्धी कई नई संकल्पनाओं का प्रतिपादन किया। जिस पर हमारा आधुनिक मनोविज्ञान टिका हुआ है।

फ्रायड के प्रारम्भिक जीवन को देखने पर हम पाते हैं कि आरम्भ से ही उनका झुकाव तंत्रिका विज्ञान की ओर था। सन् 1873 से 1881 के बीच उनका सम्पर्क उस समय के मशहूर तंत्रिका विज्ञानी अर्नस्ट ब्रुकी (Ernst Brucke) से हुआ। फ्रायड, अर्नस्ट ब्रुकी से प्रभावित हुए और उनकी प्रयोगशाला में कार्य प्रारम्भ किया। शरीर विज्ञान और तंत्रिका विज्ञान में कई शोध पत्र प्रकाशित करने के बाद फ्रायड अर्नस्ट ब्रुकी से अलग हुए और उन्होंने अपना निजी व्यवसाय चिकित्सक के रूप में प्रारम्भ किया। सन् 1881 में फ्रायड ने वियना विश्वविद्यालय से एम.डी (M.D) की उपाधि प्राप्त की। इससे ठीक थोड़े से वक्त पहले फ्रायड का सम्पर्क जोसेफ ब्रियुवर (Joseph Breuer) से हुआ। फ्रायड ने जोसेफ ब्रियुवर के साथ शोधपत्र 'स्टडीज इन हिस्टीरिया' लिखा। 'स्टडीज इन हिस्टीरिया' एक रोगी के विश्लेषण पर आधारित था, जिसका काल्पनिक नाम 'अन्ना ओ' था। यह माना जाता है कि इसी शोधपत्र में मनोविश्लेषणवाद के बीज छिपे

हुए थे। यह शोध बहुत मशहूर हुआ। सन् 1896 में ब्रियुवर तथा फ्रायड में पेशेवर असहमति हुई और वे अलग हो गये।

सन् 1900 फ्रायड के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण वर्ष था। इसी वर्ष उनकी बहुचर्चित पुस्तक 'इंटरप्रटेशन ऑफ़ ड्रीम' का प्रकाशन हुआ, जो उनके और उनके रोगियों के स्वप्नों के विश्लेषण के आधार पर लिखी गई थी। इसमें उन्होंने बताया कि सपने हमारी अतृप्त इच्छाओं का प्रतिबिम्ब होते हैं। इस पुस्तक ने उन्हें प्रसिद्ध बना दिया। कई समकालीन बुद्धिजीवी और मनोविज्ञानी उनकी ओर आकर्षित हुए। इनमें कार्ल जुंग, अल्फ्रेड एडलर, ओटो रैंक और सैनडोर फ्रैन्क्जी के नाम प्रमुख हैं। इन सभी व्यक्तियों से फ्रायड का अच्छा सम्पर्क था, पर बाद में मतभिन्नता हुई और लोग उनसे अलग होते गये।

सन् 1909 में क्लार्क विश्व विद्यालय के मशहूर मनोविज्ञानी जी.एस. हाल द्वारा फ्रायड को मनोविश्लेषण पर व्याख्यान देने का निमंत्रण प्राप्त हुआ, जो उनकी प्रसिद्धि में मील का पत्थर साबित हुआ। इसमें फ्रायड के अलावा युंग, व्रील, जोन्स, फेरेन्कजी तथा कई अन्य मशहूर मनोविज्ञानी उपस्थित थे। यहाँ से फ्रायड जल्द ही वापस लौट गए, क्योंकि अमेरिका का वातावरण उन्हें अच्छा नही लगा। यहाँ फ्रायड को पेट में गड़बड़ी की शिकायत रहने लगी थी, जिसका कारण उन्होंने विविध अमेरिकी खाद्य सामग्री को बताया।

युंग और एडलर, फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद के कई बिन्दुओं से सहमत थे। परन्तु फ्रायड द्वारा सेक्स पर अत्याधिक बल दिए जाने को उन्होंने अस्वीकृत कर दिया। इससे अलग-अलग समय में वे दोनों भी इनसे अलग हो गए। युंग ने मनोविश्लेषण में सांस्कृतिक विरासत के दखल पर और एडलर ने सामाजिकता के पर बल दिया। यद्यपि यह सही है की पेशेवर सहकर्मी उनसे एक-एक कर अलग हो रहे थे

फिर भी उनकी प्रसिद्धि को इससे कोई फर्क नही पड़ा। सन् 1923 में फ्रायड के मुँह में कैंसर का पता चला जिसका कारण उनका जरुरत से ज्यादा सिगार पीना बताया गया। सन् 1933 में हिटलर ने जर्मनी की सत्ता पर कब्ज़ा कर लिया। उसने साफ कहा कि फ्रायड वाद के लिए उसकी सत्ता में कोई जगह नहीं है। हिटलर ने फ्रायड की सारी पुस्तकों और हस्तलिपियों को जला दिया। वह शायद इससे भी अधिक बुरा व्यवहार करता लेकिन राजनीतिक दबाव और तत्कालीन अमेरिकन राजदूत के हस्तक्षेप के बाद हिटलर ने फ्रायड से जबर्दस्ती एक कागज पर हस्ताक्षर करवाया कि सैनिकों ने उनके साथ कोई बुरा व्यवहार नहीं किया है। इसके बाद उन्हें वियना छोड़कर लन्दन जाने का आदेश दिया। लन्दन में उनका भव्य स्वागत हुआ। उन्हें तुरंत ही रायल सोसाइटी का सदस्य बना लिया गया। यहाँ उन्होंने अपनी अंतिम पुस्तक 'मोजेज एंड मोनेथिज्म' का प्रकाशन करवाया।

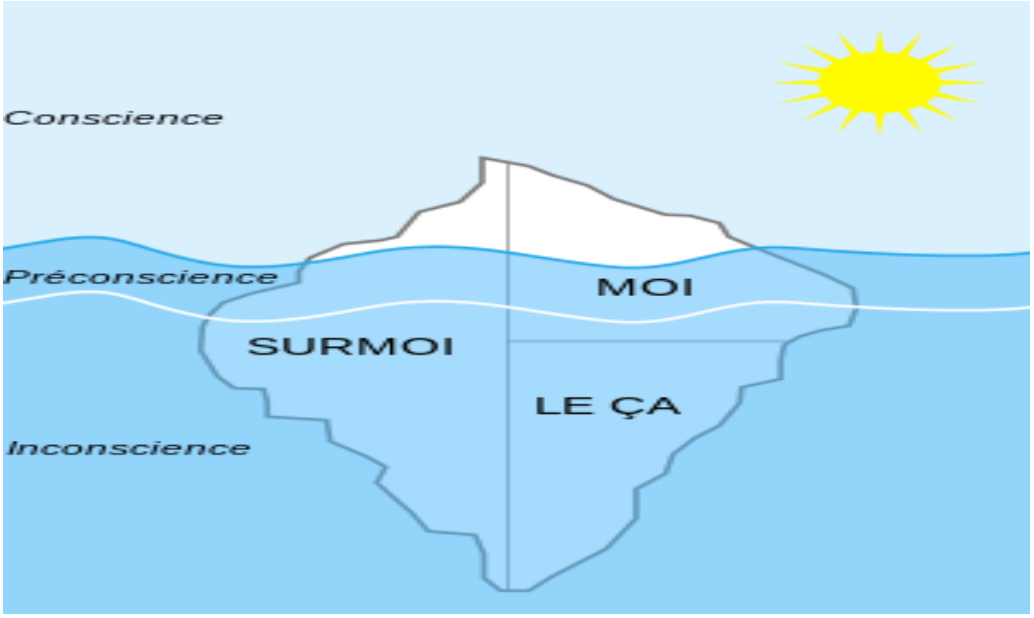

फ्रायड के अनुसार मन के तीन 'छिपे हुए' तत्व: हिमखण्ड, मन के तीन भागों को इंगित करता है जो-जो चेतन में नहीं आ पाते।

फ्रायड ने मन या व्यक्तित्व के स्वरूप को गत्यात्मक माना है। उनके अनुसार व्यक्तित्व हमारे मस्तिष्क एवं शरीर की क्रियाओं का नाम है। फ्रायड के मानसिक तत्व

होते हैं जो चेतन में नहीं आ पाते या सम्मोहन अथवा चेतना लोप की स्थिति में चेतन में आते हैं। इसमें बाल्यकाल की इच्छाएँ, लैंगिक इच्छाएँ और मानसिक संघर्ष आदि से सम्बन्धित वे इच्छाएँ होती हैं, जिनका ज्ञान स्वयं व्यक्ति को भी नहीं होता। इन्हें सामान्यतः व्यक्ति अपने प्रतिदिन की जिन्दगी में पूरा नहीं कर पाता और ये विकृत रूप धारण करके या तो सपनों के रूप में या फिर उन्माद के दौरे के रूप में व्यक्ति के सामने उपस्थित होती हैं। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व का गत्यात्मक पक्ष तीन अवस्थाओं द्वारा निर्मित होता है- इड (Id), अहम् (ego), पराअहम् (super ego) इड की उत्पति मनुष्य के जन्म के साथ ही हो जाती है। फ्रायड इसे व्यक्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा मानता था। इसकी विषयवस्तु वे इच्छाएँ हैं जो लिबिडो (यौन मूल प्रवृति की ऊर्जा) से सम्बन्धित हैं और तात्कालिक संतुष्टि चाहती हैं। ऊर्जा की वृद्धि इड नहीं सहन कर पाता और अगर इसे सही ढंग से अभिव्यक्ति नहीं मिलती तब यह विकृत स्वरूप धारण करके व्यक्ति को प्रभावित करता है। अहम् (ego) फ्रायड के लिए स्व-चेतना की तरह थी जिसे उसने मानव के व्यवहार का द्वितीयक नियामक बताया। यह इड का संगठित भाग है, इसका उद्देश्य इड के लक्ष्यों को आगे बढ़ाना है। पराअहम् एक प्रकार का व्यवहार प्रतिमानक होता है, जिससे नैतिक व्यवहार नियोजित होते हैं। इसका विकास अपेक्षाकृत देर से होता है। फ्रायड के व्यक्तित्व सम्बन्धी विचारों को मनोलैंगिक विकास का सिद्धांत भी कहा जाता है। इसे फ्रायड ने 5 अवस्थाओं में बांटा है- मौखिक अवस्था (oral stage) जन्म से एक वर्ष, गुदा अवस्था (Anal stage) दो से तीन वर्ष, लैंगिक अवस्था (Phallic stage) चार से पाँच वर्ष, सुषुप्ता वस्था (Latency stage) छह से बारह वर्ष, जननिक अवस्था (Gental stage) बारह से बीस वर्ष इन्ही के आधार पर उसने विवादास्पद इलेक्ट्रा और ओडिपस कॉम्प्लेक्स की अवधारणा दी जिसके अनुसार शिशु की लैंगिक शक्ति प्रारम्भ में खुद के लिए प्रभावी होती है, जो धीरे-धीरे दूसरे व्यक्तिओं की ओर उन्मुख होती हैं। इसी कारण पुत्र माता की ओर तथा पुत्री पिता की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। इसके कारण लड़कों में माता के प्रति प्रेम और पिता के

प्रति प्रतिद्वंदिता उत्पन्न होती है, जिसे फ्रायड द्वारा ओडिपस काम्प्लेक्स का नाम दिया। यह बहुत विवादास्पद और चर्चित अवधारणा रही है। फ्रायड इन संकल्पनाओं की सत्यता साबित करने के लिए आंकड़े नहीं दे पाए। उन पर आलोचकों ने यह आरोप लगाया की उन्होंने अपने अनुभवों को इन प्रेक्षणों के साथ मिश्रित किया है और जो कुछ भी उनके रोगियों ने कहा उस पर उन्होंने आँख बंद कर विश्वास किया है। फ्रायड पर यह भी आरोप लगे कि वह मनोविज्ञान में जरुरत से अधिक कल्पनाशीलता और मिथकीय ग्रंथों का घोलमेल कर रहे हैं, यौन आवश्यकताओं को जरुरत से अधिक स्थान दे रहे हैं।

फ्रायड के कार्य और उन पर आधारित उनकी मान्यताओं के देखने पर हम यह पाते हैं कि फ्रायड ने मानव की पाशविक प्रवृति पर जरूरत से अधिक बल डाला था। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि निम्नतर पशुओं के बहुत सारे गुण और विशेषताएँ मनुष्यों में भी दिखाई देती हैं। उनके द्वारा परिभाषित मूल प्रवृति की संकल्पना भी इसके अंतर्गत आती है। फ्रायड का यह मत था कि वयस्क व्यक्ति के स्वभाव में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं लाया जा सकता क्योंकि उसके व्यक्तित्व की नींव बचपन में ही पड़ जाती है, जिसे किसी भी तरीके से बदला नहीं जा सकता। हालाँकि बाद के शोधों से यह साबित हो चुका है कि मनुष्य मूलतः भविष्य उन्मुख होता है। एक शैक्षिक (अकादमिक) मनोविज्ञानी के समान फ्रायड के मनोविज्ञान में क्रमबद्धता नहीं दिखाई देती परन्तु उन्होंने मनोविज्ञान को एक नई परिभाषा दी जिसके आधार पर हम आधुनिक मनोविश्लेषानात्मक मनोविज्ञान को खड़ा पाते हैं और तमाम आलोचनाओं के बाद भी असामान्य मनोविज्ञान और नैदानिक मनोविज्ञान में फ्रायड के योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

आधुनिक मनोविज्ञान में फ्रायड का नाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। मन के तीन भेदों का अध्ययन करने में उनको अधिक सफलता मिली है। उन्होंने मानव मन की अचेतन क्रियाओं का गहन अध्ययन किया। उन्होंने व्यक्ति के प्रत्येक क्रिया-कलापों एंव चेष्टाओं

का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके उसके कारणों पर प्रकाश डाला। फ्रायड ने माना है प्रत्येक व्यक्ति के मन में काम सम्बन्धित भावनाएँ रहती हैं। सामाजिक बन्धनों तथा भय के कारण बह इन इच्छाओं को जो कि काम से सम्बन्धित होती हैं, को प्रकट नहीं कर पाता है। वह अपनी इच्छाओं का दमन कर लेता है। वह समाज में स्नेह तथा आदर प्राप्त करना चाहता है, इसलिए अपनी काम भावनाओं को उजागर नहीं कर पाता। फ्रायड ने काम शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। इसमे प्रेम, स्नेह, ममता आदि समस्त भावनाएँ समाहित हो जाती है। इस शक्ति को उन्होंने 'लिबिडों' कहा है, वह कहते हैं कि, "काम शक्ति का प्रवाह छह प्रकार से माना है। 'बहिर्मुखीकरण, अंतर्मुखीकरण, केंद्रयण, प्रत्यावर्तन, प्रतिवर्धन तथा दिशांतरण।" (माडर्न मैन इन सर्च ऑफ ए सोल 126) फ्रायड का एक और सिद्धांत है मैथून भाव सम्बन्धित सिद्धांत। यह मौलिक और कांतिकारी है। जन्म के साथ ही वच्चों में काम भाव उत्पन्न हो जाता है। दो वर्ष की अवस्था के बाद बालक या बालिका की लिबिडो शक्ति माता-पिता में केद्रित होनी लगती है। पर इस तरह की भावना समाज में निंदनीय समझी जाती है। इसलिए इसके दमन से बालक में मातृ शक्ति ग्रंथि और बालिका में पितृ शक्ति ग्रंथी का जन्म होता है। फ्रायड के अनुसार,

लिबिडों से तीन मानसिक संस्थाओं का जन्म होता है- इदम, अहम, नैतिक-अहम। व्यक्ति के यह तीन मन के भाग हैं जो मूल शक्ति के स्रोत लिबिडो से ही विकसित यथार्थ के संस्कारों में अनुकूलित सामाजिक एवं नैतिक मानदंडों द्वारा परिमार्जित होकर कार्य करते है। (Contemporary School Of Psychology 30)

फ्रायड ने फिर बताया है कि मनुष्य चेतन मन से नहीं बल्कि अचेतन मन से प्रभावित होता है। यह चेतन में अपनी अभिव्यक्ति चाहता है। किंतु चेतन और अचेतन के बीच अर्धचेतन एक प्रहरी के समान रहता है जो चेतन तक पहूँचने वाली निंदनीय, निराशा-जनक, लज्जोउत्पादक विचारों को रोक देता है। फ्रायड ने मनुष्य के मन को एक बड़ा आईस-बर्ग कहा है। अचेतन मन की कार्य पद्धति निम्नलिखित रूपों में होती है।

विस्थापन: अचेन मन अपनी दबी हुई और कुंठित इच्छाएँ प्रकट करने के लिए विस्थापन पद्धति प्रयोग में लाता है।

संक्षिप्तीकरण : चेतन मन बहुत कुछ अनुकूल बनाने के लिए कुंठित इच्छाओं को संक्षेप में व्यक्त किया जाता है।

तादात्मय: अतीत के किसी दबे कुंठित विषय का सम्बन्ध किसी नये बाहरी विषय से कल्पना में स्थापित करता है कि इस से नये विषय के प्रति उसके अन्दर वही भावना बन जाती है जो अतीत के उस मूल विषय के प्रति थी।

प्रतीकीकरण: अचेतन मन की दमित इच्छाओं कामवासना के द्योतक प्रतीकों द्वारा स्वप्नों में प्रकट होती है। स्वप्नों में माता-पिता, सम्राट-सम्राज्ञी, राजा-रानी आदि व्यक्तियों के रूप में दिखाई देती है।

कल्पना: "व्यक्ति के कल्पना के संसार में अचेतन मन की सारी इच्छाओं की संतुष्टि हो जाती है। वह अपनी अपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति कल्पना के माध्यम से पूर्ण करता है।" (फ्रायडवाद 230)

फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषण का सम्प्रदाय अपनी लोकप्रियता के करण बहुत चर्चित रहा। फ्रायड ने कई पुस्तके लिखीं जिनमें से 'इंटर प्रटेशन ऑफ़ ड्रीम्स', 'ग्रुप साइकोलोजी एंड द एनेलेसिस ऑफ़ दि इगो', 'टोटेम एंड टैबू' और 'सिविलाईजेसन एंड इट्स डिसकानटेंट्स' प्रमुख हैं। 23 सितम्बर 1939 को लन्दन में इनकी मृत्यु हुई।

अल्फ्रेड एडलर

मनोविश्लेषण के मौलिक विचारों के आधार पर मनोचिकित्सा में तीन महान संस्थापक हैं: सिगमंड फ्रायड, कार्ल गुस्ताव युंग और अल्फ्रेड एडलर। अल्फ्रेड एडलर का जन्म 1870 में वियनीज़ यहूदी परिवार में हुआ था। एडलर की स्वास्थ्य

जटिलताओं की एक श्रृंखला थी जिसे आमतौर पर दवा में ऑस्ट्रियाई हितों की शुरूआत के रूप में जाना जाता।

1895 में मेडिकल स्कूल से स्नातक होने के बाद, उन्होंने विवाह किया और सिगमंड फ्रायड के हाथों मनोविश्लेषण के सम्पर्क में आने लगे, जिन्हें उन्होंने 1899 में व्यक्तिगत रूप से मुलाकात की। तब से, अल्फ्रेड एडलर ने खुद को पेश करना शुरू किया फ्यूडियन सिद्धांत का प्रस्ताव है कि मनोविज्ञान के कामकाज के बारे में विचारों में। सामान्य रूप से मनोविश्लेषण और मनोविज्ञान के लिए एडलर के उत्साह ने उन्हें शहर में मनोविश्लेषकों के संगठन के पहले अध्यक्ष बनने के लिए प्रेरित किया, *बुधवार की मनोवैज्ञानिक सोसाइटी* (जिसे बाद में आधिकारिक नाम प्राप्त होगा *वियना साइकोएनालिटिक एसोसिएशन*), 1902 में बनाया गया। वहाँ, मनोवैज्ञानिकों ने मानव मस्तिष्क को समझाने की कोशिश पर बहस और विकास हुआ। फ्रायड और उसके शिष्यों के सैद्धांतिक प्रस्तावों के इस सम्पर्क में अल्फ्रेड एडलर ने अपने सिद्धांतों को और अधिक जटिल बनाने में योगदान दिया। उभरती मनोवैज्ञानिक दुनिया में अल्फ्रेड एडलर की कुख्यातता बहुत तेजी से बढ़ी, आंशिक रूप से फ्रायड के निकट होने के कारण, बल्कि उस शोक की वजह से जिसने अपने विचार व्यक्त किए। वास्तव में, एक बिंदु आया जहाँ एडलर निर्देशक बन गया मनोविश्लेषण का जर्नल *(*Zentralbaltt फॉर मनोविश्लेषण), एक प्रकाशन जिसमें फ्रायड सम्पादक थे और, निश्चित रूप से, उनके क्षेत्र में बहुत प्रासंगिकता थी। हालांकि, प्रकाशन दुनिया में इस प्रयास के कुछ ही समय बाद, अल्फ्रेड एडलर ने यौन सिद्धांत जैसे फ्रायड सिद्धांतों के मौलिक स्तम्भों पर सवाल उठाना शुरू कर दिया। इससे 1911 में फ्रायड के विचारों के विरोध ने उन्हें पत्रिका में काम करना जारी रखा। इसके अलावा, उसी वर्ष अल्फ्रेड एडलर ने

छोड़ा वियना साइकोएनालिटिक एसोसिएशन। यह वियनीज़ मनोविश्लेषक के सर्कल द्वारा अनुभव किया जाने वाला पहला बड़ा ब्रेक था, हालांकि अन्य लोग इसका पालन करेंगे, जल्द ही कार्ल गुस्ताव युंग भी फ्रायड के रूढ़िवादी मनोविश्लेषण से निश्चित रूप से खुद को दूर रखते। लेकिन एडलर मानसिक प्रक्रियाओं के कामकाज के बारे में विचारों के निर्माण में दिलचस्पी नहीं लेते था। केवल उन्होंने एक और मनोवैज्ञानिक स्कूल बनाया जो कई बिंदुओं में समान था जिस पर फ्रायड ने बचाव किया था। इस नए स्कूल को व्यक्तिगत मनोविज्ञान बुलाया जाता था। कोई भी विसंगतियों के बारे में लम्बे समय से बात कर सकता है जिसके कारण अल्फ्रेड एडलर और सिगमंड फ्रायड को विभाजित किया गया था, लेकिन मुख्य कारण दो थे। पहला यह है कि एडलर ने फ्रायड की तुलना में लैंगिकता के लिए बहुत कम महत्व दिया । उन्हें विश्वास नहीं था कि न तो सेक्स और न ही जिस तरीके से इसका प्रतीक है, वह जीवन के पहले वर्षों से मानव व्यवहार का एक आवश्यक नियामक था। दूसरे को बेहोशी की भूमिका के साथ करना है। फ्रायड के लिए हाँ *बेहोश* यह सब कुछ है जो छाया से कार्य करने से हमें व्यवहार के पैटर्न की एक श्रृंखला से बंधे रहते हैं और विचार करते हैं कि हमने अतीत में क्या किया है। अल्फ्रेड एडलर ने उस शक्ति पर अधिक जोर दिया जिस पर प्रत्येक व्यक्ति के पास उसके दिमाग के कामकाज की संरचना होती है कि वर्तमान में क्या होता है। ऐसा कहने के लिए, कि एक तरफ यह पिछले कार्यों को एक बोझ के रूप में देखते हुए रोकते हैं जो अनिवार्य रूप से हमें परिस्थितियों में रखता है, और दूसरी ओर यह हमारे और इस समय के साथ बातचीत करने के तरीके के बारे में अधिक महत्व देता है (पहचानने के अलावा उस सन्दर्भ का महत्व जिसमें हम प्रत्येक पल में खुद को पाते हैं।

एडलर ने अपने विकलांग रोगियों पर ध्यान केंद्रित करने वाले इस नए व्यक्तिगत मनोविज्ञान की नींव बना ली। हालांकि उनमें से सभी की समान सीमाओं का इतिहास था, कुछ लोगों की तुलना में कुछ लोगों को उनकी न्यूनता जटिलता से उपभोग किया गया था, जबकि दूसरों में शारीरिक सीमाओं को उन्होंने एक प्रेरक कारक के रूप में कार्य किया जो उन्हें नेतृत्व करता था, एडलर के अनुसार, आत्म-सुधार। तब अल्फ्रेड एडलर और फ्रायड के बीच के ब्रेक के साथ उस डिग्री के साथ बहुत कुछ करना पड़ा जिस पर पूर्व ने विचार के सचेत पक्ष को महत्व दिया, जो हमें मूल लक्ष्यों को बनाने की क्षमता वाले अद्वितीय लोगों को बनाता है।

वैयक्तिक मनोविज्ञान के प्रणेता एडलर के विचारानुसार मनुष्य में सबसे प्रमुख प्रवृति काम न होकर आत्म-सम्मान की है। एडलर ने जीवन शैली के अंतर्गत जीवन लक्ष्य को प्रमुख स्थान दिया है। उन्होंने फ्रायड की तरह बाल कामुकता को प्रधानता नहीं दी है। उसके अनुसार जीवन में कार्य-हीनता का अधिक प्रभाव रहता है। असहाय बालक में आरम्भ से ही हीनता की भावना आ जाती है। दूसरे पर निर्भर रहने वाले बालक में आत्मविश्वास पैदा नहीं होता है। अत: उसे सबसे पहले हीनता की ग्रन्थि का सामना करना पड़ता है। यह हीनता की भावना सर्वप्रधान है, इसलिए क्षतिपूर्ती के लिए शक्तिशाली बनने का प्रत्यन भी होता है। हीन भावना से वशीभूत होकर व्यक्ति स्वंय को पूर्ण प्रदर्शित करना चाहता है। वह नहीं चाहता उसे कोई अपूर्ण समझे। एडलर के अनुसार,

> If an individual finds himself something inferior or lacking, he is driven to dia or else to make self superior in some way or atleast pretend to himself and to others that he is superior. (असामान्य मनोविज्ञान और आधुनिक जीवन 125)

अल्फ्रेड एडलर की मृत्यु 1937 में हुई, लेकिन उनके विचारों की एक बड़ी गूंज हुई है। वह फ्रायड सिद्धांतों के प्रमुख सिद्धांतों पर सवाल उठाने के लिए मनोविज्ञानी मनोविज्ञान का पहला प्रमुख प्रतिनिधि था, और उन्होंने अपनी शक्तियों और सीमाओं के बारे में जागरूक व्यक्ति की रचनात्मक शक्ति के लिए एक अधिक केंद्रित दृष्टिकोण बनाया। बेशक, उनके सभी काम अब वैज्ञानिक मनोविज्ञान के रूप में माने जाते हैं, लेकिन इससे मानवता और दर्शन की दुनिया को प्रेरणा देने से उनके प्रभावों को रोका नहीं गया। व्यक्तिगत मनोविज्ञान जो अल्फ्रेड एडलर ने अन्य सदस्यों के साथ मिलकर स्थापित किया वियना साइकोएनालिटिक एसोसिएशन 20वीं शताब्दी के दूसरे छमाही में और मनोविज्ञान सम्बन्धी वर्तमान में बनाए गए कई प्रस्तावों में मानववादी मनोविज्ञान में दोनों का बड़ा प्रभाव पड़ा है। ऐसी दुनिया में जहाँ आत्म-सहायता और आत्म-सुधार का दर्शन शक्ति प्राप्त कर रहा है, एडलर के विचारों के लिए यह असामान्य नहीं है, जिस पर हमें अधिक आशावादी दृष्टिकोण था कि हम कैसे अपने शिक्षक को सोचने और महसूस करने के लिए अच्छी स्वीकृति प्राप्त कर सकते हैं।

कार्ल गुस्टॉफव युंग

कार्ल गुस्टॉफ युंग (26 जुलाई 1875 से 6 जून 1961) स्विटजरलैण्ड के मनोवैज्ञानिक तथा मनोचिकित्सिक थे। उन्होने वैश्लेषिक मनोविज्ञान (analytical psychology) की नींव डाली।

मनोविश्लेषण सिद्धान्त सम्प्रदाय के संस्थापक फ्रायड, एडलर और युंग ये तीनों ही माने जाते हैं। युंग, फ्रायड के सहयोगी एवं शिष्य थे। फ्रायड के बाद मनोविश्लेषण सम्प्रदाय के कार्य को सबसे अधिक युंग ने ही आगे बढ़ाया। युंग का जन्म स्विट्जरलैण्ड के कैस्विल नगर में 26 जुलाई 1875 को हुआ। इनके

पिता पादरी थे। इस कारण युंग के प्रारम्भिक जीवन पर दर्शन और धर्म का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उन्होंने चिकित्साशास्त्र में उपाधि प्राप्त की। 1907 में वे फ्रायड के सम्पर्क में आये। फ्रायड, युंग और एडलर ने मिलकर मनोविश्लेषण सम्प्रदाय की स्थापना की और इसके विकास के लिए तीनों साथ-साथ कार्य करने लगे। परन्तु कालान्तर में युंग ने 1912 में फ्रायड का साथ छोड़ दिया। फ्रायड से अलग होने का कारण यह था कि फ्रायड हर क्षेत्र में काम (Sex) तथा लिबिडो (Libido) पर अधिक बल देता था। युंग ने स्वीकार किया कि व्यक्ति के जीवन में काम या लिबिडो का महत्त्वपूर्ण स्थान है परन्तु इसे इतना अधिक महत्व नहीं देना चाहिए जितना फ्रायड ने दिया। 1913 में उसने नये सम्प्रदाय की स्थापना की। इस सम्प्रदाय को 'विश्लेषी मनोविज्ञान' (एनालिटिकल साइक्लोजी) के नाम से जाना गया। युंग ने कई देशों के साथ भारत की भी यात्रा की और ये भारतीय संस्कृति तथा इसके दर्शन से बहुत प्रभावित हुए। युंग ने व्यक्तित्व संरचना में अहम् तथा स्व (Ego and Self), व्यक्तिगत अचेतन (Personal unconsciousness) एवं सामूहिक अचेतन (Collective unconscious), मुखौटा (Persona), एनिमा या अन्तःनारी (Anima), एनिमस या अन्तःनर (Animus), छाया (Shadow) सम्बन्धी संकल्पनाओं को प्रस्तुत किया। लिबिडो या काम-वासना पर भी उसने अपने विचारों को प्रस्तुत किया। व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिक सदियों से प्रयत्न करते रहे हैं। नये-नये सिद्धांतों की खोज और व्यक्ति को विभिन्न वर्गों में रखकर व्यक्तित्व का अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया। ईसा के चार सौ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध दार्शनिक व चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स ने कायरस (humors) के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व को चार भागों में बांटा। अपने अध्ययन में उसने मनुष्य में चार रसों की उपस्थिति मानी, ये चार रस हैं- रक्त, कृष्ण पित्त, पीत पित्त और कफ। हिप्पोक्रेट्स के अनुसार इन चारों में से एक काय रस की व्यक्ति में प्रधानता होती है

और उसके अनुसार उसकी चित्त-वृत्ति होती है। इसी तरह आयुर्वेद में भी वात, कफ, पित्त के आधार पर व्यक्ति के चित्त की प्रकृति का वर्णन किया गया है। भगवद्गीता में भी तीन गुणों सत्, रज, तम के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया गया है। इस शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों ने भी विभिन्न सिद्धांतों द्वारा व्यक्तित्व का अध्ययन करने का प्रयत्न किया।

- जर्मन मनोवैज्ञानिक क्रेत्समर (1925) ने शारीरिक रचना के प्रकारों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। उसने व्यक्तियों को चार भागों में वर्गीकृत किया।
- इसी तरह अमेरिकन चिकित्सक विलियम शेल्डन (1942) ने व्यक्तियों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है- एन्डोमॉर्फी अथवा स्थूलकाय, मीजोमॉर्फी या मध्यकाय, एक्टोमॉर्फी या लम्बकाय।
- युंग तथा अन्य प्रमुख मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों के व्यक्तित्व को दो भागों में बांटा- बहिर्मुखी और अंतर्मुखी।
- इसी तरह से कई अन्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को तीन भागों में बांटा- अंतर्मुखी, बहिर्मुखी और उभयमुखी।
- आइजैनक (1970,1975) ने व्यक्तित्व को चार भागों में बांटा- अंतर्मुखी, बहिर्मुखी, स्थिर और अस्थिर।
- आलपोर्ट (1966) ने शीलगुणों (ट्रेट्स) के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया।

व्यक्तित्व का सम्पूर्ण अध्ययन करने के लिए कई सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ। इन सिद्धांतों को पाँच वर्गों में रखा जा सकता है- प्रकार और गुणशील सिद्धांत, मनोगत्यात्मक सिद्धांत, मानवीय सिद्धांत, अधिगम सिद्धांत, ज्ञानात्मक सिद्धांत।

उपरोक्त पाँच प्रकार के सिद्धांतों से व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्गीकरण और अध्ययन किया जा सकता है। युंग ने व्यक्तिव के तीन प्रकार बताये हैं- अंतर्मुखी,

बहिर्मुखी, उभयमुखी। वैश्लेषिक मनोविज्ञान (Analytical Psychology या Jungian psychology) मनोविज्ञान की एक शाखा है जिसका आरम्भ स्विस मनोविकारविज्ञानी कार्ल युंग (Carl Jung) ने किया। यह सिग्मंड फ्रायड के मनोविश्लेषी सम्प्रदाय (psychoanalytic school) से बिल्कुल भिन्न है। वैश्लेषिक मनोविज्ञान का मुख्य ध्येय सार्थक जीवन है जिसमें जीवन के परार्ध (second half) में व्यक्तित्व विकास तथा समाज को पर्याप्त योगदान देने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। आत्म-ज्ञान, परिवर्तन तथा आत्मसिद्धि के चक्रीय प्रक्रम को लगातार चलाकर इसे प्राप्त किया जाता है।

फ्रायड से पृथक होकर युंग ने अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में इनको प्रमुख स्थान प्राप्त है। युंग ने मन की तुलना सागर से की है। जिसमें एक अज्ञात मन एक द्वीप के समान है। उन्होंने फ्रायड द्वारा दिये गए सिद्धांत को स्वीकार किया है, किंतु अधिक स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अचेतन मन को दो भागों में विभक्त किया है- वैयक्तिक अचेतन और समस्त चेतन। प्रत्येक व्यक्ति में अपनी जाति, संस्कृति तथा सभ्यता के अनुरूप कुछ गुण और विशेषताएँ प्रारम्भ से ही होती है। युंग ने व्यक्ति को अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी कहा है।

मनोविज्ञान के प्रकार/ क्षेत्र

मनोविज्ञान का विषय मानव मन और उसकी विभिन्न प्रक्रियाएँ हैं। यह निर्विवाद है कि आज मनोविज्ञान का प्रभाव दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है। शिक्षा, चिकित्सा, व्यापार आदि जीवन के सभी क्षेत्रों पर इसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

सामान्य-मनोविज्ञान: समकालीन मनोविज्ञान में विभिन्न कसौटियों के आधार पर अनेक शाखाएँ हैं जो विकास की विभिन्न अवस्थाओं और व्यवहारिक प्रयोग में

विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी हुई विद्या-विशेषों की विस्तृत पद्धतियाँ हैं। ठोस सक्रियता, विकास तथा मनुष्य के समाज से सम्बन्धों के आधार पर मनोविज्ञान की शैक्षिक, विधिक, चिकित्सीय, तुलनात्मक और अन्य शाखाओं के विपरीत सामान्य मनोविज्ञान, जैसा कि इसके नाम से ही ध्वनित होता है, मनोवैज्ञानिक परिघटनाओं का नियमन करने वाले सामान्य नियमों तथा सैद्धांतिक मूलतत्वों से और मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में प्रयुक्त आधारभूत वैज्ञानिक अवधारणाओं तथा शोध प्रणालियों से सम्बन्ध रखता है।

सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों एवं नियमों की व्याख्या करने वाली शाखा है 'सामान्य मनोविज्ञान'। इस में प्रयुक्त नियमों का उपयोग एवं परीक्षण अन्य शाखाओं में भी किया जाता है। ये नियम और सिद्धांत हर व्यक्ति पर लागू होते है। इसमें भाव, विचार, स्वप्न, चिंतन आदि का अध्ययन किया जाता है। सामान्य मनोविज्ञान की परिभाषा देते हुए डॉ. अरुण कहते है, "सामान्य मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसके नियम और सिद्धांत हर व्यक्ति पर लागू होते हैं।" (असामान्य मनोविज्ञान 208)

असामान्य-मनोविज्ञान: असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है, जो मुख्यत: उन व्यक्तियों का अध्ययन करती है जो मानसिक रूप से विकृत या रुग्ण होते हैं। सरल शब्दों में उनके व्यवहार में इतनी अधिक भिन्नता होती है कि उन्हें सामान्य व्यक्ति की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। असामान्य मनोविज्ञान के मुख्यत: दो रूप हैं प्रथम सैद्धान्तिक तथा द्वितीय व्यवहारिक। सैद्धान्तिक रूप से यह इस बात को स्पष्ट करता हैं कि कौन-सी विशेषताओं के कारण अमुक व्यक्ति असामान्य है या उसे कौन सा रोग है। विशिष्ट मानसिक रोगों का वर्गीकरण तथा उनका वर्णन करना भी इसी में आता है, दूसरे शब्दों में, असामान्य मनोविज्ञान असामान्य व्यवहार व व्यक्तितत्व के सैद्धान्तिक पक्ष का विस्तृत वर्णन करता है। यहाँ यह भी बताना उचित होगा कि असामान्य मनोविज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष व्यवहारिक भी है। अन्य शब्दों

में, वह केवल विभिन्न मानसिक व शारीरिक रोगों का वर्णन मात्र ही नहीं करता बल्कि यह भी बताता है इनका निदान कैसे हो, कौन-कौन सी उपचारात्मक पद्धतियों का उपयोग किया जाए तथा एक सामान्य व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थ्य को किस प्रकार से स्वस्थ रखे। असामान्य मनोविज्ञान इस कारण भी अधिक व्यवहारिक है कि वह यह स्पष्ट करता है कि यह पूर्णत: सम्भव है कि सामान्य व्यक्ति असामान्य हो जाए और यदि असामान्य व्यक्ति का सही उपचार किया जाए तो उसे सामान्य व्यक्ति बनाया जा सकता है। इस प्रकार व्यवहारिक शाखा से सामान्य व असामान्य दोनों प्रकार के व्यक्तियों को लाभ पहुँचता है। साइमण्ड के अनुसार, "सामान्य व्यक्ति वह है जो जीवन के संघर्षों एवं विपरीत परिस्थितियों का सामना कर सके और असामान्य व्यक्ति वह है जो साधारण सी कठिनाइयों के प्रति समायोजन करने में असमर्थ हो।" (असामान्य मनोविज्ञान 66)

नारी-मनोविज्ञान

नारी का आत्मसंघर्ष अपनी निरन्तरता में प्रत्येक युग में विद्यमान रहा है। परम्परागत दृष्टि से नारी के प्रति व्यवस्था का रवैया निश्चित मानदंडों, आदर्शों के नियम व्यवहारों से संचालित होता रहा है जिसमें नारी को तय कर दी गयी भूमिका में निर्धारित आदर्श आचरण संहिता के अनुसार जीना है, जिसके निर्धारण का अधिकार शताब्दियों से पुरुष ने अपने पास सुरक्षित रखा है। समय के बदलते सामाजिक सन्दर्भों में अपनी अधीनस्थ की भूमिका, शोषण, समानता से मुक्ति के प्रयत्न एवं दोहरे मानदंडों के बीच अपनी बदलती सामाजिक भूमिका के बावजूद नारी के प्रश्न नहीं बदले हैं। नारी, पुरुष और व्यवस्था से जुड़े नारी-प्रश्न जटिलतर होते गए हैं। नारी विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में नारी मुक्ति के प्रयासों से हैं। नारी विमर्श नारी के जीवन के अनछुए, अनजाने पीड़ा जगत के उदघाटन के अवसर उपलब्ध कराता है परन्तु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन में नारी के दोयम दर्जे की स्थिति पर आँसू बहाने और यथास्थिति बनाए रखने की इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है। मनोविज्ञान

व्यक्ति की वातावरण से सम्बन्धित चेष्टाओं का वैज्ञानिक अध्ययन माना जाता है। जीवन की गूढ़ तथा रहस्यमयी प्रवृत्तियाँ जो मानव-समाज की सभ्यता और संस्कृति में सहायक होती है उनका भी मनोविज्ञान के साथ होने के कारण साहित्य में भी नारी चित्रण में व्यवहारिक मनोविज्ञान का उपयोग किया गया है। किन्तु मनोवैज्ञानियों द्वारा नारी मनोविज्ञान के सम्बन्ध में कोई धारणा नहीं मिलती है। नारी विमर्श या चिंतन एकमात्र साहित्य के माध्यम से ही शुरू हुआ है चाहे वह दुनिया का कोई भी साहित्य क्यों न हो। एकमात्र साहित्यकारों ने ही नारी के बारे में, उसके मनोविज्ञान के बारे में जानने का प्रयास किया है। परम्परागत बंधनों को तोड़कर समाज में निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर नारी के अन्तर्मन को जानना समझना आवश्यक है। इस राह में जाने उसने किन-किन स्थिति-परिस्थितियों का सामना किया है, न जाने किन सामाजिक मनुष्यों से उसका वास्ता पड़ा है, तदन्तर वह कुछ हासिल कर पायी और बन पायी है। समय-समय पर नारी के शरीर में घटित नाना परिवर्तनों के कारण नारी मनोविज्ञान, पुरुष मनोविज्ञान से भिन्नता रखता है। प्रभा खेतान द्वारा अनुवादित 'द सैकिण्ड सैक्स' पुस्तक में सिमोन कहती है कि, "औरत वह मानव-प्राणी है, जो मूल्यों के जगत में अपने होने का मूल्य उसी जगत में खोज रही है, जो आर्थिक और सामाजिक संरचना को जानने के लिए अनिवार्य है।" (द सैकिण्ड सैक्स 44) आज की नारी महत्त्वाकांक्षी है। आज वह पुरुष की जीवन संगिनी ही नहीं, प्रतिद्वन्दी भी है। आज से कुछ समय पूर्व वह नारी जो नारी होने की भावना से गहरे जुड़ी थी, घर की चारदीवारी तक सीमित रहना ही जिसके जीवन की सार्थकता थी आज उसके मनोवैज्ञानिक स्वरूप में बहुत अन्तर आया है। उसमें निजता की भावना बलवती हुई है। निर्मला जैन द्वारा सम्पादित पुस्तक महादेवी साहित्य समग्र भाग तीन में कहते हैं कि,

> नारी का मानसिक विकास पुरुषों के मानसिक विकस के भिन्न परन्तु अधिक द्रुत, स्वभाव अधिक कोमल, और प्रेम-धृणादि भाव अधिक तीव्र अथवा स्थायी होते हैं। दोनों के व्यक्तित्व अपनी पूर्णता में समाज के एक

> ऐसे रिक्त स्थान को भर देते हैं जिससे विभिन्न सामाजिक बन्धनों में सामंजस्य उत्पन्न होकर उन्हें पूर्ण कर देता है। (हमारी श्रृंखला की कड़ियाँ 293-294)

इतिहास के पन्ने नारी की महानता, त्याग और साहस की कहानी बताते हैं। समाज में पुरुष को नारी की अपेक्षा सदैव श्रेष्ठ माना जाता रहा है, इसलिए वह निर्णायक, प्रशासक, नेता, लेखक आदि सभी भूमिकाओं में अपने पौरुष और अहं के अनुरूप चिन्तन करता आया है। पुरुष ने नारी को या तो देवी का दर्जा दिया है या दासी का। सदियों से नारी को भोग्या, अबला, कामिनी, माया आदि विशेषणों में बाँधकर देखने की परम्परा रही है। समयानुरूप मान्यता के अधीन कभी उसके अस्तित्व को महत्व मिला तो कभी उपेक्षा अर्थात नारी को मानवी का दर्जा कभी नहीं दिया गया। लेकिन अँग्रेजों की व्यक्तिवादी संस्कृति, नारी सम्बन्धी उदार दृष्टिकोण, शिक्षा के प्रति आस्था के कारण धीरे-धीरे समाज ने अनुभव किया कि बिना नारी की उन्नति के समाज, परिवार व राष्ट्र का विकास असम्भव है। अतः युगों-युगों से उपेक्षित तथा अविकसित नारी-जीवन को सुधारने का प्रयत्न उन्होंने किया। शिक्षा, संविधान प्रदत्त अधिकार, राजनैतिक चेतना और नारी आन्दोलनों के फलस्वरूप स्वयं नारी में भी आत्मबोध जागृत हुआ, वह भी अपनी स्वतंत्र अस्मिता स्थापित करने के लिए कटिबद्ध हो गई। यह बात भारत की ही नहीं बल्कि समस्त विश्व की महिला के सन्दर्भ में कही जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष इस कथन के प्रमाणस्वरूप कहा जा सकता है। इस शोध कार्य के माध्यम से नारी मनोविज्ञान के उन सभी पहलूओं की पड़ताल की गई है।

समाज-मनोविज्ञान: (Social Psychology) मनोविज्ञान की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत इस तथ्य का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है कि किसी दूसरे व्यक्ति की वास्तविक, काल्पनिक उपस्थिति हमारे विचार, संवेग, अथवा व्यवहार को किस प्रकार से प्रभावित करती है। सामाजिक मनोविज्ञान में हम जीवन के सामाजिक पक्षों

से सम्बन्धित अनेकानेक प्रश्नों के उत्तरों को खोजने का प्रयास करते हैं। इसीलिए सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करना सामान्य कार्य नहीं है। जॉन बायर्न ने ठीक ही लिखा है कि, "सामाजिक मनोविज्ञान में यह कठिनाई दो कारणों से बढ़ जाती है : विषय क्षेत्र की व्यापकता एवं इसमें तेजी से बदलाव।" (असामान्य मनोविज्ञान 71) सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है कि, "सामाजिक मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार और विचार के स्वरूप व कारणों का अध्ययन करता है।" (समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा 40) ऐसा ही कुछ किम्बॉल यंग का भी मानना है। उन्होंने सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्तियों की पारस्परिक अन्तक्रियाओं का अध्ययन करता है, और इस सन्दर्भ में कि इन अन्तःक्रियाओं का व्यक्ति विशेष के विचारों, भावनाओं संवेगो और आदतों पर क्या प्रभाव पड़ता है।" (मनोविज्ञान और सामाजिक समस्याएँ 25) शेरिफ और शेरिफ के अनुसार, "सामाजिक मनोविज्ञान सामाजिक उत्तेजना परिस्थिति के सन्दर्भ में व्यक्ति के अनुभव तथा व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है।" (समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा 11)

तुलनात्मक-मनोविज्ञान: तुलनात्मक मनोविज्ञान में विभिन्न जाति के प्राणियों के व्यवहारों में पाई जाने वाली समानता से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। मार्गन, थार्नडॉइक और यर्म्ज आदि कुछ ऐसे मनोवैज्ञानी हैं, जिन्होंने अपना जीवन पशुओं के व्यवहार के अध्ययन में लगाया और पशुओं के अध्ययन से प्राप्त परिणामों की तुलना मनुष्य के व्यवहारों से की। वॉटसन जिसने मनोविज्ञान को व्यवहार का मनोविज्ञान तथा विज्ञान की मान्यता दिलाने के लिए प्रयास किए उन्होंने ने भी तुलनात्मक मनोविज्ञान के अंतर्गत समस्याओं का अध्ययन किया।

तुलनात्मक मनोविज्ञान से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन मनोविज्ञान में इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें प्रयोगशाला में पशुओं के उन व्यवहारों का

अध्ययन किया जाता है, जो अध्ययन प्रयोगशाला की परिस्थितियों में मनुष्यों पर सम्भव नहीं है। दूसरा तुलनात्मक मनोविज्ञान का मनोविज्ञान में एक महत्त्व यह भी है, कि मानव बच्चों पर बहुत से अध्ययन सम्भव नहीं है, जो कि पशुओं के बच्चों पर किए जाते हैं, और इन अध्ययनों से प्राप्त परिणामों की तुलना करके मानव शिशुओं के सम्बन्ध में निष्कर्ष प्राप्त कर लिए जाते हैं।

बाल-मनोविज्ञान: पद्मा अग्रवाल अपनी पुस्तक मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ में कहती हैं कि,

> बाल मनोविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें गर्भावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के मनुष्य के मानसिक विकास का अध्ययन किया जाता है। जहाँ सामान्य मनोविज्ञान प्रौढ़ व्यक्तियों की मानसिक क्रियाओं का वर्णन करता है तथा उनको वैज्ञानिक ढंग से समझने की चेष्टा करता है, वहीं बाल मनोविज्ञान बालकों की मानसिक क्रियाओं का वर्णन करता और उन्हें समझाने का प्रयत्न करता है। (मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ 16)

कानूनी-मनोविज्ञान: कानून के अंतर्गत भी मनोविज्ञान का हस्तक्षेप है, अपराध जगत के वर्ग में और न्यायालयों में बहुत-सी ऐसी समस्याएँ हैं, जिनका कि मनोवैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है। सही अपराधी पकड़ना, सही गवाही दिलाना, अपराधी को उचित न्याय दिलवाना आदि से सम्बन्धित कुछ ऐसी समस्याएँ है, जिनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। एक अच्छा वकील मनोवैज्ञानिक पहले होता है।

आपराधिक-मनोविज्ञान: आपराधिक मनोविज्ञान एक चुनौतीपूर्ण क्षेत्र है, जहां अपराधियों के व्यवहार विशेष के सम्बन्धमें कार्य किया जाता है। अपराध शास्त्र मनोविज्ञान आपराधिक विज्ञान की शाखा है, जो अपराध तथा सम्बन्धित तथ्यों की

तहकीकात से जुड़ी है। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि आपराधिक मनोविज्ञान अपराध से सम्बन्धित है जिसका कार्य अपराध के कारणों को ढूँढना तथा उनका निवारण करना है।

विकासात्मक-मनोविज्ञान: एक वैज्ञानिक अध्ययन है जो मनुष्य के जीवन मे हो रहे परिवर्तन के बारे मे बताता है। मूल रूप से यह शिशुओं और बच्चों से सम्बन्ध रखता है, पर इस क्षेत्र में किशोरावस्था, वयस्क विकास, उम्र बढ़ने और पूरे जीवनकाल को भी लिया गया है। विकासात्मक मनोविज्ञान के तीन लक्ष्य हैं- विकासात्मक को वर्णित करना, समझाना और अनुकूलन करना। एरिक एरिक्सन एक प्रभाविक मनोवैज्ञानी हैं जिन्होंने विकासात्मक विकास के बारे में अध्ययन किया है। मानव जीवन का मनोवैज्ञानिक विकास पर चर्चा करने के लिए एरिक एरिकस ने मनोसामाजिक विकास के अपने चरणों का प्रस्ताव दिया। विकासात्मक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की शाखा मानी जाती है।

शैक्षिक-मनोविज्ञान (Educational psychology) मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें इस बात का अध्ययन किया जाता है कि मानव शैक्षिक वातावरण में सीखता कैसे है तथा शैक्षणिक क्रियाकलाप अधिक प्रभावी कैसे बनाये जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि शैक्षिक मनोविज्ञान शिक्षक तथा अधिगम के मध्य कार्य करता है तथा उन कठिनाईयों को दूर करता हैं, जो शिक्षा के क्षेत्र में रुकावट डालती है। यह शिक्षकों को बच्चे की मानसिक आयु के अनुसार पढ़ाने का निर्देशन भी देता है। शिक्षा की प्रक्रिया निरंतर चलती रहे तथा बच्चे का सर्वांगीण विकास होता रहे, जिससे उसे जीवन में नए-नए अवसर मिलते रहे । यही शैक्षिक मनोविज्ञान का मुख्य कार्य है तथा यही उसका उद्धेश्य है। स्किनर के अनुसार, “शिक्षा मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का शैक्षणिक परिस्थितियों में अध्ययन करता है।” (मानव विकास का मनोविज्ञान 13) क्रो एंड क्रो के अनुसार, “शिक्षा मनोविज्ञान, व्यक्ति के जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक सीखने के अनुभवों का वर्णन तथा व्याख्या करता है।” (मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ 40)

प्रयोगात्मक-मनोविज्ञान: प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में मुख्य रूप से उन्हीं समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विधि से अध्ययन किया जाने लगा, जिन्हें दार्शनिक पहले चिंतन अथवा विचार-विमर्श द्वारा सुलझाते थे। अर्थात् संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण के बाद में इसके अंतर्गत सीखने की प्रक्रियाओं का अध्ययन भी होने लगा। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, आधुनिक मनोविज्ञान की प्राचीन शाखा है। मनुष्य की अपेक्षा पशुओं को अधिक नियंत्रित परिस्थितियों में रखा जा सकता है, साथ ही साथ पशुओं की शारीरिक रचना भी मनुष्य की भाँति जटिल नहीं होती। पशुओं पर प्रयोग करके व्यवहार सम्बन्धी नियमों का ज्ञान सुगमता से हो सकता है। सन् 1912 ईसवी के लगभग थॉर्नडॉइक ने पशुओं पर प्रयोग करके तुलनात्मक अथवा पशु मनोविज्ञान का विकास किया। किंतु पशुओं पर प्राप्त किए गए परिणाम कहाँ तक मनुष्यों के विषय में लागू हो सकते हैं, यह जानने के लिए विकासात्मक क्रम का ज्ञान भी आवश्यक था। धीरे-धीरे विज्ञान की विभिन्न शाखाओं पर मनोविज्ञान का प्रभाव अनुभव किया जाने लगा। आशा व्यक्त की गई कि मनोविज्ञान अन्य विषयों की समस्याएँ सुलझाने में उपयोगी हो सकता है। साथ ही साथ, अध्ययन की जानेवाली समस्याओं के विभिन्न पक्ष सामने आए। परिणामस्वरूप मनोविज्ञान की नई शाखाओं का विकास होता गया। इनमें से कुछ ने अभी हाल में ही जन्म लिया है, जिनमें प्रेरक मनोविज्ञान, सत्तात्मक मनोविज्ञान, गणितीय मनोविज्ञान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मानव प्रयोगात्मक-मनोविज्ञान: मानव प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ मानव के उन सभी व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है जिस पर प्रयोग करना सम्भव है। सैद्धान्तिक रूप से ऐसे तो मानव व्यवहार के किसी भी पहलू पर प्रयोग किया जा सकता है परन्तु मनोवैज्ञानी उसी पहलू पर प्रयोग करने की कोशिश करते हैं जिसे पृथक किया जा सके तथा जिसके अध्ययन की प्रक्रिया सरल हो। इस तरह से दृष्टि, श्रवण, चिन्तन, सीखना आदि जैसे व्यवहारों का प्रयोगात्मक अध्ययन काफी

अधिक किया गया है। मानव प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में उन मनोवैज्ञानिकों ने भी काफी अभिरुचि दिखलाई है जिन्हें प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का संस्थापक कहा जाता है। इनमें विलियम वुण्ट, टिच्चनर तथा वॉटसन आदि के नाम अधिक मशहूर हैं।

पशु प्रयोगात्मक-मनोविज्ञान: मनोविज्ञान का यह क्षेत्र मानव प्रयोगात्मक विज्ञान (Human experimental Psychology) के समान है। सिर्फ अन्तर इतना ही है कि यहाँ प्रयोग पशुओं जैसे-चूहों, बिल्लियों, कुत्तों, बन्दरों, वनमानुषों आदि पर किया जाता है। पशु प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में अधिकतर शोध सीखने की प्रक्रिया तथा व्यवहार के जैविक पहलूओं के अध्ययन में किया गया है। पशु प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में स्कीनर, गथरी, पैवलव, टॉलमैन आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। सच्चाई यह है कि सीखने के आधुनिक सिद्धान्त तथा मानव व्यवहार के जैविक पहलू के बारे में हम आज जो कुछ भी जानते हैं, उसका आधार पशु प्रयोगात्मक मनोविज्ञान ही है। इस मनोविज्ञान में पशुओं के व्यवहारों को समझने की कोशिश की जाती है। कुछ लोगों का मत है कि यदि मनोविज्ञान का मुख्य सम्बन्ध मानव व्यवहार के अध्ययन से है तो पशुओं के व्यवहारों का अध्ययन करना कोई अधिक तर्कसंगत नहीं दिखता। परन्तु मनोविज्ञानियों के पास कुछ ऐसी बाध्यताएँ हैं जिनके कारण वे पशुओं के व्यवहार में अभिरुचि दिखलाते हैं। जैसे पशु व्यवहार का अध्ययन कम खर्चीला होता है। फिर कुछ ऐसे प्रयोग हैं जो मनुष्यों पर नैतिक दृष्टिकोण से करना सम्भव नहीं है तथा पशुओं की जीवन अवधि (life span) का लघु होना प्रमुख ऐसे कारण हैं।

भौतिक मनोविज्ञान: भौतिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानसिक अवस्थाओं और व्यवहार से सम्बन्धित प्राकृतिक पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इस मनोविज्ञान में मुख्यतः चार क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान किया जाता है weather, climate, soil landscape.

औद्योगिक मनोविज्ञान: औद्योगिक मनोविज्ञान में मुख्यतः उद्योग की परिस्थितियों में व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन, विभिन्न उद्योगों के लिए व्यक्तियों का चयन, उत्पादन को बढ़ाने वाली परिस्थितियाँ औद्योगिक दुर्घटनाएँ उद्योग में अरोचकता, थकान, क्रय-विक्रय, उपभोक्ता और विज्ञापन आदि से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। आजकल इसका प्रयोग काफी हो रहा है, क्योंकि उद्योग जगत में आई समस्या का समाधान आसनी से हो जाता है।

मिलिट्री साईकोलॉजी: सेना के विभिन्न प्रकार के सैनिको और अधिकारियों के चुनाव में उनके प्रशिक्षण में, उनकी पदोन्नोती में तथा उसके स्थानान्तरण में मनोविज्ञान बहुत उपयोगी है। सैनिको की बुद्धि और व्यवहार स्तर को मापने के लिए आर्मी-एल्फाटेस्ट को विकसित किया गया है। सैन्य मनोविज्ञान में नेतृत्व, सैन्य मनोबल, सैना में मानवीय सम्बन्धों आदि से सम्बन्धित कुछ अन्य समस्याएँ है।

गणितीय मनोविज्ञान: गणितीय मनोविज्ञान के अन्तर्गत मनोविज्ञान ज्ञान को किस प्रकार गणितीय भाषा में अभिव्यक्त किया जा सकता है, इस मनोविज्ञान का प्रारम्भ फेम्नर के अध्ययनों से हुआ।

दैहिक मनोविज्ञान: दैहिक मनोविज्ञान में व्यक्ति के आंतरिक अंगों की संरचना, उनके प्रकार और आंतरिक वातावरण आदि सम्बन्धित समस्याएं भी इसी मनोविज्ञान के अन्दर आती है। दैहिक मनोविज्ञान में दैहिक और मानसिक प्रक्रियाओं के सम्बन्धों से सम्बन्धित समस्याओं का भी अध्ययन किया जाता है।

राजनैतिक मनोविज्ञान: राजनैतिक प्रक्रियाओं के व्यक्तिगत अध्ययनों सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन इस मनोविज्ञान में किया जाता है। इस मनोविज्ञान में मुख्यतः निम्न समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। राजनैतिक संरचना, जनमत, सदस्यता, समूह पार्टी, नेतृत्व, चुनाव आदि से सम्बन्धित समस्याएँ। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोविज्ञान का हर क्षेत्र में अपना एक अलग ही महत्त्व है।

मनोविज्ञान के लाभ

मनोविज्ञान के क्षेत्र की चर्चा से स्वतः यह स्पष्ट हो रहा है कि मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनोविज्ञान की भूमिका है। हिलगार्ड के अनुसार, "यह जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। जैसे-जैसे समाज की जटिलता एवं व्यापकता बढ़ती गई है, वैसे-वैसे ही मानव की समस्याओं के समाधान में मनोविज्ञान की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती जा रही है।" (मानव विकास का मनोविज्ञान 13) अतः स्पष्ट है कि मनोविज्ञान के अनेकानेक लाभ हैं। सुविधा के लिए इन्हें दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

मनोविज्ञान के सैद्धांतिक लाभ

चूँकि मनोविज्ञान में प्राणी के व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन होता है अतः इससे अनेक सैद्धांतिक लाभ मिल सकते हैं।

आत्म मूल्यांकन- व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में जो व्यवहार करता है उससे उसे अनेक प्रकार के ज्ञान प्राप्त होते हैं। किए गये व्यवहार द्वारा उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है कि उसका व्यवहार संतोषजनक था अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त वह विभिन्न मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग करके अपनी योग्यता तथा विशेषताओं का मूल्यांकर कर सकता है। वह यह पता कर सकता है कि उसमें वुद्धि कितनी है अथवा व्यक्तित्व कैसा है? इस प्रकार स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक जानकारी रहने पर आत्म मूल्यांकन में सहायता मिलती है।

पर व्यक्ति मूल्यांकन- मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा कोई भी व्यक्ति अन्य व्यक्तियों का मूल्यांकन करके उसके गुणों, विशेषताओं एवं योग्यताओं का अनुमान लगा सकता है। मनोविज्ञान द्वारा हमें दूसरे व्यक्तियों को समझने में सहायता मिलती है। हम अन्य व्यक्तियों की रूचियों, अभिरूचियों, स्वभाव, व्यक्तित्व-गुणों तथा व्यवहारों का मापन करके उसको समझने का प्रयास कर सकते हैं। मनोवैज्ञानिक समझ रखने वाला व्यक्ति दैनिक जीवन में अधिक सफलता प्राप्त करता है।

समायोजन में सहायता- व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी होने के कारण अन्य लोगों के साथ अन्तरक्रिया या सम्बन्ध स्थापित करता है। यदि उसे मनोवैज्ञानिक समझ है तो समाज के लोगों के साथ वह प्रभावशाली ढंग से समायोजन स्थापित कर लेगा। समायोजन स्थापित करना आवश्यक है, अन्यथा जीवन-निर्वाह करना कठिन हो जाता है। जिस व्यक्ति में समायोजन की क्षमता अधिक होगी वह कठिन परिस्थितियों में समस्या का हल ढूँढ लेगा और समायोजन की योग्यता से रहित व्यक्ति साधारण परिस्थितियों में भी घबड़ाकर असंगत व्यवहार करने लगता है। मनोविज्ञान से व्यक्ति को सफल समायोजन स्थापित करने में सहायता मिलती है।

मनोविज्ञान के व्यवहारिक लाभ

सैद्धांतिक लाभों के साथ-साथ मनोविज्ञान के अनेक व्यवहारिक लाभ भी हैं। यही कारण है कि मनोविज्ञान की कई व्यवहारिक शाखाओं की स्थापना हुई है। इसके प्रमुख व्यवहारिक लाभ निम्नलिखित है-

असामान्य व्यवहार का उपचार- असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की प्रमुख शाखा है। इसमें विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों का अध्ययन तथा उपचार होता है। इससे लोगों को यह राहत मिली है कि आजकल मानसिक रोगियों की चिकित्सा के लिए डॉक्टर तथा मानसिक अस्पताल उपलब्द हैं और प्राचीन काल की यह मान्यता कि दिमाग खराब होने का कारण भूत-प्रेत हैं, इस भयंकर पीड़ा से लोगों को मुक्ति मिली है। मनोविश्लेषण एवं नैदानिक मनोविज्ञान में उपचारों की व्यवस्था है।

औद्योगिक एवं संगठनात्मक लाभ- आजकल उद्योगों में मनोविज्ञान के सिद्धांतों का उपयोग किया जा रहा है। ऐसा करने से कर्मचारियों के चयन, योग्यता के मापन, कार्य का विश्लेषण करके उसके अनुरूप श्रमिकों को कार्य का विभाजन तथा उत्पादन बढ़ाने में प्रचूर सहायता मिल रही है। औद्योगिक तथा संगठनात्मक मनोविज्ञान में होने वाले कार्यों की प्रगति काफी संतोषजनक है और उद्योग में उन मानवीय पहलूओं का पता लगाया जा चुका है जो उत्पादन को प्रभावित करते हैं।

शैक्षिक लाभ- मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों का शिक्षा-जगत पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। प्राचीन शिक्षा पद्धति में अनेक कमियाँ थी जिन्हें आजकल दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। आजकल शिक्षा को व्यवसायपरक बनाने का प्रयास चल रहा है। प्राचीन शिक्षा पद्धति में व्यक्ति की योग्यताओं पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता था जितना आजकल दिया जा रहा है। आज हम यह मानकर चलते हैं कि हर व्यक्ति की रूचि तथा योग्यता अलग-अलग होती है इसलिए किसी भी बच्चे को शिक्षा देते समय उसकी रूचियों तथा योग्यताओं का अनुमान अवश्य लगा लेना चाहिए। आजकल शिक्षा मनोवैज्ञानिक आधारों पर दी जा रही है ताकि बच्चों का व्यक्तित्व यथोचित ढंग से विकसित हो सके।

व्यपारिक लाभ- तकनीकों एवं सिद्धांतों का उपयोग करने से आजकल व्यपार काफी तीव्र गति से हो रहा है। व्यापारीगण अपनी वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने के लिए तरह-तरह के आकर्षक प्रचार एवं विज्ञापन करते हैं। दुकान के भीतर सामानों को सुव्यवस्थित करके रखना, ग्रहाकों से आकर्षक ढंग से बात करना और अपने सामानों की विश्वसनीयता प्रमाणित करना इत्यादि, मनोविज्ञान के खोजों की देन है। व्यपारीगण या सामानों के उत्पादक प्राय प्रतिष्टित लोगों या कलाकारों का नाम अपने उत्पादनों के साथ जोड़कर उसके महत्त्व को बढ़ाते हैं।

अपराध-नियंत्रण- अपराधियों का पता लगाने, अपराधी प्रवृति के विकसित होने के कारणों का पता लगाने और अपराधियों के सुधार में भी मनोवैज्ञानिक विधियों के उपयोग से अच्छे परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। आजकल अपराधियों को अमानवीय सजा देने के स्थान पर सुधार-गृहों में रखकर अनेक प्रकार के प्रशिक्षण दिये जाते हैं ताकि वे भी अपना जीवन सुधार कर सामान्य आदमी बन सकें। अब न्यायालयों में मानवीय पहलू को महत्त्व दिया जाने लगा है।

धर्मान्धता दूर करना- आज के युग में धर्मान्धता पहले की तुलना में कम है। मनोविज्ञान का महत्त्व इस दृष्टिकोण से भी बढ़ जाता है कि इसके द्वारा धर्म के असली

एवं नकली पक्षों का विश्लेषण करके अनेक कुरीतियों से मानव को बचाया जा सकता है। समाज में अनेक प्रकार के पाखण्ड, आडम्बर और धार्मिक विकृतियाँ फैली हुई हैं। इन कुरीतियों का निराकरण मनोविज्ञान द्वारा सरलता से किया जा सकता है एवं साधारण तथा भोले-भाले भक्तों को समुचित ज्ञान उपलब्द कराकर उन्हें पाखण्डी धर्माधिकारियों के चंगुल से मुक्त कराया जा सकता है।

राजनीतिक एवं प्रशासनिक लाभ- आधुनिक समाज में मनोविज्ञान का राजनीति तथा प्रशासन में महत्त्व अत्याधिक बढ़ गया है। प्रायः चुनाव के समय में विभिन्न राजनैतिक दलों के नेता जनता का मत प्राप्त करने के लिए अनेक लुभावने वायदे करते हैं। नेतागण जनता को अपने पक्ष में करने लिए उनकी रूचियों, दृष्टिकोणों एवं धार्मिक मान्यताओं का ध्यान रखकर चुनाव घोषणा-पत्र जारी करते हैं। इसी प्रकार प्रशासनिक क्षेत्र में भी मनोविज्ञान का महत्त्व बढ़ा है। प्रायः यह पाया गया है कि प्रशासन की लोकतांत्रिक व्यवस्था में कार्य अपेक्षाकृत अच्छा होता है। इस व्यवस्था से लोगों का मनोबल उच्च रहता है और कार्य क्षमता का स्वर भी उँचा पाया जाता है। प्रशासन में इस अवधारणा का उपयोग किया जा रहा है।

पारिवारिक लाभ- मनोवैज्ञानिक नियमों तथा सिद्धांतों की जानकारी रहने पर पारिवारिक सम्बन्धों को दृढ़ता प्रदान की जा सकती है। पारिवारिक ढाँचे को सुदृढ़ बनाया जा सकता है तथा परिवार के लोगों में उचित मानवीय-मूल्यों का विकास किया जा सकता है। चूँकि पारिवारिक ढाँचे का बच्चों के व्यक्तित्व के विकास पर गहरा एवं स्थाई प्रभाव पड़ता है, इसलिए ऐसे विकल्प सुझाये जा सकते हैं जिनसे बच्चों का पालन-पोषण उचित ढंग से हो सके और वे समाज के लिए एक अच्छे नागरिक बन सकें।

अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करना- आज का युग काफी प्रगतिशील एवं सभ्य युग कहा जाता है परन्तु फिर भी विश्वशान्ति को निरन्तर खतरा बना हुआ है। मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग करके सामाजिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय तनावों को दूर

करने का प्रयास किया जा रहा है। विभिन्न देशों तथा संस्कृतियों के लोगों की रूचियों तथा स्वाभावों में समानता की खोज करके पारस्परिक सहयोग एवं मैत्री को बढ़ाया जा सकता है। ऐसा करने से अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कम किया जा सकता है और विश्व-शान्ति को बढ़ाया जा सकता है।

जातीय पूर्वाग्रहों को कम करना- प्रत्येक समाज में जातीय पूर्वाग्रह की समस्या मिलती है और इसके कारण कभी-कभी समाज को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। जातीय-पूर्वाग्रहों के कारण विभिन्न वर्गों, जातीयों तथा सम्प्रदायों में मारपीट, आगजनी एवं साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं। यदि लोगों को यह शिक्षा दी जाए कि हर आदमी जैविक दृष्टिकोण से बराबर है और जातीय धार्मिक विभाजन ईश्वरीय व्यवस्था न होकर मानवीय व्यवस्था है तो जातीय तनावों को दूर किया जा सकता है एवं अनेक निरीह एवं कमजोर व्यक्तियों को भेदभाव तथा साम्प्रदायिक दंगों का शिकार होने से बचाया जा सकता है।

मनोविज्ञान का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध

वैसे मनोविज्ञान के अतिरिक्त और भी विज्ञान हैं जो प्राणियों का अध्ययन करते हैं। परन्तु मनोविज्ञान ही एकमात्र ऐसा विज्ञान है जो प्राणियों के व्यवहार तथा कारणों को ही अपने अध्ययन का मूल केन्द्र बिन्दु मानता है। अतः मनोविज्ञान एवं विज्ञानों में सम्बन्धों का विवेचन आवश्यक है।

मनोविज्ञान एवं मानवशास्त्र- शैरिफ एवं शैरिफ के मतानुसार मानवशास्त्र का उद्देश्य है कि,

> अपेक्षाकृत कम विकसित एवं लघु समाजों तथा आधुनिक सामाजिक परिवेश में भी बन्धुत्व प्रणालियों, सामाजिक संगठनों एवं संस्थाओं, अन्तर्विनियम की प्रणाली एवं सांसकृतिक प्रतिमानों का अध्ययन करना है। (आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान 18)

इससे स्पष्ट हो रहा है कि मानवशानारीय अध्ययनों में यह जानने का प्रयास किया जाता है कि किसी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की विशेषताएँ किस प्रकार की हैं। इसमें यह भी जानने का प्रयास किया जाता है कि किस प्रजाति के व्यक्तियों की शारीरिक एवं जातीय विशेषताएँ किस प्रकार परिवर्तित होती हैं या स्थिर बनी रहती हैं। इसके विपरीत, मनोविज्ञान में प्राणियों के व्यवहार तथा उनके कारणों का अध्ययन किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि मनोविज्ञान का क्षेत्र व्यापक है। परन्तु यहाँ पर यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि मनोविज्ञान में सामाजिक संगठनों, समूहों एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्यय किया जाता है। अर्थात मनोविज्ञान की रूचि सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं में न होकर व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों में होती है। यही कारण है कि आधुनिक अध्ययनों में अन्तरविधायी दृष्टिकोण प्रयुक्त करने पर बल दिया जाता है।

मनोविज्ञान एवं दर्शन- मनोविज्ञान का उद्देश्य व्यवहार तथा उसके कारणों के बीच नियमपूर्ण सम्बन्धों का अध्ययन करना है। इसका अध्ययन वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक स्तर पर किया जाता है। इसके विपरीत दर्शनशास्त्र का उद्देश्य, आत्मा, ईश्वर एवं धर्म आदि जैसे अमूर्त विषयों का अध्ययन करना है। मनोविज्ञान में भी पहले अमूर्त विषयों का बोलबाला था और इसकी उत्पत्ति दर्शनशास्त्र से हुई मानी जाती है। परन्तु, अब स्थिति पूर्णतया परिवर्तित हो चुकी है। दोनों शास्त्रों की विषय सामग्री तथा अध्ययन के दृष्टिकोण पूर्णतः असमान हैं।

मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र- जॉनसन के अनुसार, "समाजशास्त्र सामाजिक समूहों के अध्ययन का विज्ञान है, इसमें समूहों के रूपों तथा संगठन के तरीकों, जो कि इनमें स्थिरता या परिवर्तन उत्पन्न करते हैं तथा अन्तर समूह सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।" (आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान 15) इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करना समाजशानारीय अध्ययन कहा जाता है। यदि सामाजिक सम्बन्धों का व्यक्ति के व्यवहार पर प्रभाव ज्ञात किया जाता है तो वह

मनोवैज्ञानिक अध्ययन कहा जाता है। यथा, सामाजिक मनोविज्ञान में व्यवहार पर सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। अर्थात समाजशानारीय अध्ययन का केन्द्र बिन्दु समूह, उसकी गतिशीलता, विशेषता, उसमें स्थिरता या परिवर्तन है जबकि मनोविज्ञान के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति व्यवहार है।

मनोविज्ञान तथा प्राकृतिक विज्ञान- मनोविज्ञान के विकास पर प्राकृतिक विज्ञानों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। उदहरणार्थ, प्रकाश तरंगों की विशेषताओं का अध्ययन भौतिकी में किया जाता है और मनोविज्ञान में हम दृष्टि संवेदना पर उनके प्रभाव का अध्ययन करते हैं। इसी प्रकार रसायन विज्ञान में रासायनिक प्रक्रियओं का अध्ययन किया जाता है। यदि रासायनिक प्रक्रियाओं का व्यवहार पर प्रभाव ज्ञात किया जाएँ तो वह अध्ययन मनोवैज्ञानिक अध्ययन कहा जाएँगा।

जीवशास्त्र का भी मनोविज्ञान पर प्रभाव पड़ा है। जीवशास्त्र में प्राणी की संरचना तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इसके विपरीत मनोविज्ञान में हम शारीरिक संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं का व्यवहार पर प्रभाव ज्ञात करते हैं। जैसे- ज्ञानेन्द्रियों का अध्ययन जीवशास्त्र का मौलिक उद्देश्य है जबकि मनोविज्ञान में हम उनके प्रभाव, कार्य एवं उपयोगिताओं आदि का अध्ययन करते है यही कारण है कि मनोविज्ञान को जैवसामाजिक विज्ञान भी कहा जाता है। मनोविज्ञान की कुछ शाखाएँ जैसे-मनोभौतिकी, मनोजैविकी या दैहिक मनोविज्ञान का प्राकृतिक विज्ञानों से गहरा सम्बन्ध है। वास्तव में प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में जो विकास हुए और आज भी जो हो रहे हैं उनसे मनोविज्ञान का स्वरूप, विषय क्षेत्र एवं उपयोगिता में भी परिवर्तन हुआ है। इससे मनोविज्ञान को वैज्ञानिक रूप देने में भरपूर सहायता मिली है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि मनोविज्ञान का अन्य सभी विज्ञानों से घनिष्ठ सम्बन्ध है और मनोविज्ञान भी इन सब के बिना अधूरा सा प्रतीत होता है। परन्तु साहित्य के विद्यार्थी होने के नाते हमें यहाँ साहित्यिक शोध में मनोविज्ञान का साहित्यिक सम्बन्ध देखना है। साहित्य में मनोविज्ञान ने किस प्रकार अपना प्रभाव डाला है, उसका अध्ययन करना है।

साहित्य और मनोविज्ञान में परस्पर सम्बन्ध

मनोविज्ञान के अनुसार साहित्य रचनाकार की अतृप्त कामनाओं का उदात्तीकृत रूप होता है। वैदिककालीन साहित्य से लेकर आधुनिक समय की साहित्यिक कृतियों तक मानव मन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध परिलक्षित है। यूनान, मिस्र जिसे प्राचीन सभ्यता वाले देशों की साहित्यिक रचनाएँ भी इससे भिन्न नहीं हैं। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के शब्दों में, "साहित्य में मनुष्य का जीवन ही नहीं, जीवन की वह कामनायें जो अनन्त जीवन में भी पूरी नहीं हो सकतीं, निहित रहती हैं।" (आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान 19) आशय यह है कि मानव मन एवं उसके असंख्य विकार-विचारों का अध्ययन करने वाला शास्त्र रूप मनोविज्ञान और मानव जीवन की भाषाई अभिव्यक्ति साहित्य का अनंत और अविच्छिन्न सम्बन्ध है। मानव जीवन की मूल प्रेरणाओं से साहित्य और मनोविज्ञान समान रूप से सम्बन्धित हैं। डॉ. गुलाबराय जैसे विद्वानों के मतानुसार साहित्य और मनोविज्ञान का उदय ही इन्हीं मूल प्रेरणाओं के अध्ययन के लिए हुआ है। नन्ददुलारे वाजपेयी अपनी पुस्तक आधुनिक साहित्य में कहते हैं कि,

> जीवन की मूल प्रेरणायें ही साहित्य की मूल प्रेरक शक्तियाँ हैं, जो वृत्तियाँ जीवन की और सब क्रियाओं के मूल स्रोत हैं, वे ही साहित्य को भी जन्म देती हैं। जीवन की मूल प्रेरणाओं के सम्बन्ध में विचार उपनिष्द काल से चला आ रहा है। बृहदारप्रयक उपनिष्द में पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा अर्थात पुत्र की चाह, धन की चाह और लोक अर्थात यश की चाह मानी गई है। यूरोप के मनोविश्लेषण शास्त्र का भी उदय इन्हीं प्रेरणाओं के अध्ययन के लिए हुआ। (आधुनिक साहित्य 430)

पाश्चात्य मनशास्त्रियों ने इन्हीं मूल प्रेरणाओं को क्रमशः काम वासना, स्वत्व भावना तथा समाज भावना का नाम दिया है। साहित्य और मनोविज्ञान के परस्पर

सम्बन्ध को व्यक्त करने वाली और भी अनेक बाते हैं। मनोविज्ञान मानव मन का विज्ञान है। साहित्य का केन्द्र बिन्दु मानव जीवन है। फ्रायड का मानना है मानव मन के तीन भाग होते है- चेतन, अर्धचेतन, अचेतन। मनोविश्लेषण के आधार पर यह स्वीकार किया गया है कि कला साहित्य का सृजन अचेतन मन की अतृप्त कामनाओं के उदात्तीकरण द्वारा होता है। डॉ. पद्मा अगरवाल के अनुसार,

> अज्ञात मन की ही इच्छा में कलाकार की कल्पना का आधार होती हैं। किसी भी परिस्थिति में चेतन इच्छाएँ उत्तेजक नहीं हो सकतीं। जब कभी उचित अवसर मिलता है, अज्ञात मन में संचित-इच्छाएँ कला के रूप में प्रस्फुटित होती हैं। (मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियायें 180)

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि अचेतन मन की संचित अभिलाषाएँ सदा साहित्य और कला को जन्म नहीं देती। मनशास्त्रियों के मतानुसार अचेतन मन में संचित भावना-ग्रंथियाँ पड़ती हैं। अगर इन्हीं ग्रन्थियों की उत्पत्ति दमित इच्छाओं के उन्नयन के बाद होती तो साहित्य व कला का सृजन होता है। लेकिन इनकी उत्पत्ति इच्छाओं के पूर्व अर्थात प्रकृत रूप रहने पर होती है तो प्रायः मनुष्य मानसिक रोगी बन जाता है।

भाव की प्रमुखता साहित्य और मनोविज्ञान के परस्पर सम्बन्ध को अधिक स्पष्ट कर देती है। साहित्यकार मानव मन के विविध भावों, विचारों और कल्पनाओं को साहित्य में व्यक्त करते हैं। मनोविज्ञान का विषय भी मन के विभिन्न विकार-विचारों तथा अन्तर संघर्षों का अध्ययन है। यहाँ साहित्य से तात्पर्य किसी युग विशेष के साहित्य से नहीं, बल्कि अभी तक रचे गये समस्त साहित्य से है। प्राचीन और आधुनिक काल साहित्य में अन्तर केवल इतना है कि जहाँ आधुनिक काल की साहित्यिक रचनाओं में मनोवैज्ञानिक तत्वों का सौद्देश्य प्रयोग परिलक्षित होता है वहाँ प्राचीन साहित्य में लेखकों ने अपनी सर्जनात्मक प्रतीभा से मानव मन के विभिन्न भावों और विचारों के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं। उद्दाहरण के लिए फ्रायड द्वारा 'इडिपस ग्रन्थि' के विवेचन होने से पूर्व ही शेक्सपियर ने अपने नाटक में इस मनोविकृति से पीड़ित

पात्र का चित्रण किया था। वास्तव में साहित्यकारों की कल्पना ही उन सामग्रियों को धीरे-धीरे उपस्थित कर देती है, जिन्हें आगे चलकर कोई वैज्ञानिक व्यवस्थित कर एक सिद्धान्त का रूप देता है। साहित्य और मनोविज्ञान का केन्द्र बिन्दु मानव जीवन है। जहाँ साहित्य मानव जीवन और उसके भावों और विचारों को चित्रित करता है। वहाँ मनोविज्ञान उन भावों और विचारों का शानारीय अध्ययन करता है। साहित्य में पात्रों के आत्म संघर्षों का वर्णन है तो मनोविज्ञान उन संघर्षों के मूल कारणों को व्यक्त कर देता है। इसी प्रकार पात्रों के आचरण सम्बन्धी असंगतियों का स्पष्टीकरण भी हमें मनोविज्ञान से ही प्राप्त होता है।

उद्देश्य की दृष्टि से भी साहित्य और मनोविज्ञान में समानताएँ हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कला और साहित्य अचेतन मन में संचित रहने वाली अतृप्त कामनाओं का प्रस्फुटित रूप है। दूसरे शब्दों में कहने पर कला और साहित्य के द्वारा रचनाकार की दमित इच्छाओं का उदात्तीकरण हो जाता है। वास्तव में अचेतन मन की दमित वासनाओं को स्वप्न आदि के रूप में चेतन मन में लाकर उससे मुक्ति पाने की जो प्रक्रिया मन में चलती है, वही कार्य साहित्य द्वारा भी संपन्न होता है। 'इड़' की प्रकृत वासनओं को परिमार्जित करने का कार्य ईगो और सुपर ईगो द्वारा होता है। इसी प्रकार साहित्यकार भी अपने पात्रों की मनोविकृतियों एवं दुर्बलताओं के चरित्र द्वारा अपनी दमित वासनाओं के उदात्तीकरण के साथ-साथ पाठको के समान भावों एवं विचारों के उदात्तीकरण का कार्य भी करता है। डॉ. गणेश दत्त गौड़ के शब्दों में,

> साहित्य मानव की मनोवृत्तियों में समरसता का प्रयत्न उपस्थित कर मनोवेगों को उच्छवसित करता है। रोगों की यह परिष्कृति, फ्रायडियन विकृत मन की उसी परिशोधन विधि के समान है, जिसमें अतृप्त-दमितच्छाओं को उन्नयन की ओर मोड दिया जाता है। (आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन 62)

उपर्युक्त विवेचन से यह विदित हो जाता है कि मानव जीवन के पल्ले पकड़कर चलने के कारण साहित्य और मनोविज्ञान में अटूट सम्बन्ध होता है। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के मत और मान्यताएं इसे और अधिक स्पष्ट कर देती हैं। क्रोचे के मतानुसार,

> मानव मन में जगत के नाना पदार्थों की प्रतिक्रिया रूप अनेक छाया चित्र घूमते रहते हैं, अनुभूति के कुछ विशेष क्षणों में उनको अभिव्यक्त करना स्वास्थय के लिए अनिवार्य हो जाता है। अभिव्यक्ति की यही अनिवार्यता काव्य व कला की जननी है। (विचार और अनुभूति 7)

इसी प्रकार हीगल का मानना है कि, "मानव के जन्मजात सौन्दर्य प्रेम को और उसकी आत्म-प्रदर्शन और अनुकरण प्रवृत्ति को साहित्य की मूल प्रेरणा मानते हैं।" (विचार और अनुभूति 6) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार,

> साहित्य का प्रधान उद्देश्य है रोगों या मनोरोगों का परिष्कार करते हुए उसका सृष्टि के साथ उचित सामंजस्य स्थापित करना, हमारे मनोवेगों को उच्छवसित करते हुए हमारे जीवन में एक नया जीवन डाल देना। मन को रमाते हुए स्वभाव संशोधन करना। (विचार और अनुभूति 88)

डॉ. गुलाबराय के मत में, "साहित्य जीवन का ही मुखरित रूप है, वह जीवन के महासागर से उठी हुई उच्चतम तरंग है। मानव जाति के भावों, विचारों और संकल्पों की आत्मकथा साहित्य के रूपों में प्रसारित होती है।" (सिद्धान्त और अध्ययन 70) साहित्य की भाँति मनोविज्ञान का भी जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। डॉ. देवराज उपाध्याय के मत में, "मनोविज्ञान अन्तिम विश्लेषण में जीवन शब्द का पर्यायवाची हो जाता है, क्योंकि जिसे हम जीवन कहते हैं वह अधिकांश रूप हमारे मनोजगत की सूक्ष्मता की वस्तु है।" (आधुनिक हिन्दी साहित्य और मनोविज्ञान 5) साहित्य और मनोविज्ञान की ये सारी परिभाषाएँ फ्रायड, एडलर और युंग के कला सम्बन्धी विचारों

से बेहद प्रभावित मालूम पड़ते हैं। उद्दाहरण के लिए हीगेल जिस जन्मजात सौन्दर्य प्रेम को साहित्य सृजन की प्रमुख प्रेरणा मानते हैं वह फ्रायड के कला सम्बन्धी विचारों से मेल खाता है। उसके अनुसार कला मानव के अचेतन मन में संचित रहने वाली अभुक्त वासनाओं का परिमार्जित रूप है। मनोविज्ञानी रिचर्डस का मानना है कि साहित्य को जीवन में समरसता लाने की क्षमता है। मनशास्त्रियों के अनुसार यही समीकरण मन के इड, ईगो और सुपर ईगो में निरंतर चलता रहता है। युंग जिस रचनात्मक वृत्ति को कला-सृजन की प्रेरणा मानते हैं वह क्रोचे की अभिव्यक्ति की अनिवार्यता सिद्धान्त से भिन्न नहीं है। इसी प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत कि साहित्य मनोरोगों को उच्छवासित करते हुए जीवन में नया जीवन डालना है, फ्रायड द्वारा प्रतिपादित उदात्तीकरण सिद्धान्त के अनुरूप है।

उपर्युक्त साहित्यिक आलोचकों एवं मनोवैज्ञानिकों के अभिमतों के अधार पर हम कह सकते हैं कि साहित्य और मनोविज्ञान का सम्बन्ध चिरस्थायी है। वास्तव में ये दोनों एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं। मनशास्त्रियों को अपने सिद्धान्तों को स्थापि करने में साहित्यकारों से मदद मिलती है। उल्टे साहित्यकार भी अपने पात्रों के सफल चित्रण के लिए जाने-अनजाने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का लाभ उठाते हैं। इसी प्रकार साहित्य और मनोविज्ञान में स्वरूपगत के अतिरिक्त प्रभावगत सम्बन्ध भी परिलक्षित है।

अंत में कहा जा सकता है कि साहित्य और मनोविज्ञान का बहुत निकट का सम्बन्ध है। जब से साहित्य-सृजन का आरम्भ हुआ, तब से लेकर आज तक मनोविज्ञान का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव उसमें परिलक्षित होता आया है। उद्दाहरण के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रचलन के पूर्व रचे गये 'महाभारत' में मानसिक भावों की सुंदर अभिव्यक्ति विध्यमान है। इसके सम्बन्ध में श्री इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है-

> कर्ण और कुन्ती को लेकर जिस अत्यन्त सूक्ष्म और मार्मिक मनोवैज्ञानिक विवेचन का परिचय महाभारतकार ने दिया है वह आज के प्रगतिशील युग के, नयी खोजवाले मनोवैज्ञानिकों में भी दुर्लभ है। (विश्लेषण 101)

आज केवल उपन्यास ही नहीं कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध आदि साहित्य की समस्त विधाओं का मनोविज्ञान के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तव में मानव जीवन पर अव्लंबित ये दोनों अनुशासन परस्पर पूरक होते हैं। साहित्यकार मानव मन के विविध भावों, विचारों और कल्पनाओं को साहित्य में व्यक्त करता है।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

हिन्दी साहित्य के पिछले कई वर्षों के इतिहास में 'अज्ञेय' का महत्तवपूर्ण स्थान रहा है। प्रयोगवाद और नई कविता को हिन्दी साहित्य में 'अज्ञेय' ने प्रतिष्ठित किया है। कविता के अतिरिक्त उपन्यास, कहानी, समालोचना, निबंध, पत्रकारिता, यात्रा-वृतांत आदि साहित्य की अन्य विधाओं में भी उनका योगदान रहा है। 'अज्ञेय' के साहित्य की एक अन्य विशेषता है, उसमें अनुस्यूत आधुनिकता का बोध। आधुनिक बोध में भारत की साहित्यिक-सांस्कृतिक परम्परा के साथ-साथ पाश्चात्य साहित्य तथा विचारधारा का विलक्षण सामंजस्य है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अज्ञेय का जन्म 7 मार्च 1911 को कसया नामक स्थान में हुआ था। यह स्थान उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जिले में पड़ता है। अज्ञेय उनका उपनाम है। अज्ञेय का पूरा नाम है- सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन। अज्ञेय के पिता पुरातत्व विभाग में उच्च पद पर कार्यरत थे। पुरातत्व की खुदाई के दौरान कसया के एक शिविर में 'अज्ञेय' का जन्म हुआ था। कसया प्राचीन कुशीनगर का ही नाम है। उनका परिवार सारस्वत गोत्रीय पंजाबी ब्राह्मण परिवार था। अज्ञेय को काव्य की प्रथम रश्मि का ज्ञान 'भुमीरी' को नाचते देख हुआ। 'भुमीरी' को चक्कर काटते देख अज्ञेय का बाल मन नाचने लगता था और कहते हैं,

> नाचता है भुमीरी कहकर स्वयं 'भुमीरी' के साथ चक्कर लेने लगते हैं और मैंने दूर जोर से चिल्लाकर और नाचकर ताली देकर गाना शुरू किया 'नाचत है भुमीरी नाचत है भुमीरी' इसके आगे शब्द नहीं मिले, पर उस समय मैंने जाना कि मेरी भँवरी ही नहीं भूमि भी नाचती है। सारा विश्व ब्रह्मांड नाच रहा है और उसी ताल पर उसी छंद में बँधा मैं भी नाच रहा हूँ। मैंने एक साधारण वाक्य से एक साधारण अर्थ निकाल लिया है- मैं अविष्कारी हूँ- सृष्टा हूँ। मैंने शब्द की शक्ति को पहचान लिया है। पहचान ही नहीं स्वायत्त कर लिया है और शब्द-शक्ति ही तो आधार है। (अज्ञेय की काव्य चेतना 1)

अज्ञेय बाल्यकाल से ही अपने भाई- बहनों के प्रति अत्याधिक स्नेह रखते थे। डॉ विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है,

> बड़ी बहन, जो लगभग आठ साल की थीं, जितना अधिक स्नेह करती थी, उतने ही दोनों बड़े भाई ब्रह्मानंद और जीवानंद, जो सन 1934 में दिवंगत हो गए, छोटे भाई वत्सराज के प्रति अज्ञेय का प्रेम बचपन से ही था। (अज्ञेय की काव्य चेतना 1)

आस्था और प्रेम बाल्यकाल से ही अज्ञेय के साथ रहे हैं। बाल्यकाल का यह पारिवारिक स्नेह मानव-प्रेम में धीरे-धीरे परिवर्तित होता गया। अज्ञेय की बाल्यकाल की घटना पर प्रकाश डालते हुए डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है,

> बचपन में इन्हें सच्चा के नाम से पुकारा जाता था। जब इनकी सचाई पर विश्वास नहीं किया जाता था, तब उन्होंने मौन विद्रोह किया। एक बार की घटना ऐसी है कि बड़े भाई में और इनमें शर्त लगी कि चौदह रोटी कौन खा सकता है ? बड़े भाई ने कहा कि तुम खाओ, तो तुम्हें इनाम दूँगा। वे खाने बैठे। पिता जी को सूचना मिली, तो उन्होंने बड़े भाई को बहुत डाँटा और इनसे कहा कि तुम अब न खाओ, उठ जाओ। वे

> चौदह के आसपास पहुँच रहे थे। वे अपने मन से उठे नहीं। इसलिए उन्होंने बड़े भाई से इनाम माँगा। भाई ने देने से इन्कार कर दिया। तब मौन विरोध में उन्होंने खाना ही कम कर दिया। इस प्रकार का आत्म-पीड़क क्रोध उनके मन में कई दिनों तक रहा और अब भी किसी न किसी रूप में उभरकर सामने आ जाता है। इसी क्रोध के कारण अपनी आर्थिक बरबादी भी उन्होंने कम नहीं की है। (आत्मनेपद 20-21)

अज्ञेय के बाल्यकाल का क्रोध उन्हें धीरे-धीरे शोधित और नचने-पकने की प्रक्रिया में लाकर साहित्य सरीता में ले आता है। कालांतर में यह प्रक्रिया साहित्य धारा में आमूल-चूल परिवर्तन कर नया रूप प्रस्तुत कर देती है।

शिक्षा

अज्ञेय की शिक्षा का आरम्भ मौखिक परम्परा से हुआ। सन 1911 से 1915 के बीच उन्होंने संस्कृत, फारसी और अँग्रेजी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही ली। नालंदा में रहते हुए 1919 से 1925 उन्होंने हिन्दी पिता से ही सीखी। पं. हीरानंद शास्त्री सहज और संस्कारी भाषा के पक्षधर थे। अज्ञेय की हिन्दी लिखाई की जाँच उनके पिताजी के अभिन्न मित्र रायबहादुर हीरालाल करते थे। इस बीच उन्होंने बाल-रामायण, बाल-महाभारत, बालभोज, इन्दिरा जैसी पुस्तकों के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन भी किया। उन्होंने वर्डसवर्थ, लागफेलो, रेनिसन, ह्विलमैन, शेक्सपीयर, मारलो वेबस्टर, लिटन, जार्ज इलियट, थेंकर, गोल्डस्मिथ, टालस्टाय, तुर्कनेव, गगोल, विक्टर ह्यूगो तथा मेलहिल की विभिन्न साहित्यिक विधाओं का अध्ययन किया। तुलसी का साहित्य भी उनकों पढ़ने को मिला। टेनिसन की लयबद्धता से प्रभावित होकर कुछ कविताएँ भी उन्होंने लिखीं। इस प्रकार अज्ञेय ने पाश्चात्य और भारतीय साहित्य का विशद अध्ययन किया। इस विस्तृत अध्ययनशीलता का प्रभाव उनके लेखन में सर्वत्र दिखाई देता है। सन 1925 में घर पर ही अध्ययन करते हुए उन्होंने पंजाब से

हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी वर्ष 'मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज' से गणित, भौतिकशास्त्र एवं संस्कृत विषय लेकर इंटरमीडिएट में प्रवेश लिया। साथ ही कविगुरू रवींद्रनाथ के बंगला काव्य से उनका संपर्क हुआ। सन 1927 में इंटरमीडिएट उत्तीर्ण कर उन्होंने 'कारमन कॉलेज' लाहौर में बी. एस. सी में प्रवेश लिया। किन्तु स्वतंत्रता में कूद पड़ने के कारण उनकी विश्वविद्यालयी शिक्षा यहीं समाप्त हो गई। विद्यार्थी जीवन में अज्ञेय रवींद्रनाथ टैगौर, ब्राउनिंग टेनिसन आदि लेखकों तथा जे. सी. बनेड एवं प्रोफेसर डेनियल से विशेष प्रभावित हुए। प्रोफेसर बनेट ने उन्हें विभिन्न धर्म ग्रंथों के अध्ययन के लिए प्रेरित किया तथा प्रोफेसर डेनियल ने ब्राउनिंग के रचना-संसार से परिचित कराया। इस प्रकार अज्ञेय की औपचारिक शिक्षा बी. एस. सी तक ही हुई किन्तु उनके स्वाध्याय का क्षेत्र बहुत व्यापक था।

क्रांतिकारी जीवन- अज्ञेय अपने विद्यार्थी जीवन से ही क्रान्तिकारी थे। 1929 में जब वे बी.एस.सी. के छात्र थे, तभी उनका परिचय 'नवजवान भारत सभा' एवं 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' से हुआ। 'रिपब्लिकन आर्मी' में चन्द्रशेखर आजाद, भगवतीचरण बोहरा एवं सुखदेव से उनका परिचय हुआ। विद्यार्थी जीवन से वे सक्रिय क्रान्तिकारी के रूप में क्रान्तिकारी आन्दोलन में नहीं कूदे, परन्तु उनके हृदय में क्रान्ति की लौ का प्रस्फुटन विद्यार्थी जीवन से ही हो गया था। सक्रिय क्रान्तिकारी के रूप में वे सन 1929 में कॉलेज छोड़कर सामने आए और उन्होंने भगतसिंह को छुड़ाने का कार्यक्रम बनाया किन्तु भगवतीचरण बोहरा के शहीद हो जाने के कारण उन्हें यह योजना स्थगित करनी पड़ी। बम बनाने का उनका कार्य अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि पिस्तौल की मरम्मत करने वाले कारखाने में देवराज एवं कमलकृष्ण नामक अपने दो साथियों सहित 25 नवम्बर,1930 को वे गिरफ्तार हो गए। इस गिरफ्तारी के बाद तो छूटने का और गिरफ्तारी का दौर चलता रहा। सन 1930 से 1933 के बीच लाहौर किले में अमृतसर हवालात में तथा दिल्ली जेल में यातना भोगी। फरवरी, 1934 में दिल्ली जेल से छूटे और तुरन्त ही लाहौर जेल में नज़रबंद कर लिए गए।

क्रान्तिकारी जीवन बिताते हुए उन्होंने दिल्ली जेल में 'शेखर: एक जीवनी' उपन्यास, 'चिंता कविता-संग्रह' तथा 'विपथगा' कहानियाँ लिखी। सृजन कर्म के अलावा उन्होंने अर्थशास्त्र की अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया। क्रान्तिकारी जीवन बिताते हुए उन्हें घोर एकान्त शारीरिक यातना से गुजरना पड़ा। उनके तात्कालीन लेखन पर इसकी गहरी छाप है। अज्ञेय का जेल-जीवन आत्म-मंथन में बीता। उन्होंने 'शेखर: एक जीवनी' में स्थान-स्थान पर इसका संकेत किया है। शेखर के आत्म-विश्लेषणात्मक कथन इसी ओर इंगित करते है।

मृत्यु 4 अप्रैल, 1987 शनिवार के दिन अज्ञेय जी दिवगंत हो गये। अज्ञेय के जीवन के ये अठहत्तर साल जितने सक्रिय, जितने निरन्तर उमड़न-घुमड़न और अमोद वर्षण के रहे हैं उतना किसी एक व्यक्ति के जीवन में देख पाना ही बड़े सौभाग्य की बात है। अज्ञेय का जीवन उनके नाम के अनुसार ही अज्ञेय था। मृत्यु के बाद भी वे अज्ञेय ही रहे।

डॉ. अजय शर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

हिन्दी साहित्य के पिछले कई वर्षों से डॉ. अजय शर्मा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। डॉ. शर्मा ने कहानी, उपन्यास, पत्रकारिता और पंजाबी कहानी संग्रह आदि से साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपना योगदान दिया है। डॉ. शर्मा के साहित्य की कई विशेषताएँ है जो आज के साहित्य के अनुकूल माना जाती हैं।

जन्म, परिवार एवं शिक्षा

डॉ. अजय शर्मा का जन्म 31 अगस्त, 1960 को जालंधर शहर में हुआ जो पंजाब में पड़ता है। पिता का नाम रत्नलाल शर्मा। इनके पिता और माता जी सरकारी स्कूल में अध्यापक थे। उनका अब देहांत हो चुका है। पत्नी ई. एस. ई अस्पताल में Pharmacist हैं। दो पुत्र पारूल और राहुल हैं। वह अपने परिवार के साथ जालंधर

शहर में रहते हैं। शिक्षा की दृष्टि से अजय शर्मा ने दसवीं साईं दास ए. एस हायर सैकंण्डरी सकूल में की और श्री. लक्ष्मी नारायण आयुर्वेदिक कॉलेज, अमृतसर से बी.ए.एम.एस किया हुआ है।

कृतित्व

साहित्य प्रेम के कारण आज यह सफल उपन्यासकार व कहानीकार हैं। अब तक विभिन्न साहित्यिक हिंदी, पंजाबी, पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ लेख एवं आवरण कथाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी पहली कहानी 'तस्वीर' सन् 1980 में हिन्दी दैनिक पंजाब केसरी में प्रकाशित हुई थी। पंजाबी कहानियों में इनका 'लकीर के आर पार' कथा संग्रह है। इनकी कुछ रचनाएँ बगंला भाषा में अनूदित करके त्रिपुरा विश्वविघालय में कम्पेरिटिव लिटरेचर के कोर्स में शामिल की गई हैं। इनका कहानी संग्रह 'हरी साड़ी वाली औरत भी काफी प्रसिद्ध रहा। उपन्यासकार, कहानीकार व पत्रकार होने के साथ- साथ यह इलैक्ट्रानिक मीडिया में भी अनुभव रखते है। डॉ. अजय शर्मा की कृतियाँ इस प्रकार है।

लकीर दे आर पार (पंजाबी कहानी सग्रंह) 1998, चेहरा और परछाई 2001, खुली हुई खिड़की 2002, आकाश का सच 2003, बसरा की गलियां 2004, काल कथा 2006, शहर पर लगी आंखें 2010, नौ दिशाएं 2011, भगवा 2014, कागद कलम ना लिखणहार 2016, समंदर और सफ़ेद गुलाब 2017

अनीता देसाई का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अनीता देसाई अँग्रेजी साहित्य की एक प्रख्यात लेखिका हैं। इनका जन्म 24 जून 1937 में मसूरी नामक स्थान, भारत में हुआ। अनीता देसाई विश्व में अँग्रेजी साहित्य में एक जाना पहचाना नाम है।

जन्म एवं शिक्षा

अनीता देसाई का जन्म का नाम अनीता मजुमदार था। उनके पिता ढाका, बांग्लादेश के और माता जर्मनी की राजधानी बर्लिन शहर की रहने वाली थी। उन्होंने दिल्ली में 'क्वीन मैरी हायर सेकेंडरी स्कूल' में पढ़ाई की और फिर सन 1957 में दिल्ली विश्वविद्यालय के मिरांडा कॉलेज से अँग्रेजी साहित्य में स्नातक की।

साहित्यिक जीवन

अनीता देसाई का पहला उपन्यास 'क्राई द पीकॉक' 1963 में प्रकाशित हुआ। पारिवारिक सम्बन्धों या मध्यम वर्गीय नारी के बारे में लिखती है। 1977 में इनका उपन्यास 'फायर आन द माउंटेन' के लिए उन्हें 'Winifred Holtby Memorial' का पुरस्कार मिला। उसके बाद उन्होंने कई कहानियाँ लिखी और उनसे बहुत से पुरस्कारों के लिए नामित हुए। इसी उपन्यास को लिखकर उन्होंने विश्व में अपनी पहचान बनाई और इन्हें तीन बार 'बुकर पुरस्कार की अंतिम सूची में चयनित किया गया। अपने साहित्यिक योगदान की बदौलत इन्हें पूरी दुनिया में लोकप्रियता मिली और दुनिया भर में इन्हें कई पुरस्कार मिले। भारत सरकार ने भी इन्हें पद्मश्री अलंकरण से सम्मानित किया। सन 1993 में इस्माइल मर्चेंटने इनके उपन्यास 'इन कस्टडी' पर एक फिल्म भी बनाई गई। अब अनीता देसाई साहित्य के राजकीय समाज का एक सदस्य है। अमेरिका में रहती हैं और Massachusetts Institute Of Technology में पढ़ाती हैं।

अध्याय दो

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में सामान्य मनोविज्ञान

मनोविज्ञान में विभिन्न कसौटियों के आधार पर अनेक शाखाएँ हैं जो विकास की विभिन्न अवस्थाओं और व्यवहारिक प्रयोग में विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी हुई विद्या-विशेषों की विस्तृत पद्धतियाँ हैं। ठोस सक्रियता, विकास तथा मनुष्य के समाज से सम्बन्धों के आधार पर मनोविज्ञान की शैक्षिक, विधिक, चिकित्सीय, तुलनात्मक और अन्य शाखाओं के विपरीत सामान्य मनोविज्ञान, जैसा कि इसके नाम से ही ध्वनित होता है, मनोवैज्ञानिक परिघटनाओं का नियमन करने वाले सामान्य नियमों तथा सैद्धांतिक मूलतत्वों से और मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में प्रयुक्त आधारभूत वैज्ञानिक अवधारणाओं तथा शोध प्रणालियों से सम्बन्ध रखता है। सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों एवं नियमों की व्याख्या करने वाली शाखा है 'सामान्य मनोविज्ञान'। इसमें प्रयुक्त नियमों का उपयोग एवं परीक्षण अन्य शाखाओं में भी किया जाता है। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यासों में देखा जाए तो सामान्य मनोविज्ञान के लक्षण बहुत ही कम दिखाई पड़ते हैं क्योंकि यह लेखक मनोवैज्ञानिक लेखक होने के नाते इनके पात्रों पर असामान्य मनोविज्ञान का ज्यादा प्रभाव देखा जा सकता है। समाज में रहते हुए कोई भी व्यक्ति संवेदना, प्रेम, सहानुभूति, यथार्थ, आत्म-मूल्याँकन, भाव-विचार इत्यादि से वंचित नहीं रह सकता। इस अध्याय में लेखकों के उपन्यासों में सामान्य मनोविज्ञान से सम्बन्धित इन तत्वों का अध्ययन किया गया है।

सामान्य मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

सामान्य मनोविज्ञान का अर्थ होता है जो सामान्य हो अर्थात असामान्य से भिन्न हो। सामान्य मनोविज्ञान को अँग्रेजी में (General psychology) कहते है।

सामान्य मनोविज्ञान का मुख्य सरोकार व्यवहार घटनाओं एवं अनुभूतियों की मूलभूत विशेषताओं का अध्ययन करना होता है। सामान्य मनोविज्ञान में प्राणी की शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं पर शोधमूलक अध्ययन कर व्यवहारों की उत्पत्ति, वृद्धि एवं विकास से सम्बन्धित प्रामाणिक तथ्य एकत्रित किए जाते हैं तथा इन प्रमाणों के आलोक में सामान्य नियमों (General laws) की खोज करना, उनका वर्णन करना एवं व्याख्या प्रस्तुत करना सामान्य मनोविज्ञान का मुख्य ध्येय होता है। इस प्रकार सामान्य मनोविज्ञान व्यक्ति के सामान्य व्यवहारों– शिक्षण, चिंतन, स्मृति, प्रत्यक्षीकरण, संवेदनिक अनुभवों, प्रेरणाओं आदि के बारे में सामान्य वर्णन एवं व्याख्या प्रस्तुत करता है साथ ही ये व्यक्ति के व्यवहार जिन नियमों द्वारा शासित होते हैं, उनका अध्ययन भी सामान्य मनोविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। सामान्य मनोविज्ञान व्यक्ति के हर उस पक्ष का अध्ययन करता है जो व्यक्ति में सामान्य रूप से विधयमान रहता है। ऊपरलिखित विवेचन से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि मनोवैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धातों की व्याख्या करने वाला मनोविज्ञान है सामान्य मनोविज्ञान। इस में अभिव्यक्त नियमों का प्रयोग एवं परीक्षण अन्य शाखाओं में भी किया जाता है। ये नियम और सिद्धांत हर व्यक्ति पर लागू होते हैं। सामान्य मनोविज्ञान की परिभाषा देते हुए डॉ. अरुण कहते है कि, “सामान्य मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसके नियम और सिद्धाँत हर व्यक्ति पर लागू होते है।” (सामान्य मनोविज्ञान 208) साहित्यिक सामान्य मनोविज्ञान के तत्व: सहनशीलता, प्रेम, यथार्थ, आत्म-मूल्यांकन, भाव, विचार, संवेदना, बुद्धि, स्वप्न, चिंतन, संवेग, कल्पना आदि के विस्तृत अध्ययन को माना जाता है।

सामान्य व्यक्तित्व के आधार एवं विशेषताएँ

सामान्य से परे ही असामान्य है। सामान्य व्यक्तित्व वाला व्यक्ति सामाजिक रूप में स्वीकृति होता है। वह अपने जीवन की समस्याओं एवं विफलताओं का डटकर सामना करने की क्षमता रखता है। उसे इस बात का पूर्ण ज्ञान होता है कि क्या सही है

कि क्या गलत है। सामान्य व्यक्तित्व के आधारों की चर्चा मैश्लो एवं मिटिलमैन ने व्यापक रूप से की है जिसके द्वारा सामान्य व्यक्तित्व की पहचान की जा सकती है।

सुरक्षा की समुचित भावना: एक सामान्य व्यवहार वाला व्यक्ति सुरक्षा की भावना से परिपूर्ण होता है। वह अपने आपको विभिन्न पारिवारिक स्थितियों, व्यावसायिक क्षेत्रों, व्यक्तिगत क्रियाकलापों एवं अन्तवैयक्तिक व्यवहार में पूर्ण सुरक्षित अनुभव करता है। यद्यपि एक सामान्य व्यक्ति में भी किन्हीं विशेष परिस्थितियों में असुरक्षा एवं भय व्याप्त होते हैं किन्तु अकारण ही वह असुरक्षित एवं भय से ग्रस्त नहीं रहता है।

संवेदनशीलता: एक सामान्य व्यक्ति में संवेगात्मक संतुलन उपयुक्त मात्रा में पाया जाता है। वह आवश्यकतानुसार ही संवेगों की अभिव्यक्ति करता है। अति संवेगात्मक एवं संवेगात्मक शून्यता के मध्य एक सन्तुलित संवेगात्मक अभिव्यक्ति ही एक सहज सामान्य व्यक्ति का प्रमुख लक्षण है। इन व्यक्तियों में दूसरों के सुख-दुःख के प्रति सहानुभूति होती है।

आत्म मूल्यांकन: सामान्य व्यक्ति की यह एक प्रमुख विशेषता है कि वह अपना मूल्यांकन अपनी योग्यता, कुशलता, क्षमता एवं यथार्थ के आधार पर करता है। अपनी क्षमताओं का न्यूनांकन एवं अत्यांकन करना एक सामान्य व्यक्ति का लक्षण नहीं है। उसे अपने बारे में उपयुक्त ज्ञान होता है।

यथार्थपरक जीवन लक्ष्य: एक सामान्य व्यक्ति अपने जीवन का लक्ष्य अपनी योग्यताओं के अनुरूप यथार्थ पर आधारित रखता है। उसका जीवन हवाई किलों की आशार भूमि पर नहीं टिका होता है। उसके जीवन-लक्ष्य यथार्थ पर आधारित होते हैं तथा समाज के मानकों और मूल्यों के अनुरूप होते हैं।

शारीरिक आवश्यकताएँ एवं उनकी उचित पूर्ति: एक सामान्य व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताएँ सामान्य मात्रा में सामान्य स्वरूप में होती हैं। उनकी पूर्ति व

संतुष्टि व्यक्ति सामान्य ढंग से करता है, जो समाज द्वारा बनाये मानकों एवं मापदण्डों पर ही आधारित रहती हैं।

समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास: समाज के प्रति हर व्यक्ति का कुछ न कुछ कर्त्तव्य अवश्य होता है। एक सामान्य व्यक्ति की यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है कि वह स्व तथा अपने समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति में समन्वय व सन्तुलन बनाये रखे। वे अपने समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को भलीभाँति समझते हैं तथा उन्हें पूर्ण करने का पूर्णतः प्रयास करते हैं। समाज-विरोधी कार्य तथा नैतिक चारित्रिक पतन से वे सदा अपने आप को बचाये रखने में प्रयासरत रहते हैं।

पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता: एक सामान्य व्यक्ति की प्रमुख विशेषताओं में से एक आवश्यक विशेषता यह है कि उसमें अपने पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता होती है। एक बार की गई गलती को पुनः दोहराने का प्रयास नहीं करता बल्कि पूर्ण सुखद और लाभदायक अनुभवों को ही वह बार-बार दोहराता है। उसे अपने पूर्व अनुभवों द्वारा वर्तमान और भविष्य के मार्ग निर्धारण में लाभ प्राप्त करने की कला आती है। मनोवैज्ञानियों द्वारा सुझाये गये सामान्यता के यह आधार तत्व पूर्ण रूप से किसी भी व्यक्ति में नहीं पाये जाते हैं परन्तु फिर भी इन लक्षणों की कुछ-कुछ मात्रा व्यक्ति के समायोजित जीवन में दिखायी देती है।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यासों में सामान्य मनोविज्ञान

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यासों में सामान्य मनोविज्ञान के तत्वों को देखा जा सकता है। तीनों लेखकों की कृतियों में कहीं-न-कहीं पात्र सामान्य क्रियाएँ करते हुए नज़र आते हैं।

संवेदना

संवेदना शब्द के अर्थ पर विचार करना आवश्यक है। हिन्दी शब्दकोश के अनुसार 'विद' धातु से यह शब्द बना है, विद से वेद, और वेद से वेदना। सम्यक रूप से वेदित होना ही संवेदना है। संवेदनशील शब्द को अँग्रेजी में सेन्सेबिलिटी कहते हैं इसमें बाह्य जगत का यथार्थ नहीं, अंर्तजगत का यथार्थ-विचार, भाव, राग भी सम्मिलित होता है।

अज्ञेय के उपन्यास में अंर्तजगत का यथार्थ दिखाई देता है। अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप' की चर्चा करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि 'यह उपन्यास चार संवेदनाओं का अध्ययन है। उसमें जो विकास है, वह चरित्र का नहीं संवेदना का ही है। वैसे तो अज्ञेय स्वयं एक आत्मचेतना कलाकार थे। हो सकता है इनकी कलाकारी की वजह से उनके सभी उपन्यासों में संवेदना भरी हुई है। उनका उपन्यास 'नदी के द्वीप' का अवलोकन करने के पश्चात यह धारणा बनती है कि यह उपन्यास वास्तव में चार संवेदनाओं का अध्ययन है।

मनोवैज्ञानिक युंग के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में चार करण शक्तियाँ होती हैं, जिसमें से कोई एक शक्ति चेतना में बहत्तर स्थिति में रहती है। उसके विपरीत करण शक्ति अवचेतना में निवास करती है तथा बाकी दो शक्तियाँ उसकी सहयोगी होते हुए आँशिक रूप से चेतना और अवचेतना दोनों रूप में विद्यमान रहती है। अज्ञेय मानव मन के कलाकार हैं तथा सहज आंतरिक समझ के रचनाकार हैं। 'नदी के द्वीप' उपन्यास मानव चेतना की चार शक्तियों से संपन्न चार व्यक्तित्वों के अध्ययन का रूपक तो है ही, साथ ही एक चिंतन-प्रधान करण शक्ति संपन्न व्यक्तित्व वाले कथानायक भुवन की चेतना के विकास का रूपक भी है।

'नदी के द्वीप' उपन्यास में हर पात्र किसी न किसी रूप का प्रतिनिधित्व करता है। भुवन चिंतन-प्रधान व्यक्तित्व का, रेखा अनुभव-प्रधान व्यक्तित्व का, गौरा प्रेरणा-प्रधान व्यक्तित्व का और चंद्रमाधव संवेदना-प्रधान व्यक्तित्व का। 'नदी के द्वीप' में

भुवन का जो चरित्र चित्रित हुआ है, वह प्रत्यक्षतः अंर्तमुखी, शिक्षित, संस्कृत, चिंतनप्रधान, संवेदनशील, आत्मचेतन, आत्मविश्लेषणरत और उदार व्यक्तित्त्व का चरित्र प्रतीत होता है। भुवन का व्यक्तित्त्व ऐसा व्यक्तित्त्व है जो काम-कुंठा पर विजय तो प्राप्त कर चुका है, किन्तु काम सम्बन्धी अनुभूतियों से सम्बद्धभाव बन्ध अभी उसके अन्तर मन में चलायमान है। इसलिए हम कह सकते हैं कि 'नदी के द्वीप' भावनाओं के संघर्ष की कथा है। उपन्यास में एक और पक्ष दिखाई देता है, तो वह है 'रागबंध', जिसे हम कुंठा कहते हैं। परन्तु भुवन द्वारा इस पर समय-समय पर नियंत्रण कर एक सामान्य व्यक्ति का परिचय मिलता है। 'नदी के द्वीप' में आरम्भ से ही ऐसे रागबंधों के दर्शन होते हैं, जो काम-वासना के संलगन प्रतीत होते हैं और जिनसे भुवन उपन्यास के अंत तक संघर्षरत दिखाई देता है। चन्द्रमाधव द्वारा परिचय कराए जाने पर भुवन रेखा के प्रति तत्काल तथा स्वयं चलित-सा आकर्षित होता है। भुवन अपने व्यवहार तथा वाणी के प्रति सहज है। भुवन अपने को अपराधी समझता है, तो कभी-कभी संकोचित हो जाता है।

ऐसा ही एक डॉक्टर पात्र अजय शर्मा के उपन्यास 'खुली हुई खिड़की' में है जो अमिता मुख्य नायिका की हर प्रकार से मदद करता है। जब वह सब कुछ संभालकर अपनी ज़िन्दगी में दोबारा जीने लगती है तो वहीं डॉक्टर उसकी भावनाओं को नियंत्रित करने में सहायक होता है और उसको सही मार्ग पर लाने में सक्षम हो पाता है। एक नारी द्वारा सहज भाव से स्पर्शित स्थल पर चुनचुनाहट होने लगती है। वह हक्का-बक्का-सा सोचता है कि,

> वास्तव में वह ठेला गया था या केवल रुमानी कल्पना कर रहा है। ठेला था या खींचा था। इतना भावाविष्ट हो गया था वह कि उन क्षणों की स्मृति से उसे स्पष्ट नहीं हो पाता। (खुली हुई खिड़की 58)

> भुवन बार-बार अपना कार्यक्रम बदलता रहता है। प्रत्यक्षतः ही रेखा का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए ही वह ऐसा करता है। भुवन स्वयं सोचता

> है, "स्पष्टतया केवल भाव का ही प्रत्यावलोकन काफी नहीं है, थोड़ा और पीछे देखना होगा और पीछे देखने में या क्रम से विश्लेषण के पूर्व देखने में- उसे झिझक क्यों है ? वह अनमना क्यों है ? सप्ताह भर का सामान्य सामाजिक परिचय- उसमें कौन-सा छायावेष्टित रहःस्थल है, जिसमें जिज्ञासा की किरण पहुँचने से वहाँ पलती कोई छुई-मुई अनुरागानुभूति भर जाएगा।" (नदी के द्वीप 60)

भुवन का रेखा के प्रति आकर्षण साधारण नारी-पुरुष के सतही आकर्षण से अधिक था। भावबन्धों के प्रभाव से स्वयं चलित सी बात फिर होती है। वह सत्य की चर्चा के दौरान अनायास प्रेम की बात उठा लेता है। एक कविता की पंक्ति का उदाहरण देता है, 'The pain of loving you', चुप होते ही उसे सारी बात-चीत पर झिझक हो आई। कैसे मैं इतना बोल गया, प्रेम के विषय को लेकर, जो काव्य सुनाया था, वह आरम्भ होता है, 'Dearest the pain of loving you, कैसे यह सब सहज हो गया। रेखा क्या सोचेगी।' (नदी के द्वीप 61)

यह सब ऐसे व्यक्ति के साथ होता है, जिसे रेखा कहती है,

> आप तो यों भी इतने तटस्थ जान पड़ते हैं, एक रूझान होता है, और आगे व्यक्ति अपने वर्तमान और भविष्य के बारे में जो समझता है, जो मनसूबे बाँधता है, उससे भी तो एक लीक बनती है, लीक कहिए, ढाँचा कहिए, इसलिए रास्ता भी है। (नदी के द्वीप 63)

ऐसा भुवन जिसका जीवन-दर्शन दृढ़ इच्छा-शक्ति वाला है, वह फिर सोचता है,

> एक निश्चय होता है। अकारण बदलने से इच्छा-शक्ति क्षीण होती है। योम क्षण की प्रेरणाओं पर अपने को छोड़ देने से आदमी शीघ्र ही आँधी पर उड़ता तिनका बन जाता है। फिर सहज प्रेरणा की मंद हवा कुछ तेज होकर आँधी...उसे कहीं भी उड़ा ले जा सकती है। (नदी के द्वीप 64)

भुवन उस रेखा की ओर बार-बार आकर्षित होता है, जो कहती है, “सम्पूर्ण मेरे लिए केवल एक युक्त सत्य है; केवल एक और एक के अंतहीन आवृति से पाया हुआ एक योगफल।” (नदी के द्वीप 65) यह भुवन सोचता है कि “साहित्यकार में जो क्षणिक है, सनातन की छाप को या जो सनातन है, उसकी तात्कालिक प्रासांगिकता को खोजता है, उलझता है।” (नदी के द्वीप 66) भुवन के लिए व्यक्तित्त्व की जड़ें होना आवश्यक है। सनातन का महत्त्व उसके लिए स्वयं प्रमाणित है। ऐसा भुवन जो रेखा के बारे में पहली बार सोच लेता है कि,

> निःसंदेह असीम असहिष्णुता में है, व्यथा पाने की असीम अंतःसामर्थ्य, लेकिन वह इसलिए कि आनन्द की सीमा, यातना की सीमा...चुन सकते हैं, उसे देवता, क्योंकि परा-सीमाएँ उनमें होती है, नभ-कामी मानव, मृत्कामी देवता-ट्रेजडी के सहज यान...वह मानव की सहज सम्भावनों की ट्रेजडी। (नदी के द्वीप 68)

भुवन प्रेम के प्रति अपने अन्तः मन में यह मानता है कि,

> परा-सीमा का स्पर्श चाहे वह आनन्द ही हो, चाहे यातना पाने की, मानव सम्भावनाओं की अवश्यंभावी ट्रेजडी है। उसे संस्कार, परम्परा, देशकाल के बँधन स्वीकार किए बिना नहीं स्वीकार किया जाना चाहिए। ऐसा भुवन क्यों रेखा के प्रति आकर्षित होता है? कुछ छायावेष्ठित रहस्यमय स्थल है ही, तभी तो उपेक्षा की जिस पिटारी में भुवन ने उसे डाल दिया था, उसे झकझोर कर रेखा बाहर निकल आती है। (नदी के द्वीप 69)

ऊपर से प्रौढ़ तथा उदार दिखने वाले अतिसंवेदनशील भुवन के प्रति जब रेखा आत्मिक समर्पण करने को तैयार होती है, तो उसे स्वीकार करने के बजाय उसकी आँखों से आँसू टपकने लगते हैं। रेखा का प्रणय-निवेदन सुनकर भुवन वैसा ही स्तब्ध बैठा रहा। वह धीरे-धीरे कहता है,

> यह इन्कार नहीं है, प्रत्याख्यान नहीं है...यह सब बहुत सुंदर है, बहुत सुंदर-यहाँ सौंदर्य की चरम अनुभूति होती है, होनी ही चाहिए, मैं मानता हूँ इसी लिए डर लगता है, अगर वह वैसा न हुआ, जो सुंदर है, उसे मिटाना नहीं चाहता रेखा, जोखिम में नहीं डालना चाहता। बहुत सुंदर है बहुत सुंदर। (नदी के द्वीप 70)

भुवन धीरे-धीरे शाँत हो गया। एक ऐसी गहरी शिथिलता उसके सारे शरीर पर छा गई, मानो हफ्तों का रोगी हो और एक करुणा, स्निग्ध, वात्सल गरमी से भरा हुआ भुवन सो जाता है। रेखा के गर्भवती होने का समाचार सुनते ही भुवन के विचार बदलने लगते हैं। लेकिन क्या अपनी सभी अनुभूतियों के प्रति उसके दृष्टिकोण का बदलाव है। उसका सोचना अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरुक व्यक्ति की प्रतिक्रिया मात्र है। अन्यथा क्या सोचकर वह अपनी ही दृष्टि में गिर नहीं जाता? वह कहता है,

> क्यों कुछ नहीं माँगेगी रेखा, कुछ भी? यों सब कुछ दे देगी; और फिर चुपचाप चली जाएगी। अपनी सबसे बड़ी आवश्यकता के समय मूक? नहीं, इतना बड़ा दान वह नहीं ले सकेगा। उदार होकर देना कठिन है, होगा, पर उदार होकर लेना भी उतना ही कठिन है।...नहीं, यह एकपक्षीय व्यापार वह नहीं कर सकेगा, घुट जाएगा इसके बोझ से, ऐसा दान वह नहीं लेगा, जो पाने का दम घोंट दे। (नदी के द्वीप 71)

जब रेखा के अनुनय भरे पत्रों के मिलने पर भुवन एक लम्बी चुप्पी के बाद उसको पत्र लिखता है। पत्र द्वारा भुवन रेखा को सूचित करने की चेष्टा करता है कि किन कारणों से वह उससे अलग-सा अनुभव करता है। वह लिखता है,

> जब कभी भी मैं अपने साझे जीवन के अंशों को याद करता हूँ, तो वे जैसे मिलकर एक रूपाकार नहीं बनते, मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े अलग रहते हैं, और फिर मेरे हाथों में मिट्टी हो जाते हैं। जीवन का एक चित्र, एक मूर्ति नहीं बनती, यद्यपि प्रत्येक खंड यथार्थ है। वह व्यथा की टीस, जो

> किसी खंड की कल्पना मात्र से देह-मन को झनझना जाती है। (नदी के द्वीप 2)
>
> मैं सुनता हूँ तुम्हारी दर्द भरी आवाज, 'प्राण, जान-जान' अंतहीन आवृति करती हुई एक कराह और वही उसे लगता है कि मेरे भीतर कहीं कुछ टूट गया है। मैं प्रेम की मर्यादा भूल गया, जो प्रेय है, उसे स्वायत्त करना चाहने लगा था। ऐसे जैसे वह स्वायत्त नहीं हो सकता। (नदी के द्वीप 73)

भुवन एक अपेक्षाकृत नई स्थापना करता है,

> रेखा, एक बात तुम समझोगी? तुम नहीं समझोगी, तो कोई नहीं समझ सकेगा। प्यार मिलता है, व्यथा भी मिलती है, साथ भोगा हुआ क्लेश भी मिलता है, लेकिन क्या ऐसा नहीं है कि एक सीमा पार कर लेने पर ये अनुभूतियाँ मिलतीं नहीं, अलग कर देती हैं, सदा के लिए, अंतिम रूप से। अनुभूतियाँ गतिशील हैं, अतीत होकर भी निरंतर बदलती रहती हैं। व्यक्ति को विकसती हुईं उनमें घुलती रहती हैं, लेकिन एक सीमा लाँघ लेने पर जैसे वे गतिशील नहीं रहतीं, जड़ हो जाती हैं, एक न घुलने वाला लोंदा, एक वज्रधातु पिंड। फिर व्यक्ति इन अनुभूतियों को एक चौखटे में जड़ कर रख लेता है... हर नई सम्भाव्य अनुभूति के आगे किसी एक चित्र को एक प्रतिरोधक दीवार की भाँति खड़ा कर लेता है। हमारे सांझे अनुभवों का सपुंजन ही रेखा, एक प्रतिरोधक दीवार-सा खड़ा हो गया है। (नदी के द्वीप 74)

रेखा एक प्रकार से अपेक्षाकृत दमित संवेदनशीलता का प्रतीक है, जो सम्भाव्य रूप से भुवन की अपनी है। वह रेखा के माध्यम से उस संवेदनशीलता का आत्मिक साक्षात्कार करता है, उसके बहु-आयामी ऐश्वर्य की अनुभूति से गुजरकर उसकी परा-सीमाओं का

स्पर्श करता है। उन्हीं क्षणों में उसे अपनी सीमाओं की प्रतीति होती है और वह चेतना के नए संगठन की ओर चल पड़ता है।

यथार्थ एवं आत्म-मूल्याँकन

यथार्थ शब्द जिसका अर्थ होता है, जो वस्तु जैसी भी है, उसे उसी रूप में चित्रित करना। डॉ. पूनम शर्मा, गिरिराज शरण द्वारा सम्पादित पुस्तक शोध दिशा में कहती हैं कि,

> यथार्थ से तात्पर्य, जो वस्तु अथवा घटना जैसी घटी है, उसका वैसा ही वर्णन करना। मनुष्य का जीवन अच्छाई और बुराई दोनों से परिपूर्ण होता है। मानव-जीवन शक्ति तथा दुर्बलता, लघुता तथा महत्ता, कुरूपता तथा सुरूपता का समन्वय है। इन सभी का मिला-जुला वर्णन ही यथार्थ के अन्तर्गत आता है। (शोध दिशा 36)

दूसरे शब्दों में यदि कहा जाए तो यथार्थ के अन्तर्गत असंगतियों, वैमनस्यों, कटुताओं आदि का चित्रण उनके स्वाभाविक रूप से किया जाता है। "जीवन की जटिलता, वैषम्य, संघर्ष आदि का सम्बन्ध निश्चित ही यथार्थ से है।" (शोध दिशा 89) यथार्थ न तो स्थिर है, न एक समान यथार्थ तो एक निरन्तर प्रवाह है जो प्रशिक्षित द्रष्टा की आँख को निश्चित दिशा दिखाता है एक ओर, यथार्थ हमेशा नई सामग्री प्रदान करता है और पुरानी सामग्री को दृष्टि से हटाता है। परन्तु वह उसके बहाव में पड़कर भी उन प्रवृत्तियों को सामने लाने में सफल हो जाता है जिनकी महत्ता पहले नहीं समझी गई थी। यही यथार्थ लेखकों के उपन्यासों में कहीं-कहीं परिलक्षित होता दिखाई पड़ता है।

भुवन में नैतिकता की सामान्य मान्यताओं की पकड़, उसकी उद्घोषित मान्यताओं के उपरांत भी बहुत गहरी प्रतीत होती है। नारी-पुरुष के विवाहेतर आत्मिक शारीरिक सम्बन्धों के प्रति विरोधी भाव रचनाकार अज्ञेय में आरम्भ से ही विद्यामान है। शेखर में 'शशि' के प्रकरण में वह स्पष्ट नहीं हो पाती, क्योंकि आत्मिक सम्बन्धों का और विकसित होते-होते ही रचना समाप्त हो जाती है।

जीवन में शेखर सजग रूप से आत्मिक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की ओर बढ़ता है। जिन अनुभूतियों का वर्णन जीवनी के अंतिम भाग में है तथा जिस प्रकार चित्रण हुआ है, उसका स्पष्ट अर्थ लगाना रचना के साथ तो अन्याय होगा ही, साथ ही भ्राँत भी हो सकता है, किन्तु एक बात स्पष्ट ही है कि जिन क्रिया-कलापों की ओर देवताओं को चुनौती देता हुआ शेखर जीवनी के समाप्ति-काल में बढ़ता हुआ चित्रित है, उन क्रिया-कलापों का आंतरिक रूप से स्वयं शेखर तथा शशि के अंतर्जगत में क्या प्रतिक्रिया होगी तथा किस प्रकार वे उन अनुभूतियों से होकर आगे बढ़ेंगे, जो उन क्रिया-कलापों का आवश्यक परिणाम है, उसका स्पष्टीकरण हुए बिना रचना समाप्त हो जाती है। यह रचना की समाप्ति नहीं है, वरन शेखर के जीवन में उस प्रसंग की समाप्ति है, क्योंकि उसी कालखंड में शशि की भौतिक मृत्यु भी हो जाती है। मरते-मरते शशि अपने अनुभव के ताप से शोधित एक सूत्र छोड़ जाती है, "प्रेम एक कला है, और कला संयम का ही दूसरा नाम है- यह हम शायद भूल गए थे।" (शेखर: एक जीवनी भाग एक 76)

अज्ञेय की रचनाओं में आरम्भ से ही काम के शारीरिक या यौन पक्ष के प्रति वर्जना का एक तीव्र भाव रहा है। उस वर्जना की उत्पत्ति का स्पष्ट कारण तो उनकी रचना में अभिव्यक्त अनुभूतियों में खोजने पर उपलब्ध नहीं होता। किन्तु इस वर्जना की उत्पत्ति, विकास तथा उससे उत्पन्न अंतर्द्वंद्व को उनकी रचनाओं की व्याख्या द्वारा समझा जा सकता है।

> ...'तब गर्भधान...' तब बिजली की कौंध से एक क्षण में, शेखर के हाथ से किताब छूट गई, धरती पैरों के नीचे से खिसक गई। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। यह अकथ्य, घृणित, अचिंतनीय भ्रष्टाचार...अच्छा है सारा संसार मर जाए यदि यही होना है तो...। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 77)

दुनिया शेखर के आगे खुल गई। वह सब कुछ समझ गया,

> ...जो स्पष्ट संकेत उसने देखे थे, जो पुकारें सुनी थीं, पिता का क्रोध, नाचती हुई जिन्निया की नँगी टाँगे, अमृतसर की वेश्या, रसोइया का व्यंग्य, अत्ती की नँगी पीठ, गीतगोविन्द के पद, अठमसा बच्चा, छिन्नमस्ता के नीचे पुरुष और प्रकृति का चित्र, कविता का सुख...और हाँ, सरस्वती की लज्जा, शाँति के आँसू, सावित्री का मौन, शशि का आग्रह और... शारदा का कम्पन- सब एक ही सूत्र में गुँथ गए, समझ में आ गए, इस सब की गति एक ही ओर है- एक ही घृणित पापकर्म की ओर, जिसे उसके माता-पिता करते आए हैं। यही है प्यार, यही है, जिसके लिए वह शारदा को चाहता था। यह अकथ्य, घृणित, अचिंतनीय भ्रष्टाचार...अच्छा है कि सारा संसार मर जाए- यदि ऐसा होना है तो...। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 78)

यहाँ तक कि कविता का सुख भी शेखर की चेतना में यौन-सम्बन्ध से सम्बद्ध हो जाता है। दूसरे शब्दों में संवेदना के यथार्थ के स्तर पर उसकी समस्त प्रतिक्रियाएँ ही उसकी चेतना में कलँकित हो जाती हैं। सरस्वती के प्रति शेखर का भाव अत्यन्त आत्मिक सुखमय तथा प्रत्यक्ष रूप पूजनीय है। 'शेखर को लगता है, "...जो वाँछित है, प्रिय है और समझने और सहानुभूति करने वाला है, उसका पूँजीभूत रूप सरस्वती है।" (शेखर: एक जीवनी-भाग एक 79) पिता की पुकार सुनकर उसकी तथा सरस्वती की आँखे मिली थीं।

> ...वह एक ही क्षण था, काल की गति का एक अविभाज्य टुकड़ा... अनुभूति का एक ही झोंका...हृदय का एक ही स्पंदन...सरस्वती ने कुछ कहा था, जब शेखर ने उसे 'सरस' नाम देकर प्यार से अपने मन में दुहराया। (शेखर: एक जीवनी-भाग एक 80)

सरस्वती के प्रति वह सोचता है कि,

> ...मैं बड़ा होता तो कितना अच्छा होता, क्योंकि किसी बहुत गहरे, बहुत छिपे और अप्रकट रूप से वह एक बड़े सत्य की डयोढ़ी पर खड़ा था कि आदमी बनते हैं, तो वे अपने को प्यार करने वाली किसी नारी के लिए। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 81)

सरस्वती की शादी हो जाती है। शेखर उसे पत्र लिखने बैठता है। उसने लिख डाला, "सरस...लेकिन यह तो मैं अपने अंतरमन में भी कहकर काँप उठता हूँ, उसे इस अश्लील ढंग से कागज पर रखूँगा।" (शेखर: एक जीवनी-भाग एक 82) वयःसंधिग्ध के पूर्व की अवस्था की उन अस्पष्ट प्रतिक्रियाओं में किसी वर्जित भाव को देखना तो एक अंधकारी चेष्टा होगी, लेकिन सरस्वती के प्रति शेखर का जो सख्यभाव है, वह अपने आप में सर्वथा निष्पाप होते हुए भी अपने आंतरिक संगठन में पूर्णतया स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। जिस वय में सरस्वती के प्रति शेखर की आत्मिकता पनपती है, समय की उस मनोदशा का विश्लेषण कर उसको निश्चित नाम देना अनुचित होगा। उसकी संवेदनशीलता इतनी विकसित नहीं हुई है कि हम उसकी आंतरिक यथार्थ माँगों को भिन्न-भिन्न नाम दे सकें। सरस्वती के प्रति शेखर मन में ऐक्य की इच्छा अत्यंत तीव्र है। 'अपने-अपने अजनबी' में मनोविश्लेषणवाद का प्रयोग अत्यंत सूक्ष्म रूप से किया गया है। इसमें पात्रों अथवा चरित्रों के आत्म का विश्लेषण अत्यंत बारीकी से किया गया है। पात्रों की मनःस्थितियों और उनके मानसिक तनावों के विश्लेषण के सहारे ही इसकी लघुकथा आगे बढ़ती है। सेल्मा के मन में स्थित जीवन के प्रति एक सहज ऊब, निराशा, कुंठा और अवसाद के यथार्थ भावों को व्यक्त किया गया है। इसी के समानांतर योके की आत्म और यथार्थ भावना को व्यक्त किया गया है।

'अपने-अपने अजनबी' में सेल्मा तथा योके के बीच तीसरे की अप्रत्यासित उपस्थिति, देव-शिशु के जन्म की प्रतीक्षा तथा उसके जन्म का उत्सव कुल मिलाकर एक अलौकिक घटना की पुनरावृति की प्रतीक्षा पाठक को लगातार सजग रखती है। "कब्रगाह-क्रिसमस ! पाताल लोक में देवशिशु का उत्सव ! नरक में भगवान !" (अपने-

अपने अजनबी 84) योके को लगता है कि उसके तथा सेल्मा के अतिरिक्त कोई और भी है। उसके 'अप्रत्यक्ष होने' की प्रतीक्षा दोनों ही कर रहे हैं। लेकिन योके की दृष्टि में वह देवशिशु नहीं हो सकता, "देवशिशु के आसन्न अवतरण कोई आनन्द, कोई स्फूर्ति उसमें नहीं थी।...वहाँ सेल्मा और योके के अतिरिक्त एक तीसरा देवशिशु नहीं है।" (अपने-अपने अजनबी 85)

एक ओर योके की जिजीविषा इस अंतहीन प्रतीक्षा को नकारती है- सारी परिस्थिति में कहीं कुछ भी ठीक लगा। जैसे अवतरण की बात ही गलत है और उसके द्वारा गाने गाना और भी गलत है। अगर हुआ ही, तो मृत्यु का, और वह मृत्यु ऐसी नहीं है कि गाने से उसका स्वागत किया जाए। सेल्मा सोचती है, "वह मेरे कंधों पर सवार होकर मेरा गला घोंट रही है। कैसा बेपनाह है उसका पँजा, जो छोड़ेगा नहीं, लेकिन जिसकी अँगुलियों की छाप भी पड़ेगी।" (अपने-अपने अजनबी 86) किन्तु फिर भी सेल्मा का प्रश्नहीन समर्पण भाव योके को अभिभूत करने लगता है। तभी तो अपने समस्त विरोध भाव को रखते हुए भी वह कह पाती है, "बड़ा दिन क्षमा-शाँति का दिन और मानवीय दिन। प्यार के पैगंबर का जन्म-दिन !" (अपने-अपने अजनबी 87) यह आँटी सेल्मा बर्फीली वीरान में रहने वाली गड़ेरियों की माँ अपनी बात से योके को अवाक् कर देती है और वह अपने आप से कहती है कि, "कौन है सेल्मा? क्या वह मात्र बुढ़िया है? या कि यहाँ भी कोई रहस्य है?" (अपने-अपने अजनबी 88) एपिफेनी का त्यौहार, जो ईश्वर की पहचान का दिन होता है, उस दिन योके सोचती है, "क्या है ईश्वर? कौन है वह ? सेल्मा की अनुभूति में 'सजीव उपस्थिति का नाम ही ईश्वर है।" (अपने-अपने अजनबी 89) सेल्मा कहती है कि,

> हम पहचानते हैं अनिवार्यता, हम पहचानते है अंतिम और चरम और पूर्ण और अमोघ नकार- जिस नकार के आगे और कोई सवाल नहीं है और न कोई आगे जवाब ही...इसलिए मौत ही तो एकमात्र ईश्वर को पहचाना जा सकने वाला रूप है। पूरे नकार का ज्ञान ही सच्चा ईश्वर ज्ञान है। (अपने-अपने अजनबी 90)

बर्फ में रहने वाली गड़ेरियों की अशिक्षित माँ का यह ज्ञान बार-बार होने वाले अनुभव पर आधारित है। तभी तो वह कह पाती है, “योके, मैं यह सब एक बार पहले देख चुकी हूँ। इसमें से गुजर चुकी हूँ।” (अपने-अपने अजनबी 91) यों तो जो कथा सेल्मा कहती है, प्रत्यक्षतः उसी के जीवन काल की कथा है, किन्तु क्या वह प्रागैतिहासिक काल से होती आ रही कथा का रूपक नहीं है, “मेरे लिए तो वह दूसरी ही दुनिया की बात है, मेरे लिए भी दूसरी ही दुनिया की बात है।...दूसरी भी कोई दुनिया है ? या कि दूसरी ही दुनिया है, और यह जो है, वह नहीं है।” (अपने-अपने अजनबी 93) योके की भाँति अपने यौवन काल में जीवन से झगड़ते रहने वाला यान योके से कहता है कि,

> अपनी अंतिम पूँजी देकर मैंने यह अंतिम भोजन खरीदा है। इसे अकेला नहीं खा सकूँगा...और इसे पकाना भी आसान नहीं था। मेरे जीवन के मोल वह खरीदा गया और फोटोग्राफर के जीवन के मोल पक सका है। (अपने-अपने अजनबी 94)

उसे स्वीकार कर सेल्मा स्वयं अर्थहीन हो जाती है। कुछ भी नहीं बचता इस मानवीय आत्मिकता को नकार कर।

> ...और कहीं कुछ नहीं था...कोई जिज्ञासा नहीं थी...कोई उत्तर नहीं था...कोई ध्रुवता नहीं बची थी, क्योंकि कोई विरोध नहीं था। बाहर बाढ़ नहीं थी और काल का प्रवाह भी नहीं था। केवल एक टूटा हुआ अर्थहीन पुल-कहाँ से कहाँ तक और कब तक ! एक टूटा हुआ अर्थहीन पुल, जो कि वह स्वयं है, वह सेल्मा जो न कहीं से है, न कहीं तक है- जो है तो वह भी नहीं जानती कि कब तक है? (अपने-अपने अजनबी 95)

लेकिन अपने तमाम अर्थहीन अकेलेपन को तोड़ती हुई,

> मानवीय मुस्कान यान और सेल्मा को तोड़ती हुई मुस्कान...जो केवल इन दोनों के बीच थी...जिसमें कहीं अस्वीकार न था, प्रत्याख्यान नहीं

> था, विरोध नहीं था, पर ध्रुवता थी- एक अटल स्वीकारी ध्रुवता- जैसे अंतहीन आकाश में बसा हुआ आलोक !...अंत वहाँ पुल पर न था...अंत यह था जो कि नया आरम्भ था...जिसमें से एक नया जीवन उपजा- एक नया अनुभव!...सुख-दुख के साझे का एक जाल, जिसमें जीवन की अर्थवत्ता के न जाने कितने पँछी पकड़े...फिर वह दिन आया, जब यान नहीं रहा, पर वह अर्थवत्ता नहीं मिटती, पाए हुए लारे अर्थ चाहे छिन जावें। जीवन सर्वदा ही वह अंतिम वेला है, जो जीवन देकर खरीदा जाता है, और जीवन जलाकर पकाया है, और जिसको साझा करना ही होगा, क्योंकि वह अकेले गले के नीचे उतारा नहीं जा सकता। अकेले भोगे वह भुगता ही नहीं। (अपने-अपने अजनबी 96)

उपन्यास की समाप्ति पर जो भाव-संवेदना का यथार्थ मन में रह जाता है, वह एक ठहरे हुए क्षण की अनुभूति का होता है, जिसमें भले ही वरण की स्वतंत्रता न हो। जो केवल होता है, वह विधि का विधान है, जो बार-बार अपने को दोहराता रहता है, जहाँ देव-शिशु जन्म लेता है, जो ईश्वर की पहचान का क्षण होता है, जहाँ रूपाँतरण है, जहाँ महाकाल का डमरू गूँजता है। पूरे उपन्यास का प्रतीकात्मक पक्ष अस्पष्ट, धूमिल तथा अधूरा होते हुए भी एक रहस्यमय आंतरिक महज घटना की प्रतीक्षा तथा उसके घटित होने के आभास की अनुभूति छोड़ जाता है।

डॉ. अजय शर्मा के उपन्यासों में यथार्थ मानवीय सम्बन्धों, मनोवृत्तियों का जीवंत चित्रण मिलता है। 'आकाश का सच' उपन्यास में अखबार जो कि लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ है उसका राजनीतिज्ञों ने अपने पैर जमाने के लिए दुष्प्रयोग किया है। सरकार द्वारा अखबार के मालिकों को अपना गुलाम बनाकर जनता के मन में झूठे सच्चे विज्ञापन छापे जाते हैं। अजय शर्मा इसी यथार्थ को अपने उपन्यास अकाश का सच्च के माध्यम से एक संपादक की भूमिका बताते हुए कहते हैं,

> संपादक भी एक मोहरे के सिवा कुछ नहीं, जिस पार्टी को लाना है, इलेक्शन से पहले उसका प्रचार जमकर किया जाता है। बड़े-बड़े सर्वेक्षणों की रिपोर्टें अखबारों में छाप दी जाती हैं कि अमुक सरकार इस बार सत्ता में आएगी। यह राजनीति ही है लेकिन चक्कर वहीं पूँजीपतियों व सरकार का है। इलेक्शन मात्र एक खेल सा लगता है। एक छल है, जो लोगों को छलने के लिए ही खेला जाता है। (अकाश का सच 52)

राजनीति का यह अर्थ नहीं कि केवल नेता ही इसके अंतर्गत आते हैं अपितु राजनीति तो प्रत्येक कार्यालय चाहे सरकारी हो या प्राईवेट, हर जगह चलती है। रिश्ते-नाते की आड़ में या चालाकी से नए रिश्ते बनाकर अपने अधिकारियों को काम निकालने हेतु राजनीति का खेल खेला जाता है। डॉ. शर्मा कार्य संस्थाओं में हो रही राजनीति के यथार्थ को बयान करते हुए कहते हैं,

> किसी भी प्राईवेट दफ्तर में चले जाओ, जातिवाद भाई-भतीजावाद का ही बोलबाला है। मुझे लगता है कि हर बॉस की कमज़ोरी रहती होगी। रोज़ शाम को जो दरबार लगते हैं, उनकी गलतियाँ भी नहीं निकाली जातीं। उन्हें काम भी दूसरों से कम करना पड़ता है। उन लोगों पर उनका वरदहस्त है। वे लोग जब चाहें छुट्टी पर चले जाएँ और जब चाहें लौट आएँ। (अकाश का सच 52)

इस तरह अखबार के माध्यम से अजय शर्मा ने राजनीति का घिनौना रूप सामान्य वर्ग के समक्ष लाने का सफल प्रयास किया है। डाँगे पात्र इस उपन्यास में अखबार का संपादक है पर इसी राजनीति के चलते ही उसे अखबार से हटा दिया जाता है। उसे फेयरवेल पार्टी दी जाती है तथा पार्टी में नायक उससे बातें कर रहा होता है तभी नया संपादक उसे देख लेता है और अगले ही रोज़ घर बुला कर अपनी पार्टी में शामिल होने को कहता है, “तुम मेरे लिए भी वहीं करो, जो डाँगे के लिए करते थे।...तुम मुझे सारी

रिपोर्ट दोगे, कौन क्या-क्या करता है? तुम्हारा पद और पैसा दोनों बढ़ा दूँगा।"(अकाश का सच 153) यह भी राजनीति का एक यथार्थ है। पत्रकारिता और राजनीति एक-दूसरे के पूरक बन कर रह गए। पत्रकार राजनेताओं के हाथ का खिलौना बना हुआ है। जिस पार्टी का पलड़ा भारी हुआ उसी की खबरें छापी जाती हैं, जिसके लिए अच्छा-खासा कमीशन भी मिलता है। परन्तु सम्पूर्ण पत्रकार वर्ग ऐसा नहीं है। कुछेक काले धब्बे हैं जो इसे कलँकित किए हुए हैं। इन्हीं काले धब्बों का जिक्र इस प्रकार है,

> किताबों में तो पत्रकारिता को लोकतांत्रिक प्रशासन का अविभाज्य अंग माना जाता है। यही नहीं, सारे प्रजातांत्रिक देशों में प्रेस का महत्त्व संसद के बाद दूसरे लोगों के शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने वाले लोग किस कदर शोषित होते हैं? (अकाश का सच 49)

आजकल मैनजमैंट का एक दौर चल पड़ा है। कहीं काम लेना हो, देना है। काम बना तो मैनजमैंट की मर्जी, न बना तो भी मैनजमैंट की मर्जी। ऐसे ही कुछ लोग अखबार को चलाने का दावा करते हैं। 'आकाश का सच' में एक त्रिमूर्ति का ज़िक्र है जिसका मानना है कि उनके बिना अखबार ही नहीं चल सकती। ऐसे ही लोग हस्तक्षेप करते हैं और कहते है कि,

> अमुक आदमी को न छापा करें, वह तो पंजाबी है।...और फिर केशधारी है। एक केशधारी आदमी हिन्दी का हो ही नहीं सकता। ऐसे लेखकों को छापकर आप हिन्दी पाठक वर्ग को नाराज़ तो कर रहे हैं साथ में अखबार की सर्कुलेशन भी घटा रहे हैं। (अकाश का सच 21)

परन्तु यह लोग भूल चुके हैं। पत्रकारिता तो अभिव्यक्ति कि एक कला है। परन्तु आज यही क्षेत्र सबसे अधिक भ्रष्ट हो रहा है। यहाँ तो वह बात हो गई कि हाथी के दाँत दिखाने के और तथा खाने के और होते हैं। इसके पीछे भी एक पत्रकार को दिन-रात काम करना पड़ता है। पता नहीं किस समय कहाँ भागना पड़े। काम करते ऐसा लगता है जैसे पत्रकार रूपी,

> हर आदमी ज़िन्दा लाशों के बीच घूम रहा है। सबके चेहरे तनाव से भरे हुए हैं। आँखें कम्प्यूटर सक्रीन पर गड़ी हुई और उँगलियों की-बोर्ड पर निरन्तर गतिशील। किसी को किसी से बात करने की फुर्सत नहीं। (अकाश का सच 65)

यह तो डेस्क पर काम करने वाले अर्थात जो अखबार के कार्यालय में काम करते हैं उनका हाल है परन्तु रिपोर्टर की ज़िन्दगी इससे कहीं ज्यादा बदत्तर है। डॉ. पुरी पहले डेस्क पर था परन्तु अब रिपोर्टिंग करनी पड़ी तो वही पत्रकारिता जो उसे भव्य लगती थी। डॉक्टर होते हुए भी पत्रकार बनने के लिए घर से दूर रहा। क्या कुछ नहीं किया ? आज रिपोर्टर बना तो पत्रकार की उसके लिए परिभाषा ही बदल गई,

> पत्रकारिता सचमुच ही शानदार कालीन के नीचे ढके हुए खुरदरे फर्श के मानिन्द है। ऊपर से देखने में भव्य लगती है। लगता है कि इस पर लेटते ही आराम मिलेगा। लेकिन बाद में पता चलता है कि यह काँटों की सेज है और देखने वाला इसका अन्दाज़ा नहीं लगा सकता। (अकाश का सच 79)

पत्रकार का घर-परिवार बल्कि सारी दुनिया अखबार में सिमट कर रह जाती है। संपादक डाँगे डॉक्टर पुरी के अफसोस करने पर कि वह न तो किसी के ग़म में शरीक हो सकता है और न ही किसी की खुशी में कहता है, “तुम्हारी शादी तो अखबार से हो चुकी है। तुम्हारी दुलहन अखबार है। इसकी रोज़ शादी न हो, तो यह तलाक ले लेती है।” (अकाश का सच 102) पत्रकार को पत्रकार बनने के लिए घर-परिवार, सगे-सम्बन्धियों, हर रिश्ते में समझौता करना पड़ता है। उसकी अपनी कोई ज़िन्दगी नहीं रह जाती। अखबारों के दफ्तरों में राजनीति का गंदा खेल खेला जाता है। अगर कोई गलती से लिखना चाहता है तो संपादक को दूसरे बिके हुए पत्रकार भड़का देते हैं। उसे डॉक्टर पुरी की तरह अपने स्थान से स्थानांतरित कर दिया जाता है। पंजाब के लोग केवल पंजाबी में लिख-पढ़ सकते हैं। हिन्दी उनकी भाषा नहीं है। ऐसा विचार कई

लोगों के दिलों-दिमागों में घर किए हुए है। 'आकाश का सच' में कई साहित्यकारों के विचारों का समावेश है, जो हिन्दी में लिखते हैं तथा हिन्दी जिनकी राष्ट्रभाषा है। प्रीतम सिंह ढिल्लों से पंजाब के हिन्दी साहित्यकारों के विषय में बात करते हुए डॉक्टर पुरी के समक्ष उनके यह विचार प्रकट होते हैं,

> पंजाब का भला नहीं हो सकता। हम अपनी राष्ट्र भाषा को इतना समृद्ध नहीं कर सके क्योंकि पंजाब में ऐसा माफिया खुलेआम घूम रहा है, जिसने हर लिखने वाले की गर्दन को लम्बा करने का बीड़ा उठाया हुआ है। (अकाश का सच 62-63)

भाषाओं, धर्मो के आधार पर देश बँटा हुआ है। इससे न हिन्दी की वह उन्नति हुई जो होनी चाहिए न देश की जबकि सभी भाषाएँ एक नदी के समान हैं और हिन्दी भाषा हमारी राष्ट्रभाषा एक समुद्र के समान जिसमें सभी नदी रूपी भाषाएँ विलीन हो जाती हैं। परन्तु भूमण्डलीकरण के दौर में जब हर चीज़ की परिभाषा बदली हुई है तो भी लोगों ने अपने आपको एक दायरे में सीमित कर रखा है। एक दहलीज़ बनी हुई है जो कुछ लोगों की करामात है। परन्तु यह हमेशा से घातक रही है और रहेगी। यह लोग भी और उन लोगों की दलीलें भी। इस सब में हिन्दी भाषा का बहुत नुकसान हुआ है। डॉक्टर पुरी अपने साहित्यकार मित्र रवि से हिन्दी के विषय में बात करता है। उसे ऐताराज है कि लेखक की कोई 'जमात' नहीं होती पर जब बात करो हिन्दी का लेखक है कि पंजाबी का, उसी बात पर रवि कहते हैं,

> दरअसल सभी ने अपने आपको दायरे में सीमित कर लिया है और वे दायरे किसी लक्षमण रेखा से कम नहीं हैं और उस रेखा ने जितना नुक्सान हिन्दी का किया है, शायद ही और किसी ने किया।...कुछ लोगों ने तो नए लोगों को मैदान में आने नहीं दिया, क्योंकि वे खुद को हिन्दी का झंडॉबरदार समझते हैं। (अकाश का सच 130-31)

परन्तु वह लोग भूल गए हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा है जो जन-जन की अपनी भाषा है। एक भाषा का दायरा तभी समृद्ध होता है जब वह दूसरी भाषाओं को अपने में समहित करती है। किसी एक भाषा में लिखने वाले लेखकों को दूसरी भाषा के ज्ञाता कैसे जानते हैं क्योंकि उनकी रचनाएँ उसमें अनुदित की जाती हैं,

> पंजाब के महान लेखक अमृता प्रीतम, गुरदयाल सिंह या फिर किसी और लेखक की बात करते हैं तो मुझे एहसास होता है कि ये लोग भारत के कोने-कोने में इसलिए पहुँचे, क्योंकि इनकी रचनाओं का अनुवाद हिन्दी में हुआ और इनकी रचनाएँ जन-जन की रचनाएँ बन गईं। इसी के साथ पंजाब अपने पूरे परिवेश के साथ पंजाब से बाहर पहुँचा। यही नहीं भाषा वही प्रचलित होती है जो भाषा कामर्स की भाषा बनती है। अब अँग्रेजी के बाद हिन्दी का ही नंबर है जो आने वाले समय में कामर्स भाषा बनेगी। (अकाश का सच 130-31)

पंजाब के बारे में लोगों को गलतफहमी है कि पंजाब के लोगों को हिन्दी नहीं आती। ऐसा ही कुछ विचार अखबार के संपादक का था। पंजाबी पत्रकारों को नहीं लिया जाता क्योंकि उसका मानना है कि उन्हें हिन्दी नहीं आती। इसी विषय में डॉक्टर पुरी के मन में विचारों की श्रृंखला सी चलने लगती है। वह सोचता है,

> इस धरती पर प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद की रचना की गई। कभी गीता के श्लोक भी इसी धरती की हवाओं में गूँजे थे। यही नहीं संस्कृत व्याकरण, जिसकी रचना पाणनि ने की थी, पेशावर का ही रहने वाला था, जो कभी पंजाब का हिस्सा था। पूरी दुनिया में गाई जाने वाली आरती, ओ३म जय जगदीश...के रचयिता श्रद्धाराम फिल्लौरी भी पंजाब की धरती पर ही पैदा हुए थे।...और तो और अगर साहित्य की बात करें, तो हिन्दी का पहला उपन्यास 'भाग्यवती' पंजाब की धरती पर ही लिखा था। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने हिन्दी की पहली कहानी, उसने कहा

> था, पंजाब की धरती पर ही लिखी-और यह लोग कहते हैं कि पंजाबियों को हिन्दी नहीं आती। (अकाश का सच 132)

इस प्रकार हिन्दी भाषा को कामर्स भाषा बनाने के लिए आह्वान तथा पंजाबियों का हिन्दी की तरफ बढ़ता रूझान एवं पंजाबियों के हिन्दी ज्ञान पर आलोचक की आलोचना का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। एक नया लेखक अपने-आप को स्थापित करने के लिए दुनिया से किस प्रकार झूझकर अपने आप को स्थापित करता है, अजय शर्मा ने अपने उपन्यास 'कागद कलम ना लिखणहार' में एक लेखक पात्र के माध्यम से एक नये लेखक के संघर्ष के यथार्थ को बताया है जब एक फीचर प्रभारी होने के साथ-साथ सहकर्ता भी है। परन्तु जब यह लेखक पात्र अपने द्वारा लिखी गई कहानी को छपा हुआ नहीं देखता है तभी उसको पूछने के लिए फोन करता है और सीधा ही अपना स्वाल कहता है,

> मेरी स्टोरी नहीं लगी?...आगे से उत्तर मिलता है- हमने तो इसको लिया था लेकिन आखिरी समय में पेज मैडम ने बनवाया और स्टोरी निकाल दी।...आगे से लेखक पूछता है, 'निकालने की कोई वजह?...'बस उनका कहना था कि स्टोरी वीक है और किसी मैगजीन से चुराई हुई भी लगती है'...आगे से फिर वह प्रश्न करता है, 'क्या आपको भी ऐसा ही लगता है?...उत्तर मिलता है, 'नहीं बिल्कुल नहीं। (कागद कलम ना लिखणहार 59)

इस कथन के माध्यम से उपन्यासकार इस यथार्थ को हमारे सामने प्रस्तुत करना चाह रहे हैं कि आजकल के जो नए लेखक हैं चाहे उनकी कृति बहुत ज्यादा प्रभावशाली हो किन्तु फिर भी उनको ऐसे संपादकों और प्रभारियों से झूझना पड़ता है जिनको साहित्य के बारे में कोई जानकारी ही नहीं होती। इसका भी सबूत आगे की बातचीत से मिलता है जब वह प्रभारी कहता है कि,

> आपको कहा न, मैडम ने निकाल दी। और देखिए इस वक्त फोन मत किया करें। इस वक्त मैं बहुत बिज़ी होता हूँ और काम में व्यस्त होता हूँ।"...इसी बात का उत्तर लेखक देता हुआ कहता है, "जो बात मैं आपसे कर रहा हूँ वो भी अखबार से ही जुड़ी हुई है और यह बात भी उतनी ही जरूरी है जितनी बाकी बातें क्योंकि इन बातों का असर सीधा अखबार पर पड़ता है। यह पहली बार नहीं हुआ है। पहले से ही मेरी कई स्टोरियाँ रुकी पड़ी हैं। मैंने तो स्टोरी लिखनी ही बंद कर दी थी और आप ही के कहने पर लिखी है।'...फिर वह कहता है, 'अच्छा, मैं मैडम से बात करके आपको बताऊँगा। (कागद कलम ना लिखणहार 59)

उसकी इस बात को सुनकर तो लेखक उसको एक 'नपुंसक इंचार्ज' तक कहने में भी परहेज नहीं करता। एक संपादक जिनको वह पसंद नहीं करता और उन लोगों को उनके पद से हटाने के लिए और अपने किसी जानकार को उस पद पर नियुक्त करने के लिए क्या कुछ नहीं करता, ऐसे यथार्थ को भी लेखक ने इस उपन्यास में बताया है। जब वह ऐसे लोगों को प्रेम से अपनी बात मनवाकर अपना कार्य सिद्ध करता है और कहता है,

> डॉक्टर मैंने यह प्लानिंग की है कि आप तीनों को खबरों के डैस्क पर शिफ्ट कर दूँ' क्यों कि फीचर में तो काम ही बहुत कम है। जो है, उसे आप शाम को दो घंटे लगाकर देख लिया करना। बस एकाध महीना ऐसा करेंगे फिर धीरे-धीरे आपको फीचर का इंचार्ज बना देंगे। ...क्योंकि नछत्तर कौर का रैकेट बहुत साल पुराना है, एकदम वो सारी बातें हजम नहीं कर पाएगी। धीरे-धीरे उसे पानी पिला-पिलाकर ही तो मारना पड़ेगा।...मेरे पास तो सारी बातों के सुबूत है लेकिन मैं नहीं चाहता कि उसका बुढ़ापा खराब किया जाए। अगर वह यह समझती है न कि हम उससे डरते हैं तो उसकी गलतफहमी है क्योंकि इतना बड़ा

> संस्थान किसी से नहीं डरता। व्यक्तिगत सम्बन्धों की बात दूसरी है लेकिन जब संस्थान की बात आती है तो वह किसी को नहीं छोड़ता। फिर यह किस खेत की मूली है? मैं तो जब चाहूँ इसको उखाड़कर बाहर फैंक दूँ। मुझे तो ऊपर से पूरे आदेश हैं लेकिन एक मैं ही हूँ जो इसका लिहाज कर रहा हूँ। (कागद कलम ना लिखणहार 63)

परन्तु यह सब कहने के लिए ही होता है असल में तो संपादक अपनी चालचल कर तीनों को ही बाहर करना चाहता था और अपने किसी जानकार को उस पद के लिए नियुक्त करना चाह रहा था वह भी तीन गुना ज्यादा पैसों पर इस बात का पता भी नछत्तर कौर ही लगवाती है और अपने साथियों को बताती हुई कहती है,

> असल में वह एक अखबार में काम करती है और वहाँ जितनी सैलरी उसे मिलती थी, उससे लगभग तीन गुना ज्यादा है। क्योंकि उसकी जानकार है। इसको तो स्साले को ऐसी ही औरत चाहिए जो इसका उल्लू सीधा कर सकती है। (कागद कलम ना लिखणहार 65)

नछत्तर कौर के जाने के बाद उसके दो साथी आपस में बात करते हुए कहते हैं,

> स्साला लड़कीबाज और दारूबाज तो है ही। मैं तो आपसे हमेशा कहता था कि ऐसे लोगों का कोई ईमान नहीं होता और यह लोग भरोसा करने के काबिल नहीं होते। ये लोग विश्वास के पात्र भी नहीं होते। ले लो आज सारी बाते एक ही बार में साबित हो गई। स्साला वो आ गई तो मैं तो नौकरी छोड़कर चला जाऊँगा। अपनी बेइज्जती करवाकर कौन यहाँ पर रहेगा? अरे मैडम के अंडर काम कर रहे थे तो बात समझ में आती थी क्योंकि वैसी आदत पहले ही दिन से थी। अब स्साला हमारा हक मारकर आदमी बाहर से लाओगे तो हमारी तरक्की कैसे होगी?...नवीन जी कम्पनी की तरक्की की परवाह किसे है! सबको अपनी तरक्की चाहिए, चाहे आप हों या मैं या फिर समाचार सम्पादक। (कागद कलम ना लिखणहार 67)

निजी संस्थान में हर कोई अपने बारे में ही सोचता है चाहे वह मालिक हो या काम करने वाला आम आदमी। लेकिन अखबार का संपादक अपनी बात मनवाने के लिए किस प्रकार तीन लोगों की नौकरी से खिलवाड़ करता है और उन्हें उनके पद से हटाकर किसी और अपने जानकार को बाहर से नियुक्त कर लेता है। इसी सम्बन्ध में पांडेय कहता है,

> अरे डॉक्टर साहब, मैं तो पहले से ही जानता था कि उसने एक तीर से तीन शिकार किए हैं। उसने सबको अपने कैबिन में बुलाकर उसके हिसाब से गोली दे दी और समय निकाल लिया। हम लोग उसकी बातों में आकर बिना किसी विरोध के खबरें करने लगे। (कागद कलम ना लिखणहार 71)

आजकल की कम्पनियों के उच्च अधिकारी चाहे जैसे भी हों अपने पद का नाज़ायज फायदा जरूर लेते हैं। ऐसे ही दीपेन्द्र पात्र निजी संस्थाओं के यथार्थ को बताते हुए नए लेखक पात्र को कहता है कि,

> उसको बॉस तो इसलिए बनाया है कि कम्पनी को एक वफादार कुत्ते की जरूरत थी न कि इसमें कोई काबिलियत थी। वैसे भी कम्पनी को बड़ी पोस्टों पर काबिल आदमियों की नहीं बल्कि एक वफादार कुत्ते की जरूरत होती है। पता नहीं कम्पनी कैसे भूल जाती है कि जिसकी फितरत में ही लोगों को काटना लिखा हो वह कम्पनी को कैसे छोड़ेगा? लेकिन काटते-काटते कुत्ते इतने मगरूर हो जाते हैं कि वे यह भूल जाते हैं कि जिस दिन उनसे ज्यादा वफादार मिल गया तो कम्पनी इनको भी साइड करने में देर नहीं करेगी। तब इनकी तड़प देखने वाली होती है। अरे भाई साहब, यह प्राइवेट नौकरी है और प्राइवेट नौकरी में तो हर वक्त आपको रिप्लेस करने के लिए कोई न कोई आदमी आप पर निगाहें गाड़े रहता है। आप उसकी नज़रों से कितनी देर बच सकतें हैं ! आपने

> देखा नहीं, आपका बॉस भी तो किसी को अपने से आगे नहीं आने देता। जो आगे बढ़ने लगता है उसकी ट्रांसफर करवा कर ही दम लेता है। असल में जो लोग खाली होते हैं वही इस तरह की ओछी हरकतें करते हैं। आपने सुना तो होगा, एंपटी वैसल्स मेक्स मच न्वायस यानी थोथा चना बाजे घना। (कागद कलम ना लिखणहार 76)

एक नया लेखक जो ऐसी चीज़ों को झेलता है और जब बर्दाश से बाहर होता है तो वह अपने उच्च अधिकारी से कहता है कि,

> इन सालों में हर कुत्ते-बिल्ले की सैलरी बढ़ गई लेकिन मेरी नहीं। आप ही बताइए कि क्या मैं इतना गया-गुजरा हूँ कि मेरे जूनियर मुझसे हर लिहाज में आगे कर दिए गए हैं। मैं उस पूर्यवँशी को अपना दोस्त समझता था लेकिन सर, उसने मेरी पीठ पर ही खँजर घोंपा है। कोई बात नहीं सर, जिस दिन वह मेरे उपन्यास का पात्र बनेगा, उसे फिर भागने को रास्ता नहीं मिलेगा।'...इसके उत्तर में अधिकारी कहता है, "अरे डॉक्टर साहब, लिखना कुछ मत। (कागद कलम ना लिखणहार 111)

क्योंकि ऐसा जानकर वह साहब भी जानते हैं कि एक लेखक की लेखनी में इतनी ताकत होती है वह सब को सबक सिखाने में देर नहीं करती। काल-कथा उपन्यास में लेखक ने विस्थापन के यथार्थ को दिखाते हुए उससे पीड़ित लोगों की मानसिक दशा को बयान किया है कि किस प्रकार सरकारें और लोग ऐसी स्थिति के बारे में क्या नज़रिया रहता है। ऐसे ही काल-कथा उपन्यास में डॉक्टर पात्र जो एक पत्रकार भी है वह अपनी अखबार के लिए एक कहानी छापने के लिए ऐसे ही लोगों की तलाश करता है तो उसकी तलाश अपने पास हर रोज आती एक बूढ़ी औरत बीजी पर खत्म होती है क्योंकि वह अकसर वैसी ही आप बीती कहानी रोज डॉक्टर को सुनाना चाहती है परन्तु डॉक्टर कभी उसकी बात पर ध्यान नहीं देता और खीजकर उसको जाने के लिए

बोल देता। लेकिन आज उसको अपनी अखबार की कहानी के लिए उसी बीजी की बहुत जरूरत महसूस होती है और खुद बुलावा भेजकर उसको अपने पास बुलाता है। बीजी जिसने अपनी जिन्दगी में पता नहीं कितना दुःख झेला होता है और आज भी उसी का संताप भोगती है और उन दिनों यथार्थ बताती है कि किस प्रकार लोगों ने उस समय का सामना किया। वह कहती है,

> क्या बताऊँ पुत्तर, उस दिन मंजर ऐसा था कि लगता है कि घटना अभी घटी है। हमने अपनी छत पर चढ़कर देखा कि हमारे घर के पास ही एक रेलवे लाइन थी और उस रेलवे लाइन के पार दादा नगर कालोनी थी। उस कालोनी में बड़ा गुरूद्वारा था। हमने देखा कि लोग गुरूद्वारे में तोड़-फोड़ कर रहे थे। भीड़ बहुत ज्यादा थी। देखते ही देखते भीड़ का हजूम हमारी कालोनी की तरफ बढ़ रहा था। लोगों ने देखते ही शोर मचाना शुरू कर दिया था कि भाग जाओ, घरों के दरवाजे बंद कर दो। जिसके पास जो भी हथियार है, अपनी सुरक्षा के लिए निकाल कर अपने हाथों मे पकड़ ले। मेरा पुत्तर, जोकि यह खबर सुनकर पहले से ही घर आ गया था, तेजी से नीचे उतरा और दरवाजे बंद करके हाथ में तलवार लहराता हुआ घर की तीसरी मंजिल पर चढ़ गया था। कुछ पुलिस वाले आगे-आगे और भीड़ पीछे-पीछे चल रही थी। यह बात सोचकर मैं आज भी परेशान हो उठती हूँ कि पुलिस देखते हुजूम से विभिन्न प्रकार की अवाजें आने लगीं। लोग अपनी छत्तों से ललकारने लगे, ऊपर आओ तो तुम्हें बताएँ। इससे पहले कि वे लोग ऊपर आते, पुलिस की गाड़ियों से हमारी कालोनी भर गई थी। घूँ-घूँ की अवाजें चारों तरफ से आने लगी थीं और शहर में कर्फ्यू लग गया था। लोगों की भीड़ तितर-बितर हो गई थी। लोग भी अपने घरों की छत्तों से उतर कर नीचे आ गए थे। मेरा बेटा और मैं भी नीचे आ गए थे। रात का अंधेरा बढ़ने लगा था। दार जी के न लौटने पर हम लोग चिंतित थे।

> हमारी कालोनी में बिजली और पानी दोनों बंद थे। बाहर पुलिस की गाड़ियों के आने-जाने की आवाजें लगातार आ रही थीं। लोग अपने-अपने घरों में दुबक कर बैठे थे। हमने पड़ोसियों के घर से दार जी की फैक्ट्री में टेलीफोन किया, जहाँ वे सिक्योरिटी गार्ड का काम करते थे, लेकिन टेलीफोन की तारें भी जवाब दे गई थीं।...और देखते ही देखते लेबर कालोनी के मंदिर एवं गुरूद्वारा खाली करवा लिए गए थे। दो दिन बाद मिलिट्री ने डेरे लगा लिए थे और पहरा लग गया था। पहली रात पंजाबी लड़कों ने मिलिट्री के साथ पहरा दिया। यह सिलसिला करीब चालीस दिन तक चला, लेकिन इसी बीच हमारे घर से खुशियों ने नाता तोड़ लिया था। दार जी सच्चे वाहेगुरू जी की शरण में चले गए थे, लेकिन विडम्बना देखिए, मौत पर रिश्तेदार नहीं आ सके। दहशत इतनी थी कि पंजाब से बाहर आने पर भी लोग डरते थे। वही हमारे साथ भी हुआ। पंजाब से हमारे रिश्तेदारों से आदमी कोई नहीं आया। केवल औरतें आईं। भोग के बाद मेरी भाभी ने मुझसे कहा, चलो बहन जी, आप हमारे साथ चलो, यहाँ आपका कौन है? हमारी आँखों के सामने रहेंगी, तो हम आपका सुख-दुख बाँट लेंगे...उसके बाद हम दुखों का भंडॉर लिए हुए जालन्धर आ गए। विस्थापन की पीड़ा मुझे आज भी सालती है। (काल-कथा 103)

पंजाब में चल रहे उस समय के यथार्थ को लेखक ने यहाँ दर्शाया है कि किस प्रकार एक आम आदमी को परेशानियों का सामना करना पड़ा जब उसे अपनों की जरूरत थी तब वह अपनों के साथ न रह सका। कोई भी सामान्य आदमी ऐसी परिस्थितों का सामना नहीं कर पाता परन्तु जो लोग ऐसे हलातों में जीवित रहे उन्होंने ऐसी परिस्थितियों का सामना किया और अपने आप को दोबारा से जिन्दगी जीने के लिए तैयार किया। इसी के बारे में बीजी आगे कहती है,

> क्या बताऊँ पुत्तर, जो लोग उजड़ जाते हैं, उनकी जिन्दगी कैसे शुरू होगी, कोई नहीं जानता। हम भी गाड़ी में बैठकर जालन्धर आ गए। यहाँ स्टेशन पर कई गुरूद्वारों की ओर से लंगर लगाया गया था। वे लंगर खिलाकर लोगों को गुरूद्वारा में ले जाते और पूछते, किसको कहाँ जाना है ? गुरूद्वारा वालों ने हमें भाई के घर पहुँचा दिया। मेरे भाई ने एक गुरूद्वारे में एक कमरा दिलवा दिया। वहाँ पर छोटे-छोटे कई कमरे थे, जिनमे विस्थापित होकर आए छह परिवार रहते थे। हम लोग वहाँ करीब 14 साल रहे। बाकी रही जिन्दगी बसर करने की बात, तो कुछ रुपये मुझे दार जी की पेंशन मिलती रही और दो साल के भीतर ही मेरे पुत्तर को सरकार ने नौकरी दे दी। (काल-कथा 104)

बीजी के द्वारा लेखक ने हर उस आम-आदमी का दर्द बयान क्या है जिन्होंने यह दर्द झेला है। उसी के लिए बीजी आगे कहती है,

> मतलब यही कि यह मेरी कहानी नहीं है, बल्कि मेरे जैसी कई औरतों की कहानी है। केवल जगह और लोगों के नाम बदलेंगे। वह बात दूसरी है कि सबकी कहानी अखबारों में स्थान नहीं ले पाएगी। वर्ना न जाने कितनी बदनसीब औरतें हैं, जो पंजाब में पनपे उग्रवाद का संताप झेल रही हैं। कोई उग्रवादियों की गोलियों का, तो कोई उग्रवाद से पैदा हुए प्रतिक्रम का। आप अखबार वाले तो केवल अखबार की सुर्खियाँ बनाएँगे, लेकिन सुर्खियों के पीछे का दर्द कोई नहीं जान पाएगा। अगर जानने योग्य होता तो शायद पंजाब में यह स्थिति पैदा ही न होती। कई सच ऐसे होते हैं, जो झूठ से भी कड़वे होते हैं और झूठ ऐसे होते हैं, जिनका सहारा लेकर ज़िन्दगी काटी जा सकती है, लेकिन हमारी जिन्दगी तो उन काँटों के समान है, जिन्हें फूलदान में कभी नहीं रखा जा सकता। वे काँटे, जो फूलों के साथ हों तो उखाड़कर बेदर्दी से फेंक

> दिए जाते हैं, लेकिन काँटों से आदमी हमेशा सावधान रहता है। शायद यही कारण है कि- कई बार फूल असहनीय जख्म दे जाते हैं। (काल-कथा 104)

ऐसा ही एक पात्र सुच्चा सिंह है जो अपने धर्म के खिलाफ हुए आक्रमण को नहीं सह पाता और असामान्य स्थिति में पहुँचजाता है। सुच्चा सिंह की हालत यह कैसे हुई उसके बारे में डॉक्टर वर्मा कहते हैं कि,

> असल में सुच्चा सिंह एक फौजी था। उसकी एक बटालियन में ड्यूटी थी। जब ऑपरेशन ब्लू स्टार हुआ और हरिमंदिर साहिब पर अटैक करने का मौका आया, तो वह अपने आप में नहीं रह सका। अपना दिमागी संतुलन खो बैठा और वह जोर-जोर से चीखने-चिल्लाने लगा। इसने तो अपने साथियों पर बंदूक भी तान दी थी और शायद ट्रीगर भी दबा दिया होता, अगर इसके साथी इसे न रोकते। हो सकता है कि दो-चार फौजी शगीद हो जाते...मैंने आपको क्लास में भी बताया था कि जब व्यवहार, सोच और लगाव में तालमेल गड़बड़ा जाता है, तो आदमी को पागल की संज्ञा दे दी जाती है। ऐसी हालत में इड, ईगो और सुपर ईगो तीनों बुरी तरह प्रभावित हो जाती हैं। कई बार तो ऐसा होता है कि बाप के मर जाने पर भी ऐसे लोग मुस्कुरा रहे होते हैं। (काल-कथा 113)

यहाँ सुच्चा सिंह पात्र फ्रायड, एडलर और युंग के विचारों से बिल्कुल मिलता जुलता पात्र है। इन विचारकों की भी यही मान्यता है जब व्यक्ति की तीनों ईगो प्रभावित होती है तो व्यक्ति को सामान्य से असामान्य की तरफ जाते समय नहीं लगता। पंजाब में पनप रहे उग्रवाद के यथार्थ को लेखक ने इन्हीं पात्रों के माध्यम से बताया है और सोचने के लिए मजबूर भी किया है कि क्या सरकारों यह सब रोकने में समर्थ नहीं है? या जान-बूझकर लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ किया जा रहा है? इसी के बारे में लेखक पात्र डॉ. सिंह के माध्यम से कहता है,

ये सब एजेंसियों की चालें होती हैं। पंजाब की तस्वीर समझने के लिए कुछ साल पीछे जाना पड़ेगा। सच्ची और सीधी बात कहूँ तो कहीं न कहीं सरकार का ही दोष होता है। कई एजेंसियाँ है, जो काम करती हैं। जब उन्होंने चाहा, उग्रवाद खत्म हो गया। बस पंजाब का विकास रोकना था, ताकि पंजाब बहुत बड़ी शक्ति बनकर सिर न उठा सके। थम गया उग्रवाद, लेकिन खत्म नहीं हुआ। एजेंसियाँ जब चाहेंगी, तब बोतल में छुपे हुए जिन्नों को बाहर निकाल लेंगी और वे जिन्न आदम-बो आदम-बो करते हुए लोगों की तबाही फिर से करनी शुरू कर देंगे। एक नजर डालो उन काले दिनों पर। सेंटर की मिनिस्ट्री से कितने मिनिस्टर पंजाब के दौरे पर आते थे। मुझे नहीं लगता कि किसी ने दिल्ली जाकर यह बयान हो कि पंजाब के हालात खराब हैं। बयान में हमेशा यही रहता कि पंजाब के हालात ठीक हैं। इसका साफ मतलब है कि शासक को तस्वीर का असली रूप नहीं दिखाया गया। अगर हालात ठीक थे, तो फिर ऑप्रेशन ब्लू स्टार जैसा घिनौना कृत करने की नौबत क्यों आई?...एक बात और कहूँ, पता है कि वे उग्रवादी कौन थे? वे गाँव के नौजवान लड़के थे जिनकी अभी मूँछ-दाढ़ी फूट रही थी। धर्म चाहे उनका कोई भी रहा हो, लेकिन मरने का दुख हर घर में एक ही जैसा होता था। उनमें सिख भी थे और मौने भी। कुछ लोग कहते थे कि हम पंजाब छोड़ देंगे, लेकिन सिख तो उनकी गोलियाँ खाने और उनके जुल्म सहने के लिए मजबूर थे। वे तो कहीं जाने का सोच भी नहीं सकते थे। उग्रवाद कम करने के लिए ऑपरेशन किए गए। युद्ध स्तर पर अभियान चलाया गया। उसमें नौजवान पीढ़ी लगभग नष्ट कर दी गई। कुछ लोग किसी तरह विदेश भाग गए। यह क्या कम पीड़ा है कि किसी आदमी ने कोई जुर्म नहीं किया और उसे देश छोड़कर भागना पड़ा। कुछ विदेश पहुँचे, तो कुछ रास्ते में ही दम तोड़ गए। उनकी पीड़ा भी पंजाब आज

> तक झेल ही रहा है। पता नहीं क्यों नज़र लग जाती है पंजाब को? शायद खुशहाली की यह त्रासदी है कि उसकी उम्र लम्बी नहीं होती। पंजाब भी शुरू से यही सहता आ रहा है। कभी मुगलों के हमले की मार, कभी विभाजन का दर्द, तो कभी उग्रवाद के नाम पर रक्तपात। ओह...ओह...मेरी तो सोच भी कभी-कभी जवाब दे जाती है। (काल-कथा 116)

पंजाब की सरकारों और लोगों के बीच के यथार्थ का प्रकटीकरण कर लेखक ने बहुत ही सहजता से दर्शाया है। ऐसे ही यथार्थ को अजय शर्मा ने अपने उपन्यास 'समंदर और सफ़ेद गुलाब' में दर्शाया है कि किस प्रकार एक नए शहर में अंजान आदमी के लिए वह एक पनौती बनकर रह जाता है। घरों की मज़बूरियाँ नौजवानों को अपने देश से विदेश जाने के लिए मज़बूर कर देती हैं जिसके चलते वह कई तरह के इंतज़ाम करके विदेश जाता है। परन्तु विदेश तो विदेश अपने ही देश में किसी दूसरे राज्य की पुलिस किस प्रकार करूरता दिखाती है, इस यथार्थ को लेखक तब बयान करते हैं जब एक नौजवान किसी ट्रैवल एजैंट को पैसे देने मुम्बई जाते हैं और वहाँ पहले टी.टी ई बाद में मुम्बई की पुलिस कैसे शोषण करते हैं। अंजान शहर और अंजान रेलवे स्टेशन पर टिकट लेने के लिए पूछना मूसीबत मोल लेने के बराबर ही होता है। जब एक नौजवान स्टेशन पर खड़े एक आदमी से पूछता है, "कलीना जाने के लिए टिकट कहाँ मिलेंगे?...जवाब में मिलता है, 'टिकट दिखाओ" (समंदर और सफ़ेद गुलाब 45) असल में जिससे टिकट खिड़की के बारे में पूछा गया था वह टी.टी.ई था किन्तु यह पूछने पर उन लोगों को से कहता है, "अब पूछा है तो फिर हरजाना तो भुगतना ही पड़ेगा साहब।" (समंदर और सफ़ेद गुलाब 45) वह एक उन लोगों से पैसे लेकर ही छोड़ता है। अंजान शहर में अंजान लोगों की संगत में वह तैश में आ जाते हैं और टी.टी.ई का कॉलर पकड़ लेते हैं और वहीं टी.टी.ई उन्हें पुलिस थाने भेजवा देता है। अपने ही देश में अगर यह सब होगा तो लोग किस जगह को अपना कहेंगे? आगे पुलिस वाले शराब के नशे में उन्हें कहते हैं,

> आपने सरकारी आदमी पर हाथ डाला है, इसका अंजाम जानते हो क्या होगा?...स्सा..ला, सरकारी मुलाजिम के साथ भंकस करेगा? अरे... अक्खा मुम्बई जानता है कि सरकारी मुलाजिम पर हाथ नहीं डालते। नये-नये छोकरे हो, होश ठिकाने लगा दिए तो मेरा नाम भी राम लाल तेंदुलकर नहीं। (समंदर और सफ़ेद गुलाब 48)

ऐसे बिना किसी गलती के उन लोगों की इतनी पिटाई की जाती है जैसे वे किसी की जान लेकर आए हों। बाद में यथार्थ पुलिस वाले के मुँह से निकलता है और कहता है, "साला...भेजा घुमा दिया इन लोगों ने। जो थोड़ी-बहुत पी थी, वह भी उतार दी। अब तो बोतल भी खाली है। उस टी.टी.ई ने एक ही बोतल दी थी और वह भी खाली हो गई।" (समंदर और सफ़ेद गुलाब 50) इस सबसे तो एक ही बात सामने आती है कि हमारे देश का कानून इतना बेरहम और सस्ता है कि एक शराब की बोतल के लिए किसी भी बेकसूर आदमी को पकड़कर उसकी पिटाई कर सकता है? मुम्बई जैसे बड़े महानगर में रिश्तों के यथार्थ को भी देखा जा सकता है जिसे लेखक ने अपनी लेखनी के माध्यम से बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार बचपन के प्रेम के रिश्ते से बंधे शादी के बँधन को इस शहर ने निगलने में भी परहेज नहीं किया जब पति अपनी पत्नी को छोड़कर किसी दूसरी औरत के पास रहने के लिए चला जाता है, वह भी तब जब वह उसके बच्चे की माँ बनने वाली होती है। पत्नी तीन साल तक उसका इंतज़ार करती है और अपने बच्चे को पालने के लिए नौकरी भी शुरू कर देती है। किन्तु एक दिन वह भी अपनी नई जिन्दगी की शुरूआत करने के लिए पीछे नहीं रहती और पति द्वारा दिया जाने वाला मासिक पँद्रह हज़ार भी ठुकराने में देर नहीं करती, उसके घर आकर कहती है,

> ठीक है...मैं भी यही सोचती हूँकि आपके बोझ को कम कर दूँ। लेकिन मेरी एक शर्त है...कुछ खास नहीं...तुम्हें बच्चे के नाम के पीछे से हसीजा हटाना होगा। तुम्हारा नाम मेरे बेटे के नाम के साथ नहीं

> लगेगा, इसके लिए मैं वकील से बनवाकर कागजात लाई हूँ। न ही बच्चे पर तुम्हारा कोई अधिकार होगा और न ही उसके नाम के पीछे हसीजा लगेगा। अगर साइन नहीं किए तो यह पँद्रह हज़ार रुपये हर महीने का खर्च तो आपको देना ही पड़ेगा। (समंदर और सफ़ेद गुलाब 72)

बाप भी इतना सफ़ेद खून का निकलता है वह झट से साइन कर देता है। किन्तु उसका बाप यह सब देखकर उदास हो जाता है और कहता है,

> ...वह दूसरे लड़के के साथ हैदराबाद चली गई और शादी कर ली थी। इसलिए कानूनी तौर पर वह पैसे तो ले ही नहीं सकती थी लेकिन इसे मूर्ख बना गई और जाते-जाते बाप से अंकल बना गई।...लड़की बुरी नहीं थी मैं उसे बचपन से जानता था। कच्ची उम्र के प्रेम को वह सचमुच बाय-बाय कहकर अलविदा हो गई। मुम्बई में समंदर का पानी है...लेकिन खारा है। जिसे यह लग जाता है, उसका खून सफेद होने लगता है। जो लोग यहाँ रहते हैं, उनके तो संस्कार हैं। वह ठीक हैं लेकिन जो लोग बाहर से आते हैं वे इसे पचा नहीं पाते। (समंदर और सफ़ेद गुलाब 73)

अपने बच्चों के फैसले के आगे माँ-बाप भी पत्थर की मूर्त बनकर सिर्फ रिश्तों को टूटते ही देख सकते है, ऐसा समाज का यथार्थ समय आ गया है। मुम्बई शहर में आए उस हर छोटे से बड़े कलाकार की स्थिति जो यहाँ नाम कमाने आया ओर यहाँ के सच का सामना करके उन्हीं लोगों के जैसा बन जाता है जो सिर्फ अपना उल्लू सीधा करते है और सिर्फ पैसा कमाने का सोचते हैं, चाहे वह सीरियल या फिल्म पूरी हो या न। ऐसा ही यथार्थ लेखक ने अलोचय उपन्यास में दर्शाया है। जब अकाश अपने किसी कलाकार दोस्त को कहता है,

> आप लोग तो कलाकार हैं। मैं तो आपको अक्सर टी.वी. पर देखता हूँ। वह दबी हुई जुबान में बोलता है, “अरे काहे के कलाकार..! हम लोग तो

> चले आते हैं कि चलो यार, जो यहाँ से मिलेगा उससे घर खर्च ही निकल आएगा।...मत पूछो इस इंडस्ट्री का हाल। जान जाओगे तो इस तरफ मुँह नहीं करोगे।...अब यहीं बताओ कि जो फिल्म हम कोग करने आए हैं, उस फिल्म का भविष्य ही क्या है? सब लोग मौज-मस्ती कर रहे हैं। यहाँ जितने भी लोग हैं, सबको पता है कि एक बंदा यहाँ पैसा लुटाने के लिए आया है। जब वह लुट-पिट जाएगा, अपने घर को चला जाएगा। उसके बाद 'तू कौन मैं कौन' वाली स्थिति पैदा हो जाएगी। अभी तो फिल्म की शुरूआत है। कुछ दिन तक देखो, तमाशा होगा यहाँ। सब लोग लड़ेंगे क्योंकि धीरे-धीरे आपके राज बाबू का बैंक अकाऊँट निल होने लगेगा। अरे, कुछ लोग तो हार्ट अटैक से मर जाते हैं...मेरे भाई।...यह मुम्बई है और समंदर के बीचो-बीच बसा हुआ शहर है, जिसमें पानी तो बहुत है लेकिन खारा है जिसे पीया नहीं जा सकता। इस फिल्म इंडस्ट्री को समझना भी उतना ही मुश्किल है, जितना इस विशाल समंदर को। इसे देखना अच्छा तो लगता है लेकिन इसे समझा नहीं जा सकता और न ही इसकी गहराई तक हम लोग पहुँच सकते हैं। (समंदर और सफ़ेद गुलाब 82)

इंडस्ट्री में आने वाले हर नए चेहरा के साथ यहीं होता कि वहाँ के लोग उसे ज्यादा देर वहाँ टिकने नहीं देते और किसी-न-किसी तरह उसे भगाने में कामयाब हो जाते, फिर चाहे वह कलाकार हो, प्रोड्यूसर या डॉयरेक्टर ही क्यों न हो। एक नए चेहरे को हटाने के लिए कैसे एक डॉयरेक्टर अपने स्वार्थ का यथार्थ दिखाता है, क्योंकि इस रोल के लिए उसने खुद अपने आपको देखा होता है। वह कहता है,

> आज थाने के इतने ही सीन होंगे बाकी के अगले शैड्यूल में होंगे।...अरे डॉक्टर साहब...आप नहीं जानते इस फिल्म इंडस्ट्री को। कलाकारों की डेट्स लेना बड़ा ही मुश्किल काम है।...यह मूँछ आपको सूट नहीं करती

> है इसे कटवा देना।...वैसे भी आपके चेहरे पर पुलिस इंस्पैक्टर वाला रौब नहीं है और आपकी लुक बड़ी ही इनोसेंट है और शरीर भी ढीला-ढाला। (62)

इससे यह साफ जाहिर हो जाता है कि किसी नए कलाकार के लिए अपने पाँव फिल्म इंडस्ट्री में जमाना बहुत ही मुश्किल काम है, क्योंकि लोग एक भी मौका नहीं छोड़ते उसको बाहर करने के लिए। 'बसरा की गलियां' उपन्यास में लेखक ने धर्म परिवर्तन की उलझनों, मज़बूरियों और ज़िन्दगी के यथार्थ को दिखाया है। नायक कैसे परिस्थितियों के जाल में उलझा है और उसे हिन्दु से मुस्लिम, मुस्लिम से इसाई बनना पड़ता है और कहता है कि,

> मैंने पहली बार इराक की धरती पर कदम रखा था, तब मैं एक हिन्दु था। जब इराक की धरती को छोड़ा तब मैं मुस्लमान था और जब दोबारा इराक की धरती पर कदम रखा तो मैं क्रिशचयन बन चुका था। (बसरा की गलियां 119)

आकाश इराक आता है तो अपने माता-पिता तथा अपनी ज़िन्दगी को सुधारने के लिए पैसा कमाने के लिए परन्तु जहाँ उसके साथ क्या कुछ होता है, ज़िन्दगी सुधारने की जगह बदल जाती है उसकी पहचान, नाम सब कुछ छिन जाता है।

> शादी के पहले मेरा नाम आकाश था और शादी के तुरन्त बाद बदल कर सलीम रख दिया गया।...मैं आज को कैसे भूल सकता हूँ ? आज ही मैं एक हिन्दु से मुस्लमान बन गया था। यही नहीं, मेरे अपने मुझसे सदा के लिए दूर हो गए थे। (बसरा की गलियां 14)

आकाश बुशरा को, इराक को कभी अपना नहीं पाया। और हालात उसे फिर अमरीका ले जाते हैं। वहाँ फिर उसका नाम तथा धर्म बदल दिया जाता है,

> स्मिथ नाम सुनकर अब मैं चौंकता नहीं। इसलिए मुझे इस नाम से कोई पुकारता तो मुझे कोई परेशानी नहीं होती। नाम का बदलना मेरी ज़िन्दगी का एक हिस्सा बन गया है। जहाँ भी जाता हूँ, एक नए नाम का लबादा मुझे औढ़ दिया जाता है। (बसरा की गलियां 112)

'खुली हुई खिड़की' के पात्र आस्था-अनास्था के मध्य झूल रहे हैं। अमिता की सास, पति गुरबाणी का पाठ करते रहते हैं। जपुजी साहब तो बीजी को कंठस्थ है। यही आस्थाएँ पात्रों को जीने की शक्ति देती हैं, "करे करावे आपे आप, मानस के कछु नाहिं हाथ।" (खुली हुई खिड़की 44) "एक ओंकार सतिनामु करता पुरुखु निरभउ निरवैर। अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि॥"(69) डॉ. अजय शर्मा ने पृष्ठ 64 एवं 72 पर ईश्वरीय संज्ञा की दार्शनिक व्याख्या सिख धर्म, भागवत सम्प्रदाय, शिव सम्प्रदाय, उपनिषद, गीता, इस्लाम आदि के सन्दर्भ में की है। कथा अरोड़ा परिवार से सम्बद्ध है। यहाँ कभी रामायण का भोग डाला जाता है, कभी हरिद्वार के मनसादेवी मन्दिर में धागे बाँधकर मन्नत माँगी जाती है। इतना सब होने पर भी पति की मृत्यु के बाद की पहली बरसी में अमिता द्वारा पंडितों को भोजन कराने से इन्कार करना और आश्रम में जाकर दान देना न केवल ईश्वरीय सत्ता पर अविश्वास एवं उससे जुड़े ढोंग पर प्रहार करता है अपितु उसका मानवीय वेदना के प्रति संवेदनात्मक रवैया भी उद्घाटित करता है। उपन्यास में अनेक संस्कार, शकुन-अपशकुन रीति-रिवाज मिलते हैं, किन्तु अनेक स्थलों पर पात्र इनका विरोध एवं अतिक्रमण करते बंद खिड़कियाँ खोल रहे हैं। संस्कार है कि जब भी घर से बाहर निकलो या बाहर से आओ तो बड़ों के चरण स्पर्श करते ही हैं, भले ही मन में इज्जत न हो। अमिता का जेठ भाई की बरसी को धूमधाम से मनाने की सलाह करने आता है तो गुस्से से भरी अमिता जाते समय उनके पाँव नहीं छूती। उसे शादी-विवाह की तरह बरसी पर लोगों को बुलाना, खिलाना मान्य नहीं। सुहागिनें कभी सफेद कपड़े नहीं पहनतीं और न ही किसी की शादी पर सफेद कपड़े पहनकर जाती हैं। पति की मृत्यु पर पत्नी सफेद दुपट्टा ओढ़ती है और अमिता जीवन भर सास द्वारा रंगदार दुपट्टे

के अनुरोध का इन्तज़ार ही करती रह जाती है। हरिद्वार के गंगा किनारे के मन्दिर में विधवाओं के सभी सुहाग चिन्ह चढ़ा दिये जाते हैं, किन्तु अमिता का मन कालान्तर में इस रीति का विरोध करता दिखाई देता है। मनसादेवी के मन्दिर में मनोकामना पूर्ति हेतु धागे बाँधे जाते हैं, लेकिन अमिता का बँधा धागा उसकी मनोकामनाओं की पूर्ति नहीं करता। बीजी की मृत्यु विषयक ज्योतिषियों की भविष्यवाणी गलत सिद्ध होती है। शराब पीने से पहले धरती पर उसका छिड़काव करते हैं। यानि अदृश्य शक्तियों से कहते हैं कि पीना अच्छी बात है तो इसे स्वीकार करें, बूरी बात है तो माफ कर दें, क्योंकि ऐसा करके उनको भी अपना भागी बना लिया जाता है। जैसे काला धँधा करने वाले सबके माथे पर हल्का-हल्का काला टीका लगा दिया करते हैं, यह सब व्यंग्यार्थ लिए हुए है।

लेखक अपने उपन्यास 'शहर पर लगी आँखें' में भी यथार्थ का बखूबी बयान करते हैं जब एक डिप्रेशन के मरीज़ के रूप में एक लड़की डॉक्टर के पास जाती है। वह डिप्रेशन का शिकार इस वजह से हो गई है क्योंकि जिस कम्पनी में वह नौकरी करती थी वहाँ उसकी सहेली जो कि उसी की सिफ़ारिश से वहाँ लगी होती है, बॉस उसको तरक्की दे देता है और वह पीछे रह जाती है। डॉक्टर बात निकलवाने के ढंग से उससे पूछता है, "कोई खास वजह तो होगी उस लड़की को तरक्की मिलने क। अगर उसे तरक्की मिली है तो जाहिर है, वह तुमसे ज्यादा होशियार होगी और कम्पनी को अधिक बिजनेस देती होगी।" (शहर पर लगी आँखें 9) डॉक्टर की बात सुनकर जैसे उसके मुँह में जुबान वापिस आ जाती है है और कहती है,

> होशियार-होशियूर कोई नहीं। बस उसने बॉस को खुश करने के लिए कई तरह के समझौते कर लिए हैं, जो मैं नहीं कर सकी। बस धीरे-धीरे मुझे साइड पर कर दिया गया और उसे प्रमोट कर दिया गया। (शहर पर लगी आँखें 10)

यहाँ लेखक ने आज के समय कार्यस्थलों में हो रहे यथार्थ को बयान किया है कि किस प्रकार मालिक अपनी इच्छापूर्ति के लिए लड़के लड़कियों का इस्तेमाल करते हैं। जो ऐसे हालातों का समझौता कर लेता है वही आगे बढ़ पाता है,

> असल में यह डिप्रेशन नहीं है डॉक्टर साहब! यह रेस में पिछड़ जाने का सदमा है। जिस पोस्ट की मैं हकदार थी, वह किसी और को मिल गई है। इतने सालों से मैं अच्छा काम कर रही थी और हमेशा सोचती थी कि किसी न किसी दिन उस सीट की दावेदारी मेरी होगी लेकिन...लेकिन वह हाथ से कहीं दूर निकल गई है। (शहर पर लगी आँखें 10)

डॉक्टर अपनी ज़िन्दगी के कुछ तजुरबों से उसको यथार्थ का परिचय करवाता है कि इस दुनिया में आजकल यही प्रतिस्पर्धा की होड़ हर जगह लगी हुई है। हर ताकतवर और चापलूसी करने वाले लोग सीधे-साधे और गुणवान लोगों को इस स्पर्धा से बाहर करने में लगे हुए हैं। एक ट्रांसलेटर को डॉ. की जगह कार्य करते देख ही डॉक्टर को अपनी कुर्सी का खतरा महसूस होने लगता है और वह उससे कहती है,

> नहीं-नहीं, मेरी तो जुबान सड़ जाए अगर मैं ऐसा सोचूँ? इतना बड़ा डॉक्टर और मैं उससे मौपिग करवाऊँगी। चपरासी है न हमारे अस्पताल में मौपिग के लिए। मैं सोच रही थी कि ज़्यादातर एशियन तो पैक हो रहे हैं। रही बात भाषा की, तो उनकी काफी भाषा मैं भी समझने लगी हूँ, इसलिए तुम अपने देश लौट जाओ। (शहर पर लगी आँखें 11)

यह सुनकर किसी के भी होश उड़ सकते हैं जब उसे अपनी नौकरी खोने का कारण भी पता न हो। डॉक्टर के साथ भी वैसा ही होता है परन्तु अपने आप को और अपने स्वाभिमान को कायम रखते हुए वह कहता है, “ठीक है, कोई प्रॉब्लम नहीं, अगर आपका काम चल सकता है, तो मेरा भी चल सकता है।” (शहर पर लगी आँखें 14) डॉक्टर को थोड़ा परेशान देखकर उसका दोस्त उससे कहता है,

> अरे भाई, यह तो दुनिया का दस्तूर है कि हर बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। देखा नहीं हमारे इराक का क्या हाल है। जिस तरफ नज़र घुमाकर देखो, विदेशी कम्पनियाँ काम करती नज़र आ रही हैं। रही बात तेल की तो वह तेल ही हमारी जान का दुश्मन बन गया है। पूरी दुनिया की नज़रें इराक पर टिकी हुई हैं। तरह-तरह के जाल बिछाने में बड़ी ताकतें कभी नहीं चूकती। खून-पसीना हम लोग बहाएँगे, उस पर लगे फल कोई और खाएगा। (शहर पर लगी आँखें 15)

यहाँ लेखक यह बताने का प्रयास कर रहे हैं कि यह तो जीवन की सचाई है परन्तु यथार्थ यह भी है कि अगर एक रास्ता बंद होता है तो कई और नए रास्ते भी हमारे सामने खुल जाते है। यहाँ हमें डॉक्टर उस मरीज़ लड़की को नसीहत देता हुआ दिखाई देता है कि यह सब तो एक ज़िन्दगी का हिस्सा है और ज़िन्दगी ऐसे हालातों से गुज़रती रहती है और गुजरेगी और आगे मौके भी देती रहेगी परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि अपने आप को किसी के कहने पर पीछे कर लेना चाहिए। यही सोच कर वह लड़की कहती है,

> डॉक्टर साहब, आप ठीक कहते हैं, किसी दूसरी कम्पनी में जाने के बारे में तो मैंने कभी सोचा ही नही।...उसकी बात का जवाब देते हुए डॉ. कहता है, 'हमें जरूर सोचना चाहिए। यह प्रतिस्पर्धा का दौर है। इससे घबराना नहीं चाहिए। फिर वैसे भी 'भजदेयां नूँ राह इक्को जेहा।' (शहर पर लगी आँखें 11)

लेखक ने अपनी कृति 'शहर पर लगी आँखें' में आजकल डॉक्टरी पेशे में हो रहे यथार्थ को दर्शाया है कि किस प्रकार एक डॉक्टर अपनी कमाई करने के लिए बिना किसी इलाज की जरूरत के मरीज़ों से पैसे ऐंठते है और यहाँ तक कि अपनों को भी नहीं छोड़ते अगर किसी के मन में यह बात आ भी जाए कि यह कार्य करना मानवीयता के परे है तो उसको भी दबाने की कोशिश की जाती है और कमीशन देकर मुँह बंद कर

दिया जाता है। बिल्कुल वैसा ही डॉक्टर पात्र के साथ होता है जब वह अपनी ही बहन का बिना किसी बीमारी से किए गये ऑपरेशन का कमीशन किसी दूसरे डॉक्टर से लेता है और वह कहता है,

> अरे डॉक्टर, दिल छोटा मत करो। घोड़ा घास से दोस्ती करेगा तो खाएगा क्या? मेरी एक बात मानो, जब रक्षाबँधन आएगा, अपनी बहन को इस बार कुछ पैसे ज्यादा दे देना। तुम्हारा उस पर और एहसान हो जाएगा और तुम्हारे दिल पर पड़ा बोझ भी उतर जाएगा। (शहर पर लगी आँखें 54)

यहाँ तो मानवीयता की सभी हद्दों से पार के यथार्थ का विवरण लेखक के द्वारा किया गया है कि किस प्रकार सभी रिश्ते-नातों से ऊपर उठकर लोग स्वार्थ में डूबे हुए हैं। ऐसा ही एक रिश्तों का यथार्थ लेखक ने अपने उपन्यास 'भगवा' में भी दर्शाया है। जब एक माँ ही अपने दो बेटों में फर्क समझकर उनमें जायदाद का बँटवारा करे किन्तु वह भी बिल्कुल एक का पक्ष रखती हुए वह अपने दूसरे बेटे से कहती है,

> तुम्हारी पत्नी सरकारी नौकरी करती है और तुम अपनी क्लीनिक चलाते हो, तुम्हारा गुजारा तो हो जाएगा। तुम छोटे की तरफ देखो उसका तो प्राईवेट काम है, कभी काम कम तो कभी ज्यादा। मैं चाहती हूँ कि मकान तुम ही बनाओ ताकि उस पर किसी तरह का बोझ न पड़े। (भगवा 72)

माँ की बात सुनकर बड़ा बेटा मकान की कीमत की बात करता है तो उस वक्त भी माँ-बेटे के रिश्तों को पानी के रिश्ते होते हम देखते हैं, "मकान की कीमत वही रहेगी। मेरे पास जो पैसा है उसमें से मैं अपनी मर्जी से तुम्हें दूँगी क्योंकि उस पर मेरा हक है।" (भगवा 72) अपनी माँ की बात सुनकर बेटा दंग रह जाता है और कहता है,

> माँ मैं तुमसे कोई बहस नहीं करना चाहता, तुम मेरी माँ हो, तुमने मुझे जन्म दिया है, सब कुछ तुम्हारा है। तुम अगर मेरी चमड़ी के जूते

> बनवाकर भी पहनना चाहो तो मैं उफ तक नहीं करूँगा। माँ के दूध का कर्ज तो आदमी मर कर भी नहीं चुका सकता। (भगवा 72)

एक तरफ बड़े बेटे की इस सोच को दर्शाया गया है वहीं दूसरी ओर माँ जिस बेटे का पक्ष ले रही थी जब उसे इस बात का पता चला कि माँ ऐसे ही कम पैसों में किसी एक को मकान देना चाहती है तो वह कहता है, "इतने सालों में प्रापर्टी को आग लग गई है, भाव आसमान को छूने लगे हैं और तुम कह रहे हो कि कीमत उतनी ही। यह तो कोई इंसाफ न हुआ।"(भगवा 73) परन्तु जैसे ही उसे पता चलता है कि माँ उसी को मकान देना चाहती है बड़े भाई को नहीं, यह सुनकर उसकी आँखों और जुबान पर जो स्वाल थे अपनी माँ को पूछने के लिए वह सब पता नहीं कहाँ पँख लगाकर उड़ जाते हैं और वह कहता है, "जो फैसला आप लोगों ने किया है मुझे मँजूर है।" (भगवा 73) फैसला होने के बाद किसी न किसी तरह बड़ा बेटा अपना मकान बना लेता है और माँ भी कभी-कभी मिलने उनको आ जाती है लेकिन जब भी आती कुछ-न-कुछ सुना कर ही जाती। एक बार तो बात इतनी बड़ी कि बड़ी बहु को भी बर्दाशत नहीं हो पाई क्योंकि फिर माँ ने अपने छोटे बेटे के लिए बर्तनों को लेकर कुछ कहा था और अपने ही पति को कहती है,

> जब भी माँ आती है इसी तरह जली-कटी सुनाकर चली जाती है। खुद तो चली जाती है और कई दिन उस बात को भूलाने में लगते हैं। अभी वह बात भूलती भी नहीं फिर से कोई नया शगूफा लेकर आ जाती है। याद है न अभी स घर में आए हुए दो दिन ही हुए थे तो माँ सुबह ही धमक पड़ी थी। आते ही कहने लगी थी, 'घर की कुछ थालियाँ और कुछ कासे के बर्तन तुम्हारे घर में आ गए हैं।' उस वक्त तो आप ने भी कहा था कि माँ अब हमारे-तुम्हारे करने लगी है अभी तो चार दिन भी घर छोड़े नहीं हुए। याद है न तब तक तो सामान पूरी तरह से खोल कर टिकाया भी नहीं था लेकिन माँ सब कुछ खुलवाकर वह बर्तन अपने

> साथ ले गई थी। मैंने तो उस वक्त भी खून के घूँट पी लिए थे लेकिन उफ तक नहीं की थी। (85)

जब रिश्तों के यथार्थ को देखने का वक्त आता है तब दुनिया आँखों के सामने खुलकर सामने आती है, नहीं आदमी पता नहीं किस मेरी-मेरी में हर वक्त लगा रहता है, फिर बात चाहे बहुत बड़ी हो या फिर य मामूली-सी बर्तनों की। किन्तु आज का यथार्थ समय तो यही बताता है कि सब रिश्ते-नाते, सगे-सम्बन्धी अपना रंग बदलने में देर नहीं करते बस समय ही अपना है। जब समय अच्छा हो तो सब अपना नहीं तो फिर किसी का नहीं। यहीं आज का यथार्थ है।

अनीता देसाई अपने उपन्यास voices in the city में पात्र मनीषा के माध्यम से एक मध्यम वर्गीय परिवार के माता-पिता की कामना और बेटी की शादी के लिए अरमानों को बयान करती है। परन्तु जब वहीं देखे हुए सपने औलाद को ज़िन्दगी के यथार्थ का सामना कराते हैं तब सब कुछ बदल जाता है। मनीषा शादी के बाद पूर्णतः बदल जाती है वह एक संवेदनशील, शाँत, समझदार, हर रोज डॉयरी लिखने वाली औरत बन जाती है जिससे वह खुद नफ़रत करती है। वह न तो अपने पति के साथ और न ही उसके परिवार के सदस्यों के साथ खुश है। मनीषा का अनमेल विवाह और असंवेदनशील पति के साथ संयुक्त परिवार में रहना उसको अकेलेपन, निर्जलीकरण और तनाव की तरफ धकेलता है। उसका जीवन,

> My duties of serving fresh chapattis to the uncles as they eat, of listening to my mother-in-law as she tells me the remarkably many ways of cooking fish, of being Jiban's wife. (voices in the city 111)

निरोद को भी पुरुष और महिला के सम्बन्ध में कोई भरोसा नहीं है। वह अपनी माँ से नफ़रत करता है जिसका किसी मेजर चड्डा से सम्बन्ध है। इसलिए वह जीत और सरला के बीच हो रहे झगड़े को देखने के लिए रुक जाता है। यह जोड़ा उच्च श्रेणी से सम्बन्धरखता है। उच्च श्रेणी का रुतबा होने के कारण दोनों में आपसी प्रेम न रहते हुए

भी साथ रहते हैं। जीत अपनी पत्नी के कई सम्बन्धों से अवगत है लेकिन फिर भी एक शब्द भी नहीं बोलता। सरला अपने ससुराल जाकर न रहना चाहती है और न ही उनसे मिलना चाहती है। निरोद इस रिश्ते का विरोध करता है और कहता है,

> Marriage, bodies, touch and torture…He shuddered and, walking swiftly, was afraid of the dark of Calcutta. All that was Jit's and Sarla's, he decided, and indeed, all that had to do with marriage, was destructive, negative, decadent. (voices in the city 35)

इस प्रकार तीनों लेखकों के कथा-साहित्य में पात्र यथार्थ एवं आत्म-मूल्याँकन के साथ सामान्य गतिविधियाँ करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

प्रेम और समर्पण

अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों में नारी के हर रूप को दर्शाया है चाहे वह माता, बहन, पत्नी कोई भी हो। भारतीय स्त्रियों में जो संवेदनशीलता, प्रेम और लगाव होता है अपने परिवार को लेकर वह सब देसाई के उपन्यासों में परिलक्षित होता है। उनकी कल्पना स्पष्ट रूप से अलग दायरे में है। देसाई को राजनीतिक-सामाजिक वास्तविकताओं के बजाय मन के आंतरिक परिदृश्य में अधिक रूचि थी। इसीकारण इनकी महिला पात्र स्वतंत्र पहचान की खोज करते हैं और स्वयं को इस समाज में मजबूत ढंग से सामने लाते हैं। देसाई अपने पात्रों को एक मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं क्योंकि वह पात्रों की मनःस्थिति को समझकर उनको दर्शाती हैं। देसाई ने अपने उपन्यास cry, the peacock में पत्नी के प्रेम समर्पण को माया के माध्यम से दिखाया है। माया गौत्म से बहुत प्रेम करती है और उसको गौतम के साथ, समझने और प्रेम की आवश्यकता थी परन्तु उनके शादीशुदा जीवन में इसकी कमी थी। हम उपन्यास में बार-बार यही देखते हैं कि माया अपने पति की तरफ प्रेम और समर्थन के लिए मुड़ रही है लेकिन इसका कोई फायदा नहीं होता क्योंकि उन दोनों की सोच, पसंद और नपसंद अलग अलग है,

> I tried to explain this to Gautama, stammering with anxiety for now, when his companionship was a necessity. I required his closest understanding. How was I to gain it? We did not even agree on which points, in what grounds this closeness of mind was necessary. 'Yes, yes', he said, already thinking of something else, having shrugged my words off as superfluous, trivial and there was no way I could make him believe that this, night filled with these several scents, their effects on me, on us, were all important, the very core of the night, of our moods tonight. (Cry, the Peacock 19-20)

देसाई अपने दूसरे उपन्यास voices in the city में मनीषा पात्र के माध्यम से एक सामान्य परिवार के यथार्थ को बयान करती हैं कि कैसे माता-पिता के लिए अपनी बेटी की शादी को लेकर सोच विचार रहते हैं। मनीषा जो कि बड़ी बेटी है वह एक अनमेल शादी का शिकार है। जीवन और मनीषा के बीच कुछ भी सामान्य नहीं था वह विवाहित थे क्योंकि दोनों सामान्य माध्यम वर्ग कांग्रेस परिवार से थे। उसके पिता ने सोचा था कि,

> Monisha ought not to be encouraged in her morbid inclinations and that it would be a good thing for her to be settled into such a solid, unimaginative family as that, just sufficient educated to accept her with tolerance. (voices in the city 199)

अमला, मनीषा की छोटी बहन भी कलकता शहर के महौल को देखकर हैरान थी। उसे वहाँ एक अधेड़ आयु के पुरुष धर्म के साथ पहली नज़र का प्रेम हो जाता है और वह अपने आप में बदलाव सा महसूस करती है,

> chivalrous, tender, subtle and prophetic…..She felt herself being torn, torn with excruciating slowness and without

> anesthesia, from the Amla of a day, an afternoon ago. (voices in the city 186)

इस रिश्ते को मनीषा, निरोद और चाची लीला सहमती नहीं देते है। परन्तु अमला किसी की बात मानने को तैयार नहीं होती क्योंकि धर्म और अमला एक दूसरे से प्रभावित है,

> What the subconscious does to an impressionable creature, how much more power it has on them than sun and circumstances put together. (Voices in the city 223)

देसाई के उपन्यास Clear Light of Day में चार भाई बहनों के बीच के यथार्थ सम्बन्धों को दिखाया गया है कि किस प्रकार पिता की मृत्यु के बाद एक बहन अपने भाई बहनों का लालन-पालन करती है और उनको माता-पिता की कमी महसूस नहीं होने देती। देसाई अपने उपन्यासों में भारतीय सभ्यता और परम्पराओं को अपने पात्रों के माध्यम से दर्शाती हैं। लेकिन इतना परिवार का मोह करने के बाद भी बड़ा भाई जिम्मेदारियों को सम्भालने की बजाएँ राजा तारा और परिवार को छोड़कर अलग होकर किसी दूसरे शहर में रहने के लिए चला जाता है,

> Her love for Raja has too much of a battering, she had felt herself so humiliated by his going away and leaving her, by his reversal of role from brother to landlord, that it had never recovered and become the tall shining thing it had been once. (Clear Light of Day 160)

वह अपने अतीत के बारे में सोचती है कि सब जो रिश्ते थे एक मच्छर की भाँति उन्होंने बस उसका खून ही चूसा और उसे पीड़ित किया। हालाँकि उपन्यास एक सकारात्मकता के दृष्टिकोण को दिखाता है जिसमें बिम अपने दूसरों सम्बन्धों में अधिक सुख ढूँढती है लेकिन वहीं वह अपने आप में नि:स्वार्थता का भाव और मानव अलगाव से मुक्ति भी पाती है,

> There could be no love more deep and full and wide than this one...No other love had started so far back in time…They were really all parts of her, inseparable, so many aspects of her as her she was of them. (Clear Light of Day 165)

अनीता देसाई के Fasting Feasting उपन्यास में मातृत्व के यथार्थ का एक अलग ही तरह का रूप दिखाई पड़ता है। ज्यादातर हम देखते हैं कि भारतीय परिवारों में एक माँ अपने सब बच्चों की अच्छे से देखभाल करती है। परन्तु कई परिवार ऐसे भी हैं जिनके घर में बेटा नहीं है तो वहाँ बेटियों को कोसा जाता है अच्छा खाने-पीने के लिए नहीं दिया जाता और अगर बाद में समय के चलते घर पर बेटा आ जाता है तो बेटियों को उसके तुल्य कम अहमियत दी जाती है। बेटियों को उसी की देखरेख के लिए छोड़ा जाता है। ऐसे ही अनीता देसाई के उपन्यास Fasting Feasting में दिखाया गया है। उमा की माँ अपनी दो बेटियों के मुकाबले अपने बेटे अरुण को ज्यादा अहमियत देती है। देसाई माँ और बेटी के रिश्ते को कुछ भारतीय पारम्परिक ढ़ंग से इस तरह बयान करती है,

> it is because...his thoughts were one...there was no point in appealing to the other parent for a different verdict, none was expected, or given. (Fasting Feasting 14)

किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि मानव मन की तृष्णा है कि कोई उसके द्वारा किए गये कार्य की सराहना करे चाहे वह घर में ही किया गया कोई छोटा-सा कार्य ही क्यों न हो। ऐसे ही उमा घर में सभी अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हुए पूरा घर सम्भालती है परन्तु फिर भी कोई सराहना नहीं मिल पाती। उमा और उसकी बहन अरुणा को अपने माता-पिता से प्रेम पाने में असमर्थ रहती हैं। उमा और अरुणा की माँ अपनी जिम्मेदारी अपनी बेटियों के ऊपर थोपकर खुद अपनी सहेलियों के साथ पार्टी में व्यस्थ रहती है,

> she swatted at her daughters as if they were a pair of troublesome flies…her daughters trailing after her, and by the time she arrived at the varanda, her manner had become the familiar one of guarded restraint, censure and a tried decorum. (Fasting Feasting 7)

उमा घर परिवार की जिम्मेदारियों के कारण अपना बचपन तक खो बैठती है। अपने छोटे भाई के लिए एक surrogate mother की तरह कार्य करती है। एक माँ अपनी बेटी के लिए खजाना होती है और बेटी के लिए माँ एक बहुत बड़ा सहारा होती है। उमा की माँ जिस ढंग से अपनी बेटी से व्यवहार करती है वह चाहती है कि वह सब कार्य अच्छे से सीख जाएँ और अपने आप में बदलाव लाये,

> when Muma came home, weak, exhausted and short tempered she tries to teach Uma the correct way of folding nappies, of preparing watered milk, of rocking the screaming infant to sleep when he was covered with prickly heat as with a burn. (Fasting Feasting 8)

उमा की माँ एक परम्परावादी माँ के रूप में सामने आती है जहाँ एक लड़की को सब घर के कार्य आने आवश्यक हैं और वह मानती है कि लड़कियों को हमेशा यहीं घरेलू कार्य ही तो करने हैं जब कि उसकी माँ एक वकील भी रह चुकी है फिर भी वह ऐसे विचार रखती है और कहती है, “we are not sending you back to school, Uma. You are staying at home to help with Arun.” (Fasting Feasting 8) आज के समय में ऐसा माना जाता है कि एक माँ अपनी बेटी की सबसे ज्यादा अच्छा चाहने वाली औरत होती है परन्तु देसाई के इस उपन्यास में एक परम्परावादी या रूढ़िवादी माँ कैसे अपनी ही बेटियों की जिन्दगी में आगे बढ़ने के लिए रोक लगा देती है। एक दिन उमा अपने घर से बाहर जाती है और अपने स्कूल की एक अध्यापका से मिलती है। घर आकर उमा दोबारा से स्कूल में भर्ती होने को कहती है इस पर उसकी माँ कहती है,

> See what these nuns do…what idea they fill in the girls head! I always said don't send them to a convent school. Keep them at home. I said- but who listened? And now-I. (Fasting Feasting 29)

उमा की माँ जैसे कि सब रूढ़िवादी माताएँ सोचती हैं कि एक लड़की की ज़िन्दगी में शादी ही सबसे ज्यादा जरूरी है न कि पढ़ाई। परन्तु यह सब विचार उमा का दम घोटते हैं, "we are trying to arrange a marriage for you. Not now, she added...and learns to run the house. (Fasting Feasting 22) उमा को हर तरह से सिखाया जाता है कि कैसे लड़के वालों के सामने पेश आना है क्या करना है क्या नहीं। इस उपन्यास में हम देखते हैं कि माता-पिता के लिए लड़की की पढ़ाई से ज्यादा अहमियत उसकी शादी को as a career दी जाती है। अगर देखा जाएँ कि उमा अपने माता-पिता के लिए एक बोझ है तो उसकी शादी के बाद उसको दोबारा अपने घर लाया जाता है और इस पर उसकी माँ सोचती है कि हमरी बेटी की किस्मत ही खराब है जो उसे अच्छी न दिखने के कारण अच्छा पति और घर नहीं मिला। उमा सोचती है,

> How muma had always envied Lila aunty for having a daughter like Anamika, a model of perfection likes Anamika. No that was not for her she sighed. (Fasting Feasting 77)

उमा अपने माता-पिता के प्रेम के लिए हमेशा तरसती है। लेकिन उसके माता-पिता एक परम्परावादी रूढ़िवादी सोच होने के नाते यही सब सोचते है कि हमारी बेटी के लिए यही ठीक है। देसाई के Fire on the Mountain उपन्यास में नंदा कौल पात्र जो कि एक दादी के रूप में सामने आती है। वह अपने पारिवारिक प्रेम की वजह से सारी जिम्मेदारियाँ निभाती है परन्तु जब उसे कोई सहारा नहीं दिखाई देता तो वह उसी प्रेम से छुटकारा पाना चाहती है और अकेले रहने के लिए कसौली चली आती है। किन्तु मातृ प्रेम से अपने आप को छुड़वा नहीं पाती। लेखिका नंदा के बारे में कहती है,

> She had suffered through the nimiety, the disorder, the fluctuating and unpredictable excess. She had been so glad when it was over. She had been glad to leave it all behind, in the plains, like a great, heavy, difficult book that she had read through and was not required to read again. (Fire on the Mountain 32)

नंदा देखभाल और करुणा की दुनिया से सन्यास लेकर कसौली रहने के लिए आ जाती है क्योंकि इतना करने के बाद भी वह अलगाव की पीड़ा से ग्रस्त रहती है। अब वह अपनी हर तरह की परेशानी और जिम्मेदारी को भुलाकर जीना चाहती है। नंदा अपनी इस एकाँत की ज़िन्दगी को बहुत ही अच्छे ढंग से जी रही होती है तभी अचानक एक दिन उसकी बड़ी पोती राका उसके पास आती है क्योंकि उसकी माँ बीमार है और उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है। नंदा यह सब सुनकर एक मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व में फँस जाती है और सोचती है,

> It was against the old lady's policy to question her but it annoyed her that she should once again be drawn into a position where it was necessary for her to take an interest in another's activities and be responsible for their effect and outcome. When would she be done? (Fire on the Mountain 50)

नंदा को शुरू में राका के साथ बात करना पसंद नहीं आता क्योंकि वह अब अकेले रहना चाहती थी परन्तु वह अपने ममत्व के कारण अपने आप को रोक नहीं पाती और उससे बातचीत शुरू करती है और कहती है,

> Raka, you really *are* a great-grandchild of mine, aren't you? You are more like me than *any* of my children or grandchildren. You are *exactly* like me, Raka. (Fire on the Mountain 71)

वह राका और अपने बीच एक सम्बन्ध सा महसूस करती है और उसे लगता है कि राका को देखभाल और प्यार की जरूरत है और ऐसे में अगर वह उससे इंकार करती है तो वह उसके लिए ठीक नहीं होता। वह उसे खुश करने के लिए परियों की कहानियाँ सुनाती है किन्तु विडम्बना तब होती है जब उसे खुश यह सब एक झूठ सा दिखाई पड़ता है। हालांकि नंदा एक पत्नी और माँ के रूप में अपने आप को बचाने का प्रयास करती है लेकिन अपने अंदर छिपे ममत्व को वह नहीं छिपा पाती और न ही राका और उसकी माँ तारा को अपने से दूर कर पाती है क्योंकि उससे यह महसूस होता है कि जो जिम्मेदारियाँ उसने अपनी ज़िन्दगी में निभाई थी सब पारिवारिक सदस्यों की अवहेलना सहते हुए, वहीं सब आज तारा सहन कर रही है क्योंकि उसकी जिम्मेदारियाँ निभाने के बावजूद उसका पति उसके साथ वही व्यवहार करता है, जो एक समय नंदा के साथ होता था।

वहीं अज्ञेय अपने उपन्यास शेखर: एक जीवनी में शेखर के मन में उठ रहे शारदा के प्रेम को बयान करते हैं। शारदा के प्रति शेखर का सखाभाव उसके वय के अनुरूप अत्यंत सहज एवं सामान्य है। शारदा के केशों से उठने वाले सौरभ के प्रति शेखर की आसक्ति कितनी सहज एवं रसमय है,

> शारदा के केशों का सौरभ उसके शरीर को एक स्नेह भरे स्पर्श से छूता जा रहा है, किन्तु जहाँ वह छूता है, शरीर झुलस जाता है। और वह उन सुगंधित केशों के सौरभ को पी रहा है, उसको जिसमें नीम के बौर की-सी दबी-सी सुगंध आ रही है...और उसकी अंतरात्मा जल उठती है...और ऐसा जलता हुआ भी वह एक अकथ्य आनन्द से भरा...। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 83)

शेखर शारदा के प्रति जितना समर्पण करता है तथा उसके प्रति अचेतन रूप से शारीरिक उत्तेजना अनुभव करता है, वे सर्वथा सहज तथा निर्दोष हैं। जो संयम प्रतीत होता है, वह सहज एवं अंतःस्थित है। किसी भी प्रकार से आरोपित या कुंठित प्रतीत

नहीं होता। वहीं दूसरी ओर अजय शर्मा के उपन्यास 'बसरा की गलियां' में प्रेम तत्व हर तरह से सामने आया है फिर चाहे देशप्रेम, देशभक्ति, परिवार प्रेम, पति प्रेम, धर्म प्रेम, संस्कृति प्रेम ही क्यों न हो। आकाश को बार-बार माँ का स्नेहिल व्यक्तित्व याद आता है। बेटे के बीमार होने पर जिसके हाथ थर्मामीटर का काम करते थे। बेटे के सिर में ज़रा-सा दर्द होने पर ही बेचैन हो जाती थी। पूरे घर की आर्थिक समस्याएँ अपने जेवर गिरवी रखकर ही सुलझाती थी। वह स्वदेश लौटे आकाश के मित्र से आकाश के जीवन के प्रत्येक पहलू कुरेद-कुरेद कर पूछती रहती है। आकाश के लौट आपने पर उसके विवाह की चिन्ता करती है। यश की पत्नी भावुक है। उसे पैसों से नहीं पति से प्रेम है। इसलिए वह बार-बार उसे लौट आने का आग्रह करती है, "चले आओ। रूखी-सूखी खाकर गुज़ारा कर लेंगे।" (बसरा की गलियां 40) आकाश भले ही बुशरा की माँ को क्रूर और पत्थर दिल औरत मान ले, लेकिन फौजियों द्वारा दामाद को ले जाने पर वह भभक उठती है और एक अरसे के बाद अमेरिकी फौजी के रूप में उसे देखकर भी उसकी ज़िन्दगी के लिए दुआ करती है। एक वात्सल्य बुशरा की माँ का है कि वह अपनी बेटी को सुहागिन देखना चाहती है। उसे उसके परिवार के साथ देखना चाहती है, दूसरा आकाश की माँ है, कि वह स्वदेश लौटे बेटे के दोस्त से उसकी हर बात कुरेद-कुरेद कर पूछती है। बेटे के लौट आने पर उसका जीवन फिर से शुरू करवाना चाहती है।

अजय शर्मा 'काल-कथा' उपन्यास में वजीर चंद और आशा के माध्यम से समाज में एक अलग ढंग से चल रहे प्रेम को दर्शाते हैं। जिसे समाज में स्वीकृत नहीं किया जाता परन्तु फिर भी हर जगह पाया जाता है। ऐसे ही आशा पूरी ज़िन्दगी प्रेम पाने के लिए हमेशा त्तपर रहती है लेकिन वहीं प्रेम में पूर्णतः देखते-देखते अकेली रह जाती है। वह बहुत समय के बाद वजीर चंद को जब मिलने आती है तो वजीरचंद उसके पहरावे को देखकर आचँबित हो जाता है और कहता है,

> तुम और शाल में? शाल से तो तुम्हें सख्त नफरत थी। तुम तो हमेशा कहती थी कि शाल मुझे अच्छा नहीं लगता। इससे शरीर के अंग इस तरह छुप जाते हैं कि मानो वे शरीर में हों ही न।...और उन अंगों को छुपाने से सामने वाला व्यक्ति आकर्षित नहीं हो पाता। यह तो शास्त्रों में भी लिखा है कि जिस नारी के वक्षों में उभार न हो, वह नारी कभी सुंदर हो ही नहीं सकती। (काल-कथा 76)

इसके जवाब में वह आह भरकर कहती है,

> मैं तुम्हारी बातों से सहमत हूँ, लेकिन अफसोस इसी बात का है कि जिन्हें मैं इतना सम्भाल कर रखती रही, मेरी उँगलियों से फिसल-फिसल गया है। शायद यही कारण है कि मैं अपना घर भी न बसा सकी। तुम होते तो शायद... (काल-कथा 77)

यह कहते वह रोने लगी। इससे यह पता चलता है कि औरत को प्रेम से ही जीता जा सकता है परन्तु यहीं प्रेम जब उससे बदले में नहीं मिलता तो वह टूटकर बिखर जाती है। आशा के माध्यम से ही यह पता चला है कि एक तलाकशुदा औरत की ज़िन्दगी में प्रेम की क्या व्याख्या रहती है। आशा वजीरचंद से कहती है,

> वजीर चंद जी, विश्वास कीजिए, किसी भी तलाकशुदा औरत को देखने के बाद जो पहला भाव मर्द के मन में पैदा होता है, वह दम्भ है। दम्भ में भी स्वार्थ। उसी स्वार्थ में वह मछली फँसाने के लिए काँटा फेंकता है। अगर मछली उसमें फँस गई तो ठीक है, अगर नहीं फँसी, तो स्वार्थ को ठेस पहुँचते देर नहीं लगती। अगर स्वार्थ को ठेस पहुँच जाए, कटुता घुलनी शुरू हो जाती है, जो धीरे-धीरे जहर बनने लगती है। उसी जहर में पलती है तलाकशुदा औरत की जिन्दगी। (काल-कथा 77)

इसी के माध्यम से लेखक अजय शर्मा ने एक पत्नी और प्रेमिका के प्रेम को भी व्याख्यित किया है। जहाँ वजीर चंद अपनी प्रेमिका नहीं प्रेमिकाओं में पूरी जिन्दगी व्यस्त रहता

है वहीं उसकी पत्नी एक भारतीय नारी की तरह अपनी जिम्मेदारियों से कभी पीछे नहीं हटती। जब वजीर चंद डॉक्टर पात्र के माध्यम से अपनी कामपूर्ति करने के लिए दवाईयों की माँग करता है और उससे यह भी पता है कि यह इस उमर में उसकी सेहत के लिए हानिकारक है, जैसे कि डॉक्टर उसे कहता भी है लेकिन वह नहीं मानता और उसे खा लेता है जिसका दुष्परिणाम तो यह निकलता है कि उस समय उसकी प्रेमिका भी उसे दुत्कार देती है और घर में पत्नी पर अपनी हवस निकालता है। लेकिन एक भारतीय पत्नी अपने पति को हर हालत में माफ ही कर देती है वैसे ही जैसे वजीर चंद की पत्नी करती है परन्तु उस दिन वह चुप नहीं रहती है और डॉक्टर के सामने ही कहती है,

> आज तक मैंने जो भी किया, अपने घर को बचाने के लिए किया। मैं भी बगावत कर सकती थी। घर से निकलती थी तो लोग मेरी तरफ भी देखते थे। चलो खुलकर न सही, लेकिन छुप-छुपाकर तो मिल ही सकती थी। मुझे लगता था कि समाज इस बात की इजाजत नहीं देता। सतयुग से लेकर आज तक औरत को एक गहने के रूप में ही देखा जाता है। कभी उसकी शर्म को गहने की उपमा दी जाती है, तो कभी कौमार्य को। खैर, जो भी हो, अगर सचमुच औरत एक गहना है, तो उसे बचाकर रखना ही पुरुष का कर्तव्य है। हम चाहे जितनी मर्जी आज़ादी की बातें कर लें, परन्तु यह बात कहीं न कहीं हमारे अवचेतन में पड़ी है कि औरत पुरुष के बिना अधूरी है। चलिए, उसको अधूरी न भी मानें और यह सोचें कि औरत ने कई मुकाम हासिल कर लिए हैं, जो शायद पुरुष भी हासिल न कर सके। इसके बावजूद औरत एक गहना ही है, जिसे हर हाल में एक रखवाला चाहिए। नहीं तो उसके लुटने का खतरा हर वक्त बना रहता है। जिस गहने को रोज दिखाया जाएगा, जिसे नुमाइश की वस्तु बनाया जाएगा, उसके लुटने की सम्भावनाएँ बढ़ जाएँगी। मेनका के पास भी उसी तरह के गहने थे, जैसे सबके पास पास हैं, लेकिन

> मेनका बनना तो बहुत आसान है। सही मायने में नारी वही है, जो उस गहने को सबसे बचाकर चलती है और अपने पति को समर्पित करती है। बिना किसी शर्म के बिना किसी संकोच के, लेकिन वजीर चंद को तो शायद वही गहने पसंद थे, जिनके ऊपर सबकी नजर टिकती थी, जो केवल श्रृंगार की वस्तु थे और दुकानों से किराए पर मिलते थे। आज कोई ले गया, कल कोई, तो परसों कोई...खैर सबकी अपनी-अपनी जिन्दगी है। वजीर चंद सारी जिन्दगी उसी खोट पर फिदा होता रहा और मैं सारी जिन्दगी अपने आपको दुनिया की नजरों से बचाकर और छुपाकर चलती रही। शायद मैं जानती थी कि सच जीतेगा और वजीर चंद के दिमाग से मिथ्या के सारे पर्दे अपने आप दूर हो जाएँगे, लेकिन अब तो जिन्दगी निकल गई। (काल-कथा 148)

वजीर चंद की पत्नी प्रेम, समर्पण और यथार्थ के बारे में आगे कहती है,

> पता नहीं क्यों, वह समर्पण में जिन्दगी गुजारती रही और वजीर चंद अहंकार में शायद औरत और मर्द में बुनियादी अन्तरहै। शायद औरतों के हार्मोन औरत में समर्पण की भावना लाते हैं। पुरुष अपने पौरुष के अभिमान को हर हाल में हावी करना चाहता है। शायद इसीलिए औरत छोटी-छोटी खुशियों में खुशी तलाशती है और मर्द बड़ी से बड़ी खुशी प्राप्त करने के बाद भी और...और से कभी बाहर नहीं निकल पाता। पता नहीं मर्द अपनी बीवी के साथ बिताए हुए क्षणों को कैसे भूल जाता है। औरत तो सारी जिन्दगी उसकी यादों में ही काट देती है। यह औरत की कमजोरी है या महानता, कहना मुश्किल है। पति का बुरा-भला सुनने के बाद भी औरत हमेशा घर को जोड़ने की कोशिश करती है, जबकि मर्द कदम-कदम पर अपने अभिमान को आड़े ले आता है। (काल-कथा 151)

वजीर चंद की पत्नी की तरह ही हमरे समाज में कई ऐसी स्त्रियाँ है जो अपने पति के लिए ही समर्पण भाव रखती है लेकिन वो भी औरतें हैं जो पतिव्रता औरतों के पतियों को अपने वश में करती है। लेखक ने अपने उपन्यास के माध्यम से दोनों ही वर्गों की नारी और मर्द का चित्रण क्या है। परन्तु कहीं न कहीं यह भी लेखक की मानसिक स्थिति रही है कि वह भी वजीर चंद की पत्नी के जैसी औरत का समर्थन करता है न कि आशा पात्र का। यही तो हमारे समाज की पहली नज़र की सोच है कि किसी बाहर की औरत को जैसे दिल चाहे वैसे देखो किन्तु जब अपनी पत्नी की बात आए तो सारे समाजिक रीति-रिवाजों और मर्यादा से बंधी हुई नारी ही अच्छी लगती है। ज्यादातर लोगों की यही सामान्य मनोवृत्ति बनी हुई है कि प्रेमिका से प्रेम पाने के लिए सारी हद्दों से पार प्रेम और समर्पण चाहिए परन्तु जब जीवन साथी के रूप में पत्नी की बात आती है तो वह सबको सतीसावित्री ही चाहिए फिर खुद चाहे हो न हो। यही आज के सामान्य मनुष्य की अपनी पत्नी और एक दूसरी औरत के लिए सोच है जो हमारे समाज को खोखला बना रही है। एक तो हम बात करते है कि औरत मर्द के समान है, पहली बात औरत की तुलना ही क्यों की जाती है, दूसरी यह परुष प्रदान समाज कौन होता है औरत को समानता का दर्जा देने वाला ? क्या एक औरत के लिए इन्हीं चीज़ों में बंधकर रहना ही मर्यादा माना गया है ? अगर कोई सामान्य भाषा में कहे 'एक सभ्य नारी' जिसका सम्मान है। ऐसे ही अजय शर्मा भी अपनी पात्र आशा और नछत्तर कौर के माध्यम से समाज में सम्मान सिर्फ उन औरतों का होता है जो मर्यादा में बंधकर रहती हैं जो नहीं, उन्हें समाज की सामान्य मानसिकता ने कई नामों से निवाजा होता है। लेखक ने नछत्तर कौर पात्र के माध्यम से एक अपने उपन्यास 'कागद कलम ना लिखणहार' में प्रेम की एक अलग ही परिभाषा को दर्शाया है क्योंकि वह विधवा औरत है और बच्चों की माँ भी है परन्तु यह प्रेम किसी को पूछकर या समय में बाँधकर तो होता नहीं। वह कहती है, "कई बार ऐसा क्यों लगता है कि कोई इंसान हमें बहुत अच्छा लगने लगता है। उसकी गलती भी गलती नहीं लगती या फिर वो गलती भी करे तो उसको माफ करने को मन करता है। (कागद कलम ना लिखणहार 126) इसके जवाब में वह कहता है,

> मैडम, क्या बताऊँ, असल में यह प्यार और तकरार की बातें एक उम्र में तो ठीक लगती हैं लेकिन जब आप शादीशुदा हों और आपके बच्चों की उम्र शादी के काबिल हो गई हो तो ऐसी बातों का कोई मतलब नहीं होता। अगर मैं कहूँ कि ऐसी बातें करने वाला तो कभी-कभार मूर्ख ही लगता है।" ...वह कहती है, "मर्द प्यार के मतलब को क्यों एक ही तराजू में तौलता है, जबकि औरत के लिए प्यार के कई मायने हो सकते हैं।...मैंने आपसे प्यार किया लेकिन आपने मुझे प्यार के बदले में क्या दिया?" (कागद कलम ना लिखणहार 127)

इस बात पर आजकल जो एक सामान्य आदमियों की सोच है वहीं लेखक ने बताई है कि वह औरत, वह भी विधवा औरत के प्रेम का इज़हार करने पर कैसी निगाहों से उसे देखता है और कहता है,

> मैडम, आपको तो एक मर्द की की तलाश थी लेकिन मैं तो हिजड़ा हूँ और एक हिजड़े से आप प्यार की उम्मीद कैसे कर सकती हैं? रही बात मर्दों की तो सड़क पर खड़े हो जाइए। दिन में न जाने कितने मर्द वहाँ से गुजरते हैं! आप जिसकी तरफ इशारा करेंगी भागा चला आएगा। (कागद कलम ना लिखणहार 127)

जिस पर वह उसे कहती है, "क्या मैं ऐसी-वैसी औरत हूँ?...आप लोग नहीं समझोगे औरत के मन की बातें। अगर समझते तो इस तरह की बातें न करते और न ही नौबत यहाँ तक आती।" (कागद कलम ना लिखणहार 127) लेखक ने यहाँ यह भी बताया है कि एक पढ़ी-लिखी लड़की या औरत अपने कार्य के अनुसार वेशभूषा बदलती है या अपने मन के अनुसार उठना, बैठना, खाना-पीना करती है तो वह भी उसके लिए आफत और लोगों की नज़रों में उसको बुरा बना देता है। लेखक अपनी पसंद बताते हुए कहता है,

> बिल्कुल ठीक कहा आपने। मुझे भी लगता है कि मैं आपको कभी ठीक तरह से समझ नहीं पाया हूँ। मुझे तो हमेशा यही लगता रहा कि आप औरत हैं ही नहीं। आपको खाना बनाना अच्छा नहीं लगता। आपको सलवार-कमीज पहननी अच्छी नहीं लगती। आपको महिलाओं के साथ बात करना अच्छा नहीं लगता। आपको मर्दों की तरह गाली देना अच्छा लगता है। लेकिन एक बात बताऊँ मैडम, जिन बातों को लेकर आप अपने आपको बढ़ा-चढ़ाकर बताती हैं, वे बातें मुझे पसंद नहीं आईं थी। सच कहूँ तो मुझे तो बिल्कुल संकोची स्वभाव की औरत हो, जो जरा-सी बात पर शरमा जाए, लज्जा जाए। जो आदमी की गाली सुनते ही मुँह दूसरी तरफ फेर ले। जो बात आदमी से करे लेकिन बात करते-करते अगर उसकी चुनरी उसके बदन से सरकने लगे तो उसे झट से अपने बदन पर ओढ़ ले। ऐसी औरत मुझे अच्छी लगती है लेकिन मैडम, आपने तो चुनरी नाम की चीज़ को कब से तिलांजलि दे दी, इसका तो पता ही नहीं चला। (कागद कलम ना लिखणहार 127)

इससे पता चलता है कि सामान्य आदमी की सोच एक विधवा औरत के प्रेम के लिए क्या कहती है। समाज में उससे किस नज़र से देखा जाता है। इसी को लेखक ने बताने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष

इस अध्याय में अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा-साहित्य में सामान्य मनोविज्ञान के साहित्यिक तत्वों पर विश्लेषण किया गया है। सामान्य मनोविज्ञान व्यक्ति के हर उस पक्ष का अध्ययन करता है जो व्यक्ति में सामान्य रुप से विधयमान रहता है। ऊपरलिखित विवेचन से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि मनोवैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धातों की व्याख्या करने वाला मनोविज्ञान है सामान्य मनोविज्ञान। इस में अभिव्यक्त नियमों का प्रयोग एवं परीक्षण अन्य शाखाओं में भी

किया जाता है। ये नियम और सिद्धांत हर व्यक्ति पर लागू होते है। सामान्य से परे ही असामान्य है। सामान्य व्यक्तित्व वाला व्यक्ति सामाजिक रूप में स्वीकृति होता है। वह अपने जीवन की समस्यायों एवं विफलताओं का डटकर सामना करने की क्षमता रखता है। उसे इस बात का पूर्ण ज्ञान होता है कि क्या सही है कि क्या गलत है। जहाँ अज्ञेय के उपन्यास में अंर्तजगत का यथार्थ दिखाई देता है वहीं अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप' की चर्चा करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि 'यह उपन्यास चार संवेदनाओं का अध्ययन है। उसमें जो विकास है, वह चरित्र का नहीं संवेदना का ही है। वैसे तो अज्ञेय स्वयं एक आत्मचेतन कलाकार थे। हो सकता है इनकी कलाकारी की वजह से उनके सभी उपन्यासों में संवेदना भरी हुई है। उनका उपन्यास 'नदी के द्वीप' का अवलोकन करने के पश्चात यह धारणा बनती है कि यह उपन्यास वास्तव में चार संवेदनाओं का अध्ययन है।

मनोवैज्ञानिक युंग के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में चार करण शक्तियाँ होती हैं, जिसमें से कोई एक शक्ति चेतना में बहत्तर स्थिति में रहती है। उसके विपरीत करण शक्ति अवचेतना में निवास करती है तथा बाकी दो शक्तियाँ उसकी सहयोगी होते हुए आँशिक रूप से चेतना और अवचेतना दोनों रूप में विद्यमान रहती है। अज्ञेय मानव मन के कलाकार हैं तथा सहज आंतरिक समझ के रचनाकार हैं। 'नदी के द्वीप' उपन्यास मानव चेतना की चार शक्तियों से संपन्न चार व्यक्तित्वों के अध्ययन का रूपक तो है ही, साथ ही एक चिंतन-प्रधान करण शक्ति संपन्न व्यक्तित्व वाले कथानायक भुवन की चेतना के विकास का रूपक भी है।

जीवन में शेखर सजग रूप से आत्मिक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की ओर बढ़ता है। जिन अनुभूतियों का वर्णन जीवनी के अंतिम भाग में है तथा जिस प्रकार चित्रण हुआ है, उसका स्पष्ट अर्थ लगाना रचना के साथ तो अन्याय होगा ही, साथ ही भ्राँत भी हो सकता है, किन्तु एक बात स्पष्ट ही है कि जिन क्रिया-कलापों की ओर देवताओं को चुनौती देता हुआ शेखर जीवनी के समाप्ति-काल में बढ़ता हुआ चित्रित है,

उन क्रिया-कलापों का आंतरिक रूप से स्वयं शेखर तथा शशि के अंतर्जगत में क्या प्रतिक्रिया होगी तथा किस प्रकार वे उन अनुभूतियों से होकर आगे बढ़ेंगे, जो उन क्रिया-कलापों का आवश्यक परिणाम है, उसका स्पष्टीकरण हुए बिना रचना समाप्त हो जाती है। यह रचना की समाप्ति नहीं है, वरन शेखर के जीवन में उस प्रसंग की समाप्ति है, क्योंकि उसी कालखंड में शशि की भौतिक मृत्यु भी हो जाती है।

उपन्यास की समाप्ति पर जो भाव-संवेदना का यथार्थ मन में रह जाता है, वह एक ठहरे हुए क्षण की अनुभूति का होता है, जिसमें भले ही वरण की स्वतंत्रता न हो। जो केवल होता है, वह विधि का विधान है, जो बार-बार अपने को दोहराता रहता है, जहाँ देव-शिशु जन्म लेता है, जो ईश्वर की पहचान का क्षण होता है, जहाँ रूपाँतरण है, जहाँ महाकाल का डमरू गूँजता है। पूरे उपन्यास का प्रतीकात्मक पक्ष अस्पष्ट, धूमिल तथा अधूरा होते हुए भी एक रहस्यमय आंतरिक महज घटना की प्रतीक्षा तथा उसके घटित होने के आभास की अनुभूति छोड़ जाता है। एक नया लेखक अपने-आप को स्थापित करने के लिए दुनिया से किस प्रकार झूझकर अपने आप को स्थापित करता है, अजय शर्मा ने अपने उपन्यास 'कागद कलम ना लिखणहार' में एक लेखक पात्र के माध्यम से एक नये लेखक के संघर्ष के यथार्थ को बताया है जब एक फीचर प्रभारी होने के साथ-साथ सहकर्ता भी है। पंजाब के लोग केवल पंजाबी में लिख-पढ़ सकते हैं। हिन्दी उनकी भाषा नहीं है। ऐसा विचार कई लोगों के दिलों-दिमागों में घर किए हुए है। 'आकाश का सच' में कई साहित्यकारों के विचारों का समावेश है, जो हिन्दी में लिखते हैं तथा हिन्दी जिनकी राष्ट्रभाषा है। ऐसे ही यथार्थ को अजय शर्मा ने अपने उपन्यास 'समंदर और सफ़ेद गुलाब' में दर्शाया है कि किस प्रकार एक नए शहर में अंजान आदमी के लिए वह एक पनौती बनकर रह जाता है। घरों की मज़बूरियाँ नौजवानों को अपने देश से विदेश जाने के लिए मज़बूर कर देती हैं जिसके चलते वह कई तरह के इंतज़ाम करके विदेश जाता है। परन्तु विदेश तो विदेश अपने ही देश में किसी दूसरे राज्य की पुलिस किस प्रकार करूरता दिखाती है, इस यथार्थ को लेखक तब बयान करते हैं जब एक नौजवान किसी ट्रैवल एजैंट को पैसे देने मुम्बई जाते हैं और वहाँ पहले टी.टी ई

बाद में मुम्बई की पुलिस कैसे शोषण करते हैं। अंजान शहर और अंजान रेलवे स्टेशन पर टिकट लेने के लिए पूछना मूसीबत मोल लेने के बराबर ही होता है। अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों में नारी के हर रूप को दर्शाया है चाहे वह माता, बहन, पत्नी कोई भी हो। भारतीय स्त्रियों में जो संवेदनशीलता, प्रेम और लगाव होता है अपने परिवार को लेकर वह सब देसाई के उपन्यासों में परिलक्षित होता है। उनकी कल्पना स्पष्ट रूप से अलग दायरे में है। देसाई को राजनीतिक-सामाजिक वास्तविकताओं के बजाय मन के आंतरिक परिदृश्य में अधिक रूचि थी। इसी कारण इनकी महिला पात्र स्वतंत्र पहचान की खोज करते हैं और स्वयं को इस समाज में मजबूत ढंग से सामने लाते हैं। देसाई अपने पात्रों को एक मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं क्योंकि वह पात्रों की मनःस्थिति को समझकर उनको दर्शाती हैं। देसाई ने अपने उपन्यासों में पत्नी के प्रेम समर्पण को माया के माध्यम से दिखाया है। माया गौत्म से बहुत प्रेम करती है और उसको गौतम के साथ, समझने और प्रेम की आवश्यकता थी परन्तु उनके शादीशुदा जीवन में इसकी कमी थी। वहीं अनीता देसाई के उपन्यासों में हम संवेदना और यथार्थ तत्व को थोड़ा कम ही पाते हैं देसाई के 'जर्नी टू इथाका' उपन्यास में मैटियो पात्र के द्वारा सत्य की खोज के लिए भारत और भी कई जगह-जगह घूमता हुआ दिखाया गया है। देसाई के ज्यादातर पात्र मानसिक ग्रन्थियों के शिकार है परन्तु फिर भी कहीं-कहीं उनमें प्रेम तत्व देखा जा सकता है। 'क्राय द पीकॉक' उपन्यास में माया पात्र अपने पति से प्रेम की आशा करती है और अपने को समर्पण देने के लिए त्तपर रहती है। 'वायस्स इन द सिटी' उपन्यास में चार भाई-बहनों के आपसी प्रेम और लगाव को दर्शाया गया है। किस प्रकार वह एक दूसरे से जुड़े रहना चाहते हैं। हालात बदलते हुए उनके प्रेम में कैसे बदलाव आता है उसका चित्रण देसाई ने बखूबी किया है।

इस तरह हम देखते हैं तीनों ही लेखकों के उपन्यासों में समान्य मनोविज्ञान के बहुत ही कम लक्षण मिलते हैं क्योंकि अज्ञेय अजय शर्मा और अनीता देसाई मनोवैज्ञानिक लेखकों की सूची में गिने जाते हैं। कहीं-न-कहीं लेखकों की अपनी मानसिकता वहाँ टिकी हुई है जिस कारण उनके पात्र भी सामान्य क्रियाएँ करते हुए

कम ही नज़र आते हैं। परन्तु फिर भी मानव स्वभाव है कि प्रेम और समर्पण का गुण उसमें हमेशा ही विद्यमान रहता है। उसकी प्रकार लेखकों के कथा-साहित्य में भी ये पात्रों में अपने-आप ही झलकने लगता है चाहे वह पात्र अपनी क्रिया-कलाप असामान्य व्यवहार से ही क्यों न कर रहा हो। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के भुवन, शेखर, रेखा, शशि, सेल्मा-योके, अजय शर्मा के अकाश, डॉक्टर, समिथ, सलीम, सुच्चा सिंह, बीजी, बुशरा, अमिता इत्यादि पात्र देसाई के माया, सीता, अमला, उमा पात्र ऐसी ही क्रियाएँ करती हुई देखी जा सकती हैं। सम्भवताः कहा जा सकता है कि लेखकों के कथा-साहित्य में ज्यादा नहीं तो थोड़ा सामान्य मनोविज्ञान जरूर दर्शाया गया है। आज के समाज की माँग कह लो या समाजिक मानसिकता कह लो, बिल्कुल असामान्य ही हो चुकी है। हर कोई अपने स्वार्थ की पूर्ति करने की होड़ में लगा हुआ है चाहे सीधे या फिर गैर-कानूनी ढंग से। लेखक भी समाज का अभिन्न अंग होने के नाते अपनी कृतियों के माध्यम से बुद्धिजीवी वर्ग या सामान्य वर्ग को चेतनता प्रधान करना चाह रहे हैं कि समाज में व्यक्तियों में प्रेम, संवेदना, भाव और समर्पण जैसे गुणों की कमी आती जा रही है जिस पर गौर करने की जरूरत है। इस अध्याय के माध्यम से सामान्य प्रवृति और क्रिया-कलापों को लेखकों के कथा-साहित्य के माध्यम से दर्शाया गया है।

अध्याय तीन

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान

असामान्य मनोविज्ञान वह मनोविज्ञान है जो किसी असामान्य व्यक्ति के बारे में बताता है। मनोवैज्ञानियों के अनुसार किसी मानसिकता से बीमार व्यक्ति को असामान्य व्यक्ति कहा जाता है और यह सही भी है। क्योंकि जो व्यक्ति ठीक ढंग से कोई कार्य में भागीदारी देने में असमर्थ है उसे असामान्य व्यक्तित्व ही कहा जा सकता है। किन्तु अगर साहित्यिक दृष्टि से देखें तो वह व्यक्ति भी असामान्य ही होते हैं जो छोटी-छोटी बात पर गुस्सा, अहं, क्रोध या क्रोध पर काबू न पा सकना इत्यादि। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा-साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान के कई लक्षण देखे जा सकते हैं। इस अध्याय में तीनों लेखकों के कथा-साहित्य और पात्रों को असामान्य मनोविज्ञान के तत्वों के अधार पर देखा गया है।

असामान्य मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो मुख्यत: उन व्यक्तियों का अध्ययन करती हैं जो मानसिक रूप से विकृत या रूग्ण होते हैं। सरल शब्दों में उनके व्यवहार में इतनी अधिक भिन्नता होती है कि उन्हें सामान्य व्यक्ति की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। असामान्य मनोविज्ञान के मुख्यत: दो रूप है प्रथम सैद्धान्तिक तथा द्वितीय व्यवहारिक। सैद्धान्तिक रूप से यह इस बात को स्पष्ट करता हैं कि कौन सी विशेषताओं के कारण अमुक व्यक्ति असामान्य है या उसे कौन सा रोग है। विशिष्ट मानसिक रोगों का वर्गीकरण तथा उनके लक्षणों वर्णन का करना भी असामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में आता है। असामान्य मनोविज्ञान, दूसरे शब्दों में, असामान्य व्यवहार व व्यक्तितत्व के सैद्धान्तिक पक्ष का विस्तृत वर्णन करता है। असामान्य मनोविज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष व्यावाहारिक भी है। अन्य शब्दों में, वह केवल

विभिन्न मानसिक व शारीरिक रोगों का वर्णन मात्र ही नहीं करता बल्कि यह भी बताता है कि इनका निदान कैसे हो, कौन-कौन सी उपचारात्मक पद्धतियों का उपयोग किया जाए तथा एक असामान्य व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थय को किस प्रकार से स्वस्थ रखे। असामान्य मनोविज्ञान इस कारण भी अधिक व्यावाहारिक है क्योंकि यह पूर्णत: सम्भव है कि सामान्य व्यक्ति असामान्य हो जाए और यदि असामान्य व्यक्ति का सही उपचार किया जाए तो उसे सामान्य व्यक्ति बनाया जा सकता है। इस प्रकार व्यावाहारिक शाखा से सामान्य व असामान्य दोनों प्रकार के व्यक्तियों को लाभ पहुँचता है।

असामान्य मनोविज्ञान की परिभाषाएँ: समय-समय पर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने चिंतन, मनन, परीक्षण एंव अध्यनन के आधार पर विभिन्न विचार प्रकट किए हैं। जिनको पढ़ने के पश्चात हम असामान्य मनोविज्ञान को अच्छी तरह से समझ जाएगें। जो कि निम्नलिखित है।

> मनोविश्लेषण नामक पुस्तक में साइमण्ड के अनुसार, “सामान्य व्यक्ति वह है जो जीवन के संघर्षों एवं विपरीत परिस्थितियों का सामना कर सके और असामान्य व्यक्ति वह है जो साधारण सी कठिनइयों के प्रति समायोजन करने में असमर्थ हो।” (मनोविश्लेषण 16)

> मूल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ नामक पुस्तक में जेम्स ड्रेवर कहते है, “असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो व्यवहार या मानसिक घटना की विषमताओं का अध्ययन करता है।” (मूल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ 1)

> आई.जे.के. के मानव विकास का मनोविज्ञान पुस्तक में कहते हैं, “असामान्य मनोविज्ञान असामान्य व्यवहार या असामान्य व्यक्तितत्व का अध्ययन है।” (मानव विकास का मनोविज्ञान 13)

डॉ. लाभ सिंह तथा गोविन्द तिवारी द्वारा रचित पुस्तक असामान्य मनोविज्ञान में पेज के अनुसार, "असामान्य व्यवहार के समूह में वे व्यक्ति रखे जा सकते हैं, जिनमें सीमित बुद्धि, विघटित व्यक्तितत्व और चारित्रिक दोष निहित रहते हैं।" (असामान्य मनोविज्ञान 22)

डॉ. लाभ सिंह तथा गोविन्द तिवारी द्वारा रचित पुस्तक असामान्य मनोविज्ञान में प्रो.जयसिंह के मतानुसार, "असामान्य मनोविज्ञान एक प्रत्यक्ष विज्ञान है, जो पर्यावरण से सम्बद्ध व्यक्ति की असामान्य अनुभूतियों व व्यवहारों का अध्ययन करता है।" (असामान्य मनोविज्ञान 25)

असामान्य व्यवहार के लक्षण

असामान्य व्यवहार के व्यक्ति कई लक्षणों होते हैं जिनसे उसकी पहचान की जा सकती है-जैसे अहम से ग्रस्ति व्यक्तित्व, कुंठित व्यक्तित्व, क्रोधाभास, ईर्ष्या युक्त व्यक्तित्व, संदेहशीलता, अन्तर्द्वन्द्व इत्यादि। इन्हीं तत्वों के आधार पर तीनों लेखकों के कथा-साहित्य का मनोविश्लेषण किया गया है।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में असामान्य मनोवैज्ञानिक अध्ययन

तीनों लेखक मूलतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार होने के नाते मानव मन के आभ्यंतर पक्ष पर वे अधिक बल देते हैं। इनके उपन्यासों में यथार्थ का अधिकाधिक आग्रह मिलता है। इसलिए उनमें आदर्श दबा हुआ मालूम पड़ता है। एक प्रकार से यह आदर्श की अस्वीकृति ही उनके उपन्यासों का आदर्श मालूम पड़ता है। इनके उपन्यासों में घटनाओं का बाहुल्य नहीं मिलता, न ही बाह्य क्रिया-कलापों का विवरण ही मिलता है। आधुनिक परिवेश के लिए व्यक्ति-चरित्र की अंतःचेतन के उद्घाटन और निरूपण को ही अज्ञेय आवश्यक मानते हैं। यदि किसी उपन्यास में घटना

या अनुभूति के आत्मनिष्ठ रूप की अभिव्यक्ति पाएँ तो उसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहते हैं। पात्रों के भावों के उत्थान-पतन को तथा मानसिक प्रक्रिया को विस्तृत रूप से पाठकों के सामने रखना ही उपन्यास में मनोवैज्ञानिकता कहलाती है। अज्ञेय की रूचि सदैव व्यक्ति में ही रही है। व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए उसके आभ्यंतर पक्ष को उजागर करना होगा। इसलिए अज्ञेय व्यक्ति सत्य पर अधिक बल देते हैं जो व्यापक सामाजिक सत्य को बल प्रदान करने में सहायक होता है। इस प्रकार यहाँ अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यासों का विवेचन प्रस्तुत करेंगे तो पता चलेगा कि इनके उपन्यास वस्तुनिष्ठ न होकर व्यक्तिनिष्ठ हैं। जैसे कि पहले भी कहा जा चुका है कि इनके उपन्यासों में घटनाओं का जोर न होकर संश्लिष्ट अनुभूति और भावना के सम्प्रेषण का प्राधान्य है। इनके उपन्यासों में जीवन की लम्बाई, चौड़ाई या व्यापकता उतनी नहीं मिलती जितनी व्यक्ति-चरित्र की अन्तचेतन की गहराई से मिलती है। यही आधुनिक समाज की प्रबल माँग है क्योंकि वैज्ञानिक अनुसंधान ने उपन्यासकार की दृष्टि को बदल दिया है। फ्रायडीय सिद्धाँत ने भी उपन्यासकारों को गहराई से घेर लिया है। फ्रायड के काम सिद्धाँत ने व्यक्ति और व्यक्ति चेतन की गहनताओं पर नवीन प्रकाश डाला इसलिए आधुनिक उपन्यासकार व्यक्ति-मानस की गहराइयों का तथा तजन्य संघर्ष का स्पर्श कर सके हैं। यही संघर्ष लेखकों के उपन्यासों का मूल स्वर मालूम पड़ता है तथा बाह्य परिस्थिति से उसका संघर्ष मानव और नियति का संघर्ष इतना महत्त्वपूर्ण न रहा, क्योंकि व्यक्ति-मानस स्वयं सदैव एक तनाव की स्थिति में रहता है और वह तनाव ही संघर्ष है। व्यक्ति-मानस बनाम परिस्थिति इस विरोध का कोई अर्थ नहीं रहा क्योंकि मानस स्वयं ही एक परिस्थिति हो गया है। इसी प्रकार बाह्य घटना का इतना महत्व नहीं रहा क्योंकि जिस प्रकार संघर्ष भीतर-ही-भीतर उभरता और निर्वाहित होता रहता है उसी प्रकार भीतर-ही-भीतर घटना भी घटित होती रहती है और अन्तर मन में ही रह सकती है।

हिन्दी में अज्ञेय ही एक ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने मनोविज्ञान को साहित्य के रस में घोलकर एक नया रसायन प्रस्तुत किया है। तभी उनके उपन्यासों में

मनोवैज्ञानिक तीव्रता का बोध होता है। अज्ञेय के उपन्यासों की एक और विशेषता यह है कि उन के उपन्यासों में फ्रायड, एडलर और युंग के मनोविज्ञान का सम्मिलित प्रभाव देखा जा सकता है जो कहीं भी आरोपित, ओढ़े हुए या अतिरिक्त जोड़ की तरह नहीं लगते अपितु मानसिक संवेदना के रूप में एकाएक सम्प्रेक्षित होते हैं। इसलिए तो विचार और विश्लेषण नामक अपनी पुस्तक में नगेन्द्र यह कहने के लिए बाध्य हो गये, "अज्ञेय जैसे एकाध कलाकार द्वारा फ्रायड कुछ व्यवस्थित ढंग से हिन्दी में आये" (63) इस प्रकार फ्रायड को हिन्दी में नये ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय अज्ञेय को जाता है। फ्रायड के लिबिडो और एडलर, युंग के हीन भावना के सिद्धाँत को अज्ञेय के तीनों उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', और 'अपने-अपने अजनबी' में मनोविश्लेषणवाद के इन्हीं मानदण्डों को देखा जा सकता है। इसलिए अज्ञेय मानव चरित्र का उद्घाटन वैयक्तिक स्तर पर ही अधिक करते हैं। वे व्यक्ति पात्रों के बाह्य कार्य-व्यापारों के मूल में अवचेतन में दबी-पड़ी मूल प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हैं। इसलिए वे यौन सम्बन्ध तथा यौन उद्वेलन को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसलिए आत्म संयम और आत्म दमन के स्थान पर आत्म प्रकाशन तथा आत्माभिव्यक्ति पर वे अधिक बल देते हैं। अज्ञेय पर डी.एच.लारेन्स का भी प्रभाव देखा जा सकता है जिनकी मान्यता है- भावनाओं के स्तम्भन और आत्म संयम के द्वारा अंतःप्रवृत्तियों की दृष्टि, जिसे समाज माँगता है, मानव जाति के लिए अहितकर है। इस प्रकार अज्ञेय के उपन्यास मनोविज्ञान प्रधान हैं। लेखकों के उपन्यासों में असामान्य मनोविज्ञान को देखना और अन्त में एक तुलनात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत करना ही शोध का उद्देश्य रहा है।

जैसा कि अन्यत्र कहा गया कि 'शेखर: एक जीवनी' अज्ञेय का ही नहीं अपितु आधुनिक हिन्दी का बहु चर्चित और लोकप्रिय उपन्यास है। इस उपन्यास की विशिष्टता का कारण है इस का निर्माण मनोवैज्ञानिक मानदण्डों के आधार पर हुआ है। एक प्रकार से आधुनिक युग मनोवैज्ञानिक युग है। इस युग को स्वस्थ, समृद्ध तथा स्वर्णयुग बनान है तो मनोविज्ञान का सहयोग आवश्यक है। मनोविज्ञान मनुष्य के मन की गुथियों और उलझनों को सुलझानेवाला शास्त्र ही है। आज का मनुष्य खासकर युवा पीढ़ी इन्हीं

उलझनों में उलझी हुई है जिनको सुलझाने के लिए मनोविज्ञान का सहयोग अपरिहार्य हो जाता है। आधुनिक मनुष्य जिन समस्याओं का सामना करता है, वे समस्याएँ मुख्यतः मन से सम्बन्धित हैं। इन समस्याओं का समाधान सिवाय मनोविज्ञान के अन्य उपायों द्वारा सम्भव नहीं है। इसलिए आधुनिक युग से मनोविज्ञान का महत्त्व बढ़ गया है। इन्हीं मनोवैज्ञानिक तथ्यों सिद्धाँतों को केन्द्र में रखकर अज्ञेय ने युग-माँग की पूर्ति हेतु 'शेखर: एक जीवनी' की रचना की।

'शेखर: एक जीवनी' में शेखर के बचपन से लेकर फाँसी पर पहुँचने तक की कथा दो भागों में वर्णित है। समस्त घटनाओं का एक मनोवैज्ञानिक रेखा चित्र खींचा गया है। आगे की कथा से सम्बन्धित तीसरा भाग अब तक प्रकाश में नहीं आया। इस उपन्यास की कथावस्तु नौ खंडों में विभक्त है। प्रथम भाग की कथा 'वस्तु-प्रवेश, उषा और ईश्वर, बीज और अहमकार, प्रकृति और पुरुष तथा परिस्थिति नमों से पाँच खंडों में प्रवाहित मिलती है। दूसरे भाग की कथा 'पुरुष और परिस्थिति, बँधन और जिज्ञासा, शशि और शेखर, 'धागे रस्सियाँ, गुंझर' नाम से चार खण्डों में विभाजित मिलती है। शशि की मृत्यु के बाद शेखर लाहौर के लिए प्रस्थान कर जाता है, यही समाप्ति है। बचपन की घटनाओं से प्रथम भाग का निर्माण हुआ और द्वितीय भाग में शेखर की किशोरावस्था की घटनाएँ बिखरी पड़ी हैं। यद्यपि कथा की दृष्टि से द्वितीय भाग अधिक सशक्त एवं श्रृंखलित बना पड़ा है लेकिन चरित्र-विकास की दृष्टि से प्रथम भाग का द्वितीय भाग की पृष्ठभूमि के रूप में जितना महत्त्व है, उतना विकसित एवं सुगठित कथा वाले द्वितीय भाग का नहीं। शेखर के जीवन का निर्माण किन तत्वों के आधार पर हुआ, वह प्रकृति से क्या है ? क्या था ? और क्या होना चाहता था ? आदि प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए हमें प्रथम भाग का आश्रय लेन पड़ता है। अज्ञेय ने अपने इस उपन्यास में 'घनीभूत वेदन की केवल एक रात में देखे हुए 'विजन' को शब्दबद्ध करके एक 'कथा-वस्तु' गढ़ने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार फाँसी पर लटके हुए शेखर की मनःस्थिति को कथाव्स्तु का आधार बनाया गया। सम्पूर्ण कथावस्तु शेखर के जीवन-चरित्र को लेकर ही चलती है और शेखर की मनः स्थिति के अनुरूप अपने को ढालती

हुई मिलती है। यह उपन्यास चरित्र प्रधान है क्योंकि उसका मूल स्वर है व्यक्तिवादिता। उपन्यास में जितने भी कार्य-व्यापारों का चित्रण किया गया, वे शेखर के चरित्र के विश्लेषण और विकास के आधार पर ही, न कि बाह्य घटनाओं के आधार पर। तभी तो शेखर का अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक स्थितियाँ, चारित्रिक विशेषताएँ बहुत खूबी के साथ आधुनिक युवा पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत की गयी। शेखर आधुनिक युवा-पीढी का प्रतिनिधित्व करता है, फाँसी पर लटके हुए नौजवान की जो मानसिक स्थिति होती है, वह सब हम शेखर में देख सकते हैं।

शेखर फाँसी के तख्ते पर लटका हुआ है। इस क्षण में वह अतीत को फिर दुबारा जीन चाह रहा है। उस की आँखों के आगे कितने ही घटना-चक्र घूमने लगते हैं जिनका उस के जीवन-निर्माण में बहुत बड़ा हाथ रहा था। वह अतीत के पन्ने पलटने लगता है और जिस चित्र ने उसके जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया वह सब से पहले खुलता है चाहे कालक्रम से उसका स्थान अन्त में ही क्यों न आता हो। इस प्रकार उपन्यासकार अज्ञेय की दृष्टि शेखर के चरित्र-विश्लेषण पर ही केन्द्रित रही इसलिए कथावस्तु के सूत्र खंड-खंड, बिखरे-बिखरे मिलते हैं। उपन्यास का नायक शेखर जब अपने जीवन की सिद्धि और सार्थकता पर विचार करने बैठता है तो उस के मानस पटल पर अतीत का तांडव नृत्य देखता है। मानो उज्जल भविष्य के लिए अतीत का आंकलन आवश्यक हो।

जहाँ हिन्दी के अधिकाँश उपन्यासों का प्रारम्भ, पात्रों के यौवन का से होता है जब उन के विचारों में स्थिरता आती है, वहाँ 'शेखर: एक जीवनी' में बचपन से ही व्यक्तित्व के विकास और निर्माण पर लेखक की दृष्टि बराबर बनी रही। यह उस अभाव की पूर्ति है जहाँ कथा साहित्य में बालक तथा बाल मनोविज्ञान को स्थान ही नहीं मिल रहा था। कारण था- 'बालक न तो देश के एक कोने से दूसरे कोने का परिक्रम ही कर सकता है, न आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग ले सकते हैं और न कोई उथल-पुथल ही मचा सकता है। उनकी विचारधारा में कोई क्रम नहीं होता, कोई उद्देश्य नहीं होता। वह चाहे जो सोच सकता है, चाहे जो कर सकता है, उसके चरित्र का विकास

उद्देश्यहीन एवं लक्ष्यहीन होता है। अतः उनके चरित्र के आधार पर किसी सुगठित वस्तु का निर्माण असम्भव है। इस प्रकार बालक को अनुपयुक्त, निरूपयोगी और दायित्वहीन कह कर बालक तथा बाल मनोविज्ञान को जब साहित्य में स्थान नहीं दिया जाता था, वहाँ बाल-मनोविज्ञान को प्राथमिकता देते हुए अज्ञेय की उपन्यास-यात्रा प्रारम्भ होती है। आज का बालक ही कल का नगरिक, नेता और राष्ट्र के कर्णधार होगा। इसलिए उनको शुरू से ही सच्चा, स्वावलम्बी, दायित्व बोध से युक्त बनाने के लिए सुदृढ़ नींव डालनी है। यह अज्ञेय का अभिमत है कि 'शेखर: एक जीवनी' इसी का प्रतिनिधित्व करता है। खास कर प्रथम भाग की कथावस्तु इसी बाल मनोविज्ञान का प्रकाशन ही है। शेखर: एक जीवनी की कथावस्तु में सरल प्रवाह नहीं है, क्रमबद्धता नहीं है। 'अथ' से 'इति' तक श्रृंखलाबद्ध विकास नहीं है फिर भी उस की वक्रता में जो स्वाभाविकता है, अक्रमत्व में जो प्रभाव है, विश्रृंखलता में जो सौन्दर्य है, उसे सहज प्रकृति-सौन्दर्य कहा जा सकता है जो हिन्दी उपन्यास साहित्य में कहीं भी दिखाई नहीं देता। 'शेखर: एक जीवनी' के स्वरूप के सम्बन्ध में स्वयं अज्ञेय ने भी अपना दृष्टिकोण प्रत्यक्ष रूप से नहीं बल्कि शेखर के माध्यम से- "लेकिन मुझे जाना पड़ता है, मेरे जीवन की जो भी घटना मेरे सामने आती है, वह मेरी है मौलिक है, अपनी एक कहानी है और मेरा सारा जीवन बढ़िया उपन्यास।" (शेखर: एक जीवनी-भाग एक भूमिका)

समग्रतः कह सकते हैं कि कथा वस्तु का निर्माण शेखर के जीवन के छोटे-बड़े घटना चित्रों को देखकर जोड़कर किया गया है। उन सब को एक सूत्र में बाँधने वाला है स्वयं 'शेखर'। क्योंकि सभी घटनाएँ शेखर से ही सम्बन्धित हैं और शेखर के द्वारा ही दोहराई गयी हैं और वह भी ऐसे क्षणों में जब वह मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था। इसी क्रम में वह अपनी आपबीती बता रहा है आपबीती की इस अभिव्यक्ति में शेखर की मानसिक स्थिति यह कह रही है कि,

> नित्यता क्षणों की है, पर क्षण, क्षण भँगुर है। मुझ में जो कुछ नूतनता है उसे मुझे इसी क्षण में कह डालना है, क्योंकि वह भविष्य की वस्तु है, मैं उसे कहे बिना रुक नहीं सकता और सोचने का समय नहीं। क्षण का अस्तित्व है कितना? (शेखर: एक जीवनी-भाग एक भूमिका)

इसमें जहाँ एक ओर अज्ञेय का क्षणवादी दर्शन, दृष्टिगोचर होता है, वहाँ दूसरी ओर आलोढ़न-प्रतिलोढ़न द्वार निर्मित कथावस्तु की कलात्मकता जैसे "मोतियों की माला टूट गई हो और बिखरे मोतियों को फिर एक लड़ी में पिरो दिया गया हो।" (शेखर: एक जीवनी-भाग एक 10) शेखर: एक जीवनी के मनोवैज्ञानिक पक्ष का निम्नांकित बिन्दुओं के द्वारा विश्लेषण किया गया है।

अहम से ग्रस्ति व्यक्तित्व- अहम व्यक्ति के चरित्र अथवा व्यक्तितत्व के निर्माण का महत्त्वपूर्ण तत्व है। मनोविश्लेषकों के मतानुसार सामान्य व्यकितत्व में इड, ईगो, (अहम) और सूपर ईगो (नैतिक अहम) इन तीनों शक्तियों का संतुलना बना रहता है। लेकिन असामान्य व्यक्तितत्व में इन तीनों शक्तियों के संतुलना में व्यतिक्रम उत्पन्न हो जाता है। वैयक्तिक भिन्नता के कारण कुछ व्यक्तियों में अहम अधिक विकसित और प्रबल होता है। बाल्यकालीन परिस्थितियाँ और वातावरण उसके अहम को पुष्ट और तुष्ट करते हैं। यदि पारिवारिक, सामाजिक अथवा अन्य किसी तरह के विधि निषेध अहम की तुष्टि में बाधक होते हैं या अहम पर आघात करते हैं, तो व्यक्ति का व्यवहार असंतुलित हो जाता है। वह पलायनवादी, क्रांतिकारी या आक्रामक व्यवहार कर अपने अहम की तुष्टि करता है। वह साधारण सामाजिक और परिवेश की आवश्यकताओं के अनुरूप आचरण करने में असमर्थ रहता है। वह अन्तर्मुखी, आत्ममुखी बना जाता है। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यासों में अधिकतर पात्र अहम से ग्रस्ति है। अहम से ग्रस्ति होने के कारण उनमें पारस्परिक मतभेद भी पाया जाता है। हिन्दी साहित्य-जगत में ऐसे बहुत से साहित्यकार हुए हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में अहम को बहुत महत्त्व दिया है। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, मन्नू भण्डारी, मोहन राकेश, मैत्रेयी पुष्पा, जगदीश चन्द्र माथुर, शिवानी, प्रेमचन्द आदि ऐसे ही साहित्यकार है जिनके पात्र अहम से ग्रस्ति होने के कारण असामान्य मनोविज्ञान को प्रर्दशित करते है। जोशी के अधिकांश पात्र अहम से पीड़ित असामान्य व्यक्तितत्व के होते है। 'घृणामयी, 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित' इन पाँचों उपन्यासों में इसी दृष्टिकोण को अपनाया है। आधुनिक समाज में पुरुष की बौद्धिकता ज्यों-ज्यों बढ़ती

चली जा रही है त्यों-त्यों उसका अहमभाव तीव्रता से और व्यापक रूप ग्रहण करता जा रहा है। अपने इसी तृप्त न होने वाले अहमभाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब उसे पग-पग पर स्वाभाविक असफलता मिलती है, तो बह बौखला उठता है और उसी बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वह आत्मविनश से पहले अपने आस पास के संसार के विनश की योजन में जुट जाता है। नन्दकिशोर(सन्यासी), इन्द्रमोहन(पर्दे की रानी), पारसनथ (प्रेत और छाया), महीप (निर्वासित), नृपेन्द्र रजंन(जिप्सी) आदि ऐसे ही अहम पीड़ित असामान्य आचरण के चरित्र होते हैं। नायक पात्रों के अतिरिक्त (लज्जा), निरजंन(पर्दे की रानी), नीलिमा (निर्वासित) आदि प्रमुख नारी पात्रों में भी अहम की प्रबलता दिखाई पड़ती है। लेखकों के पात्र भी अहम से ग्रस्ति है।

'शेखर' एक दम निडर तथा निर्भीक बना गया और आजीवन प्राणघातक यातनामय वातावरण और न ही जेल की कष्टमय घड़ियाँ उसे डरा पायी। कभी उसे जीवन में डर लगा तो यह लगा कि 'क्या मैं हार रहा हूँ ? क्या जेल का जीवन मुझे तोड़ रहा है ? क्या मैं कायर हूँ ? नहीं तो मैं क्यों ऐसे बेबस होकर रोया ? जो समर्थ हैं जो वीर हैं, वे क्या रोते हैं ? ऐसे कोठरी में अकेले बन्द पड़कर भेड़ की तरह मिमियाते हैं ? यह सचमुच उसके हृदय की सच्चाई है वह कायर नहीं, वह विवश है, परतंत्र है, निर्बल है, लेकिन वह फिर भी हारा नहीं है, क्योंकि हारा हुआ व्यक्ति अपने को पतित समझने लगता है और अपने को अपराधी के रूप में अनुभव करता है। क्या शेखर पतित है ? क्या वह अपराधी है ? उसका अहम इन प्रश्नों से कचोट खाकर जागृत हो उठता है। उसका आहत व्यक्तित्व विद्रोह से चीत्कार कर उठता है। वह किसी भी प्रकार के भय से भयभीत नहीं, वरन वह मुक्त होना चाहता है। बँधनों ने उसे तोड़ डाला है पर वह झुका नहीं है। वह सच्चा है। वह मानवता के संचित अनुभव के प्रकाश में ईमानदारी से अपने को पहचानने की कोशिश कर रहा है।

शेखर के हृदय से जब भय सदा के लिए दूर हो जाता है उसका अहम आत्मविश्वास में परिणत हो जाता है, फिर भी उसका जीवन अहम से पीड़ित ही रहा।

उसका अहम अपनी पहचान तथा अस्मिता को बनाएँ रखने के लिए प्रयत्नशील रहता है। आत्महीनता तथा न्यूनता की भावनाक्षण-क्षण उसे कोसती तथा कचोटती रहती है। उसे समझने के लिए, सांत्वन देने के लिए उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए कोई नहीं दीखता। इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जो उसे समझे और यह कहे कि, "तू शेखर है, तू महान है, मुझे तुझ से पूर्ण सहानुभूति है, ओ, महान शेखर, मेरा आत्मसमर्पण स्वीकार करो।" (शेखर: एक जीवनी-भाग एक 35) यह भावना उसे सदा कचोटती रही।

अपनी पहचान तथा अस्मिता को बनाएँ रखने के लिए और हीनता की ग्रन्थि से बचने के लिए वह लेखन-कार्य में लगा रहता है, कविताएँ लिखता है, नाटक रचता है, चोरी की कला सीखता है। उसने दुबारा मरने की धमकी देकर बराबर वालों पर प्रभाव जमाना चाहा, लेकिन सब व्यर्थ निकले। किसी ने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया तो उस के मस्तिष्क में ये वाक्य गूँज उठे- "मैं शेखर हूँ, लेखक हूँ, नाटककार हूँ, मेरे जीवन की क्या सिद्धि है ?" (शेखर: एक जीवनी-भाग एक 36)

शेखर का अहम यह स्वीकार नहीं करता कि मैं दबा हुआ हूँ। अहम ग्रस्त व्यक्ति दबा रहना नहीं चाहता। हमेशा दूसरों पर आधिपत्य चाहता है। इसी सिलसिले में वह सर्वत्र, स्वतंत्र तथा स्वाभिमानी रहना चाहता है और इस प्रकार के व्यक्तित्व-निर्माण में ही वह सदा लगा रहता है। वह मुक्त कामी है। वह किसी प्रकार के बँधनों को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है, प्रत्युत हर प्रकार के बँधनों को तोड़ने और उस से मुक्त रहने की बलवती इच्छा शेखर के जीवन की एक उल्लेखनीय विशेषता बन जाती है। पहले कहा जा चुका है कि वह सभी प्रकार के भयों से मुक्त हो गया, अपनी अस्मिता के प्रदर्शन के लिए वैयक्तिक स्तर पर तथा सामाजिक स्तर पर सामाजिक झाड-झंखाडों को काट डालने के लिए सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन के लिए शेखर विद्रोह का रुख अपनाता है। क्योंकि वह पहले से ही सामाजिक तथा पारिवारिक बँधनों में बुरी तरह फँस जाता है। इसी कारण शेखर के लिए विद्रोह अपरिहार्य हो जाता है। आजाद रहने

के लिए बँधनों से मुक्ति अनिवार्य है। यह सीख उन्हें प्रकृति से मिली जैसे उसके हाथों से तोते के उड़ जाने वाली घटना और पक्षियों के घर संसार की बनावट तथा वहाँ के प्रकृतिक जीवन के स्वरूप को सजाने वाली बातों ने साबित कर दिया। शेखर सोचने लगता है कि एक तो यह पक्षियों का संसार है जहाँ स्वच्छंदता है, कोई नियम, कोई बँधन नहीं, यही वहाँ कोई नियम है तो केवल यह कि "वह हो जो कि तुम हो।" (शेखर: एक जीवनी-भाग एक 47) एक शेखर का संसार है जहाँ पिता का शासन है, माँ की फटकार है। न कहीं स्नेह है, न कहीं विश्वास। वह ऐसी दुनिया से मुक्ति चाहता है, जहाँ वह बन्दी है। उसे यहाँ वह नहीं होने दिया जाता जो वह होना चाहता है यहाँ तो उसे वह बनाया जाता है जो समय चाहता है।

'नदी के द्वीप' की गौरा का व्यक्तित्व एक मेधावी छात्रा, अनन्य प्रेमिका, सहिष्णुता और कृतज्ञता के गुणों से विभूषित है। वह सहते हुए धीर-गंभीर, कहते हुए शालीन, देते हुए विनीत वत्सला और पाते हुए बाल-मन वाली गौरा एक प्रेम साधिका है। गौरा के व्यक्तित्व तथा चरित्र सम्बन्धी समग्र चित्र डॉ. भगवतीचरण उपाध्याय अपनी पुस्तक समीक्षा के सन्दर्भों में कहते हैं,

> गौरा सभ्य, चरित्रवान, सिद्धाँतप्रिय, सुन्दर, पवित्र, धीर, शुद्ध, प्रमाणत्व की आकांक्षिणी, भव बँधन, प्रेम जिसका मार्ग है, प्रिय का अखंडित प्रेम जिसका लक्ष्य रूप जो छलता नहीं, गिरता नहीं। देखने वालों को ऊपर उठाता है। समय और सीमा उसमें साकार हुई हैं। वह पोटेंशल का कौमार्य है जैसे अतीत पोटेंशल भविष्य का। उसका व्यक्तित्व बहुत कोमल है, बहुत सम्पन्न भी। उसमें साहस भी है और वह असम्मत विवाह को अस्वीकार कर देती है। वह रेखा और चन्द्र की पत्नी दोनों से भिन्न है। एक के उन्मुक्त स्वातंत्र्य को उसने संयम से बन्धा है। दूसरों की मर्यादा वह अपने लिए नहीं सोच सकती, पर इस दूसरी का तप भी कुछ कम नहीं। (नदी के द्वीप 97)

गौरा भुवन से प्रेम करने लगती है जो पहले गौरा के गुरू रहे या गौरा के कॉलेज में आने पर वह मास्टर जी से भुवन तथा भुवन से भुवन दा' हो गया और दोनों के बीच में सखा भाव पलने-पनपने लगता है। समय के साथ-साथ भुवन के प्रति उसकी आत्मीयता बढ़ने लगती है, इस की अंतिम परिणति है, दोनों का विवाह। उसकी शालीनता युक्त आत्मीयता से चन्द्र भी आश्चर्य में पड़ जाता है। भुवन तथा रेखा के सम्बन्ध को जानाते हुए भी गौरा को अपार दुख होता है, "इसे मैं आपका अतिरिक्त स्नेह ही मानती हूँ कि आपने मुझे इस अन्याय के लिए चुन, लेकिन क्यों भुवन दा...क्यों आप मुझ से दूर भागे जा रहे हैं जो आपको अपने पथ का प्रकाश मान कर जी रही है।"(नदी के द्वीप 63) जावा से प्राप्त भुवन के पत्रों को पढ़ने से उसकी जो प्रतिक्रिया होती है, वह दोनों के प्रेम की प्रतिबद्धता का परिचय देती है,

> मेरे भुवन दा। आज मेरी साधना फली है और जी होता है, आप की चिट्ठी सामने रख कर गा उठूँ, कोई वाद्य लेकर-सितार, नहीं वीणा लेकर बजाने बैठूँ मोहन रागिनी को घंटों बजाती रहूँ, जब तक कि...। सितार नहीं वीणा। (नदी के द्वीप 62)

गौरा की यह सूक्ष्मतल संवेदना ही है जो बाद में समवेदना के रूप में बदल जाता है तभी तो भुवन बाद में यह कहने के लिए बाध्य हो जाता है– गौरा पार्वती का नहीं, सरस्वती का नाम है और वीणा सरस्वती का वाद्य है। भुवन के 'जावा' से वापस आने की सूचन मात्र से ही वह झूम उठती है उसका कवि हृदय बोलने लगता है और कँठ स्वर गाने लगता है-

> ओ मेरे सुख धीरे-धीरे गा अपना मधुराग।
> ऊँचे स्वर से सोयी पीड़ा जावे कहीं न जाग। (नदी के द्वीप 283)

भुवन के लौटते ही उसका मंगलमय रूप अपनी आभा को बिखेरने लगता है। यहाँ हम गौरा को दाता के निःस्वचर्म सात्विक रूप में पाते हैं। वह ऐसी दाता है जिसकी माँग तक में दान है। ऐसी माँग जिसे देते हुए प्रिय को लगे कि वह दे नहीं रहा, वरन पा रहा

है। वास्तव में वह देयत्व की साँस है जो दूसरों को जीवन देती है। वह प्रेम की ऐसी वत्सल-विनीत प्रतिमा है जिसका सम्पर्क उन घावों को भी भर देता है जिन्हें समय का अमोघ मरहम भी शायद कभी नहीं भर सकता। यहाँ तक आते-आते गौरा का व्यक्तित्व इतना व्यापक और उन्नत हो जाता है तथा उन शिखरों को स्पर्श करता है जो रेखा से टूट गये थे। भुवन को केन्द्र मानकर रेखा और गौरा के प्रेम सम्बन्धित समर्पण-दान के बारे में 'केदार शर्मा' ने ठीक कहा- रेखा ने पाकर भुवन को मुक्त किया और गौरा ने भुवन को मुक्त करके पाया है। रेखा पाकर पीड़ा भोगती है, गौरा पीड़ा भोगकर पाती है। रेखा के भीतर समर्पण हो रहा था, गौरा के भीतर वह तप रहा था और उस तपस्या का चरम रूप आता है तो रेखा की प्रशँसा में भुवन जो शब्द कहता है उस से गौरा को बड़ी ठेस लगती है,

> उसने मुझे बहुत प्रेम किया था, जितना किसी ने नहीं किया। और अब भी करती है। फिर भी वह अपने को सम्भाल लेती है और जीवन से दुर्भाग्यपूर्ण समझौते करने पड़ते हैं- तुम पछताओगे तो नहीं मुझे यह सब बता देने पर और आयु अनुभव को इस लघिमा में प्रेम की महिमा और गरिमा अपनी चरमता को पा लेते हैं, आप रेखा दीदी से नहीं मिलेंगे। (नदी के द्वीप 267)

यह अहम का समर्पण ही है, जहाँ से ईर्ष्या मुक्त प्रेम की शुरूआत होती है यह प्रेम की सार्थकता भी है और सफलता भी। प्रेम की दृष्टि से रेखा भोगे हुए वर्तमान क्षणों को महत्त्वपूर्ण स्थान देती है। रेखा प्रेम के भविष्य के प्रति आस्थावान अधिक है। रेखा का व्यक्तित्व दर्द से भरा हुआ है, जब कि गौरा का स्नेह से मँजा हुआ। इस प्रकार रेखा और गौरा प्रेम की दृष्टि से अपनी-अपनी जगह पर विशिष्ट हैं। न कोई न्यून य न कोई अधिक। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि गौरा प्रेम की आध्यात्मिकता का नाम है और परिशुद्ध प्रेम की मानसिकता का नाम है। रेखा से छूटे हुए रिक्त की पूर्ति और भुवन की मुक्ति का नाम है। समग्रतः गौरा आलोच्य उपन्यास की सशक्त तथा गतिशील पात्र है, जो भारतीय संस्कृति के पोषकत्व से परिपूर्ण है तथा दूसरों के लिए अनुकरणीय।

पर-हत्या और आत्मपीड़ा के बीच छटपटाती हुई योके के मन में मृत्यु, समय, क्षण, इतिहास के मनन के साथ ही बह सेल्मा के रहस्य को जानने के लिए व्याकुल हो उठती है- रहस्य को जानने के लिए नहीं, वरन उस की व्याकुल्ता को दूर करने और उसके विश्वास को पाने के लिए, जिसे तभी पाया जा सकता है जब कि इस विषय में वह अश्वस्त जो जाए कि सेल्मा आत्मछलन में जी रही है। इसलिए सेल्मा के स्वर की चिड़चिड़ाहट मात्र से उसे बड़ी तृप्ति मिलती है। सेल्मा को भी तकलीफ होती है, वह भी टूट रही है और हार रही है। यह जानकर योके को बड़ा 'कमीन संतोष' मिलता है। वह अपनी इस जिजीविषा की विकृति को स्वीकार भी करती है। सेल्मा की कमजोरी उसे योके के निकट ला देती है और मृत्यु का सहज स्वीकार और पीड़ा-बोध, उसे अजनबी बना देता है। सेल्मा का यह अजनबी रूप योके के लिए बड़ा रहस्य है और जितना वह रहस्य है, उतना ही अधिक संघातक है। वह उसकी मार से सेल्मा के बारे में बनाई हुई अपनी इस धारणा और निश्चय से स्वयं को बचा नहीं पाती, "कहीं न कहीं जरूर बुढ़िया में कोई झूठ है। कोई आत्म प्रवंचन है। हो सकता है कि वह गहरे में छिपी हो लेकिन यह नहीं हो सकता कि वह हो ही न।" (अपने-अपने अजनबी 53) और वह सेल्मा से पूछने के लिए विविश हो जाती है, "वह क्या है जो तुम्हें सहारा देता है जब कि मुझे डर लगता है।" (अपने-अपने अजनबी 53) योके मृत्यु को नहीं मानती, नहीं मान सकती, नहीं मानना चाहती, इसलिए उस सेल्मा के कथन को दोहराते-दोहराते पहले जैसा ही भूत-सा-सवार हो जाता है। वह बार-बार अपनी दुर्बलता और अपराध के लिए क्षमा तक माँग बैठती है।

योके धीरे-धीरे उस मनःस्थिति तक पहुँच जाती है जहाँ उसे ऐसा अनुभव होने लगता कि वह बर्फ के नीचे दबे काठघर की कब्र में मर चुकी है और फरिस्ते जैसी सेल्मा जी रही है। उसको यह भी अनुभव होने लगा कि मृत्यु को ओड़ लेने वाली, उसकी स्पर्शानुभूति से प्रफुलित सेल्मा की आस्था जी रही है। योके निरात्मा हो चुकी है। उसे भौतिक सत्ता आतंकित करने लगती है। वह यह महसूस करने लगती है कि सेल्मा की अपेक्षा वह कई अधिक लाचार, अधिक दयनीय और अधिक मरी हुई है। वह यह भी

महसूस करने लगी कि जिस जिन्दगी से वह छिपती है उसने कैंसर का रूप ले लिया। अब योके सेल्मा से कम पीड़ित नहीं है। वह बहुत बेचैन हो उठती है, अपने अस्तित्व-बोध को प्रमाणित करने लगती है। 'मैं जीवित हूँ।' वह यह भी अनुभव करने लगती है कि जीवन का अनुभव और भोग दो अलग-अलग स्थितियाँ हैं। सेल्मा जो जीवन भोग चुकी है, सच्चाई के निकट है। योके ने अनुभव करने की चेष्टा मात्र की है, इसलिए वह झूठ है। सेल्मा की शारीरिक मृत्यु तो निश्चित थी और वह मर गयी। योके के अकेले ही मर गयी, बिना उसे साक्षी चुने मर गयी। सेल्मा ईश्वर को ओढ़कर बिना अजनबी को साक्षी बनाएँ अकेली चली गयी। वह अकेली नहीं गयी, वरन उसने योके को अकेला छोड़ दिया। इसलिए योके का आक्रोश सेल्मा से हट कर सेल्मा को सहारा देने वाले ईश्वर पर प्रबल और प्रचंड रूप से फूट पड़ा। वह ईश्वर को धिक्कारने लगी। उसे लगने लगा कि अकेला रहने पर भी ईश्वर सेल्मा की आँखों में झौंककर उस पर जासूसी कर रहा है। वह ईश्वर को 'थुड़ी' कहकर-एक तरह से उसको लानत देता है।

योके पहले ज़िन्दगी लपेट कर रहने के लिए अकेलापन चाहती थी। लेकिन आज सेल्मा की मृत्यु से मिला अकेलापन मृत्यु से भी बढ़कर है तथा भयँकर मालूम पड़ता है। उसकी दृष्टि में अकेलापन, बेगानपन और मृत्यु में कोई खास अन्तर नहीं देखता। योके का चिंतन इस बात का प्रमाण है- अच्छी दृष्टि से उत्पन्न विरोध शुरू में व्यक्ति को संघर्ष की शिकायत देता है। किन्तु विनशशील परिणति के बीज बोता जाता है। योके योग्य आदमी को चुन लेती है और फिर भी आत्महत्या कर लेती है-उसने अच्छे आदमी का चयन केवल अपनी मौत का साक्षी बनाने के लिए किया है। उस अच्छे आदमी में 'मैं जीयुँगी' ऐसी आत्मप्रवचन लेकर आत्महत्या करना विकृत जिजीविषा की अंतिम सीढ़ी है। मरने के बाद किसी में जीने के लिए उसकी अनुभूति नहीं हो सकती। वह मरने के पूर्व यह अनुभव कर लेना चाहती है कि उसने चुन, स्वेच्छा से चुन, बिना किसी की मर्जी से चुन और वह मरने के बाद भी जीने का अजनबी विश्वास लेकर जगन्नाथ को साक्षी बनाकर प्रलाप करती हुई मर जाती है, "अन्त में मैं हारी नहीं...अन्त मैंने जो

चाहा, किया मर्जी से किया, चुन कर किया...मैंने अपने मन से चुन है, मैं मर रही हूँ अपनी इच्छा से चुन कर मर रही हूँ, हमारी मौत।" (अपने-अपने अजनबी 75)

योके किस से जीती और किस से नहीं हारी ? सेल्मा से ? जीवन से ? ईश्वर से? नियति से ? बेबसी या सब से ? योके की आत्महत्या तो यही सिद्ध करती है कि किसी से नहीं जीत सकी, सबसे बुरी तरह, पूरी तरह हारी है। दृष्टि-बोध की कब्र तो मृत्युगंधी काठघर पहले ही बना चुका था। इस तरह भी मरना चाहती तो वहाँ भी या इसके पहले कहीं भी मर सकती थी। परन्तु वह मर नहीं सकी। क्योंकि उसे तो अच्छे आदमी को साक्षी बनाकर मरना था ताकि वह कभी न मरे। फरिश्ते जैसे सेल्मा और पाल जैसा प्रेमी उसके लिए अच्छे व्यक्ति थे। वे तो अजनबी थे। जगन्नाथ जैसा अजनबी उसके लिए अच्छा है क्योंकि वह सामान्य लोगों जैसा अभद्र व्यवहार उसके साथ नहीं करता।

Cry, The Peacock (1963) अनीता देसाई का पहला उपन्यास था। इस उपन्यास का विषय वैवाहिक जीवन में क्लह और इसके नारी पर पड़ते प्रभाव। उपन्यास के मुख्य पात्र माया और गौतम हैं, और भी कई वैवाहिक जोड़े हैं जिनके इर्द-गिर्द यह सारी कहानी घूमती है। कहानी माया के बहुत ही प्यारे कुत्ते Toto की मौत से शुरू होती है। जिसकी मौत के कारण वह बहुत ही दुखी होती है और वह पूर्वज्ञान निर्धारित बीमारी के साथ झूझती है। माया एक ऐसी पात्र है जो अच्छे ब्राह्मण परिवार से है और अपने पिता के साथ बहुत ही प्यार करती है। इसलिए जब उसकी शादी हो जाती है वह अपने पति में अपने पिता की छवी ढूँढती है। माया की शादी गौतम से होती है जिसके पास बहुत ही कम सुविधाएँ होती हैं-

> It was grounded upon the friendship of the two men and the mutual respect in which they held each other, rather than anything else. (Cry, the Peacock 40)

इन दोनों का व्यक्तित्व एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न था। एक प्रकार से शारीरिक या मानसिक दृष्टिकोण में उन्हें एक साथ लाने के लिए भी कोई जोड़ नहीं था- Maya with her:

> round, childish face, pretty, plump and pampered the small shell-like ears curling around petty ignorance, the safe, overfull lips- the very, very black brows, the silly, collection of curls, a flower pinned to them- a pink flower, a child's choice of posy. (Cry, the Peacock 105) और गौतम का व्यक्तित्व था- Gautama with his tall, thin, stooped from, graying hair, pallid skin nicotine stained long, bony fingers, practical, matter of fact approach and clumsy mannerisms. (Cry, the Peacock 105)

Meena Belliappa remarks, "The incompatibility of characters stands revealed- Gautama who touches without feeling and Maya who feels even without touching." (26)

> The matrimonial bonds that bind the two are very fragile and tenuous 'neither true nor lasting' but broken repeatedly; and rapidly the pieces were picked and put together again as of a sacred icon with which, out of the pettiest superstition, we could not bear to part. (Cry, the Peacock 40)

माया एक भावनात्मक पात्र है जो अपने पालतू कुत्ते की मौत से दु:खी होती है इसी कारण उसका पति उससे और दूर हो जाता है-

> It is all over, he had said as calmly as the mediator beneath the Sal tree. You need a cup of tea, he had said, showing how little he knew of my misery or of how to comfort me. (Cry, the Peacock 9)

माया और गौतम के रिश्ते का अर्थहीन होने का दोष माया पर ही बार-बार आता है-

> We belonged to two different worlds; his seemed the earth that I loved so, scented with jasmine, colored with liquor, resounding with poetry and warmed by amiability. It was mine that was hell. (Cry, the Peacock 102)

उपन्यास का शीर्षक Cry, the Peacock माया के वैवाहिक जीवन में प्रेम, समझ और साथ के लिए रोने के बारे में है। माया एक ऐसा पात्र है जो अपनी भावनात्मक, रंगों से भरी दुनिया, बचपन की यादों के साथ खुश रहने वाली थी परन्तु उसका पति गौतम एक पूर्णतः अलग दर्शन और विचारों वाला आदमी है जो कि एक आदमी में बचपन से ही अपने आदर्श विचारों और सिद्धाँतों के इलावा कुछ और न देखने वाला पुरुष था। माया अपने पति के राह की आड़ मे रात-रात भर जागकर गुजारती थी और वह अपनी इस नखुश वैवाहिक जीवन को भी सहन नहीं कर पा रही थी।

माया में समायोजन के तीन मुख्य कारण थे क्योंकि उसके पति द्वारा उसे कभी पर्याप्त प्यार नहीं मिला था और यही सोचकर वह अपने आप को उपेक्षित महसूस कर रही थी और अपनी सोच को बंदी बना रही थी। माया के लिए प्रेम का मतलब एक करीबी शारीरिक सम्पर्क, जो उसे नहीं मिलता इसीकारण वह निराशा महसूस करती है जबकि गौतम के लिए प्रेम वास्तविक जीवन में आदर्श नहीं हो सकता और यह सांसारिक परेशानी का कारण बनाता है। यह उनकी व्यवहारिक भिन्नता बताती है कि उन दोनों के प्रेम के बारे में समान विचार नहीं थे-

> Marital relationship are established with the explicit purpose of providing companionship is sadly missing in the relationship between Maya and Gautama. (Cry, the Peacock 14)

उपन्यास के दूसरे भाग में देखते हैं कि कैसे माया गौतम की हृदयहीनता के कारण चिल्ला रही है और उसको यह भी पता चलता है और जानकर झटका भी

लगता है कि वह अपने पति को प्यार में बाँध कर नहीं रख सकती क्योंकि गौतम शादीशुदा जीवन सुख में कोई रुची नहीं रखता। हालाँकि वह हर मायने में सामान्य व्यक्ति है। जिस तरह माया शादी के पहले के जीवनकाल में कुछ यादें लिए रहती है गौतम के साथ भी कुछ ऐसी ही यादें हैं जिसकारण वह ऐसा दिखाई देता है। देसाई का यह मानना है कि बचपन के अनुभव मनुष्यों के भविष्य पर प्रभाव डालते हैं। दुर्भाग्यवश माया के लिए उसका प्रारम्भिक जीवन एक बाधा साबित हुआ, लेकिन गौतम के लिए यदि वह सामान्य है तो अपने जीवन के भविष्य को लेकर उसकी असंतोष की ही भावना रही है। वह अपनी भावनाओं को दिखाने में संकोच करता है इसी कारण वह माया के निकट नही जाता। वह अपनी चिंता के मामलों में अलावा अन्य सभी चीजों के बारे में चिंतित रहता है। वह माया की भावनाओं की कभी सराहना नहीं कर पाता क्योंकि उसका नाम ही यह दिखाता है कि वह एक तपस्वी है। माया और गौतम की दुनिया एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है जहाँ माया प्रेम और कल्पना की दुनिया में रहती है वहीं गौतम तर्कसंगत दुनिया में रहता है। माया एक उस असहाय बच्चे की तरह है जिसको सिर्फ प्यार चाहिए परन्तु गौतम एक व्यवहारिक व्यक्ति है और रोमाँटिक प्रकृति को नहीं समझ पाता। उपन्यासकार ने माया की शारीरिक और मानसिक इच्छा को प्रकट किया है जबकि गौतम के लिए इसके कोई मायने नहीं हैं। प्रेम के नाम पर जो माया माँग कर रही थी इसके माध्यम से वह खुद को चिंताओ के दबाव से छुटकारा दिलाना चाहती थी। मनोवैज्ञानिक कोलमेन सम्बन्धों के बारे में कहते हैं-

> The need to love and be loved is crucial for healthy personality development and functioning. Human beings appear to be so constructed that they need and strive to achieve warm, loving relationships with others. The longing for intimacy with others remains with us throughout our lives and separation from or loss of loved ones usually presents a difficult adjustment problem. (Cry, the Peacock 73)

अनीता देसाई का अगला उपन्यास 'Clear Light Of Day' दो भाईयों और दो बहनों के रिश्ते पर आधारित है। बड़ा भाई राजा जो कि एक कवि है और एक मुस्लिम लड़की के शादी कर हैदराबाद में रहता है और अपने छोटे भाई और बहन जो दिल्ली में रहते हैं उनसे एक कमजोर सा रिश्ता निभाता है। उपन्यास शादी के अनमेल विषय के बिना नहीं है। उपन्यास की पृष्ठभूमि में वर्णित सभी विवाह असंतोषजनक हैं। मात-पिता के पास अपने बच्चों के लिए समय नहीं है। वह हमेशा खेलने या बीमारी में ही व्यस्त रहते थे। माता मधुमेह बीमारी से ग्रस्त है और पिता उसको अपने फर्ज़ के मुताबिक देखने और सम्भालने में। वह प्रगाढ़ बेहोशी में चली जाती है और उसको अस्पताल में भर्ती करवा दिया जाता है। अब हमेशा की तरह क्लब जाने कि बजाए पिता हर शाम अस्पताल जाता है। उसकी मौत के बाद उसको कोई भी याद करने वाला नहीं रहता, उसका पति भी नहीं। उसका वैवाहिक जीवन एक ताश के पत्तों के घर के इलावा कुछ नहीं दिखाई देता। तारा और बकुल की शादी भी सुविधाओं की शादी ही है। वह बकुल से शादी इसलिए करती है क्योंकि वह अंधेरे और वर्जित घर से हँसी और आनन्दमय जीवन की तरफ भागना चाहती थी। वहीं बकुल को ऐसी पत्नी चहिए थी जो उसकी जरूरतों के आधार पर रह सके। तारा उस घर में अपने आप को बीमार सा मानती है और उसका कहना है जो भी इस घर में आता है खुश नहीं रह पाता। वह कॉलेज से भी भागना चाहती है,

> just down the road. No further. And the high walls and the gate and the hedges-it would have been like school all over again. (Clear Light of Day 156) वह यह भी भ्रम में है कि उसके तब ऐसा नहीं सोचा था, At that time I was just-just swept of my feet. Bakul was so much older and so impressive, wasn't he? And then he picked me, paid me attention- it seemed too wonderful and I was overwhelmed. (Clear Light of Day 156)

बकुल तारा को अपनी पसंद और नपसंद के अनुसार ढाल लेता है। यह बात उसको अच्छी नहीं लगती कि जब तारा अपने पुराने घर में जाती है तो वह पुरानी तारा बना जाती है। उनके वैवाहिक जीवन में प्रेम कोई खास महत्त्व नहीं रखता वह एक भौतिक सुख की तरह ही इनकी शादी में आता है। बकुल विदेशी सेवा में नौकरी करता है इसलिए वह शादी एक साथी की तलाश में नहीं बल्कि एक 'शो-पीस' दिखाने के लिए करता है। एक समय ऐसा आता है जहाँ तारा यह सोचती है कि उसने बहुत जी ली है ज़िन्दगी अपने पति के अनुसार,

> It had been such an enormous strain, always pushing against her gain, it had drained her of too much strength, now she could only collapse, inevitably collapse. (Clear Light of Day 18)

फिर भी वह अपने प्रकार के कई अन्य लोगों की तरह, सफल शादी के मखौटे को संरक्षित करने में सफल रही। चाची मीरा का विवाह भी एक सामाजिक वर्जित का चित्रण है। उसकी शादी बारह साल की आयु में हो जाती है और विधवा होने तक वह कुँवारी रहती है। उसे अपने पति की मौत का कारण माना जाता था और फिर इसी कड़वाहट में उसे नौकर की तरह रखा गया। वह सब के लिए खाना बनाती, कपड़े धोती और भी घर के सारे काम अकेले ही करती। वह एक नर्स की तरह बच्चा पैदा होने के बाद अपनी ननद की देखभाल करती और उसके पैरों की मॉलिश करती। जैसे वह बूढ़ी होती है उसके काम भी बदल जाते हैं, "another household could find some use for her : cracked pot, torn rag, picked bone." (Clear Light of Day 108) उसे खोजकर दास परिवार में लाया गया, क्योंकि वह एक उपयोगी गुलाम थी। मिश्रा की बेटियाँ सरला और जया भी नखुश वैवाहिक जीवन से ग्रस्त तलाकशुदा थी। उपन्यास भाई राजा और बहन बिमला के रिश्ते के बारे में है। बिमला एक अवैवाहिक बहन है जो कि एक असंगत विवाह के आघात से छूटी है। वह अपनी ज़िन्दगी अपने विकलांग छोटे भाई बाबा और बूढ़ी मीरा मासी की देखभाल में बिता देती है। बिमला

अपने छोटे भाई राजा के ज्यादा नज़दीक होती है। राजा को उर्दू की कविताओं बहुत ज्यादा पसंद होती हैं क्योंकि उनके पड़ोस में मुस्लिम हैदर अली का घर होता है। बिमला और तारा अँग्रेजी के कवि ब्रयोन को पसंद करती हैं। परन्तु बिमला तीक्ष्ण बुद्धि की है इसलिए प्रेम उसकी भावनाओं को इतनी आसानी से प्रभावित नहीं कर पाता। उसको ज्यादात्तर रुचि है, "facts, history and chronology." (Clear Light of Day 121) वह गिब्बन की Decline and Fall ज्ञान की तलाश में पढ़ने लगती है। वह अपने भाई की भारी भावनात्मकता रचनाओं को पचाने में असमर्थ है। वह भी उसकी बुद्धिमत्ता वाली रुचि की सराहना करता है।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान, देश हिंसा से हिल गया है और राजा मुस्लिमों के लिए संदिग्ध हो गया है। राजा बीमार पड़ जाता है। बिमला एक माँ की तरह उसकी देखभाल करती है और उम्मीद करती है कि एक दिन वह उनके पिता की जगह लेगा परन्तु वह हैरान रह जाती है जब राजा उनको छोड़कर बेनज़ीर के साथ शादी करके जो हैदर अली की बेटी है, के साथ हैदराबाद रहने के लिए चला जाता है। बिमला को धोखा दिया जाता है और वह उस पर चिल्लाता हुआ कहता है, "a gap between them, a trough or a channel that the books they shared did not bridge." (Clear Light of Day 121) घर में पीछे बाबा और तारा रह जाते हैं जिससे उसे ऐसे लगता है कि बचपन के किसी खास हिस्से से वह अलग हो गई है। वह अपने आप को अकेला और बूझा हुआ महसूस करती है जिसे आत्म औचित्य के नवीनीकृत भावना की जरूरत होती है। इस सब के बावजूद वह बाबा की देखभाल करती है, वह चाहती है कि बाबा अब न उसे सताए और ही इसके लिए उसे दंडित करना चाहती है क्योंकि वह न ही क्रोध और न ही सज़ा जानता है। बाबा की रातों की नींद बहुत ही शाँतमय होती है परन्तु वह अपने आप में अपने परिवार के लिए घुटती रहती है। वह यह महसूस करती है कि राजा, तारा और बाबा उसी के अंग हैं और उन्होंने एक दूसरे को पूरा किया है,

> There could be no love more deep and full and wide than this one, she knew. No other love started so far back in time in which to grow and spread. Nor was there anyone else on the earth that she was willing to forgive more readily or completely or defend more instinctively or instantly. (Clear Light of Day 165)

बिमला को नि:स्वार्थता और दूसरों के प्रति आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा मिलती है। यह अनीता देसाई की नारी-पुरुष के सम्बन्धों की तरक्की और विकास के लिए कदम है। इस उपन्यास में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि निराशा के लिए कोई कारण या जगह नहीं है। यह उपन्यास के नाम से ही दिखाई पड़ता है 'Clear Light Of Day' जो कि एक मात्र ज़िन्दगी जीने का सहारा है और समय के साथ बिमला भी अपनी ज़िन्दगी के इस कड़वेपन को भूल जाती है।

संदेहशीलता- संदेहशीलता एक मानसिक विकृति है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में इस मानसिक विकृत से युक्त पात्रों की भरमार है। जब व्यक्ति सीमा से अधिक किसी पर संदेह करता है तो उसका मानसिक संतुलना बिगड़ जाता है। इन लेखकों के पात्र भी संदेहशीलता से ग्रस्ति है। इस प्रकार जोशी ने भी अपने उपन्यासों में पात्रों की संदेहशीलता का वर्णन किया है।

योके और सेल्मा के विचार और सिद्धाँत बिल्कुल भिन्न हैं दोनों के बीच में जो खाई बना जाती है, वह मनोवैज्ञानिक है, इसलिए मनोविश्लेषण से ही इसका समाधान निकाला जा सकता है। "इसमें मृत्यु के स्वीकार और वरण की स्वतंत्रता पर अधिक बल दिया गया है।" (अपने-अपने अजनबी 37) मृत्यु जैसी एक जटिल अवस्था को दो मानसिकताओं के सन्दर्भों में देखा गया है। अधिक स्पष्ट करें तो अस्तित्ववादी निर्णयों का तिरस्कार और भारतीय दृष्टि का स्वीकार इस उपन्यास में है। किस प्रकार मृत्यु साक्षात अपनों को अजनबी कर देते हैं और अजनबियों को अपना, किस प्रकार मृत्यु कुछ के लिए अपनी होती है और कुछ के लिए अजनबी, यह उपन्यास की वस्तु है। मृत्यु

के प्रति पूर्व के स्वीकार भाव पश्चिम के विरोध भाव की तुलना भी की गयी है। वैसे तो निर्माण तथा विधा की दृष्टि से 'अपने-अपने अजनबी' एक विलक्षण कथा साहित्य है और नाटकीय तथा डॉयरी शैली के सुन्दर समन्वय से निर्मित एक विलक्षण औपन्यासिक कृति है। वर्गीकरण की दृष्टि से इस उपन्यास को चरित्र प्रधान उपन्यास की कोटि में रख सकते हैं। 'योके और सेल्मा' दो ही इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। योके उपन्यास की नयिका है। वह अन्त में आत्महत्या कर के उपन्यास को दुखद बनाती है। सेल्मा के प्रति 'यान' का नाम जुड़ा है। यान के सम्पर्क में ही सेल्मा को अर्थवत्ता प्राप्त हुई है।

अज्ञेय ने योके और सेल्मा को परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। योके की दृष्टि 'अपने-अपने अजनबी' की दृष्टि है, तो सेल्मा की दृष्टि अपने साक्षात्कार की। पहली दृष्टि मृत्यु से दूर भागने की दृष्टि है, तो दूसरी उसे अपने से केवल इतनी दूर समझती है कि हाथ बढ़ाकर उसे छू लिया जा सकता है। एक में खीझ, झुंझलाहट और आक्रोश भरी अनस्था है, विस्फोटमयी जिज्ञासा है, हताशा और अक्रमणकारी विकृत जिज्ञासा है, तो दूसरी में करुणा है क्षमा है, आस्था है, सब कुछ जान लेने का संतोष है। इसे योके के शब्दों में उपन्यासकार ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है, "वह जानती है और जानकर मरती हुई भी जिये जा रही है।" (अपने-अपने अजनबी 35) सेल्मा ने भगवान को ओढ़ लिया, वह मृत्यु में भी ईश्वर के दर्शन करती है, लेकिन योके मृत्यु-भय से आक्राँत है। उसे लाल आग को देखकर लगता है कि- "शैतान अभी चिमनी के भीतर से उतरकर इस क्रम में आ जाएगा, हम से हिसाब करने।" (अपने-अपने अजनबी 25) लेकिन सेल्मा को विश्वास है कि "उस में से स्वयं निकोलस आता है।" (अपने-अपने अजनबी 25) योके को सेल्मा की उपस्थिति रुचिकर नहीं है, लेकिन "सेल्मा की कोई भी उपस्थिति ईश्वर का ही प्रतिरूप लगती है...।" (अपने-अपने अजनबी 51) योके अपने को काल निक्षेपण में टंगा हुआ अनुभव करती है, लेकिन "सेल्मा उसे समूचे काल में जीती हुई दिखाई देती है ...।" (अपने-अपने अजनबी 19)

संक्षेप में सेल्मा अर्थवत्ता प्राप्त अनुभवी दृष्टि का प्रतीक है और योके के शब्दों में उलझी हुई उन्हें दोहराती हुई भ्रमित दृष्टि का साकार रूप।

तीन खंडों मे विभक्त आलोच्य उपन्यास का 'योके' और 'सेल्मा' पहला खंड, सिद्धाँत के प्रतिपादन की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें योके और सेल्मा की जीवन-दृष्टि और सिद्धाँतों का प्रतिपादन प्रकाश में लाया गया। दूसरा खंड है 'सेल्मा', जिसमें सेल्मा का पूर्ण वृत्त प्रस्तुत किया गया। तीसरे खंड में योके की जीवन-दृष्टि की दुखद परिणति वर्णित है। जहाँ यह संकेतित है कि जर्मनों ने उसे वेश्या बना दिया। इस गंदगी के जीवन से बचने के लिए वह भारत वासी जगन्नाथ को साक्षी बनाकर मर जाती है। उसी प्रकार जहाँ उपन्यास का कथ्य संश्लिष्ट है, वहाँ शिल्प में भी मनोवैज्ञानिक प्रयोगशीलता उभर कर सामने आती है।

उपन्यास के पात्रों का चयन भी समाज से विश्रृंखलित एक इकाई के रूप में किया गया है। इसलिए पूरे उपन्यास में व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन को मनोविज्ञान का चोला पहनया गया। व्यक्ति जीवन मूल्य और सहज प्रवृत्तियों का आँकलन किया गया है। वह व्यक्ति सम्बन्धित होते हुए भी हम सबको समान मालूम पड़ती है। इसलिए इन की अंतिम परिणति व्यष्टि से समिष्टि में ही है। इस प्रकार पूरे उपन्यास में मनोवैज्ञानिक संचेतन अत्याधिक, सशक्त, संश्लिष्ट, सक्रिय और सार्थक ठहरती है।

सेल्मा की जीवन-दृष्टि उसकी अपनी नहीं है, किसी से जुड़कर जीने के बाद प्राप्त जीवन-दृष्टि है। सेल्मा के चरित्र से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति का चरम अकेलापन, अमानवीय व्यवहार ही उसकी मौत होती है। सेल्मा के प्रति 'यान' के शब्द यही बताते हैं, "तुमने मेरी जाना लेनी चाही... तो तुम समझती हो वैसे अकेले मरने में कोई बड़ा सुख है ? बल्कि अकेली तो तुम अब भी हो, जबकि मैं नहीं हूँ और शायद मर ही चुकी हो, जबकि मैं अभी जिन्दा हूँ।" (अपने-अपने अजनबी 111) श्रीमती यान बनने के बाद जब सेल्मा अंधी गली में भटकती है तो खुला आकाश मिल जाए-एक नया जीवन उपजा, सुख-दुःख के साझे एक जाल जिसमें जीवन की अर्थवत्ता के न जाने कितने पंछी उन्होंने पकड़े। और यान के साथ पाई अर्थवत्ता यान के जाने के बाद भी नहीं मिटी।

यान की संगति में प्राप्त यह जीवन-दृष्टि यान के जाने के बाद भी उसको प्रकाश देती ही रही, यही वह रहस्यमय अर्थवत्ता है जिसे सेल्मा ने पुल पर मृत्यु के साक्षात्कार के क्षणों में यान से पाया है। इसलिए वह मृत्यु के क्षणों में भी धीर-प्रशाँत है। योके के विचार सेल्मा को प्रभावित नहीं कर पाये, क्योंकि वह पहले ही ऐसे दौर से गुजर चुकी है। यह उसी दौर का नतीजा है। सेल्मा अब मृत्यु में भी ईश्वर के दर्शन कर रही है। सेल्मा की इस स्थिति का विवेचन केदार शर्मा के शब्दों में यों देख सकते हैं,

> आज सेल्मा जीवन और अजीवन, मृत्यु और अमृत्यु के बीच अवस्थित है। उसका जीना न जीना है और उस का मरना न मरना है। वह जीती हुई भी जीवन से अनसक्त है और मरती हुई मृत्यु से अभय। उसके लिए जीवन भी स्वीकृति का जितना मूल्य है उतना ही मृत्यु की स्वीकृति, वह न जीवन से चिपटती है और न मृत्यु से भागती है, ऐसी ऋजु रेखा पर टिकी रह सकने की शक्ति उसे ईश्वर ने दी है। उसने ईश्वर को ओढ़ लिया है। यानी ईश्वर उसके लिए कवच है। वह किसी भी सजीव उपस्थिति को ईश्वर की उपस्थिति का प्रमाण मानती है। किन्तु ईश्वर की उपस्थिति का अहसास उसमें कोई पुलक या रोमाँच उत्पन्न नहीं करता। (अपने-अपने अजनबी 25)

इसलिए वह योके की उपस्थिति को न उपलब्धि या वरदान मानकर चलती और न ही अनुपलब्धि या न अभिशाप। मृत्यु के क्षणों में सेल्मा का व्यवहार योके को अचरज में डाल देता है। फिर भी जानाती-मानती हुई भी योके को उससे मुक्त करने के लिए न कोशिश करती है, न इसलिए संकेत ही देती है। यही कारण है सेल्मा के प्रति योके के विचार पहले से ही दूषित रहे हैं क्योंकि सेल्मा मृत्यु से नहीं डरती। यान के उदात्त मानवीय सम्पर्क से प्राप्त अर्थवत्ता को सेल्मा चाहे तो व्यापक परिधि प्रदान कर सकती है, कि नहीं, अपने तक सीमित कर दिया। सेल्मा ने अपने चिंतन को इस प्रकार व्यवहार में उतारा, जो योके को स्वाभाविक नहीं, रहस्यमय प्रतीत होने लगता है। इस

प्रकार योके के प्रति सेल्मा का छदम व्यवहार योके के युवा जीवन का अपमान ही है। सेल्मा की यह धारणा कि- "कुछ भी किसी के बस का नहीं है। एक ही बात हमारे बस की है- इस बात को पहचान लेन...। उसे देखने के लिए भगवान ने एक-एक अजनबी भेज दिया। ...मैंने तुम्हें साक्षी नहीं चुना।" (अपने-अपने अजनबी 25)

क्रोधाभास- क्रोध, लोभ, अंहकार, काम तथा मोह यह पाँच मनुष्य के मनोविकार हैं। यह प्रत्येक मनुष्य में पाए जाते हैं। कोई भी मनुष्य इन पाँचों से बच नहीं सकता है और यह स्वाभाविक भी है, लेकिन यदि व्यक्ति इन पाँचों मनोविकारों को सीमा से अधिक अर्थात पूर्णन रूप से इनके वश में हो जाता है तो उसका विनश सम्भव होता है। क्रोध भी इन पाँचों में से एक है। क्रोध मनुष्य के विवेक को विवेकहीन कर देता है। उस की सोचने समझने की शक्ति को क्षीण कर देता है। इतिहास इस बात का साक्षी रहा है जब-जब मनुष्य ने क्रोध किया है तब तब उसका अन्त निश्चित हुआ है। विद्वानों ने क्रोध को मनुष्य का दुश्मन कहा है। क्योंकि यह मनुष्य का एक ऐसा गम्भीर दुश्मन है, जो मनुष्य के अन्दर छुपा रहता है और न जाने कब उग्र रूप लेकर उसका अन्त कर देता है। क्रोध से मूर्खता जन्म लेती है, मूर्खता स्मृति को भ्रांत कर देती है, जब स्मृति भ्रांत हो जाती है, तब बुद्धि का नाश हो जाता है और मनुष्य नष्ट हो जाता है। मनुष्य चाहे कितना ही विवेकी, पंडित, महात्मा, ज्ञानी हो जब वह क्रोध कर लेता है तो वह मूर्ख बना जाता है। जब व्यक्ति को क्रोध आता है तो वह अपने सारे संस्कार भूल जाता है तथा उसकी वाणी अपशब्दों से भर जाती है।

अब तक 'नदी के द्वीप' के भुवन, रेखा, गौरा, चन्द्रमाधव आदि प्रमुख पात्रों के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस रचना में इन पात्रों के माध्यम से काम, प्रेम तथा श्रृंगार के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास हुआ। भारत जैसे आदर्शवादी समाज में अब तक ऐसा नहीं हुआ है। यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि विकासमान समाज में 'विवाह से बाहर का प्रेम अनिवार्य' हो जाता है, चाहे आदर्श के धरातल पर हो या यथार्थ के। यह भी संकेतित है कि भारत की

विवाह व्यवस्था अब भी इतनी सुखद, स्वस्थ तथा सुदृढ़ है कि पश्चिम का यथार्थ उसे हिला-डुला नहीं पाया। पश्चिम की विवाह प्रणालियों की तुलना में कुछ कमियों के बावजूद भारतीय विवाह पद्धति स्वस्थ समाज के लिए बेहतरीन और बढ़िया प्रमाणित होती है।

जब हम 'नदी के द्वीप' के गौण पात्रों के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं तो पाते हैं- हेमेन्द्र, कौशल्या और रमेश के मनोलोक अलग-अलग हैं। उपन्यास का हेमेन्द्र काम तथा उसकी विकृतियों का प्रतिरूप है, लेकिन उसके द्वारा प्रदत्त दर्द-दर्शन रेखा को उन्नत बनाने में उपयुक्त सिद्ध हुआ। प्रेम और पीड़ा के दुख-बोध के दर्शन अस्तिववादी दर्शन के प्रमुख पहलू ही हैं। 'कौशल्या' जो एक अच्छी भली, सुशाँत, संतुष्ट और पति सेवारत नारी है। परम्परा प्रदत्त प्रेम तथा श्रृंगार से वह एकदम संतुष्ट है। पश्चिम की विश्रृंखलता तथा यौन स्वच्छंदता का रंग इसको लगता तक नहीं। रेखा की तरह कौशल्या को भी आधुनिक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन उपन्यासकार अज्ञेय का यह अभीष्ट नहीं है प्राचीन और आधुनिक, पूर्व तथा पश्चिम की प्रेम और काम सम्बन्धी अवधारणा के बीच के संघर्ष को प्रस्तुत करने के लिए पात्र कौशल्या की परिकल्पना की गयी। इसी प्रकार रेखा के चरित्रहीन पक्ष को जानाने के बावजूद भी 'डॉक्टर रमेश' द्वारा उसको अपनाये जाने का विषय प्रेम की दृष्टि से या मानवीय करुणा की दृष्टि से भी आधुनिक समाज के लिए एक चुनौती बना गया। यहाँ मनोवौज्ञानिक पक्ष यह हो सकता है कि रेखा का ईर्ष्या विमुक्त दृढ़ विश्वास तथा दृढ़ संकल्प जीवन के लिए नई दिशा और दृष्टि दे सकते हैं। इस कारण डॉक्टर रमेश ने उससे विवाह किया होगा। जीवन नौका से डूबती हुई रेखा को तिनके का सहारा भी बहुत होता है। डॉक्टर रमेश ने यही काम किया। यह मानवीय दृष्टि से आधुनिक समाज के लिए आवश्यक है।

ऐसा ही 'बसरा की गलियाँ' उपन्यास में बसरा शहर में शादी से पहले नायक जाता था और लौट कर कैंप में आ जाता था। परन्तु अब उसे वहीं रहना पड़ता था।

भोले भाजी उसे कहते हैं कि बसरा चलन है शाम तक लौट आएँगे। उनकी बात सुन नायक व्यथित हो उठा और बोला, “जाकर लौटना अब मेरी किस्मत में नहीं है।” (बसरा की गलियाँ 52) उसे ऐसा लगता है जैसे सपनों का कत्ल हुआ है। पूरी दुनिया से उसे अलग कर दिया गया। उसे जबरदस्ती बुशरा ने पाने की कोशिश की है, प्यार नहीं एक जंग थी जो उसने जीतनी चाही। वह बुशरा से कहता भी है, “प्यार भावनात्मक लगाव होता है। जो जबरदस्ती किया जाता है, तो लूट होती है। फर्क सिर्फ इतना है कि आप लोगों ने मुझे धोखे से लूट लिया। उसके बावजूद लूटा हुआ माल आपका न हो सका।” (बसरा की गलियाँ 157) उपन्यास में अकाश का तन-मन व्यथित हो उठता है। वह इराक में जब बुशरा के घर रहता है तो मुसलमान धर्म के अनुसार कोई कार्य नहीं करता और जब बुशरा की माँ कुछ कहती तो उसका मन करता कि उसकी जाना ले ले। वह अक्सर कहती, “अब तुम मुल्क के हो गए। यहाँ के रीति-रिवाज़ सीखो और नमाज़ पढ़ने की आदत डालो। मैंने घड़ी से अपनी आँखें उठाकर उसकी तरफ नफरत भरी निगाहों से देखा।” (बसरा की गलियाँ 38)

नायक बसरा में रह कर भी न तो बसरा का हो सका, न ही बुशरा को अपना सका। इराक की सरकार ने सारे विदेशियों को अल्टीमेटम दिया, उनके देश लौट जाने का। सरकार ट्रकों के काफिलों में लोगों को उनके देश वापस भेज रही थी। पर नायक अब भी अपने देश नहीं लौट पाया क्योंकि खतना कर उसे मुसलमान बना दिया गया था और नायक फिर से अकेला रह गया क्योंकि कैंप में रहते हुए उसे अपने देश के लोगों से बात कर कुछ अपनापन महसूस होता था। परन्तु अब वह फिर से अकेला हो गया। वह सोचता है,

> जिस दिन आखिरी काफिला बगदाद की ओर रवाना हुआ तो मुझे फिर से अकेले होने का अहसास हो गया। मुझे लगा कि लोहे की दीवारें मेरे चारों तरफ और भी मजबूत हो गई हैं। पहले तो मैं कैंप में आता और वहाँ हिन्द-पाक के लोगों से अपनी जुबान में बात कर लेता था लेकिन

> सब लोगों के जाने के बाद मैं गूँगा ही हो गया था। (बसरा की गलियाँ 64-65)

इस प्रकार विस्थापन का दर्द झेलते-झेलते लोग जीवन, जीवन की खुशियों से, अपने आपसे भी विस्थापित हो जाते हैं तथा न जाने कब साँसों की माला टूट जाती है और पता भी नहीं चलता। एक धर्म परिवर्तन जो ज़िन्दगी बदलने के लिए होता है और जो ज़िन्दगी बदल कर रख देता है। यहाँ दूसरी तरह का धर्म परिवर्तन है जिसने आकाश का सब कुछ छीन लिया। जेहाद के नाम पर पता नहीं कितने माँ-बाप बे-औलाद हो गए हैं। कितने बच्चे अनाथ और कितनी ही औरतें विधवा हो जाती हैं। उमर आकाश के साथ इराक की सेना में है। जब आकाश को इराकी सेना में जेहाद के नाम पर शहीद होने को ले जाया जाता है तो वहाँ उमर उसे मानव बम के रूप में मिलता है। वही इराक के हालातों के बारे में बताता है, "इराक-ईरान की जंग झेलते-झेलते यहाँ का बच्चा जब बचपन छोड़ता है, तो जेहाद के नाम पर उसके हाथ में खिलौने नहीं बन्दूकें थमा दी जाती हैं।" (बसरा की गलियाँ 93) धर्म के नाम पर युद्ध किए जाते हैं, कभी अपने स्वार्थ के लिए सामान्यजन को निशान बना कर युद्ध की आग में झौंक दिया जाता है। इस युद्ध से वंश बदल जाते हैं। पीढ़ियाँ बदल जाती हैं। कौमें और नस्लें बदल जाती हैं अर्थात सब कुछ बदल जाता है। सब तबाह हो जाता है और फिर बदलने को कुछ रह ही नहीं जाता परन्तु यह न तो धर्म की लड़ाई होती है न जेहाद की। यह तो मात्र निजी स्वार्थों की लड़ाई है। लड़ने वाला चाहे इराक हो ईरान हो, हिन्दोस्तान हो या पाकिस्तान, परिणाम कभी ठीक नहीं होता। लड़ाई में मर्द तो सैनिक रूप में लड़ ही रहे थे परन्तु औरतें भी पीछे नहीं थी। एलाइजा बसरा में आकाश के साथ गई है जो अपने पति की तथा बच्चे की मौत के कारण बागी हो गई थी। वह युद्ध के मैदान में हाथों में हथियार लिए आदमी से कंधे मिलाकर खड़ी है। लेखक का मानना है कि, "लोगों को जन्म देने वाली माँ लोगों की जाना की प्यासी हो गई है। ऐसा तो जानावरों में भी नहीं होता।" (बसरा की गलियाँ 117) इसी युद्ध का परिणाम है कि हर घर में विधवाएँ और केवल अनाथ बच्चे ही रह जाते हैं ज़िन्दगी की ठोकरें खाने को और कुछ

तो माँ के पेट में ही अनाथ हो जाते हैं, कई जहरीली गैसों से अपंग-विकलांग पैदा हो रहे हैं।

माया गौत्म से बहुत प्रेम करती है और उसको गौतम के साथ, समझने और प्रेम की आवश्यकता थी परन्तु उनके शादीशुदा जीवन में इसकी कमी थी। हम उपन्यास में बार-बार यही देखते हैं कि माया अपने पति की तरफ प्रेम और समर्थन के लिए मुड़ रही है लेकिन इसका कोई फायदा नहीं होता क्योंकि उन दोनों के सोच, पसंद और नपसंद अलग अलग है-

> I tried to explain this to Gautama, stammering with anxiety for now, when his companionship was a necessity. I required his closest understanding. How was I to gain it? We did not even agree on which points, in what grounds this closeness of mind was necessary. 'Yes, yes', he said, already thinking of something else, having shrugged my words off as superfluous, trivial and there was no way I could make him believe that this, night filled with these several scents, their effects on me, on us, were all important, the very core of the night, of our moods tonight. (Cry, the Peacock 19-20)

माया अपने पति की मदद के लिए फिर से बदल जाती है जब उसका सिख दोस्त उसकी हस्तरेखा और भविष्यवाणी की बात करता है। Gautama alone was like a "rock in the wild sea-calm, immobile. But he too turned to me with an expression that display surprise at my vehemence."(Cry, the Peacock 79)

उपन्यास में जो बाकी शादीशुदा जीवन दिखाए गये हैं वह भी नखुश ही दिखाई पड़ते हैं। उपन्यास में माया की माता का कोई जिकर नहीं आता और न ही गौतम के माता पिता क्योंकि वह भी अपनी अस्वाभाविक वैवाहिक जीवन बसर कर रहे होते हैं। उसके बीच एक अप्रिय दृष्टिकोण है क्योंकि वह अपने आप को अपनी छुट्टियों में व्यस्त रखते हैं। लीला माया की दोस्त थी जिसने प्रेम के लिए एक tubercular रोगी से शादी

की थी। वह विवाह के लिए किए गये मज़ाक को गुस्से से लेती है और फिर भी अपने पति के बचपन की सभी अनियमत्ता को मन करती है। श्रीमती लाल जो कि एक सिख पत्नी है वह अपने पति की सार्वजनिक तौर पर मौकाप्रसत बताती है। नीला जो कि एक तकालशुदा नारी है कहती है- "After ten years with that rabbit I married', I've learnt to do everything myself." (Cry, the Peacock 162) इन सभी विवाहों से पता चलता है कि पति और पत्नी दोनों के जीवन और चीज़ों के दृष्टिकोण के बीच समानताएँ आम तौर पर अपने वैवाहिक जीवन को सफल बनाने में महत्तवपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विवाह दो आत्माओं का मिलन होता है। जिन महिलाओं के साथ ऐसा व्यवहार होता है वह संघर्ष, अलगाव और अकेलेपन की शिकार बना जाती हैं। इन परिस्थिथियों के साथ संघर्ष नकारात्मक्ता, आत्म-हत्या व्यर्थ है परन्तु वह यही राह का चुनाव करती हैं या आत्म-हत्या, परिस्थितियों से भागना या अलग होकर रहना।

अनीता देसाई का दूसरा उपन्यास Voices In The City में भी इसी विषय को जारी रखा गया है। इस उपन्यास में हम श्री और श्रीमती Ray के विवाह में दोषपूर्ण समायोजन देखते हैं जो कि एक माता-पिता भी हैं। यह शादी एक सुविधाओं की शादी थी जिसमें पति हमेशा अपने परिवार और समाजिक रुतबे को लेकर ढींगे हाँकता है और पत्नी भी अपने चाय बागान संपत्ति की होने का दिखावा करती है। वह दोनों आत्माओं का मिलन ऐसा जो एक नफ़रत से बन्धा है और एक दूसरे को नष्ट कर रहा है। जो पिता है वह एक शाराबी, बहस करने वाला और अपमानजनक आदमी में बदल जाता है जबकि माँ एक व्यवहारिक, स्वामित्व वाली महिला में बदल जाती है और महिलाओं वाली ममता को खो देती है। वह बहुत ही ठंडे स्वभाव की है। उनकी शादी एक वित्तीय समझौता था। अमला जो कि उसकी बेटी है अपने पिता के बारे में धर्म से कहती है- "he hadn't quite bargained for mother, just for her houses and tea-estates." (Voices In The City 205) वह कहती कि उसके पिता कुछ नहीं करते सिर्फ सुस्ती के मारे सोने और शराब पीने के इलावा। उन्होंने अपने बेटों को सिर्फ एक चीज़ सिखाई थी क्रिकेट खेलना या फिर घोड़ों से प्यार करना-

> He was always drinking and smiling, his knowing, spiteful smile, with an emotion in him that must have been very violent to show at all in his face, even so faintly. (Voices In The City 207)

इस वैवाहिक जोड़े की शायद ही कोई एक जैसी पसंद थी। माता को संगीत, प्रकृति और ऐसी चीज़े पसंद थी-

> My father always got on her nerves by simply never doing anything. I always see him lying back indolently, like an overfed house cat, against mother's embroidered Tibetan cushions, toying with a cheroot or a glass of whisky or both. (Voices In The City 206)

इन दोनों की कोई भी पसंद एक दूसरे से मेल नहीं खाती थी जहाँ पत्नी को संगीत और प्रकृतिक दृश्य पसंद थे वहीं पति को ऐसी चीज़ों से कोई लगाव नहीं था। संगीत की मीठ्ठी अवाज़ जहाँ बच्चों और महमानो तक को अनन्दमय लगती थी वही पति को वह प्रभावशून्य बनाती थी। जहाँ शहनाई की अवाज सब को खुशी देने वाली होती है वहीं पति उसका मज़ाक उड़ाता है फिर पत्नी उस पर नराज़गी दिखाती है तो पति भी उससे ज्यादा नराजगी दिखाता है-

> When he came to Kalimpong and saw her wandering about her garden, touching her flowers, he never followed her. He used to lie back against his cushions, idle and contended- contended I think, in his malice. (Voices In The City 207)

वह हमेशा अपनी पत्नी का मज़ाक बनाता जब वह अपनी बेटी को प्रकृति के बारे में बताते हुए कहता है, "forget yourself in that study. Then you will be fortunate- like your mother." (Voices In The City 207) असलियत में पत्नी अपने इस संगीत और प्रकृति के प्यार में अपने पति को भूल जाती है। माता और पिता के बीच यह नफ़रत बच्चों के दिमाग पर एक गहरा निशान छोड़ देती है। वह असली

पीड़ित हैं। माता-पिता का हर एक कदम उनके वैवाहिक जीवन को नष्ट करके उनको नरक की ओर घकेल रहा है।

मनीषा जो कि बड़ी बेटी है वह एक अनमेल शादी का शिकार है। जीवन और मनीषा के बीच कुछ भी आम नहीं था वह वैवाहिकथे क्योंकि दोनों सामान्य मध्यम वर्ग कांग्रेस परिवार से थे। उसके पिता ने सोचा था कि,

> Monisha ought not to be encouraged in her morbid inclinations and that it would be a good thing for her to be settled into such a solid, unimaginative family as that, just sufficient educated to accept her with tolerance. (Voices In The City 199)

मनीषा शादी के बाद बिलकुल बदल जाती है वह एक संवेदनाशील, शाँत, समझदार, हर रोज डॉयरी लिखने वाली औरत बन जाती है। वह न तो अपने पति के साथ और न ही उसके परिवार के सदस्यों के साथ खुश है। मनीषा का अनमेल विवाह और असंवेदनाशील पति के साथ संयुक्त परिवार में रहना उसको अकेलेपन, निर्जलीकरण और तनाव की तरफ धकेलता है। उसका जीवन सिर्फ घर,

> My duties of serving fresh chapattis to the uncles as they eat, of listening to my mother-in-law as she tells me the remarkably many ways of cooking fish, of being Jiban's wife. (Voices In The City 111)

जीवन घर पर मौजूद है परन्तु, "Jiban is never with us at all." (Voices in the City 112) मनीषा को लगता है कि वह कलकत्ता के घर में मोटी लोहे की सलाखों के पीछे फँस गई है-

> I am so tired of it, this crowd. In Calcutta is everywhere. Deceptively, it is a quite crowd-passive, but distressed. Till there is reason for anger and then a sullen yellow flame of

> bitterness and sarcasm starts up and it is vicious and mordant...This boil erupts, every now and then, now that the weather is so hot, the heart so parched. (Voices In The City 118)

मनीषा द्वारा व्यक्त शहर के इस दृष्टिकोण से पता चलता है कि उसके जीवन प्रेम के बिना और उसके विचारों को हमेशा गलत समझा जाता है। वह महसूस करती है कि वह उस कबूतरों की तरह है जिनके दिल से खून बह रहा है, "wounded and bleeding, but scurrying about their cages, picking up grain…These stay on the ground, restless, in flux and bleeding." (Voices In The City 121) वह एक संयुक्त परिवार में रहने के आघात का सामना करती है, जहाँ कोई निजी जीवन नहीं है। वह चाचा-चाची, भाई, भतीजा और भतीजी से दूर गोपनीयता से काम करना चाहती है। उसके पास अपने कमरे में भी कोई गोपनीयता नहीं है। इसे पहले दुल्हन के कक्ष के रूप में मान जाता था लेकिन अब नहीं, "The sister-in-law lies across the four-poster, discussing my ovaries and theirs." (Voices In The City 121) वे सब उसका मज़ाक उड़ाते हैं, जैसे कि उसकी अलमारी में साड़ियों की बजाए किताबे हैं। मनीषा एक बौद्धिक नारी है जो अपने साथ-साथ ससुराल में अपना एक निजी पुस्तकालय लेकर जाती है। हालाँकि, कोई भी यह जानने का इच्छुक नहीं है कि उसके पुस्तकालय में कौन-कौन सी पुस्तकें हैं। अनीता देसाई ने अपने इस उपन्यास में भारतीय मध्यम वर्ग के परिवारों की बहुओं का चित्रण किया है जो बिल्कुल भी खुश नहीं हैं। उनकी सभी महत्वकांक्षाओं, प्रतिभाओं और क्षमताओं को केवल गृहणियों के रूप में कम कर दिया गया क्योंकि वह घर के कामों के इलावा कुछ भी नहीं कर सकतीं। जीवन मनीषा से कहता है, "Be a little friendly to them. That is all they ask of you- a little friendliness." (Voices In The City 118) अमला को मनीषा के लिए इस बात से खेद है कि वह कैसे और क्यों शादी कर रही थी,

> this boring non-entity, this blind moralist, this complacent quotes of Edmund Burke and Wordsworth, Mahatma Gandhi and Tagore, this rotund, minute-minded and limited official. (Voices In The City 188)

अनीता देसाई के अगले उपन्यास 'Fire On The Mountain' में एक बूढ़ी औरत नंदा कौल की कहानी प्रस्तुत करती हैं जो इस दुनिया में बहुत ही कष्टदायक और निर्बाध जीवन जीने के लिए मजबूर है। उसका जीवन वैवाहिक जीवन में बेईमानी का एक उदाहरण है। उसका पति श्री कौल जो कि एक कुलपति है उसका पूरी ज़िन्दगी एक गणित की अध्यापिका Miss David के साथ नज़ायज सम्बन्ध चलता है। परन्तु वह ईसाई धर्म से सम्बन्ध रखती है सामाजिक मान्यताओं को न तोड़ सकने के कारण वह उससे शादी नहीं कर सकता। यह उपन्यास पति की भौतिक वासना और सुविधाओं पर आधारित है जो दोनों ज़िन्दगियों को ही जीता है। विश्वविद्यालय में कौल दम्पति के प्रतिष्ठित मान्यताओं के साथ आदर से रहता है परन्तु अन्दर से सामाजिक सम्बन्धों को पूरी तरह से नष्ट किए हुए हैं,

> Not that her husband loved and cherished her and kept her like a queen-he had only done enough to keep her quiet while he carried on a lifelong affair with Miss David, the mathematics mistress whom he had not married because she was a Christian but whom he had loved all his life. (Fire on the Mountain 145)

नंदा इस सम्बन्ध के बारे में कुछ नहीं कहती एक बुझी हुई मुस्कराहट के साथ सब कुछ होते देखती रहती है। वह अपने पति के घर, परिवार, महमानों की सेवा, बच्चे और नौकरों तक को बहुत ही अच्छे से सम्भालती है परन्तु इस सबको सम्भालकर रखने के साथ वह अपने अस्तित्त्व को खो बैठती है। नंदा कोई ज्यादा खुश नहीं है अपनी इतनी बड़े परिवार में जहाँ हमेशा महमान आये रहते हैं क्योंकि उसका और उसके पति का

रिश्ता सिर्फ यह सामाजिक दिखावा और जिम्मेदारियों को निभाने तक का है। यही सच उनके अपने बच्चों के साथ है,

> And her children-the children were all alien to her nature. She neither understood nor loved them. She did not live here alone by choice- she lived here alone because that was what she was forced to do, reduce to doing. (Fire on the Mountain 145)

वह अपने आप को सब से अलग कर लेती है और अपने आपको इस दुनिया, अपने बच्चों और अपने नाती-पौतों से अलग कर लेती है क्योंकि वह डरती है कि कहीं दोबारा उसका दिल न टूटे जाए। नंदा की पौती तारा भी अपने अनमेल वैवाहिक जीवन से परेशान है। उसे एक व्यवहारिक, सांसारिक और परम्परावादी मनुष्य के साथ शादी करने के लिए मजबूर किया जाता है जबकि वह इसके बिल्कुल ही उलट है। वह बिल्कुल ही भिन्न तरह की पत्नी है इस तरह के आदमी के लिए। पति राकेश के साथ विवाह और उसकी क्रूरता का तनाव उनकी बेटी के बदलते व्यकतित्व में दिखाई देता है। यह वैवाहिक असाम्जसता का सबसे डरावना परिणाम है। वह एक सामान्य स्वस्थ बच्चे की तरह नहीं बढ़ती और उसको नहीं पता है कि शादीशुदा जीवन का क्या मतलब होता है कैसे किसी को प्रेम करना या कैसे किसी का प्रेम पान है। जहाँ तक कि दो वैवाहिक जोड़े जो Carignano में रहते हैं वह एक भ्रमित और दुर्बल वैवाहिक जीवन पेश करते हैं। आखिर में इला दास टूटे हुए विवाह और विरासत से उभरता है जिसका जीवन उसके चेहरे पर दिखाई देती एक कड़वी विडम्बना है।

ईर्ष्या युक्त व्यक्तित्व- मनुष्य के अन्तकरण: में एक ऐसी भी प्रवृत्ति होती है, जिसके कारण वह दूसरों की सफलता देखकर अपने भीतर जलन का अनुभव करता है। इसे 'ईर्ष्या' कहते हैं। यह एक मानसिक रोग है, जो मनुष्य मन को सन्तप्त करता रहता है। 'शरीर को सन्तप्त करने वाला रोग का तो उपचार से ठीक हो जाता है, परन्तु ईर्ष्या

का उपचार सहज नहीं है। शरीर में ताप पैदा करने वाले रोग को रोगी अनुभव करता है और फलस्वरूप वह अपने को अस्वस्थ समझकर उसके उपचार के लिए अपने को स्वस्थ अनुभव नहीं करता, बल्कि उसे दूर करने में अभाव महसूस करता है। यही उस रोग को विकट बना देता है। ईर्ष्या रोग से ग्रस्ति व्यक्ति में इन दोनों बातों का अभाव होता है। ईर्ष्या से ग्रस्ति व्यक्ति न अपने आप को सुखी रख पाता है और न ही दूसरे को सुखी देख पाता है। ईर्ष्या ही मनुष्य के मन को दूषित करती है। जिसके कारण मानव सुमार्ग की जगह कुमार्ग की तरफ बढ़ने लग जाता है। हिन्दी जगत के साहित्यकारों ने अपने साहित्य में ईर्ष्या जैसे मनोविकार का वर्णन किया है। साहित्यकार का मुख्य उद्देश्य मनुष्य की वास्तविक तस्वीर को पाठकों तक लान होता है। 'नदी के द्वीप' का 'चन्द्रमाधव' अज्ञेय की नयी परिकल्पना है। वह मध्यवर्गीय परिवार का है तथा पेशे से पत्रकार है। अज्ञेय के शब्दों में,

> चन्द्रमाधव सनसनी खोजी है, असल में उसने जीवन की खोज की है, तीव्र बहता हुआ पलवनकारी जीवन चुटकियाँ और चिकोटियाँ और उसके किस दोष के कारण? प्रेम? नहीं, बीबी बच्चे। स्वातंत्र्य? नहीं तनख्वाह। जीवननंद ? नहीं सहूलियत, घर, जेब खर्च, सिनेमा, पान-सिगरेट मित्रों की हिर्स। (नदी के द्वीप 43)

चन्द्रमाधव का चरित्र-चित्रण व्यक्तिवादी जीवन दृष्टियों के विरोधी तर्क को प्रस्तुत करने के लिए हुआ है। वह एक भोगवादी पात्र है। उसका मानना है कि नर-नारी सम्बन्धों का मूल सिर्फ शारीरिक है। वैसे तो अज्ञेय के लिए उपन्यास के सब पात्र महत्त्व की दृष्टि से बराबर हैं। लेकिन चन्द्रमाधव के चरित्रांकन में उपन्यासकार उसे परिष्कृत करने के लिए दिशा और दृष्टि प्रदान करता है। उपन्यासकार ने पात्रों के माध्यम से चन्द्रमाधव की सनसनी के लिए दंडित भी किया है। पूरे उपन्यास में एक भी ऐसा पात्र नहीं जो चन्द्रमाधव को सम्भालकर ले जा सकता है। उपन्यास में चन्द्रमाधव का चरित्रांकन अज्ञेय के प्रेमादर्श के प्रतिकूल किया गया। वह घर, गृहस्थी रखता है। दो

बच्चों का बाप है, खाने-पीने की कमी नहीं, सुख-सुविधा के सभी साधना उपलब्ध हैं। घर में न कोई झगड़ा, न कोई शिकायत, फिर भी वह संतुष्ट नहीं है। उस का मन उछट जाता है। वह अकेला रहने लगता है, अपने को खोया-खोया महसूस करता है। उस के मन में रेखा के प्रति आकर्षण है, जो हेमेन्द्र की परित्यक्ता है। रेखा का सौन्दर्य स्वयं चन्द्रमाधव के शब्दों में-

> पर वैसे अत्यंत रूपवती है, और उस का रूप एका सप्राण, तेजोमय पर्सनैलिटी के प्रकाश से भीतर से दीप्त है, भले ही एक कड़ा रिजर्व उस प्रकाश को भी घेर लेता है- चन्द्र को एक बड़ी सी चन्द्रकान्त मणि का ध्यान आता, तो बाहर चिकनी सफेद होती है, अन्दर बिखरे से इन्द्रधनुष के रंग लिए, पर एकदम भीतर कहीं एक सुलगती आग का लाल आलोक। (नदी के द्वीप 52)

वह उसको नौकरी दिलाने में सहायता करता है। रेखा के प्रति उसके मन में न मानवतावादी दृष्टि है और न मानवीय करुणा। रेखा के प्रति उसका दृष्टिकोण भोग का है। जब तक वह रेखा में किसी पुरुष के प्रति आकर्षण नहीं देखता, धीर, प्रशाँत और पूर्णतः आशावान है। लेकिन जब देखता है कि रेखा भुवन के प्रति आकर्षित है-समर्पित है, तब उसके मन में घृणा का भाव जागता है और वह भुवन के प्रति ईर्ष्यालू हो उठता है और रेखा को अपनाने के लिए हर सम्भव प्रयास करता है। लेकिन रेखा उसके वश में नहीं आती। वह अपने गृहस्थ जीवन व्यवस्था तथा तनावग्रस्त स्थिति से परिचय कराकर रेखा की सहानुभूति को प्राप्त करना चाहता है। लाचारी की स्थिति में रेखा मौन धारण करती है। इससे चन्द्रमाधव साहस बटोरने लगा। उस का बुझा हुआ मन धीरे-धीरे खिलने लगा। चन्द्रमाधव रेखा के मौन को सम्मति समझकर आगे बढ़न चाहता है। लेकिन वस्तु स्थिति इसके विपरीत निकलती है। जब वह रेखा और भुवन के साथ पहाड़ पर जाने का प्रोग्राम बनाता है, तो उसकी आशाओं पर पानी फिर जाता है। फिर भी रेखा के प्रति उसका दृष्टिकोण नहीं बदलता। रेखा के नाम पर उस ने जो प्रेम

पत्र लिखा, उसमें एक दिलफेंक आशिक की तरलता है, उत्कटता है और प्लवनशीलता की प्राप्ति की ललक है- "एक्सटेसी क्षणिक भी हो तो ग्राह्य उस पर सौ सेक्योर-जीवन निछावर। मैं तुम्हारे पैर चूमूँगा मेरी जाना।" (नदी के द्वीप 50) यह प्रतिबद्ध प्रेम नहीं, वासना ही है। इसे समझने में रेखा को अधिक समय नहीं लगा क्योंकि वह असाधारण नारी है। प्रेम उसके लिए अद्वितीय है। हर बात से असम्बन्द्ध हो तभी स्वीकारती है। उसे यों सुरक्षित जीवन के सपने दिखाकर नहीं पाया जा सकता, उसमें यों सनसनी और उत्तेजन पैदा नहीं की जा सकती और इस तरह चन्द्र ने रेखा को पाने के पहले ही खो दिया।

मनुष्य की मूल तथा जन्मजात प्रवृत्तियों में ईर्ष्या का भी अपना महत्त्व होता है। ईर्ष्या, प्रेम की प्रतिद्वन्द्विनी है, प्रेम के विरोधी तत्वों को जगान, जमान नियंत्रित करना और प्रेम के विरुध युद्ध की तैयारियों में 'ईर्ष्या' महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। 'नदी के द्वीप' की गौरा के मन में रेखा के लिए ईर्ष्या नहीं है। ईर्ष्या के बारे में अज्ञेय का मत है कि,

> मैं मानता हूँ कि ईर्ष्या प्रेम का सब से बड़ा शत्रु है और प्रेम की स्वस्थ वयस्कता के मार्ग में रोड़ा है। मैं नहीं मानता कि ईर्ष्या मुक्त प्रेम असम्भव है या अस्वस्थ है या अस्वाभाविक है। बल्कि यह मानता हूँ कि प्रेम में जिनको भी जितना भी अधिक ईर्ष्या मुक्त मैंने पाया है, उनका ही अधिक सम्मान कर सका हूँ- चाहे इस देश-काल में, चाहे उस देश-काल में। (नदी के द्वीप 269)

स्थूल रूप से प्रेम पंथ में हर सम्भव अड़चने पैदा करना ईर्ष्या का व्यापार है। मानसिक संघर्षों और विकृतियों को जन्म देकर प्रेम की प्रतिबद्धता में बाधा डालना ईर्ष्या का कार्य व्यापार है। वह निरंतर इसी प्रयत्न में लगी रहती है। अहम, जो प्रेम में बाधा डालती है, ईर्ष्या प्रदत्त ही है। जब तक अहम समाप्त नहीं होता, तब तक प्रेम का अँकुर उगता नहीं है। अहमग्रस्त व्यक्ति प्रेम पंथ पर आसानी से चल नहीं सकता। रीति-मुक्त

कवि घननंद का प्रेम-दर्शन यही संदेश देता है कि प्रेम मार्ग अत्यंत सरल है और हर कोई इस मार्ग पर आसानी से जा सकता है। जो अहमग्रस्त है, ईर्ष्यालु है, वह इस मार्ग पर आसानी से चल नहीं सकता। ईर्ष्या प्रेम का वह अस्वस्थ रूप है जो मोह का चोला पहन कर प्रत्यक्ष होता है- "स्नेह में मोह होता है तब आघात मिलता है, तब व्यक्ति उसी को आहत करता है जिस के प्रति स्नेह है।" (नदी के द्वीप 147) चन्द्रमाधव जब तक रेखा में किसी पुरुष के प्रति आकर्षण नहीं देखता, तब तक वह धीरे-धीरे प्रशाँत बना रहता है, पर ज्यों ही वह अनुभव करने लगता है कि रेखा भुवन की ओर आकर्षित हो रही है, उसे ईर्ष्या होने लगती है। वह भुवन के प्रति दुर्भाव से भर उठता है। रेखा को अपनाने के लिए उसकी नौकरी छुड़ाकर दूसरी जगह दिलाने का प्रयत्न कर उस को झुकाने का उसने प्रयत्न किया, पर रेखा नहीं झुकी। फिर उसने एक दूसरा मार्ग पकड़ा। चन्द्र जब दूसरी बार अपने घर गृहस्थी की असंतुष्ट स्थिति कहकर रेखा की सहानुभूति प्राप्त करना चाहता है, तब इसी क्रम में वह रेखा को लेकर पहाड़ जाने का प्रोग्राम बनाता है पर भुवन को लेकर एक पैनी ईर्ष्या की नोक उसे सालने लगी, क्योंकि व्यवहारिक सुरक्षा और रेखा के संकोच को मिटाने के लिए वह भुवन को साथ ले जाना चाहता था। लेकिन वह सफल नहीं हो सका। चन्द्र की सारी योजनाएँ धरी की धरी रह जाती हैं।

गर्भपात के पश्चात भुवन रेखा से कुछ खिंचा-सा रहने लगता है और चन्द्रमाधव तो ऐसे अवसर की खोज में ही था, वह तुरंत ही रेखा के साथ सहानुभुति व्यक्त करते हुए भुवन की प्रच्छन्न निन्दा से ओत-प्रोत यह पत्र लिख भेजता है,

> सुन है कि वह आजकल अपनी खोज में ऐसे डूबे हैं कि किसी को पत्र-वत्र नहीं लिखते, बल्कि शायद आई हुई डॉक भी नहीं पढ़ते- किसी से कोई मतलब नहीं है उन्हें, बस वह है और कस्मिक रश्मियाँ हैं।... ठीक कहते हैं लोग कि वैज्ञानिक प्रेम कर ही नहीं सकता, क्योंकि उस के लिए स्थूल यथार्थ है ही नहीं, सब कुछ एक एब्स्ट्रेक्शन है, एक उदभावनाऔर जहाँ एब्स्ट्रेक्शन है, वहाँ प्रेम कहाँ है। (नदी के द्वीप 185)

अब तक यह बताया गया कि प्रेम-दर्शन में 'ईर्ष्या' का क्या स्थान होता है, लेकिन सच्चे प्रेम के समक्ष ईर्ष्या की दाल नहीं गलती। ढुल-मुल व्यक्ति, ढुल-मुल नीतियों के पास ही ईर्ष्या की दाल गलती है, यदि प्रेम सचमुच परिशुद्ध है, तो वहाँ ईर्ष्या जैसी विकृति कुछ नहीं कर सकती, क्योंकि प्रेम के लिए प्रिय का सुख ही सर्वोपरि है। इसलिए प्रिय को जो प्रेम करता है, प्रिय को प्यारे हैं उन्हें मुक्त मन से प्रेम सम्मान देता है। वहाँ प्रेयसी न कोई ईर्ष्या देखती है, न शिकायत भी करती है और न आरोप करती है। वह प्रियतम के लिए प्रियतम में ही जीती है और प्रियतम के लिए ही मरती है। उसका निरंतर प्रयत्न यही रहता है कि प्रियतम को किसी प्रकार की असुविधा और असंतोष न हो, अपने को उत्सर्ग करके ही सही, प्रियतम को सदा सुखी, स्वस्थ, सानंद तथा सार्थक जीवन व्यतीत करने में पूर्ण सहयोग देती है।

योके, जो करुणा और घृणा की समान परिणति मानने वाली विचारशील है, सबको क्षमा कर देती है- 'मुझे जाना है। मेरी पुकार हो गयी'...इससे स्पष्ट है कि वह आस्थावान है तथा अस्वस्थ हो गई है। उसकी आत्महत्या सारे मूल्यों और मूल्याँकनों को निस्सार और निरर्थक कर देती है। वह अस्थिर तथा अस्वस्थ है, इसलिए मरने की तैयारी के लिए हर वक्त जहर पास में रखकर जाती थी- वह अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए। मरते समय उसने क्षमा नहीं माँगी, वरन सबको अपनी ओर से क्षमा किया, क्योंकि वह अपराधी नहीं है, अन्य सब हैं। आत्महत्या को किसी भी हालत में आस्था के संकेत नहीं मान सकते। अनस्था मृत्यु भय का नतीजा ही है। वांछित व्यक्ति जगन्नाथ का आश्रय मिल जाने पर योके अस्वाभाविक, कृत्रिम मृत्यु का वरण अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव ही है। जहाँ समाज अपनी इच्छा से जीने के लिए इजाजत नहीं देता, कम से कम अपनी इच्छा से मर सकूँ। योके ने यही किया-योके के सम्बन्ध में धनाविद्या पटेल का निष्कर्ष है, "मैंने स्वतंत्रता को चुन लिया।" (अपने-अपने अजनबी 59) इस हरामी दुनिया में जहाँ कुछ भी वरण करने की स्वतंत्रता नहीं है, उसने हमारी मौत को चुन लिया। जब कि सेल्मा नहीं चुन सकी थी। योके की यही विजय थी और वह कहती है,

> विजय का यही अपूर्व संतोष है जो उसे उस व्यक्ति से संपन्न करता है कि वह ईश्वर तक तो क्षमा कर सके। सेल्मा की मृत्यु के समय उसमें क्षमा माँगने का भाव जागा था और उसे लगा था कि क्षमा माँगने के भाव में ही ईश्वर है। किन्तु आज वह ईश्वर तक को क्षमा कर देने की स्थिति में है। इसको योके का प्रलाप या उन्माद भी कहा जा सकता है, लेकिन यह हमारी, भीड़ वालों की दुनिया की दृष्टि होगी। योके की नहीं, जगन्नाथ और उन जैसों की भी नहीं। (अपने-अपने अजनबी 60)

इससे स्पष्ट होता है कि योके एक उत्साही, नटखट तथा जीवंत सैलानी युवती है।

कुंठित व्यक्तित्व- असहज जीवन कुंठा को जन्म देता है। जब जीवन का सहज क्रम रुक जाता है तो कुंठा को जन्म मिलता है। व्यक्ति अपनी तीव्र इच्छा या अभिलाषा को पूरा नहीं होता देखता तो वह निराश हो जाता है। यही निराशा मानसिक तनाव को जन्म देती है। यही तनाव उसको चिंतित बना देता है। ऐसे लोग विद्रोहात्मक और तनावग्रस्त दिखाई देते है। अपनी इसी कुंठा के कारण कई बार वह असामान्य व्यवहार करने लग जाते है। उनमें मानसिक विकृति उत्पन्न हो जाती है। आधुनिक समय में भले ही विज्ञान ने कितनी ही उन्नति क्यों न कर ली हो, लेकिन आधुनिक मानव आज अधिक सीमा में कुंठा से ग्रस्ति है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने मानव में बढ़ती इस कुंठा और उसके दुष्परिणामों को अपने पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कभी-कभी व्यक्ति अपने आप को असहाय और असुरक्षित महसूस करने लग जाता है।

'शेखर: एक जीवनी' उपन्यास का नायक शेखर में इन विकृत परिवृतियों की छानबीन की गयी। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार पशु तथा मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में कोई खास अन्तर नहीं देखते, आहार, निद्रा, भय ये मूल प्रवृतियाँ पशु तथा मनुष्य दोनों में समान होती हैं। धर्म ही एक ऐसा तत्व है जो मनुष्य को पशु से अलग कर देता है। इनमें भी खास कर 'काम, अहम और भय' जो व्याख्या तथा विश्लेषण से प्रकाश में आते हैं। वे ही मनोवैज्ञानिक उपन्यास के प्राण तत्व है। जीवन की प्रारम्भिक स्मृतियों में

इन प्रवृतियों का विद्यमान होना यह बताता है कि ये प्रबल प्रवृतियाँ हैं और जन्मजात भी। इन तीनों प्रवृतियों में कोई जन्म क्रम नहीं होता, लेकिन काल की दृष्टि से कालऐक्य अवश्य पाया जाता है। नायक शेखर में इन तीनों प्रवृतियों का उदभव तभी हो चुका था, जब वह तीन वर्ष का रहा। इन्हीं तीन प्रवृत्तियों के प्रभाव को और इन के स्वरूप को बयान करता हुआ मृत्यु की छाया में बैठा शेखर अपने अतीत जीवन को ही जी रहा था। किन-किन सम-विषम परिस्थितियों में इन प्रवृत्तियों का स्वरूप कैसा हो सकता है ? उसका विश्लेषण करता हुआ अपने जीवन के साथ-साथ इनका सम्पूर्ण इतिहास भी कहता है। वास्तव में इन तीनों प्रवृत्तियों का विकास दिशाओं और इनके प्रभाव का इतिहास ही 'शेखर: एक जीवनी' है। शेखर में भय नामक प्रवृत्ति का प्रवेश तो हुआ, लेकिन आगे चलकर वह अपना कोई अस्तित्व न रख सका। वैसा ही शेखर का जीवन अहम और यौन वृत्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिओं से अधिक प्रभावित रहा और इन दोनों में भी अहम का प्रभाव सर्वाधिक है। उसके जीवन के सभी पहलूओं पर अहम का ही साम्राज्य है लेकिन जब जब उसके जीवन में नारी का प्रवेश होता है तब उस का अहम आत्म समर्पण का रूप धारण कर लेता है। भय तो उसके जीवन में केवल एक बार प्रवेश करता है जब वह अजाएब घर के बाघ को देखकर डरा अवश्य था पर एक दिन उसने जब घास फूस से बने बाघ को जाना से मार डालता है, भय उस के जीवन से सदा के लिए भाग जाता है।

शेखर एक तेज और सजग व्यक्ति है। उसके मन में हर वक्त यह कौतूहल बना रहता है कि हर चीज की छान-बीन कर तथा वस्तु-स्थिति को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करता है। उसे दुराव-छिपाव से चिढ़ थी। इसलिए परिवार के हर सदस्य के प्रति वह शँका व्यक्त करता है, क्योंकि कोई भी स्पष्टवादी नहीं है। किसी भी बात को वह गोपनीय नहीं मानता, जो आधुनिक समाज की मानसिकता है, वह शेखर में प्रतिफलित मिलती है। जब उसमें किसी विषय के बारे में जानाने की जिज्ञासा पैदा होती है, तो उत्तर के रूप में उस को जो शब्द सुनाई पडते हैं, वह उनसे संतुष्ट नहीं है जैसे- 'भाग जाओ-बड़े होकर सोचन-जाकर पढ़ो।' ऐसे उत्तरों से वह संतुष्ट नहीं है क्योंकि उस से

कुछ छिपाया जा रहा है जिसके लिए उसे अयोग्य समझा जाता है। शेखर अपनी माँ, पिता, रसोइया, आत्ती और जिन्निया आदि सब से सदा प्रश्न पूछता रहता है लेकिन उसे संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता था। पहले सरस्वती पर उसका विश्वास जमा था कि वह कुछ हद तक सच-सच बताती थी बाद में सरस्वती के प्रति भी उसकी धारणा बदल गयी, क्योंकि वह भी पूरी बात नहीं बताती है, क्योंकि सरस्वती पहले यह बताती थी कि बच्चे माँ के शरीर से निकलते हैं लेकिन कहाँ से ? कैसे ? और क्यों आदि प्रश्न पूछने पर वह भी चुप रह जाती थी, साफ-साफ नहीं बताती थी। सरस्वती पर शेखर को पहले जो विश्वास था वह विश्वास दूर हो जाता है। जब उसकी शादी होती है और एक लड़की जन्मती है। उस को यह आश्चर्य हुआ-सरस्वती के शरीर में भी बच्चे हैं लेकिन उसने कभी नहीं बताया। इस प्रकार जिज्ञासा-वृत्ति के शाँत न होने के कारण तनावग्रस्त चरित्र के रूप में इसमें शेखर की मानसिक स्थिति का अँकन हुआ है।

कुंठित तथा जिज्ञासु शेखर स्वयं की मुक्ति के लिए बहिर्मुखता से अन्तर्मुख प्रवृति का हो जाता है। उसके अनुभव में यह आता है कि इस दुनिया में कोई किसी का नहीं है। यह भी नहीं कि कोई स्वामी, निर्देशक, संरक्षक, भाग्यविधाता बना सके। ऐसी स्थिति में वह सोचता है बुद्धि के कहे अनुसार चलूँ, क्योंकि ऐसा कोई नहीं जिस पर निर्भर रहा जा सके। वह यह भी महसूस करता है कि कभी-कभी बुद्धि भी मंद पड़ जाती है और उत्तर देने में असमर्थ रह जाती है। तब उस को यह बोध होता है कि बुद्धि यदि मंद पड़े, असमर्थ हो जाए पर झूठ तो नहीं बोलेगी। अधिक से अधिक मौन तो रहेगी। इसी पर विचार करते घंटों बैठा रहता था। जंगलों में भटका करता था। वह अब अनुभव की भट्टी में तपे हुए सत्य का साक्षात्कार करना चाहता है। उसके मन में प्रश्नों की जो श्रृंखला बनी, उसका उत्तर अपने अन्तर में खोजता है और अनुभव के आधार पर निकालन चाहता है। इसी सत्य की खोज में एक दिन वह राजकुमारी जेबुन्निसा के महलों में पहुँचा, जो अब खंडहर मात्र थे। महल में कमरों की छतें तो थी नहीं, वह दीवार पर चढ़ गया और डल देखने लगा।

> धीरे-धीरे उस पर एक सम्मोहन सा छा गया एक मूर्छा सी, उसे लगा उसके पास, उसके पास ही नहीं, उसके भीतर उसके आस-पास कुछ आया है, कुछ, जिसका वह वर्णन नहीं कर सकता, लेकिन जो बहुत सुन्दर है, बहुत भव्य, बहुत विशाल, बहुत पवित्र, इतना पवित्र कि शेखर को लगा, वह उस के स्पर्श के योग्य नहीं, वह मैला है मल में आवृत है...। उसी सम्मोहन में उसने एक-एक करके अपने सब कपड़े उतार डॉले, नीचे फेंक दिये और आँखे मूँद कर खड़ा हो गया, बिल्कुल नंगा, आकाश के सामने और उस पवित्रतापूर्ण, उसके स्पर्श से रोमाँचित...वह क्या था ? ईश्वर ? प्रकृति ? सौन्दर्य ? शैतान ? दबी वासना ? (शेखर: एक जीवनी 87) उसकी कुछ भी समझ में न आया, एक भार-सा उसके ऊपर और लद गया।

'नदी के द्वीप' का नायक 'भुवन' अज्ञेय के प्रथम उपन्यास के नायक 'शेखर' का ही विकासमान प्रतिरूप तथा प्रौढ़ रूप है। स्वयं अज्ञेय का ही परिशिष्ट है और प्रस्तावित तीसरा भाग है पर अवश्य ही एक विशिष्ट सन्दर्भों में। 'शेखर' का बहुआयामी जीवन के प्रारम्भ में एकान्तप्रिय है लेकिन 'नदी के द्वीप' में भुवन के रूप में आकर सीमित हो जाता है। 'नदी के द्वीप' में चित्रित भुवन का परिचय डॉ. भगवतीचरण उपाध्याय के शब्दों में इस प्रकार हैं कि,

> भुवन गंभीर, विचारशील, शिष्ट, व्यक्तिनिष्ठ, भावुक, कामुक, एकान्तप्रिय, कमजोर, लोकशाही असामाजिक और विचारशील पंडित है। जटिल प्रश्नों पर विचार करता है। सत्य और तथ्य के अन्तर का विवेचन करता है। (नदी के द्वीप 97)

भुवन एक बुद्धिमान-विचारवान गतिशील व्यक्ति है, जो अपनी क्षमता का सदा सदुपयोग करता रहता है, यों स्वयं भुवन के शब्दों में..."अपनी प्रतीभा का उपयोग करना, प्रस्फुटित होने का मार्ग न देना, उसे जीवननंद की खोज में न लगन निष्क्रिय

आत्महनन है, अंधकार का आत्म समर्पण है।" (नदी के द्वीप 72) नायक भुवन के व्यक्तित्व को चन्द्रमाधव के शब्दों में इस प्रकार देख सकते हैं कि,

> ...वह खिलाड़ी है, नायक है, वह जिन्दगी को अँगूर के गुच्छे की तरह तोड़कर उस का रस निचोड़ लेगा, लता को झंझोड़ डालेगा, कुंज में आग लगा देगा, वह आराम से नहीं बैठेगा। एक पैनी ईर्ष्या की नोक उसे साड़ने लगी। (नदी के द्वीप 53)

नायक भुवन एक आदर्श शिक्षक भी है इसलिए गौरा जो उस की शिष्या तथा बाद में सहयोगिनी रही। उस के प्रति अधिक ध्यान तथा दिलचस्पी रखता है। इस सम्बन्ध में उपन्यासकार अज्ञेय के शब्द द्रष्टव्य हैं- "भुवन तटस्थ है, पर गौरा के भविष्य में गहरी दिलचस्पी है, वह क्या करती है या नहीं करती है... उस का क्या होता है...यह भुवन के लिए अत्यंत महत्त्व रखता है... क्यों ? क्योंकि वह उसकी भूतपूर्व शिष्या है।" (नदी के द्वीप 62) डॉ. रणवीर रांगा के अनुसार, "भुवन के जीवन में निरंतर उसकी काम भावनायानी रेखा की ही प्रबलता रही, पर अन्ततोगत्वा उसने गौरा को पूर्णतः स्वीकार कर लिया, उसके पीछे काम प्रवृत्ति नहीं थी।" (उपन्यासकार अज्ञेय 192) इस प्रकार स्पष्ट है कि वैज्ञानिक डॉक्टर भुवन संवेदना से युक्त तथा स्वतंत्रता के लिए संघर्षवान है।

नायक भुवन से रेखा और गौरा दोनों प्यार करने लगती हैं, वैसे तो भुवन दोनों से बड़ा है। गौरा जो पहले उस की छात्रा थी, अब सहयोगनी बन गयी है और भुवन के प्रति उसका श्रद्धा-मिश्रित प्यार है। रेखा उसे शिशु के रूप में देखती है जब कि गौरा उससे बढ़कर देव शिशु के रूप में। इस प्रकार दोनों नरियों के प्यार ने भुवन को एक विशिष्ट व्यक्ति बना दिया। वैसे उस का व्यक्तित्व प्यार के लायक नहीं है। वैसे तो वह विज्ञान का प्राध्यापक है, विज्ञान के साथ-साथ भुवन साहित्य में भी रूचि रखता है। प्रेम के विषय में तटस्थ तथा 'रिजर्व' रहता है। गौरा गृहिणी है, इसलिए वह भुवन के लिए प्रेय और श्रेय हो सकती है, लेकिन रेखा के मन में वह बैठ गया है। उस के बार-

बार आग्रह करने पर भी वह उस के साहचर्य के लिए तैयार हो जाता है। रेखा के आद्यंत विश्वास भरे समर्पण के कारण ही प्रेम पथ पर कुछ कदम आगे बढ़ने के लिए वह विवश हो गया। प्यार की दृष्टि से वह साफ नहीं है, न प्रतिबद्ध ही, न पक्षधर। प्रेम के सन्दर्भों में तो भुवन उलझा हुआ ही दिखाई देता है। रेखा के बार-बार आने पर भी उस के मन में 'प्रेम' का अँकुर नहीं उगता। दूसरों के लिए वह मोहित व्यक्ति मात्र है। भुवन के व्यक्तित्व का दूसरा पहलू है आशावादी मानव। स्वयं भुवन के शब्दों में- "हमें केवल युद्ध नहीं जीतना है, हमें शाँति भी नहीं जीतनी है। हमें संस्कृति जीतनी है, विज्ञान जीतना है, नीति जीतनी है, हमें आशा नहीं खोनी है।" (नदी के द्वीप 91) भुवन रेखा की ओर क्यों बढ़ रहा है ? उसे अपने इतने निकट क्यों आने दे रहा है ? मुग्धावस्था में जी रहे भुवन को पता नहीं है, न उसमें किसी अभाव की पूर्ति की कोई उमंग है, न दर्द भरे अतीत के बोझ से मुक्त होने की कामना उसके मन को मथ रही है, न उसके भीतर कोई समर्पण हो रहा है, न उसकी कोई चिराकाँक्षित कल्पना है, न जीवन की मधुरता का कोई सपन, न उस के पास देने को कुछ है और न कुछ पाने की कामना। इस लिए "तुम्हारा तारा कौन सा है ?" (नदी के द्वीप 117) रेखा के पूछने पर उस का मूढ़ लड़खड़ा जाता है। वह उलझन में पड़ जाता है। वह बड़े नाटकीय ढ़ंग से कहता है- "लो क्या गलती हुई मुझसे- मैं तो उस पर लेबल लगाना ही भूल गया।" (नदी के द्वीप 118) वह न गौरा का नाम ले पाता है और न यही कह पाता है कि रेखा, वह तारा तुम हो, क्योंकि अपना तारा चुनने जैसी एकोन्मुख प्यार-डूबी संकल्पना उस में कभी जन्मी ही नहीं। इससे स्पष्ट है कि भुवन की सारी संवेदनाएँ उलझी हुई हैं, उन्हें सुलझाने का उपाय वह नहीं कर पा रहा है। अनयास चाहे रेखा से या गौरा से प्रेम के जो क्षण और दिन प्राप्त होते हैं, वे ही उसके लिए पर्याप्त हैं और प्रेम के सम्बन्धों में यही उस की इतिश्री है।

आत्मपीड़ा सहने में भुवन की आस्था है। इस रुग्मता के कारण वह स्वयं और दूसरों के व्यक्तित्व को विकास के अवसर नहीं दे पाता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस चरित्र को प्रस्तुत करने में अज्ञेय ने अपनी कुशलता का परिचय दिया। भुवन की

सौन्दर्यासक्ति भी साधारण कोटि की ही है, तभी रेखा के बार-बार आग्रह करने पर कहता है, "तुम वही सौन्दर्य हो...नीलाम्बरा रात का सौन्दर्य और तुम्हारे केशों में असंख्य तारें हैं।" (नदी के द्वीप 136) यह मात्र सौन्दर्याशक्ति ही है। कभी प्रेम का रूप धारण नहीं कर पाती। दान और माँग चरम श्रेणी की आनंदानुभूति के रस में विलीन हो जाते हैं। नारी के इस महादान को, जो पुरुष के जीवन की बड़ी उपलब्धि है, स्वीकार करने की क्षमता भुवन में नहीं है। वह केवल प्रतिबद्ध प्रेम से ही सम्भव है। इस स्थिति में भुवन जब उलझकर रोता है, ममतामयी रेखा उसके आँसू अपनी छाती और बालों से पोंछ कर उसे अपने आँचल में ढक लेती है। यह भुवन की उलझी मानसिकता का प्रणाम है- "यह इन्कार नहीं रेखा ! वह सौन्दर्य की चरम अनुभूति होती है– उस के सौन्दर्य को मैं मिटान नहीं चाहता, जोखिम में नहीं डालना चाहता।" (नदी के द्वीप 136)

भुवन के पास प्रेम के सम्बन्ध में जो सृष्टि की संचालिका शक्ति है, जीवन को परिचालित करती है तथा जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है- स्वस्थ दृष्टि का अभाव है। पत्नी तथा प्रेयसी के भेद को समझने की शक्ति भी उसके पास नहीं है जो प्रेम रेखा की ओर अनयास ही मिलता है। उस को स्वाभाविक तथा औपचारिक मात्र मानता है। नारी के इस समर्पित भाव को वह महत्त्व नहीं देता, न उस का ख्याल ही करता। काम, प्रेम तथा श्रृंगार के प्रति उसका दृष्टिकोण परम्परागत ही मिलता है। पुराणों में यह स्पष्ट कहा गया है कि, "नारी माँगे तो 'न' कहने का अधिकार पुरुष को नहीं है, शील विरुद्ध है। सर्वत्र मादा निर्णायिका है– क्योंकि वह माँ है।" (नदी के द्वीप 155) भुवन प्रेम को एक जैविक क्रिया मात्र मानता है, न कि प्रेरक शक्ति, न आत्मा की जड़ता को तोड़नेवाली। इसलिए वह रेखा को महनीय मानता है, केवल एक जैविक नारी तत्व के रूप में..."कैसे यह नारी सब कुछ इस तरह उत्सर्ग कर दे सकती है- बिना कुछ प्रतिदान माँगे- बल्कि सुरक्षाओं की सब सम्भावनाओं को लात मारकर"(नदी के द्वीप 157) और भुवन को पहली बार लगा है कि "क्योंकि वह भुवन को प्रेम करती है, उसे कुछ देना चाहती है" (नदी के द्वीप 159) पर यह एक प्रश्नमूलक भाव है। क्योंकि वह निश्चय ही

प्रेम की इस शक्ति का अनुभव नही कर सकता है। इस प्रकार भुवन न प्रेम के महत्त्व को मानता है और न प्रेम की महान शक्ति से अवगत ही है। भुवन से सम्बन्धित निम्न प्रसंग से यही दृष्टिगोचर होता है कि, "....वह क्या चाहता है, क्या देना चाहता है, क्या वह रेखा को चाहता है, प्रेम करता है, नकारात्मक उत्तर उसके भीतर से नहीं उठता, लेकिन क्यों नहीं सहज उत्तर आता, क्यों वह स्तब्ध है।" (नदी के द्वीप 160) रेखा की फुलफिलमेंट को भी भुवन गम्भीर नहीं मानता, सुधार ही मानता है। यह दाता की अनुभूति को अपना फुलफिलमेंट मानकर आत्महत्या के बिन्दु तक पहुँचता है,

> ...तो क्या यही फुलफिलमेंट नहीं है कि कोई किसी को वह चरम अनुभूति दे सके- देने का निमित्त बना सके, जो जीवन की निरर्थकता को सहसा सार्थक बना देती है। सचमुच ऐसे संधि-स्थल पर ही मारना चाहिए, कहते हुए कि मैं कुछ दे सका। (नदी के द्वीप 160)

रेखा के प्रति न वह अपनी सहानुभूति व्यक्त करता है, न उसके समर्पित भाव के लिए बधाई ही। इसलिए रेखा जिस भुवन के लिए अपने को समर्पित कर चुकी है, उसकी जड़ता, पाखण्ड, पाषाण हृदय तथा निर्मल भाव की टिप्पणियाँ करती है "...तुमने मुझे एक बार भी नहीं बताया कि मेरे लिए तुम्हारे हृदय में क्या भाव हैं ?" (नदी के द्वीप 164) प्रेम, स्नेह, दया, संवेदना, करुणा, क्या था कि केवल मैं एक साहसिका हूँ, जो अनाधिकार तुम्हारे जीवन में घुस आई। भुवन इस का कोई उत्तर नहीं देता और पुनः वैसे ही रति व्यापार के लिए आगे नहीं बढ़ता या फिर रेखा का स्वाभाव ही उसे बढ़ने नहीं देता। भुवन पर इस का कोई असर नहीं है, न इसके सम्बन्ध में उस के मन में कोई उथल-पुथल और न ही रेखा के इस समर्पण भाव को जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानता है। वह गौरा के साथ माँसल प्रेम के लिए विवाह बँधन में बन्ध जाना चाहता है यों स्वयं भुवन के शब्दों में,

> राह चलते जिसे बैठे-बैठे जानूँगा मेरे पीछे कोई है और मुड़कर नहीं देखूँगा और वह झुक कर अपने खुले बाल मेरी आँखों के आगे डाल देगी

> उस दिन मैं जान लूँगा कि मेरी खोज, कि मेरे लिए खोज समाप्त हो गई और पड़ाव आ गया। (नदी के द्वीप 239)

इससे यह भी प्रमाणित होता है कि रेखा को लेकर उसके मन में 'डीयररेस्ट द पेन ऑफ लविंग यू' जैसी अनुभूति नहीं है। अब वह गौरा की ओर आकर्षित है। उसके पाँव भी गौरा की तरफ ही बढ़ रहे हैं। इस प्रकार प्रेम के सम्बन्ध में भुवन का उलझा हुआ रूप सामने आता है और भुवन गौरा से कहता है कि तुम रेखा का स्थान ले सकती हो और मेरे मन में रेखा के लिए कोई खास जगह नहीं है। गौरा को छोड़कर जब सेना में चला जाता है तब वह और अधिक उद्वेलित और उलझने लगता है। रेखा के पत्र उसे फिर गौरा से हटाकर रेखा की ओर खींच लेते हैं और फिर वह उस में समा लेता है और कहता है,

> ...पूर्व स्मृतियों ने एक अद्‌भुत भाव उस में भर दिया, जिस में वात्सल्य, करूणा, उत्कंठा और एक हल्की जुगुप्सा भी थी। उस का मन कहता है कि वह ऐसा इतना बड़ा दान नहीं लेगा, जो दाता और प्राप्त दोनों को संकट में डाल दे। पर दान तो वह ले चुका। अतः वह क्या करेगा ? इसे परिणाम तक ले जाकर सोचना है। (नदी के द्वीप 239)

यहाँ फिर भी भुवन की संवेदना समवेदना तक नहीं पहुँची और उसकी सारी संवेदनाएँ उलझी हुई हैं। जिस वक्त भुवन को रेखा के साथ रहना था, वह नहीं रह पाया, गर्भापात के बाद वह दायित्व-बोध का अनुभव करता है और रेखा को मौत के मुँह से बाहर खींच लाने में सफल होता है- "रेखा के उदात्त प्यार, अटूट समर्पण और प्राणांतक दर्द भुवन से इतना भर कहला लेने में सफल हुए, 'हाँ रेखा', इससे ज्यादा नहीं।" (नदी के द्वीप 240) वह कैसे कह गया और इसका अर्थ क्या है यह उलझा हुआ विमूढ़ नहीं जानाता, जो कि रियल भुवन है।

यह सब बनावटी है, असली नहीं। इसके बाद रेखा को वह सदा के लिए अपने हृदय से निकाल देता है। रेखा के नाम पर भुवन के पात्र का निम्न अँश ही इस का

प्रमाण है। जो अनुभूतियाँ हमें कभी मिलती हैं वे ही सीमा के बाद अलग कर देती है, सदा के लिए और अंतिम रूप से और यह मान लेने के बाद यह कहने का कोई मूल्य नहीं रह जाता कि, "रेखा, मैं अब भी तुम्हें प्रेम करता हूँ उतना ही, 'पर'।" (नदी के द्वीप 262) यह 'पर' बहुत आघाती 'पर' है। यह 'पर' चरित्र को कलँकित करने वाला 'पर' है, जो सहयोगिनी को आत्मघात के लिए प्रेरित भी कर सकता है। गौरा की ओर बढ़ने के लिए भी उस के मन में नैतिक बल नहीं है। डॉक्टर रमेश से शादी करने के बाद रेखा ही भुवन को गौरा को अपनाने पर बल देती है। भुवन ने अगर किसी से प्रेम किया है वह गौरा से ही, न कि रेखा से। वह रेखा की जो प्रशंसा करता है, चाहे उस में कृतज्ञता हो, लेकिन उसे 'प्रेम' नहीं कहा जा सकता। रेखा के साथ भुवन के जो क्षण कटे उन में वासना की गन्ध ही अधिक है, प्रेम सुगन्ध नहीं। नारी की उत्सर्ग भावना का प्रतिफल नहीं है कि रेखा हर अवस्था में भुवन की रक्षा करती रहती है, यद्यपि भुवन ने उसके साथ निर्ममता से व्यवहार किया। प्रेम के क्षेत्र में रेखा और गौरा की तुलना में भुवन बहुत बौना लगता है। उन दोनों की भाँति प्रेम के उच्च धरातल पर वह पहुँच नहीं पाया। 'नदी के द्वीप' का भुवन इसलिए भुवन है कि रेखा और गौरा के प्रेम को पाकर भुवन बना, प्रेम देकर नहीं। रेखा और गौरा ही हैं जो भुवन को प्रेम के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करती हैं। काम, प्रेम तथा श्रृंगार के प्रति न उसको विवाह व्यवस्था में विश्वास है, न प्रेम के साथ ही जीवन-यात्रा करता है। इस प्रकार भुवन दिशाहीन आधुनिक युवा-पीढ़ी का प्रतिनिधि बनाकर सामने आता है।

जब रेखा के समक्ष चन्द्रमाधव की दाल नहीं गलती है तो वह गौरा को प्राप्त करने के लिए उस की ओर बढ़ता है। वह उसे कई प्रकार के प्रलोभों में डालना चाहता है और कई स्वांग रचाता है, लेकिन गौरा की ओर से भी उसे निराशा ही हाथ लगती है। अन्त में वह तारिका चन्द्रलेखा से विवाह कर अपनी सनसनी की मंजिल पाता है और अपनी काम तृष्णा को बुझाने लगता है। इस प्रकार जीवन के प्रति उसकी दृष्टि भोगवादी रही। वह नारी-पुरुष सम्बन्धों को जैविक स्तर तक मात्र स्वीकारता है। पूरे उपन्यास में चन्द्रमाधव ही एक ऐसा पात्र है जिसका जीवन दर्शन है 'सेक्स चर्वण'। इस

प्रसंग से चन्द्रमाधव का यही जीवन-दर्शन स्पष्ट होता है- 'हर औरत चुड़ैल होती है।' यही नहीं, वह नरियों के लिए इतनी अस्वस्थ, विकृत, भ्रष्ट और अमानवीय अनुभूति से भर उठता है,

> डैमू आल विमेन...नहीं सब नहीं, केवल उन्हें जिन्हें तबियत माँगती है, तबियत यानी बाधा, एक गरम लपलपाती जीभ...राटन मिडल क्लास वीमैन...दबी वासनाओं की पुतली, मक्कर बीमार मर्दखोर औरतें...ठीक कहते हैं कम्यूनिस्ट, इस भद्रवर्ग को मटियामेट किए बिना स्वस्थ सामाजिक सम्बन्ध हो ही नहीं सकते। (नदी के द्वीप 53)

शायद यही सोचकर उसने "हेल्दी आर रिच क्लास वुमैन" चन्द्रलेखा से शादी की है। जीवन के प्रति चन्द्रमाधव की भोगवादी दृष्टि का प्रमाण अज्ञेय के शब्दों में है,

> वह जिन्दगी का तमाशाई नहीं है, वह खिलाड़ी है, नायक है, वह जिन्दगी को अँगूर के गुच्छे की तरह तोड़कर उस का रस निचोड़ लेगा, लता को झंझोड़ डालेगा, कुँज में आग लगा देगा, वह आराम से नहीं बैठेगा। (नदी के द्वीप 53)

चन्द्रमाधव के चरित्र तथा व्यक्तित्व के बारे में अज्ञेय ने जो निष्कर्ष निकाला वह उसके लिए एकदम चरितार्थ है। वह सिवाय तीखी उत्तेजन के कुछ समझता ही नहीं। उसने इसी उत्तेजन- सनसनी की खोज में अपना सुखी घर संसार छोड़ा, भुवन, रेखा, गौरा जैसे मित्रों को खो दिया और सूक्ष्मतर संवेदनाओं की दृष्टि से कुंठित हो गया। उसे न समाज-व्यवस्था पसंद है और न उसके भीतर वह तीव्र संवेदनात्मक बोध है, जो नीति का मूल है। उसके लिए सब कुछ अमान्य है। चन्द्रमाधव का निम्न कथन उसी को प्रतिबिम्बित करता है, "सब मानों-प्रमाणों को तोड़ गिराये...मन्यताओं को अमान्य कर दें...व्यक्ति न हो, मनुष्य न हो एक शक्ति हो एक नीतिमुक्त स्वतंत्र, सहस्त्र-शीश, कोटि बाहु, अजस्त्र-वीर्य जैविक प्रक्रिया का एक स्फुरण।" (नदी के द्वीप 191)

चन्द्रमाधव उपन्यास के अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक क्रियाशील तथा हमारे निकट है। यद्यपि उस में यह असाधारण तो है, वह अपने बीबी-बच्चों को सर्वथा तिलाँजलि देकर प्रेमिकाओं के अनुनय-विनय में लगा रहता है, तथापि असफलता की दिशा में वह जो प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करता है, उनमें अधिक जीवनानुरूपता है। भुवन जैसे व्यक्ति समाज में दीपक लेकर खोजने पर भी कदाचित ही मिल पाएँ, जब कि चन्द्रमाधव को खोजने में अधिक किल्लत नहीं होगी।

जब हम 'नदी के द्वीप' में काम, प्रेम तथा श्रृंगार की अवधारणा पर प्रकाश डालेंगे तो स्पष्ट हो जाता है कि काम, प्रेम तथा श्रृंगार के बारे में अज्ञेय ने जो अनुभव किया, उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति ही यहाँ पर हुई है। काम, प्रेम तथा श्रृंगार सम्बन्धी उनकी जो निजी तथा अनुभूति जन्य संवेदना ही यहाँ पर अभिव्यक्त है, लेकिन यह संवेदना न समवेदना तक पहुँचा पाये और न उसको स्पष्ट अभिव्यक्ति ही दे पाये। यहाँ पर भी अज्ञेय का उलझा हुआ व्यक्तित्व ही नज़र आता है। उनके क्षणवादी दर्शन, व्यक्ति-औचित्य की पक्षधरता, व्यक्तित्व की द्विपीय परिकल्पना व्यक्ति और समाज को लेकर उनकी द्विमुखीय दृष्टि ही यहाँ परिलक्षित होती हैं। सहयोग जनित और साहचर्य जनित प्रेम की तरह प्रथम दर्शन से प्रेम इन सब को आप स्वाभाविक मानते हैं,

> ठीक उपमा शायद साँझ का आकाश है। एक क्षण सून, कि सहसा हम देखते हैं, अरे वह तारा ! और जब तक हम चौंक कर सोचें कि यह हमने क्षणभर पहले क्यों न देखा- क्या तब नहीं था ? तब तक इधर-उधर, आगे ऊपर कितने ही तारे खिल आये, तारे ही नहीं, राशि-राशि नक्षत्र मण्डल, धूमिल उल्काकुल, मुक्त प्रवाहिनी नभपयस्विनी- अरे, अकाश सून कहाँ है, यह तो भरा हुआ है, रहस्यों से जो हमारे आगे उद्घाटित हैं...प्रेम भी ऐसा ही है, एक समोन्नत ढलान नहीं, आध्यात्मिक संस्पर्श के नये-नये स्तरों का उन्मेष, उसकी गति तीव्र हो या मन्द, प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, वांछित हो या वांछातीत। आकाश चन्दोआ नहीं है कि चाहे

> तो तान दें, वह है तो है, और है तों तारों भरा है नहीं है तो शून्य ही शून्य है जो सब को धारण करता हुआ रिक्त बना रहता है। कभी 'पंत' ने भी कहा था, अनिल–सा लोक-लोक में कहाँ नहीं है प्रेम साँस-सा सब के उर में। (नदी के द्वीप 268)

अहम प्रेम मार्ग में बाधक है। जब तक हम अहमग्रस्त रहेंगे, सच्चे प्रेम को प्राप्त नहीं कर सकते। प्रेम की सच्चाई और अच्छाई का अनुभव हम समर्पण में ही कर सकते हैं। अहम का विलयन ही वास्तविक प्रेम है। यह विलय और विलगन व्यक्ति के जीवन को सुखमय तथा सार्थक बनाता है। यह प्रवृत्ति की अपेक्षा नारी में अधिक दिखाई देती है तभी तो कहा गया कि प्रेम करने में तथा प्रतिशोध लेने में नारी, पुरुष से हमेशा आगे रहती है। यही वह स्थिति है जब नारी अपने प्रियतम को सुखी रखने के लिए तथा स्वयं सुख को प्राप्त करने के लिए सुरक्षा की सब सम्भावनाओं को लात मारती है। इस समर्पण में प्रधानता की गुँजाइश ही नहीं रहती, यहाँ दान ही दान है, जहाँ माँग भी प्राकारांतर दान ही है। प्रेम की हर इच्छा दान स्वरूप होती है जो कुछ उसके पास है, उसमें उपजता है। अतिरिक्त विवशता उसमें होती है। यहाँ अपना सब कुछ देना ही सब कुछ पान है। 'नदी के द्वीप' में रेखा का यही समर्पण भाव दर्शाया गया- "आई एम फुल फिल्ड। अब मैं मर जाऊँ, तो परमात्मा के प्रकृति के प्रति यह अक्रोश लेकर नहीं जाऊँगी कि मैंने कोई भी 'फुलफिल्मेंट' नहीं जाना है-कृतज्ञ भाव ही लेकर जाऊँगी।" (नदी के द्वीप 269) इस प्रकार अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में भारतीय एवं पाश्चात्य मान्यताओं के नेपथ्य में विवाह-बँधन की पवित्रता पर बहुमूल्य विचार प्रकट किए हैं। प्रेम और विवाह की समस्या से जुड़े नैतिक और अनैतिक पक्षों पर प्रकाश डालने हेतु पात्रों की परिकल्पना की है। प्रेम, काम और श्रृंगार के बारे में उपन्यासकार अज्ञेय के विचार समय संगत एवं व्यक्ति-स्वतंत्रता के समर्थक भी हैं।

विवाह को ही प्रेम की अंतिम परिणति तथा कसौटी मान कर चलने वालों को यह बात अवश्य खटकती है, क्योंकि विवाह एक सामाजिक बँधन है जबकि प्रेम

स्वच्छंद अनुभूति। प्रेम का सम्बन्ध व्यक्ति के अन्तरंग जीवन से होता है, जबकि विवाह का सम्बन्ध बाह्य समाज से। प्रेम-दान से असीम आनन्द का अनुभव होता है। इसलिए प्रितम उस को सब से श्रेष्ठ और सर्वोच्च लगता है। विवाह कभी-कभी विच्छेद हो सकते हैं, लेकिन प्रेम न कभी विफल होता है, न विच्छिन्न। वह सदा ताजा रहता है और ताजा रखता भी। प्रेम के दान से प्रेयसी प्रतिदान में केवल एहसास की आशा महसूस मात्र करना चाहती है। इसलिए प्रिय के मनमंदिर में अपने स्थान को खोजती रहती है। ऐसा न हो, तो उसे घुटन का शिकार बनान पड़ता है, क्योंकि अगर वह कहीं की न हो, तो अपनी निस्सार, निरर्थक सत्ता का बोध उसे चलाता है। यहाँ प्रेयसी सब कुछ सहन करने के लिए तैयार होती है। प्रिय की उपेक्षा को स्वीकार नहीं कर सकती। वे जीवन को बल प्रदान करने वाले, रसमय बनाने वाले तथा जीवन को ताजा तथा ताजगी युक्त बनाने वाले होते हैं। यही प्रेम अज्ञेय का जीवन-दर्शन बनकर आता है और उनके उपन्यासों में अभिव्यक्ति पाता है। यहाँ विवाह अनिवार्य नहीं है। परम्परावादियों के लिए यह अवश्य खलता है, लेकिन अन्त में प्रेम ही फलता है।

'काल कथा' में भी विस्थापन की समस्या दृष्टिगत है। यहाँ विस्थापन, विभाजन का अभिशाप, आतंकवाद की मार झेल रहे लोगों के दर्द, पीड़ा के रूप में हृदय को उद्वेलित कर देता है। यहाँ बीजी और उनका परिवार विभाजन का दर्द सह रहे हैं। बीजी डॉक्टर के पास दवा लेने आती है और सदैव आतंकियों, विभाजन कर्त्ताओं की गालियाँ निकालती है। अखबार का सम्पादक नानावटी आयोग की खबर के तहत कोई वास्तविक कहानी जिसका प्रमाण हो सके दंगों को झेलने वाले किसी परिवार की कहानी जो प्रत्यक्षदर्शी सूत्रों के आधार पर हो, अपनी अखबार में छापना चाहता है। उसी के सन्दर्भों में वह डॉक्टर जो कि अखबार में भी पार्ट टाईम नौकरी करता है, को कवर स्टोरी ढूँढने को कहता है। तभी डॉक्टर को अपनी क्लीनिक पर आती बीजी की याद आती है तथा उसे वह उसकी कहानी सुनने को कहता है। वही कहानी जो वह कई बार सुनाना चाहती थी, पर डॉक्टर ने कभी सुनी नहीं थी। लाहौर से विभाजन के बाद आकर कानपुर में बीजी का परिवार बसा पर 84 के दंगों के कारण वहाँ से भी उन्हें

विस्थापित होना पड़ा। बीज़ी अपने विस्थापन का दंश सुनाती हुई कहती है, “अभी तो पाक से उजड़ने वाले जख्म भी नहीं भरे थे कि अचानक फिर से विस्थापन की पीड़ा ने हमारा लहू निचोड़ लिया।” (काल-कथा 101) बीजी ही नहीं कई ऐसे परिवार हैं जो विस्थापन की पीड़ा झेल रहे हैं। वह कहती हैं, “जब असुरक्षा की भावना किसी के मन में घर कर जाए तो शायद इससे बड़ी पीड़ा कोई हो ही नहीं सकती। आज तक हम विस्थापन की पीड़ा का दंश झेल रहे हैं।” (काल-कथा 102) विस्थापन की पीड़ा ऐसी है जो सदा सालती रहती है। जो लोग एक बार उजड़ जाते हैं वह ज़िन्दगी कैसे दोबारा शुरू कर पाएँगे कोई नहीं जाना सकता।

1984 के दंगों से पीड़ित लोग घर-घर में मिल जाएंगे जो एक तरफ विस्थापन का दर्द झेल रहे हैं दूसरी तरफ उग्रवाद का आतंक। न जाने कितने बदनसीब उग्रवाद से उत्पन्न हुए प्रतिक्रम का। डॉक्टर बीजी की बातों से व्यथित हो उठता है तथा मन में सोचता है कि,

> पंजाब के काले दिन और 84 के दंगों की स्थिति शरीर में दाद और चम्बल के समान है। कभी तो ऐसा लगता है कि इसमें इतनी खारिश छिड़ गई है मानो शरीर का वह हिस्सा अभी काट कर फैंक दिया जाए। (काल-कथा 107)

डॉक्टर आकाश डॉक्टर वर्मा के मैंटल हॉस्पीटल में प्रैक्टिस करता था। बीजी की बातें सुनकर उसे वह दिन याद आतें हैं। वहाँ एक सैनिक सुच्चा सिंह था। उसने दरबार साहिब के बल्यू स्टार के समय अपने साथियों को मार दिया जो दरबार साहिब को नुक्सान पहुँचाने आए थे तथा घायल हो गया। उसके बारे में बात करते हुए डॉक्टर वर्मा, डॉक्टर आकाश से बात करते हैं,

> सचमुच उग्रवाद बड़ी भयानक चीज़ है। उसकी शक्ल नहीं होती, कोई चेहरा नहीं होता। इसीका नतीजा है कि पंजाब में न जाने कितने घरों ने इसका संताप भोगा है ! विस्थापन की पीड़ा से पूरा पंजाब ग्रस्त था।

> बार्डर के साथ लगते गाँव तो खाली हो गए थे और शाम को श्मशानघाट की भाँति वहाँ सूनपन पसर जाता था। गलियों में केवल पैरों की आहट सुनती थी। वह भी पता नहीं पुलिस वालों की होती थी, फौजियों की या फिर उग्रवादियों की। (काल-कथा 114)

यह कहना सत्य है कि उग्रवाद ने पंजाब को इतना पछाड़ दिया है कि आज तक उसके संताप में पंजाब जल रहा है। लोगों ने धर्म और जाति के नाम पर कई बार इस विस्थापन का दंश झेला है। काल कथा में वज़ीरचंद भी विस्थापन का दर्द झेल रहा था। हिन्दोस्तान-पाकिस्तान विभाजन के समय उसका सब कुछ उजड़ गया था। विस्थापन का दंश उसका बाप झेल न सका। वज़ीरचंद को दोबारा ज़िन्दगी शुरू करनी पड़ी परन्तु वह पाक में राजा था, यहाँ आकर कंगाल हो गया। पहले विभाजन फिर उग्रवाद ने पंजाब को बुरी तरह नुक्सान पहुँचाया।

> काले सुरज का साया पंजाब ने बहुत सालों तक झेला। अगर उन काले दिनों का साया पंजाब पर न पड़ता, तो हरित क्रांति के बाद आने वाली योजनाओं ने आज असली जामा पहन लिया होता...कुछ लोगों ने अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिए पंजाब की युवा पीढ़ी को गुमराह करके उसे गर्म भट्ठी में झोंक दिया, जिसकी तपिश का दंश पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलेगा। (काल-कथा 117)

विभाजन के बाद भी पंजाब को बाँटने की कोशिश की गई। हिन्दु और सिख को भी बाँटने की कोशिश की गई। “पंजाब में हिन्दु और सिख दो अलग-अलग कौम नहीं हैं, बल्कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। एक शरीर तो दूसरी आत्मा।...नखून से माँस अलग नहीं किया जा सकता।” (काल-कथा 117-18) विभाजन तथा विस्थापन ने लोगों के घर के चिराग बुझा दिए। ऐसे जख्म दिए कि वर्षों तक जो नहीं भरे जा सकते। वह कहती है,

> जिसके घरों को आग लगती है उसी को महसूस होता है कि तपिश कितनी है।...जिनके घर के चिराग बुझ गए वे ही इस तपिश को महसूस कर सकते हैं या फिर वे औरतें जो सारी ज़िन्दगी अपने दुपट्टे को लाल रंग में भीगते हुए देखेंगी और उनके दिल में टीस उठेगी, जो लहू में भीगे हुए दुपट्टों से टकराकर वापस आ जाएगी। उनकी सिसकियों की आवाज़ कोई नहीं सुन पाएगा। (काल-कथा 125)

विभाजन हुआ, लोग विस्थापित हुए, पंजाब में दंगे हुए, उग्रवाद का दौर आया परन्तु इसके पीछे बहुत न सही दोषी सरकार भी है। डॉक्टर सिंह अकाश को कहता है,

> कहीं न कहीं सरकार का ही दोष होता है। कई एंजेसियां हैं जो काम करती हैं और जब उन्होंने चाहा उग्रवाद खत्म हो गया। बस पंजाब का विकास रोकन था, ताकि पंजाब बहुत बड़ी शक्ति बना कर सिर न उठा सके। थम गया उग्रवाद, लेकिन खत्म नहीं हुआ। एंजेसियां जब चाहेंगी, तब बोतल में छुपे हुए जिन्नों को बाहर निकाल लेंगी और जिन्न आदम-बो, आदम-बो करते हुए लोगों की तबाही फिर से करनी शुरू कर देंगे। (काल-कथा 115)

जितनी तबाही हुई है हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन पंजाब के लोग इतने उद्यमी हैं कि फिर कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगते हैं। एक नया इतिहास रचने के लिए तैयार रहते हैं। 'In Custody' उपन्यास में हम पति और पत्नी के बीच की असहमति को देखते हैं। इस उपन्यास में देवन उर्दू कवि से प्रभावित होकर एक कॉलेज में हिन्दी पढ़ाता है। वह सोचता है कि उसकी पत्नी सरला उसके लिए एक बाधा है क्योंकि उसकी शादी उसकी मर्जी के खिलाफ हुई थी। सरला एक ही इलाके में रहती है। देवन की माँ और चाची उसको देखती है कि यह देवन से शादी करने के लिए हर तरफ से ठीक बैठ रही है, "plain, penny-pinching and congenially pessimistic." (In Custody 67) देवन जब सरला से शादी करता है तो वह एक अध्यापक से ज्यादा कवि

था। सरला उच्च अकाँक्षाएँ रखने वाले व्यक्तित्व की थी। वह बहुत ही अमीर बनना चाहती थी और सभी प्रकार के ऐशोआराम चाहने वाली थी। वह कई प्रकार के विज्ञापनों से आकर्षित होती है,

> The magazine dream of marriage: herself stepping out of a car, with plastic shopping bag, full of groceries and filling them into the gleaming refrigerator. (In Custody 68)

सरला के सपने देवन के साथ शादी करके पूरे नहीं होते क्योंकि वह देवन के साथ एक छोटे से शहर में रहने के लिए चली गई थी। उसके लिए यह, "had cut two dark furrows from the concern of her nostrils to the corner of her mouth, as deep and permanent as surgical sears." (In Custody 68) देवन और सरला दोनों के बीच एक निराशा सी रहती है और दोनों एक दूसरे की निराशा को समझते भी हैं इसलिए वह एक दूसरे के सामने होने के लिए बचते रहते हैं। वह दोनों एक साथ नहीं रह पाते। देवन अपनी नराज़गी दिखाकर अपनी पत्नी के आरोपों से बचता है। घर में वह बहुत ही अक्रामक है जबकि घर के बाहर शाँत और नम्र। सरला ठेठ हिन्दु महिला है। वह कभी अपने पति द्वारा किए गए अन्याय के बारे में शिकायत नहीं करती है, "Deven knew that she would scream and abuse only when she is safely out of way, preferably in the kitchen, her own domain." (In Custody 146) देवन भी अपने आप को ठेठ और श्रेष्ठ भारतीय पुरुष होने का ढोंग करता है। वह अपनी निराशा और दुख साँझा कर सकता है परन्तु अपनी हार साँझी नहीं कर सकता क्योंकि वह उसके लिए अपमान जनक है। भारतीय पुरुषों के मनोवैज्ञानिक व्यवहार के अनुसार,

> Social conditioning definitely has a big role to play in their desire to dominate. Right from the very beginning, the patriarchal society, he is brought up in, implants an inherent sense of superiority and gender bias in the men. (In Custody 9)

सरला के भी अपने क्रोध और निराशा को व्यक्त करने के तरीके हैं। वह दिल्ली में एक दूसरी औरत के पास जाने का देवन पर संदेह करती है। वह अशिक्षित होने के कारण इससे परे नहीं सोच सकती है और देवन भी उसे समझाने की कोशिश नहीं करता है। देवन यहाँ हारा हुआ दिखाई पड़ता है,

> He felt aged and mould. He was sure his teeth had loosened in the night that his hair would come out in handfuls if he tugged it. That was what she might well do, he feared, to teach him not to venture out of the familiar, safe dustbin of their world into the perilous world of night-time bacchanalian revelry and melodrama. Now he would sink back on the dust heap like a crust thrown away, and molders. (In Custody 66-67)

वह दोनों अपने शब्दों और हरकतों से एक-दूसरे को हमेशा दु:ख पहुँचाने की सोचते रहते हैं परन्तु,

> A position which was as important to her as to him: if she ceased to believe in it, what would there be for her to do, where would she go ? (In Custody 194)

प्रसिद्ध उर्दू कवि नूर शाहजहाँबादी की हालत कुछ हद तक देवन के समान है। नूर एक पुराने कवि है जो न केवल कला के क्षेत्र में बल्कि अपने निजी जीवन में बदलते समय के साथ क्षय हो गया है। उसकी दो पत्नियाँ हैं। पुरानी पत्नी अपने पुराने और बूढ़े चेहरे वाली प्राणी है, “so straight in its lines, so military in its firmness.” (In Custody 89) वह घर के भीतरी आँगन में रहती है। नूर ने बाद में एक बेटे के लिए नर्तिका से शादी की। उसकी दूसरी पत्नी इम्तियाज बेगम, नर्तकियों के परिवार से थी और अपने गायन के लिए प्रसिद्ध थी। वह कवि और उनकी स्थिति का लाभ उठाती है,

> She wanted my house, my audience, my friends. She raided my house, stole my jewels- those are what she wears now as

> she sits before an audience, showing them off as her own. They are not her own, they are mine! And she sent my secretary away too. (In Custody 87)

यह पुराने कवि की निराशा और क्रोध व्यक्त करती हैं जब वह अपनी पत्नी के जन्मदिन पर एक कोने में चुपचाप और उपेक्षित बैठे रहते हैं। इस समय वह पुराना और धोखाधड़ी का कमज़ोर शिकार महसूस करता है जबकि इम्तियाज बेगम समारोह के आकर्षण का केंन्द्र है,

> ...a power and pointed creature in black and silver, coquetting beneath a shining veil which she held in place over her forehead while she turned her face from side to side, flashing smiles at her audience and making the ring on her nose glint with delight. She sat cross-legged and comfortable on the rug, her red-painted toes waggling with pleasure at the scene of which she was the undeniable centre. (In Custody 79)

वह नूर पर हावी है और वह उसके गुस्से से डरता है, "Nur began to cringe, his lips to pout, his glass to tilt and spill." (In Custody: 88) वह दयनीय स्थिति के साथ उसके बुलाने पर उठता है,

> She, being a dancer, is capable of creating melodramatic scenes, feigning to be ill to get Nur's attention. The two wives fight like ferocious felines to 'devour the helpless quaking flesh of the poet. (In Custody 117)

नूर एक दयनीय व्यक्ति होने के नते वहाँ स्थिति को सम्भाल नहीं पाता। वह एक अशिक्षित और नर्तकी पत्नी के बीच फँस सा गया है। वह अन्त में एक प्रामाणिक नींद के लिए ही दुआ करता है।

अन्तर्द्वन्द्व- अन्तर्द्वन्द्व वह अवस्था है जिसमें दो या तीन विरोधी प्रेरणाएँ उत्पन्न होती है तथा जिनकी एक साथ तृप्ति सम्भव नहीं होती। यह चेतन तथा अचेतन दोनो स्तरों पर हो सकता है। चेतन संघर्ष वह होता है जो पात्रों के चेतन मन में हो उसके कारणों से भली प्रकार से परिचित होते हैं। अचेतन संघर्ष वह है जो पात्रों के अचेतन में सक्रिय है। जिसके कारणों से पात्र अनभिज्ञ है। अधिकांश अन्तर्द्वन्द्व चेतन स्तर पर होते है। फ्रायड मानते हैं अन्तर्द्वन्द्व से ही सभी संताप पैदा होते हैं। इन लेखकों के पात्र भी चाहे वह नारी हो या पुरुष हो अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्ति हैं। अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्ति होने के कारण उनमें विवेक की कमी आ जाती है। जिसके कारण उनमें आपसी मतभेद प्रारम्भ हो जाते हैं। जब व्यक्ति में विवेक की मात्रा कम हो जाती है तो उसमें सोचने समझने की कमी हो जाती है जिसके कारण उसकी मानसिकता विकृत हो जाती है। आज आधुनिकता की दौड़ ने मनुष्य की मानसिकता को बहुत प्रभावित किया है। समाज में व्यक्ति को ऐसी बहुत सारी कठिनईयों का सामना करना पड़ता है जिसके कारण वह आन्तरिक द्वन्द्व में ही पड़ा रहता है। आलोच्य उपन्यास की रचना, जीवन की व्यापकता को लेकर नहीं, जीवन के व्यापक एवं शाश्वत प्रश्नों को प्रस्तुत करने के लिए हुई है। दो भिन्न सिद्धाँतवादी व्यक्तियों के बीच में कभी-कभी सिद्धाँत-भेद दीवार बना कर खड़ा होता है और दोनों व्यक्ति साथ-साथ रहते हुए भी जीवन भर असमझौतावादी स्थिति में ही रहते हैं। पश्चिम की मानसिकता पर आधारित इस उपन्यास के पात्र भारतीय उपन्यास के क्षेत्र में नया परिवेश प्रस्तुत करते हैं और नव जीवन दृष्टि भी। जहाँ आधुनिक काल की वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण देशकाल की सीमाओं को पार कर वैश्विक सभ्यता और संस्कृति का निर्माण कर रहा है, वहाँ साहित्य में भी पश्चिम की विचारधारा ने नवचेतन का अलोक भर दिया। जब साहित्य का सृजन समस्याओं को केन्द्र में रखकर होता है, पश्चिम और 'पूर्व' शब्द अपने आप में हट जाते हैं, ठोस समस्याएँ व्यक्ति के जीवन में और समाज से प्रकाश में आती हैं, जिनका समाधान व्यक्तिवाद, समाजवाद या मनोविश्लेषणवाद के आधार पर निकाला जा सकता है। यहाँ आलोच्य उपन्यास भी आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान की भित्ति पर निर्मित उपन्यास

है। उपन्यास के पात्र 'योके' और 'सेल्मा' के बीच यही रूचि-भेद-सिद्धाँत के आधार पर निर्मित तथा 'अपने-अपने अजनबी' शीर्षक के औचित्य को लेकर चलता है।

डॉ. अजय शर्मा के उपन्यासों मे केन्द्रिय दर्द विस्थापन का है। जिनमें मुख्यतः आजीविका, युद्ध की विभीषिका, विभाजन की त्रासदी, घर की आर्थिक तंगी, पीढ़ियों के वैचारिक मतभेद, युवाओं में गरीबी के अभिशाप से मुक्ति की तीव्र लालसा, आतंकवाद रूपी काले अंधेरों से निकल सुखद जीवन की तलाश। विस्थापन की समस्या, विस्थापित होते हुए लोगों की समस्या, उनकी मानसिक दशा, मनोवृत्ति का जीवन्त चित्रण अजय शर्मा के उपन्यासों में मिलता है। इससे मुक्ति के सफल-विफल प्रयास तथा अनुतरित प्रश्न भी समाविष्ट हैं।

ऐसा नहीं है कि इनके उपन्यासों में केवल विस्थापन की समस्या ही केन्द्र में है। अपितु आजकल विश्व जिन समस्याओं से दो-चार हो रहा है उनकी औपन्यासिक अभिव्यक्ति इनकी कृतियों में बखूबी उन्मिलित हुई है। इसके इलावा नारी व्यथा-कथा का मार्मिक चित्रण, नारी-पुरुषों के बदलते सम्बन्धों का वर्णन, राजनीतिक हत्थकण्डों से भ्रष्ट हुए समाज का चित्रण। लोकतंत्र के चौथे-स्तम्भ पत्रकारिता जिसका आधार सत्य और केवल सत्य होता है, परन्तु झूठ रूपी दीमक उसे जिस तरह खोखला कर रहा है, उसका बिम्बात्मक चित्रण भी मिलता है।

डॉ. शर्मा का पहला उपन्यास 'चेहरा और परछाई' में सर्वप्रथम विस्थापन का दर्द, विस्थापित होते लोगों की पीड़ा दृष्टिगत हुई है परन्तु यहाँ विस्थापन का कारण कथा नायक की अपनी इच्छा है। पंजाब के नवयुवकों के मायानगरी मुम्बई की ओर पलायन से उन्हें अपनी जन्मभूमि, अपने माता-पिता से, सगे-सम्बन्धियों से विस्थापित हो जाना पड़ता है। इस चयन से उन्हें कई मुसीबतों का सामना भी करना पड़ता है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि विस्थापन के इस चयन में कुछेक लोगों की ही अभिलाषाएँ पूर्ण हो पाती हैं। बाकी सब को निराशा के सिवाय कुछ हाथ नहीं लगता। फिल्मी दुनिया की चकाचौंध, रातों-रात बहुत अधिक धन कमा करोड़पतियों में नाम गिनवाने

की इच्छा तथा घर-घर में पहचान होने की ख्वाहिश उन्हें सारे रिश्तों-नतों को तोड़ अपने कर्त्तव्य से मुख-मोड़ कर केवल अपने सपनों को पूरा करने की होड़ उन्मुख करती है। चाहे उन्हें वहाँ हासिल कुछ नहीं होता। एक स्ट्रगलर अपने साथी से कहता है,

> यार परमिन्दर, कई साल हो गए इस नगरी में आए हुए लेकिन अभी तक वहीं खड़े हैं, जहाँ से चले थे। जब मैंने घर में सबका विरोध करके ग्वालियर छोड़ा था तो सबने मुझे रोकने की कोशिश की थी। छुटकी ने तो राखी का वास्ता दिया था। लेकिन मेरा फैसला अटल था और दावे पक्के कि मैं जल्द ही कुछ न कुछ मुकाम हासिल करके वापस लौटूँगा, लेकिन इन सालो में वह सारे दावे ताश के पत्तों की तरह बिखर गए। मुझे लगता है कि भूख के साथ लड़ते-लड़ते सारी ज़िन्दगी निकल जाएगी। घर से निकला था तो सपने बहुत हसीन थे यहाँ आकर रोटी के एक-एक निवाले की खातिर लड़ना पड़ा। (चेहरा और परछाई 37)

विपिन के माता-पिता उसे रोकते हैं कि वह मुम्बई न जाए। बहन भी राखी का वास्ता देती है। परन्तु विपिन को अपनी जिद्द के आगे कुछ नहीं नज़र आया। अब वह वापस लौटना भी चाहता है परन्तु वह नहीं जा पाता और कहता है,

> कई बार मन में आया कि ग्वालियर वापस लौट जाऊँ लेकिन यह सोच कर मेरी रूह काँप जाया करती है कि कौन सा मुँह लेकर...वहाँ जाऊँ...कैसे जाऊँ। अब तो कभी-कभी मुकेश के गाने के बोल, 'जीन यहाँ मरना यहाँ, इसके स्वा जाना कहां...।' याद आते हैं।" (चेहरा और परछाई 38)

विपिन एक ज्योतिषी भी है। उसे जिन मुश्किलों का सामना करना पड़ा, वह नहीं चाहता कि किसी और को भी करना पड़े। विपिन मुम्बई आने वाले हर स्ट्रगलर को अपने घर लौट जाने को कहता है। उसे लगता है कि यहाँ किसी किस्मत वाले की ही

ज़िन्दगी बदलती है वरन सब हताश ही होते हैं। वह सबको ज्योतिष की बातों में उलझा कर वापिस लौटा देता है।

> ...मैं तो इसलिए कहता हूँ कि यहाँ आने वाला हर नया स्ट्रगलर मेरी बातें सुन कर दहशत में आ जाए और अपने घर लौट जाए, क्योंकि घर छोड़ने का गम कुछ समय के बाद हर चीज़ के ऊपर हावी होने लगता है।...हो सकता है कि मेरी चोट से माँ-बाप वापस मिल जाएं। (चेहरा और परछाई 38)

पर वह उन स्ट्रगलर को जो अपनी भूमि से, अपने लोगों से विस्थापित हो स्वेच्छा से यहाँ पहुँचे थे नहीं समझा पाता। चाहे उन्हें मुम्बई रहते हुए वहाँ के लोगों की ज्यादतियों को सहन पड़ता है। बद्द से बदतर स्थान पर रहना पड़ता है और खान पानी सी पतली दाल-खा कर पेट भरन पड़ता है। वह स्ट्रगलर के साथ रह कर एक-दूसरे का ग़म बांटते हैं। किसी भी मुसीबत में कंधे से कंधा मिलाकर चलते हैं परन्तु अकेलेपन एवं अलगाव की स्थिति हमेशा बनी रहती है। और घर की याद उन्हें आ ही जाती है। विवेक कहता है, “आज मुझे भी घर की याद आ गई। मुझे महसूस हुआ कि आज मुझे पंख लग जाएं तो मैं उड़ कर अपने शहर पहुँच जाऊँ।” (चेहरा और परछाई 39) विवेक के अचेतन में कहीं न कहीं पछतावा है घर से जाने का। अपनों का विरोध करके वह आ तो जाता है, परन्तु अब चाहकर भी घर नहीं जा पाता।

इस्लामिक देश इराक की राजधानी बसरा है, जिसकी गलियां नायक की मानसिकता पर पूरी तरह हावी हो जाती हैं और वह उन गलियों की गिरफ्त में जकड़ा, आज़ादी के लिए छटपटाता, नियति की मार झेलता जीवन रहित जीवन जीने को विवश हो जाता है। एक प्रवासी भारतीय की अन्तःस्थिति का विश्लेषण करता है। इराक में एक ट्रांसलेटर की हैसीयत से नायक इराकी बुशरा जैसी आकर्षक लड़की की आँखों का शिकार हो जाता है। इसका परिणाम जबरन शादी होती है। नायक का पासपोर्ट इराकी फाड़ देते हैं और बुशरा से शादी के लिए उसका खतना कर उसे

मुसलमान बना देते हैं। नायक को पहला झटका तब लगता है जब प्रेम के रास्ते में देश, धर्म और सम्प्रदाय की दीवारें उसे अपना धर्म परिवर्तन करने पर मज़बूर कर देती हैं। शादी से पहले वाला आकाश शादी से बाद सलीम बना दिया जाता है।

यहीं से शुरू होती है उस जंग की चर्चा जिसमें लड़ने वाले कोई और होते हैं तथा जंग के सूत्रधार कोई और। इस सम्बन्ध में मानव बम बनाकर युद्ध के मोर्चे पर भेजे गए कच्ची उम्र के इराकी नौजवान उमर का बहुत मार्मिक कथन है, "...लेकिन जिसने मुझे अल्लाह के नाम पर मरने के लिए भेजा है वह खुद बुलेट प्रूफ महलों में बन्द है।" (बसरा की गलियाँ 90) इसी प्रकार उपन्यास के नायक के माध्यम से व्यक्त किए गए लेखक के ये विचार मन-मस्तिष्क में कौंधते हैं,

> ...मैंने पढ़ा था कि अमेरिका की सारी सरकार तेल में डूबी हुई है। इस पर बैंकरों, पूर्व सैन्य अफसरों, नौकरशाहों और राजनीतिज्ञों के एक गुट का कब्जा है, जो अमेरिका और ब्रिटेन पर राज करते हैं और ये लोग बड़ी ही आसानी से सेना और नौकरशाही के शीर्षस्थ पद ग्रहण कर लेते हैं। यही लोग हैं जो लोगों की ज़िन्दगी और मौत का फैसला करते हैं। अगर मैं यह कहूँ वही लोग हैं, जो इराक, ईरान, कुवैत, अफगानिस्तान, फिलस्तीन, हिन्दोस्तान, पाकिस्तान के युद्धों के कर्ता-धर्ता हैं, तो शायद गलत न होगा...। (बसरा की गलियाँ 125)

इससे स्पष्ट है कि निहित स्वार्थी तत्व विश्व के आम आदमी को कभी देशभक्ति, कभी जेहाद, तो कभी आज़ादी के नाम पर लड़ने के लिए प्रेरित करते हैं। आम आदमी इनके लच्छेदार तथा भावुकता भरे भाषणों के प्रभाव में स्वयं ही अपनी आत्मिक शांति और आज़ादी का हँता बना जाता है। इस जंग का इतना विस्तार हो जाता है कि उसकी स्वेच्छा के मायने ही खत्म हो जाते हैं। उसके लिए शादी भी जिसका मूल प्रेम-भाव होना चाहिए एक जंग में बदल जाती है। उपन्यास के नायक और प्रमुख नारी पात्र बुशरा का सम्बन्ध जो प्रेम की अनुभूति से आरम्भ होता है, नायक को विवाह, धर्म-

परिवर्तन और खतना करवाने के लिए विवश किए जाने पर किस प्रकार असुखद सम्बन्ध में बदल जाता है। नायक के कथन से स्पष्ट है, "बेगाने देश का एहसास आज और भी गहरा हो गया था। आज मेरा मन नफ़रत से भर गया था।" (बसरा की गलियाँ 19) बुशरा और नायक का विवाह यदि उनकी स्वतंत्रता का हरण किए बिना होता तो दोनों के लिए खुशी का सबब हो सकता था परन्तु सामाजिक और धार्मिक प्रतिबन्धों के दायरे में यह एक जंग में बदल गया था। इस सम्बन्ध में बुशरा का कथन दृष्टव्य है,

> ...यह हिन्दोस्तान नहीं, इराक है। यहाँ मर्दों का अकाल पड़ चुका है। तुमने देखा नहीं कितनी-कितनी उम्र हो गई, लड़कियों की और शादी नहीं हुई। हर चीज़ के मायने हर देश में अपनी तरह के होते हैं। हमारे देश का तो अब यही मानना है कि शादी किसी जंग से कम नहीं है। (बसरा की गलियाँ 18)

इराक के शासक सद्दाम हुसैन पर उपन्यास में बड़ी बेबाक और व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ करके इराक की बदहाली के लिए उसे कटघरे में खड़ा किया गया है, "दूध का धुला तो सद्दाम भी नहीं है। तानशाह के रूप में ही ख्याति पाई है। और कहते हैं कि तानशाह की ज़िन्दगी एक जलती हुई सिगरेट से ज़्यादा नहीं होती। उसकी भी तो आलोचन होनी चाहिए।" (बसरा की गलियाँ 125)

'बसरा की गलियों' में भी विस्थापन की यही समस्या और गहरी परन्तु अत्यन्त भयानक रूप से उभरी है। यहाँ कथानायक देश, अपने घर से विस्थापित क्या होता है, उसकी पूरी ज़िन्दगी विस्थापित हो जाती है। पंजाब में 1984 के आतंकवाद से आतंकित लोग अपना देश छोड़कर जा रहे थे। नायक भी ज़िन्दगी की शुरूआत, पैसा कमाने की इच्छा तथा माँ की सूनी कलाईयों पर चूड़ियाँ सजाने के सपने को साकार करने के लिए इराक जाता है। परन्तु वहाँ पहुँचने पर नज़ारा ही कुछ और निकला। नायक उस घड़ी को कोसता है जिसने उसे उसका घर, देश ही नहीं छुड़वाया बल्कि उसका नाम, पहचान, धर्म सब छुड़वा दिया। पंजाब से विस्थापित हो वह बसरा पहुँचता है पर

परिस्थितियाँ ऐसी बनाती हैं कि उसे वहाँ से भी विस्थापित होना पड़ता है। फिर जो नाम, पहचान, धर्म बसरा में मिला था वह फिर छिन जाता है तथा पुनः विस्थापन। उपन्यास में कथानायक न भारत का हो पाया, न बसरा का, न अमेरिका का और जब उसे किस्मत दोबारा अपने देश ले ही आती है तो भी परिस्थितियाँ उसे अजनबीपन, अकेलेपन का दंश झेलने पर मजबूर कर देती हैं। इराक पहुँचने पर जब सपनों का कत्ल होता है तो वह निर्णय लेता है कि लौट जाए, परन्तु ऐसा नहीं कर पाता,

> कई बार मेरा मन हुआ, मैं वापस लौट जाऊँ। मगर जैसे ही मेरे मन में लौटने का ख्याल आता, मेरी आखों के सामने माँ की सूनी कलाइयाँ आ जाती हैं और मुझे ऐसा लगता जैसे वे कुछ माँग रही हों। फिर मैं सोचता अगर मैं चला गया तो शायद सूनी कलाइयाँ सारी ज़िन्दगी सूनी ही रह जाएँगी। (बसरा की गलियाँ 33)

बसरा में एक मुस्लमान लड़की से शादी हो जाने पर नायक की तो ज़िन्दगी में भूचाल आ जाता है। उसकी सारी तमन्नाएँ, इच्छाएँ दफन हो जाती हैं। बेशक वह बुशरा से प्रेम करता था परन्तु धर्म परिवर्तन कर, खतना करवा वह कभी उससे शादी करने के हक में नहीं था। वह सदा के लिए अपने घर-परिवार, मुल्क से दूर हो गया था और कहता है,

> ...मेरे अपने मुझसे सदा के लिए दूर हो गए थे। शायद जीते जी उनको कभी न मिल पाऊं, मरने पर भी नहीं। क्योंकि जीते जी जिसकी सारी इच्छाएँ दफन हो गई हों, मरने पर उसकी क्या हालत होगी, इसकी कल्पना मात्र से ही मेरी रूह कांप गई।" (बसरा की गलियाँ 14)

देसाई का अगला उपन्यास Bye-Bye, Blackbird भी सामाजिक समस्या को पकड़े हुए है। इस उपन्यास में विस्थापन की समस्या दिखाई गयी है जिसमें आदित्य और सारा, समर और बेल्ला विदेशी सभ्यता के शिकार हैं। उनकी शादी में भ्रम और बचपन है। आदित्य एक विदेशी लड़की सारा से शादी करता है और गौरे लोगों से नफ़रत से भर जाता है। यह सब आदित्य ही नहीं महसूस करता सार भी करती है जो कि एक

विनम्र गृहणी है। वह भी अपनी सभ्यता के बाहर जाकर एक हिन्दोस्तानी लड़के से शादी करके अपने साथ काम करने वालों के बीच एक मज़ाक का पात्र बनाकर रह जाती है। वह उन्हें चिल्लाते हुए सुनती है, “Hurry, hurry, Mrs. Scurry.” (Bye-Bye, Blackbird 32)

सारा बहुत समय पहले ही भारत की सभ्यता से मोहित हो गई थी वह भारत के बारे में और जानना चाहती थी लेकिन वह अपने इस चरित्र को हर किसी के सामने प्रकट नहीं करना चाहती थी। इसका कारण यह था क्योंकि वह पहले ही अपनी पहचान के संकट का सामना कर रही थी,

> When she briskly dealt with letters and bills in her room under the strains, she felt an imposter, but, equally, she was playing a part when she tapped her fingers to the sitar music on Adit’s records or ground spices for curry. She did not have little command over these two charades she played each day, one in the morning at school and on in the evening at home, that she could not even tell with how much sincerity she played on role or the other. (Bye-Bye, Blackbird 34)

अन्तरजातीय विवाह इतने उपभेद लाता है जिससे दैनिक जीवन प्रभावित होता है। जहाँ तक कि वह एक अज्ञात खरीददार बने रहने के लिए डिपार्टमेंट के स्टोर में खरीददारी करने के लिए जाती है। सुपर बाज़ार उसकी पसंदीदा जगह थी। जहाँ वह बिना खराहट के और अच्छी तरह से खरीदारी कर सकती है,

> But inside the sparking halls of the supermarket where walls of soap and corn flakes hid from strangers eyes, she could be eccentric, as individual as she pleased without being noticed by even a mouse.” (Bye-Bye, Blackbird 39)

आदित्य और सारा खुश वैवाहिकजीवन होने के मखौटे का नाटक करते हैं। दिखावे और वास्तविकता में फर्क होता है जो कि बाद में दिखाई पड़ता है। हमेशा वह अपनी शादीशुदा जीवन को लेकर चिन्तित रहती जो उनके जीवन अवास्तविक बना देती है। वह महसूस करती है,

> Who was she?...Both these creatures were frauds; each had a large, shadowed element of charade about it. Her face was only a mask, her body a costume. (Bye-Bye, Blackbird 39)

सारा घर में एक बहुत ही अलग नारी है वह हर तरह की कोशिश करती है अपने भारतीय पति के साथ अपनी शादी को सुखमय बनाने के लिए इसके लिए वह उसकी पसंद की Charchari कढ़ी बनाती है और बनारसी साड़ी पहनती है। वह अपनी शादी बचाने के लिए आदित्य के चिड़चिड़ेपन और झल्लाहट को भी सहती है। सारा अपने आप को उस बनारसी साड़ी और सोने की भारी चैन में बहुत अजीब महसूस करती है जो कि आदित्य की माँ ने उसके लिए शादी का तौहफा भेजी होती है और उसको ऐसा देख कर आदित्य उस पर चिल्लाता है, “you feel like a Christmas tree! I suppose all Indian women look like Christmas tree, perhaps like clowns, because they wear saris and jewellery.” (Bye-Bye, Blackbird 38) सारा को भारतीय लड़कियां पसंद हैं वहीं आदित्य एक ठेठ भारतीय पुरुष की तरह सामने आता है जब वह देव के सामने अपनी राय देता है,

> These English wives are quite manageable really, you know. Not as fierce as they look-very quiet and hard working as long as you treat them right and roar at them regularly once or twice a week. (Bye-Bye, Blackbird 39)

आदित्य सारा की शर्म और चुपचाप रहने वाले चरित्र पर आकर्षित हुआ था। वह उसको कहता है, “you are like a Bengali girl. Bengali women are like that- reserved, quiet. But you are improving on it- you are so much prettier.”

(Bye-Bye, Blackbird 40) औपचारिक रूप से सारा अपने जीवन के खालीपन की समस्या से पीड़ित थी,

> She had jettisoned most things out of it when she had married-childhood, family, and friends: all the normal ordinary things with which an ordinary person must fill and adorn his life. (Bye-Bye, Blackbird 205)

वह कई सारे कारणों से आदित्य की तरफ आकर्षित हुई थी। वह इन्हीं सब रंगों के साथ उसके साथ ज़िन्दगी बिताना चाहती थी। जब वो भारत जाने का निर्णय लेती है तो वह खुशी से भर जाती है। वह बिना किसी दुविधा को अपने मन में लाए अपने देश को छोड़ने के लिए तैयार हो जाती है। वह कहती है, "I think when we go to India, I will not find it strange after all. I am sure I shall feel quite at home very soon." (Bye-Bye, Blackbird 219) हकीकत में आदित्य और सारा अपने लोगों की डरावनी, अविश्वास और अस्वीकृति से डरते हैं। सारा अपने आस-पास के लोगों की शत्रुता के कारण अलगाव और अकेलेपन को देखती है लेकिन वह कभी विरोध नहीं करती और अपनी शादी के लिए कोई भी बलिदान देने के लिए तैयार रहती है। आदित्य और सारा के रिश्ते के बारे में ऐरिक फ़्रोम कहते हैं,

> Both persons involved have lost their integrity and freedom, they live for each other and from each other, satisfying their craving for closeness, yet suffering from the lack of inner strength and self-reliance which would require freedom and independence, and furthermore, constantly threatened by the conscious and unconscious hostility which is bound to arise from symbiotic relationship. (Fromm 22)

समर और बेला की शादीशुदा ज़िन्दगी भी आदित्य और सारा की तरह ही है। वह भी विभिन्न सभ्यताओं के शिकार हैं,

> Two Indian, two English women frozen in the stances of players on the stages who had not been told what to do next. Somewhere in a locked closet, a slab of marble like a black grave stone awaiting and engraving a grave, a bunch of flowers. (Bye-Bye, Blackbird 188)

यह भिन्नता शुरू से ही दिखाई देती है,

> But Bella and Sarah sat in stiff silence, their Anglo-Saxon faces impassive. They had learnt exactly how much of this foreign world was theirs to tread and had given up their early attempts, made out of curiosity and desire to join, to interpret jokes. (Bye-Bye, Blackbird 25)

माला और जसबीर का विवाह भी एक उपहास का रिश्ता ही है। एक दूसरे से बेईमानी करने के कारण दोनों का रिश्ता खराब हो गया है। जसबीर एक बहुत ही लापरवाही जोकर में बदल जाता है जब माला एक निराश, अव्यवहारिक, अपवित्र महिला है। दोनों शारीरिक सुख और अच्छी ज़िन्दगी के लिए उत्सुक हैं। उपन्यास में श्री और श्रमती Roscommon James भी शादी की बहुत ही नीच तस्वीर पेश करते हैं। सारा अपने माता-पिता के बीच अहमकारी प्रवृत्तियों के कारण की पहचान करती है। श्रीमती Roscommon- James अपने पति को बहुत ही बुरी तरह डाँटकर कहती है,

> She scolded him in tone that would lead anyone not present in the room to think she was speaking to an unusually, naughty, and tiresome dog. He never answered. (Bye-Bye, Blackbird 14)

अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों में सिर्फ भारतीय ही नहीं इंग्लैंड के लोगों की शादी में असामन्जसता के बारे में बताया है। इनका अगला उपन्यास 'Fasting, Feasting' में नारी के अस्तित्व और चरित्र को व्यक्त किया है। विवाह को प्रयासों के बाद व्यवस्थित और उमा के पास अपने माता-पिता की इच्छाओं को पूर्ण करने के इलावा कुछ नहीं

बचता। उमा की छोटी बहन अरुणा का विवाह विवाद में हुआ है क्योंकि वह अपने दुलहे को माता-पिता की इच्छा से नहीं अपनी इच्छा से चुननाचाहती है, परन्तु माता-पिता उसे शादी के लिए जोर देते हैं। माध्यम वर्ग के माता-पिता और उसकी बहन उसे हमेशा अपने कार्यों से विचलित कर देते हैं जबकि वह हमेशा पूर्णता की तलाश में रहती है। उमा की चचेरी बहन अनामिका का चित्रण एक परम्परागत भारतीय समाज में एक गहरी जड़ वाली बुराई का उदाहरण है। वह अपनी खुशी से ही शादी करती है लेकिन उसका वैवाहिक अस्तित्व एक अवर्णनीय दुखद सम्बन्ध है। एक दिन अचानक खबर आती है कि अनामिका मर गई है, मरने के बाद शुरूआती घंटों में उसके शरीर से केरोसिन तेल की बदबू आती है। वह औरत नहीं थी जिसने शादी में नम्रतापूर्वक एक भेड़ के बच्चे की तरह वेदी पर आत्मसमर्पण किया था और यह सब उसकी शादी के पच्चीस साल बाद हुआ था। उपन्यास में मीरा-मासी ही शायद एकमात्र महिला है जो एक अलग ही अर्थ में मुक्ति महसूस करती है। वह भौतिक संसार की निंदा करती है और तीर्थयात्रा का आराम ही उसके लिए एक मात्र वास्तविक मूल्य और स्वतंत्रता के स्रोत हैं। लेकिन वही एक समय मीरा-मासी अपने वैवाहिक और पारिवारिक सम्बन्धों का खंडन नहीं करती थी। पहले वह भी दूसरी औरतों की तरह गपशप करना और एक परिवार से दूसरे परिवार की कहानियों को ले जाना या बाते करना, जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की उपेक्षा नहीं करते हैं। इस तरह वह अपने भौतिकवाद को त्यागकर और सामाजिक प्रतिबद्धताओं के आकर्षण को अनदेखा करके पूर्णरूप से आंतरिक आज़ादी के लिए आत्मसमर्पण कर पाने असमर्थ है।

अकेलापन, पराएपन के बोध का अनुभव

शेखर अपने को कटा हुआ, हारा हुआ, टुटा हुआ, गिरा हुआ, अकेलापन और बेगानेपन-सा अनुभव करने लगा। टूटन-घुटन के क्षणों में एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण शेखर और उलझनों में फँस गया और यह घटना ऐसी घटना रही जो शेखर को फाँसी के तख्ते तक पहुँचने में अहम भूमिका निभाती है। शेखर रोटी खा रहा था और

माँ-बाप की बातों को अन्यमनस्क हो कर सुन रहा था। शेखर का पिता शेखर की माँ से कह रहा था। बड़ा लड़का ईश्वर कॉलेज छोड़कर भाग गया और पुलिस में भर्ती हो गया, जहाँ पिता का नाम गलत लिखवा दिया। ईश्वर के इस व्यवहार से माँ का मन भी टूट गया और यह महसूस हुआ कि आज कल बच्चों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। शेखर की ओर संकेत करते हुए उसने साफ कह डाला "मुझे इसका भी विश्वास नहीं है।" (शेखर: एक जीवनी 13) इससे शेखर को बड़ी ठेस लगी। वह अपनासा मुँह लेकर रह गया। माता के द्वारा प्रयुक्त 'इसका' शब्द से उसके जीवन में जो कुछ था, उसके विश्वास, उसकी आस्था सब टूट गये। वह खाये बिना ही कमरे में चला गया और डॉयरी में खुद की निन्दा करते हुए अपना उफान उतारने की कोशिश की "अच्छा होता कि मैं कुत्ता होता, चूहा होता, दुर्गन्धमय कीड़ा-क्रिमि होता बजाए इसके कि मैं वैसा आदमी होता, जिसका विश्वास नहीं है...।" (शेखर: एक जीवनी भाग एक 13)

वह उठ खड़ा हुआ। दीवार की ओर उन्मुख होकर अँग्रेजी में बोला, "आई हेट, हर 'आई हेट हर ! मैं उससे घृणा करता हूँ।" (शेखर: एक जीवनी 13) और फिर कपड़े पहनकर खिड़की की राह, बाहर कूदकर घूमने चल दिया। उसने प्रतिज्ञा कर ली कि वह माँ की नहीं मानेगा, उससे कोई सम्पर्क नहीं करेगा। कोई ऐसा काम नहीं करेगा जिसमें माँ को बाध्य होकर भी मेरा रत्ती भर भी विश्वास करना पड़े। यह प्रतिज्ञा उसने जबानी नहीं की, एक कागज पर लिख डाली। पर तभी उसके भीतर एक और परिवर्तन हुआ, उसने उस कागज को चिथड़े-चिथड़े किए। उन्हें गीली जमीन पर फेंका और पैरों से रौंदने लगा-तब तक जब तक कि वे कीच में सन कर, दब कर अदृश्य नहीं हो गये "...मैं योग्य हूँ, योग्य हूँ ! उस में विश्वास की क्षमता नहीं है, तो मै क्या पराजित हूँगा?" (शेखर: एक जीवनी 13) इस प्रकार शेखर ने अकेलेपन का अनुभव पाया है।

'अपने-अपने अजनबी' की सेल्मा मरणासन्न बुढ़िया है, जो अपने घर में योके के साथ ही बर्फ के नीचे कैद है। सेल्मा का यह जो रूप है, वह परितृप्ति और उपलब्धि का प्रतीक है। वह जीवन की अर्थवत्ता से परिपूर्ण है, किन्तु सेल्मा का भय योके के लिए

रहस्यात्मक-चरित्र की अपनी एक कहानी है। जीवन के प्रति अनसक्तता या मौत की प्रतीक्षारत सेल्मा के सम्बन्ध में योके का यह निष्कर्ष सेल्मा की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करता है,

> उस में किसी तरह का विरोध नहीं है न मेरे प्रति, न मेरे हिस्र भावों के प्रति, न मृत्यु के ही प्रति और वह मेरी समझ में नहीं आता, मुझे स्वीकार नहीं होती। कैसे कोई जाता हुआ प्राणी जिजीविषा से परे हो सकता है ? हम सब कुछ से अनसक्त हो सकते हैं, पर जीवन से कैसे हो सकते हैं कि कहीं न कहीं बुढ़िया में कुछ झूठ है। कोई आत्म प्रवंचन है। हो सकता है कि वह गहरे में छिपी हो, लेकिन यह नहीं हो सकता कि वह हो ही न हो। (अपने-अपने अजनबी 39)

योके के दूसरे प्रश्न के उत्तर में सेल्मा जो कुछ कहती है उससे उसका पूरा ब्यौरा प्रकाश में आता है- "तुम्हें किसका सहारा है" तो सेल्मा कहती है- "मुझे किसका सहारा है मैं नहीं जानाती हूँ, ईश्वर का है, यह भी किस मुँह से कह सकती हूँ? शायद मृत्यु का ही सहारा।" (अपने-अपने अजनबी 43) इस प्रकार सेल्मा एक मरणासन्न बुढ़िया के रूप में चित्रित हुई है।

सेल्मा उस दृष्टि का प्रतीक है। इसे उपन्यासकार का पूरा समर्थन तथा सहानुभूति मिलती है। वह उपन्यासकार के मूल्य परक चिंतन की औपन्यासिक संज्ञा है। अज्ञेय जिसे अर्थवत्ता मानते हैं, वह इस 'कैंसर' पीड़ित बुढ़िया के पिंजरे में बन्द है। पश्चिमी अस्तित्ववादी के दौर से गुजरे एक सजग एवं संवेदनाशील यायावर के रूप में उन्होंने जो कुछ देखा उसके एक पक्ष की प्रस्तुति योके नाम से की है और दूसरे पक्ष की सेल्मा नाम से। सेल्मा के नाम से उन्होंने पश्चिम को एक निदान, एक मार्ग, एक दिशा का निर्देश दिया है। परिस्थिति और मन के संघर्ष से उत्पन्न चिंतन के जिस दौर से पश्चिम गुजर रहा है, वह अपरिपक्वता की स्थिति है। उसे यही सहारा मिल सकता है, वह यदि विक्षिप्त और आत्महत्या से बच सकता है तो यह सामर्थ्य सेल्मा की

आस्थावान दृष्टि में ही है। जीवन, मृत्यु, क्षण, काल, वरण-स्वातंत्र्य और ईश्वर को लेकर स्वर्गग्रासी विचार पश्चिम पर आधिपत्य किए जा रहे हैं।

जीवन सुस्त और अतिविस्तृत था। वह एक मंत्रालय में काम करता था और हमेशा उसी के बारे में बाते करता था। मनीषा पर परिवार में हर किसी की चोरी का आरोप है क्योंकि उसने Nirode के लिए अस्पताल के बिलों का भुगतान करने के लिए जीवन से पैसे लिए थे। उसे पुरुषों और महिलाओं से अपमान का सामना करना पड़ा चाहे वह मतलबी और छोटा ही क्यों न हो। उसकी सास चिल्लाती है,

> The servants will be dismissed, all of them. I will not have a thief in my house…After all; you were the holy person who was in the room all day. (Voices In The City 137) मनीषा "is willing to accept this status then and to live here a little beyond and below everyone else, in exile. (Voices In The City 137)

लेकिन वह लम्बे समय तक सहन नहीं कर पाती और अलगाव के कारण वह आत्महत्या कर लेती है। परिवारिक सदस्यों और शत्रुतापुर्ण सामाजिक परम्पराओं और पृष्ठभूमि के प्रतिकूल दृष्टिकोण से परेशान है। उपन्यास में दूसरे वैवाहिक जीवन भी खुश और संतुष्ट नहीं हैं। धर्मा जो कि एक चित्रकार है अपनी आदत के अनुसार अपनी शादीशुदा जीवन को चला नही पाता। वह अपने विचार अमला के सामने व्यक्त करता है,

> Our relationship in not all so straight- forward and pat, married relationship never are. There is the matter of loyalty, habit, complicity…things I couldn't talk to you about till you married and knew for you. (Voices In The City 229)

धर्मा और गीता देवी एक दूसरे के लिए अजनबी हैं। उसकी बेटी ने चचेरे भाई से शादी की थी जो उसके साथ पँद्रह साल तक रही थी। वह कलकत्ता छोड़कर कहीं और रहने लगे जहाँ लोगों को इसके बारे में पता नहीं था। अमला का मानना था कि धर्म ने

अपनी छोटी बेटी को पैदा करने का एक भयानक पाप किया है। वह कहता है, "nothing that concern my daughter concerns me." (Voices In The City 229) अमला जो कि पहले धर्म को देखकर आकर्षित हुई थी अब उसके बारे में सोचकर विद्रोह महसूस करती है। वह स्वेच्छा से ही उसकी तरफ आकर्षित हुई थी। अमला धर्म के मिलने के बाद बदल चुकी है। उसका चेहरा पीला पड़ गया है और अपने ऑफिस में बहुत ज्यादा काम करने लग जाती है। धर्म के घर जाने के बाद बदल जाती है और कोई और ही अमला बना जाती है, "a flowering Amla, translucent with joy and overflowing with a sense of love and reward." (Voices in the City 230) वह सिर्फ अपना विवरण सुनना चाहती है वह भी तब जब वह यह महसूस करती है कि वह जिन्दा है। वह रिश्ते में मूर्तता और स्थायित्व चाहती थी,

> The understanding between them was an interior volcano, coloring the water of his existence and splashing on to his canvas the tints of the upheaval within him. (Voices in the City 212)

अमला अब यह महसूस करती है कि धर्म ने उसमें पता नहीं ऐसा क्या देखा था जिसने उसको उसकी गुलाम बना दिया था। अमला को कभी भी इस रिश्ते में संतोष नहीं मिला था। उसकी आँटी भी उसे यही मश्वरा देती है कि उसे छोड़ दे, "he uses you, something in you that he needs. But the rest- what does he care for that?" (Voices in the City 221) आखिर बाद में अमला धर्म से रिश्ता तोड़ ही देती है। वह यह महसूस करती है इस सब के पीछे गीता देवी ही है, "the spread lotus that bore the weight of the god absorbed in his meditation and the spinning out of his Karma." (Voices in the City 231) निरोद को भी पुरुष और महिला के सम्बन्ध में कोई भरोसा नहीं है। वह अपनी माँ से नफ़रत करता है जिसका किसी मेजर चड्डा से सम्बन्ध है। इसलिए वह जीत और सरला के बीच हो रहे झगड़े को देखने के लिए रुक जाता है। यह जोड़ा उच्च श्रेणी से सम्बन्ध रखता है। उच्च श्रेणी का रुतबा होने के कारण

दोनों में आपसी प्रेम न रहते हुए भी साथ रहते हैं। जीत अपनी पत्नी के कई सम्बन्धों के अवगत है लेकिन फिर भी एक शब्द भी नहीं बोलता। सरला अपने ससुराल जाकर न रहना चाहती है और न ही उनसे मिलना चाहती है। निरोद इस रिश्ते का विरोध करता है और कहता है,

> Marriage, bodies, touch and torture…He shuddered and, walking swiftly, was afraid of the dark of Calcutta. All that was Jit's and Sarla's, he decided, and indeed, all that had to do with marriage, was destructive, negative, decadent. (Voices In The City 35)

इस उपन्यास में विवाह के लिए अविश्वास सभी पात्रों में है। आँटी लीला आदमियों से नफ़रत करती खासतौर पर अपने मोटे और अपने में व्यस्त रहने वाले पति से। उसका मानना है कि,

> Women place themselves in bondage to men, whether in marriage or out. All the joy and ambition is channeled that way, while they go parched themselves. (Voices in the City 221)

उसने बहुत ही मुश्किल से वक्त गुज़ारा था और उसकी अपनी बेटी रीटा भी अनमेल शादी से दु:खी थी। उसने तलाक ले लिया था और पेरिस में खुद काम करके अपना गुज़ारा करती थी। इस प्रकार हम इस उपन्यास में देखते है कि सभी नारी और पुरुष के सम्बन्ध अकेलेपन और अधूरेपन से ग्रस्ति हैं। वह सब यह दिखाते हैं कि शादी एक सबसे खराब स्वांग है जो कि जिन्दगियाँ खराब कर देता है।

देसाई के अगले उपन्यास 'Where Shall We Go This Summer ?' (1975), में वह फिर से वैवाहिकजीवन में अलगाव और अपसी कम बातचीत का विषय लेकर आती हैं। परन्तु यहाँ नारी के अकेलेपन, एक माता की स्थिति समाज और परिवार में क्या होती है उसका विवरण मिलता है। जहाँ माया की चिंता अस्तित्त्व और स्थायीपन

की है वहीं सीता का दर्द घरेलु और अस्थायी है। यह एक अधेड़ आयु की औरत सीता की कहानी है जहाँ अपने अर्थहीन अस्तित्त्व से झूझ रही है। वह अपने बहुत ही सुख-सुविधा से मुम्बई के घर रहती है लेकिन उसे वह सुख सुविधा अच्छी नहीं लगती वह सब कुछ तोड़ देना चाहती है। वह अपने पहले वाले घर मसूरी में वापस जाना चाहती है। वह अपने पाँचवे बच्चे को जन्म न देने के लिए उस द्वीप से निकलती है। सीता की स्थिति बिल्कुल माया जैसी है। वह भी अपने बिना प्रेम वाली रमन के साथ शादी से परेशान है। उसको अपनी शादीशुदा ज़िन्दगी में कुछ समझ में नही आता कि उसका पति उसको समझता भी है कि नहीं। वह उसके बारे में कुछ भी नहीं जानाता। अपनी शादी में एक खालीपन से उसको झटका सा महसूस होता है। रमन और सीता की शादी आदतों, सिद्धाँतों विश्वास और सामान्य और डबल मानकों से ग्रस्ति है। उमा बेनर्जी कहती हैं,

> This is not simply a case of an emancipated woman, revolting against the slavish bonds of marriages. It is much more than that, it is a question of the basic truth that is bitter and naked and can neither be hidden nor is halved to suit individuals. (Bannerjee 153)

सीता के जीवन का एकांत और सुस्त अस्तित्त्व उसे जीवन की किसी भी दिशा में भागीदारी नहीं होने देता, "Life had no periods, no stretches. It simply swirled around, muddling and confusing, leading nowhere. (Where Shall We Go This Summer? 155) वह यह सब अच्छी तरह से जानाती है कि वह अपनी ज़िन्दगी में क्या कमी महसूस कर रही है। अपने पिता के साथ बिताये अपने बचपन के दिन वह हमेशा याद करती है। शादीशुदा जीवन में असामन्जसता उसे बिल्कुल बदल देती है,

> She had lost her all feminine, all maternal belief in childbirth, all faith in it and again to fear it as yet one more act of violence and murder in a world that had more of them in it than she could take. (Where Shall We Go This Summer? 56)

जब रमन को एक अजनबी के तौर पर मसूरी में मिली थी, शादी के कई वर्षों के बाद वह महसूस करती है शादी ने उसकी आत्मा और शारीर को पूरी तरह से तबाह कर दिया है,

> He stared at her with distaste, thinking her grotesque…It was the face of the woman unloved, a woman rejected…But whereas her beauty had turned haggard through nerves and neglect, her fire had turned on him and even on the children, he felt, in spite and ill temper. (Where Shall We Go This Summer? 134-35)

रमन एक व्यवसायिक, व्यवहारिक और जिम्मेदारियों को गंभीरता से निभाने वाला आदमी है। उसकी उमीदें सामान्य और समझदारी वाली है। वह सीता के तर्कहीन व्यवहार से परेशान रहता था। वह हमेशा यही कोशिश करता था कि उसे खुश रख पाए। वह एक परम्परागत हिन्दु परिवार से है उन दोनों के बीच चीजें बहुत ही ज्यादा खराब होने लगती है इसी कारण वह अलग से एक घर में रहने के लिए चला जाता है परन्तु वहाँ भी सीता खुश नहीं रहती। रमन को सीता की उदासी कारण समझ में नहीं आता। वह अपने आप को एक परिवार के लिए कर्तव्य निभाने वाला आदमी बताता है और शादी के लिए उसके विचार हैं कि इसमें ज्यादा बातचीत या शारीरिक सुख इतना मायने नहीं रखता है। वह सीता की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को समझने में असमर्थ है। वह एक ही छत्त के नीचे रहने वाले दो अजनबियों की तरह अपनी ज़िन्दगी बिताते हैं।

डॉ. अजय शर्मा का उपन्यास 'खुली हुई खिड़की' एक तीखी बैचेनी को लेकर हमारे सामने है। डॉ. शर्मा पेशे से चिकित्सक हैं इसलिए शरीर के व्यवहार के साथ-साथ मानव मन की पेचीदगियों को भी बखूबी समझते हैं। इसलिए उन्होंने अपने उपन्यास का विषय अनमेल विवाह, दहेज प्रथा अथवा भ्रष्टाचार को न बना कर ईर्ष्या, जलन, अकेलेपन, काम, सहानुभूति, नैतिकता, बदलती परिस्थितियों में किस प्रकार

मनुष्य के अंग-संग रहा जाए, आर्थिक स्वतंत्रता और सुदृढ़ता किस प्रकार मनुष्य की सोच एवं व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं, मर्द के बिना नारी अधूरी है, अकेलापन किस प्रकार उसे तोड़ देता है और मर्द और औरत दोनों मिल कर समाज के सृष्टा हैं आदि विषयों को लेकर अपने इस उपन्यास की कथा को बुन है। उनका यह उपन्यास मध्यवर्गीय नारी को इस समस्याओं के साथ मनोवैज्ञानिक ढंग से समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है।

उपन्यास के केन्द्र में दो महिलाएँ हैं- बीजी और अमिता। दोनों ही अपने-अपने पतियों की मृत्यु के पश्चात अकेलेपन की शिकार हैं। दोनों को अपने पतियों की पेंशन मिलती है। दोनों ही आर्थिक रूप से सुदृढ़ होना ही उनके जीवन को खुशहाल नहीं बनाता बल्कि पूरे उपन्यास में वे किसी पुरुष के सहारे की अभिलाषा में रहती हैं। यह उपन्यास युग परिवर्तन और बदलती परिस्थित्यों में नारी को इस कटु सच्चाई से अवगत करवाता है कि औरत और मर्द दोनों मिलकर ही समाज की गाड़ी से आगे बढ़ते हैं। कथा नयिका अमिता और बीजी अपने पतियों की मृत्यु के पश्चात किस प्रकार अकेलापन अनुभव करती हैं उससे तो यहीं स्वर व्यक्त होता दिखाई देता है। एक स्थान पर कथा नयिका स्वयं स्वीकार करती है कि सती प्रथा का रिवाज़ भी सही था। आगे वह कहती है कि औरत का अस्तित्व तो मर्द से बन्धा है। एक अन्य स्थान पर वह कहती है,

> इधर-उधर भटक रही हूँ। मेरे चारों तरफ गहरा समुद्र है। लगता है कि मुझे किसी सहारे की जरूरत है। कोई मुझे किनरे लगा दे। लेकिन दूर-दूर तक कोई किनारा नज़र नहीं आता और लगता है कि समुद्र में कोई मगरमच्छ निकल कर मेरी तरफ बढ़ रहा है जो मुझे निगल जाना चाहता है। (खुली हुई खिड़की 29)

लेखक ने नारी को चार दीवारी से बाहर निकलकर बाहरी दुनिया में विचरने और उसे परखने को प्रेरित करता है जबकि कभी कभी ऐसा संदेश भी देना चाहता है कि इस

संसार में जितना घुलो मिलोगी उसके शोषण की सम्भावनाएँ भी उतनी ही बढ़ेगी। इसके लिये उसे चेतन होना पड़ेगा अन्यथा कोई भी उसे अपनी हवस का शिकार बना सकता है। पतिदेव जीवन यात्रा में अकेले छोड़ गये हैं इसलिए असुरक्षा का भय भी बार-बार कटोचता है। बीजी का भी यही हाल है। जब तक दार जी जीवत रहे, काम नहीं किया। दार जी की मृत्यु के पश्चात पहाड़-सी ज़िन्दगी रेत के कणों की तरह बिखरने लगती है। चेहरे पर खामोशी, सूनी आँखें देख कर लगता है कि एकाँत में खूब आँसू बहाती है। वह बार-बार दार जी की तस्वीर के सामने खड़े होकर अपने पास बुला लेने की बातें करती दिखाई देती है। बेटे का सहारा था वो भी छिन जाता है। इससे वह और अधिक टूटती है। पति के मरने पर अमिता को भी दंदल पड़ती है बिलकुल वैसी ही जैसी कभी दार जी के मृत्यु पर बीजी को पड़ी थी। असुरक्षित हो जाने की दंदल। सहारे के छिन जाने की दंदल।

नखुन बढ़ना तामसी, राजसी प्रवृत्तियों के प्रतीक अस्वीकार किए जाते हैं। 'खुली हुई खिड़की' उपन्यास की नायिका अमिता को आर्थिक रूप से सुदृढ़ एवं स्वतंत्र हो जाने के पश्चात ही अधिक अकेलापन अनुभव होने लगता है लेकिन नौकरी मिलने पर तो सुरखाव के पंख लग जाते हैं। घूमने-फिरने का अवसर मिलता है। मन स्वाद-स्वाद होने लगता है। मन में अहमकार भी जन्म लेता है। लालच और मोह से भी हृदय भर जाता है। ईर्ष्या और जलन भी घेर लेती है। उसकी माँ भी हर रोज़ उसे मिलने आने लगती है। जिसकी भाषा में कठोर शब्दों का कोई स्थान नहीं था, जो होंठ कभी उँचा नहीं बोलते थे अब जोर से बातें करने लगे हैं। वास्तव में आर्थिक सुदृढ़ता, खुशहाली और नौकरी मिलने के पश्चात मिली आज़ादी के कारण उसकी सोच एवं व्यवहार में अजीब सा परिवर्तन आने लगता है। जो बीजी की दिनचर्या पर केवल कुड़ती ही थी अब चिल्ला कर अपना गुस्सा खट्टास भरे वाक्यों को दोहरा कर प्रकट करने लगी है। ब्लड-प्रेशर और डिप्रेशन की मरीज़, गोलियां खाने वाली अमिता अब बहुत कुछ सोचने लगती है। जब आदमी की सोच बदलती है तो व्यवहार और घटनाएँ भी खुद-ब-खुद बदलनी आरम्भ हो जाती हैं। अमिता के साथ इस उपन्यास में भी कुछ इस प्रकार ही

घटता दिखाई देता है। पति की मृत्यु के पश्चात अकेलेपन की इस लड़ाई में वह डॉक्टर दोस्त का अमर्यादित साथ चाहती है जिसका मूलाधार काम-वासना है। वह समाज की मर्यादाओं को गुपचुप बनाएँ रखना चाहती है। उसे पता है कि डॉक्टर शादीशुदा है लेकिन वह समाज से बचकर अपनी काम वासना की पूर्ति करना चाहती है। इसके पीछे उसकी सोच है कि अगर सहारा ही लेना है तो फिर एक ऐसे व्यक्ति का सहारा लिया जाए जो विश्वस्त भी हो और परिवार के करीब भी हो। ऐसे में समाज की आलोचन से आसानी से बचा जा सकता है लेकिन जब उसे डॉक्टर की तरफ से अमर्यादित कार्य में सम्मिलित न होने का संकेत मिलता है तो उसे स्वयं ही बढ़ रही इस गलती का अहसास होता है तो वह स्वयं को सामान्य स्थिति में लाने का प्रयास करती है।

नौकरी मिलने से यहाँ उसके अवचेतन मन में पड़े स्वप्न पूरे होते हैं वहाँ उसकी सोच में भी परिवर्तन आता है। बीजी के प्रति उनके व्यवहार में बदलाव इसी का नतीजा है। वह अब उसे अपनी स्वतंत्रता में रोड़ा समझने लगती है। उसे इससे ईर्ष्या होने लगती है। नौकरी करने की अभिलाषा उसके अवचेतन मन में तभी से बसने लगी थी जब वह डॉक्टर की पत्नी को पर्स लटकाये कायोनैटिक होन्डा चलाते देखती है। उस समय वह स्वयं को बौन महसूस करती है। ऐसे में उससे ईर्ष्या का हो जाना स्वाभाविक सा है। इस प्रकार वह कई प्रकार की मानसिक कुंठाओं का शिकार होने लगती है। अब तो आर्थिक अहम का शिकार भी हो गई है। जो औरत सदैव डॉक्टर के परामर्श से ही दवाई लेती रही है अब किसी अन्य डॉक्टर के यहाँ जाकर दवाई लेना चाहती है और शोषण का शिकार होते-होते बचती है। अब उसे पैसे से भी मोह होने लगा है। बीजी को मिलने वाली पेंशन भी वह छीनने लगती है। वह अब बीजी को पैसे-पैसे के लिये मोहताज करने लगी है। उसे अब टाँका लगवाई चप्पलें पहनने पर मजबूर होना पड़ता है। अगर बीजी चप्पल खरीदने की बात करती है तो उत्तर में कहती है कि आपने कौन सा दफ्तर जाना है ? बीजी के कमरे की जलती बत्ती देख कर गुस्साने लगती है। मर्द के बिना यह जीवन अधूरा समझने लगती है। उसे अपना आप भूलता चला जाता है। तामसी और राजसी प्रवृत्तियों के प्रतीक नखून बढ़ जाते हैं। उनमें तामसी और राजसी

गन्दगी भर जाती है। ठोडी पर बाल उग आते हैं। सिर के बाल सफेद होने का पता भी उसे चलता है। यह सब उसमें अन्तःमन को झंझोर कर रख देता है। तभी तो अन्त में तामसी और राजसी प्रवृत्तियों के प्रतीक नखूनों को काटने बैठ जाती है और बच्चों को ही अपना सहारा समझने लगती है।

डॉक्टर उसे घर बैठे बिठाये बीमा योजनओं से मिला पैसा, तरस के आधार पर मिलने वाली नौकरी लेने को प्रेरित करता है और सब कुछ हासिल करने में पूरी सहायता तो करता है लेकिन वह पुरुष है इसलिए किसी अन्य पुरुष से शादी करने का परामर्श नहीं देता है। उसे पहाड़-सा जीवन अकेले जीने की ही सलाह इस विषय पर चुप रह कर देता है जिससे उसकी, मानसिक हालत का भी पता चलता है। न तो वह उसे शादी करने की सलाह देता है और न ही सामाजिक रूप से वर्जित रिश्तों को भोगने हेतु उसका साथ देता है। अमिता भी समाज में पति धर्म का निर्वाह करना तो चाहती है जबकि चुपचाप किसी परिवार के करीबी के साथ गुपचुप अमर्यादित सम्बन्ध स्थापित कर अपनी अग्नि को शाँत करना भी चाहती है। ऐसे में अकेलेपन के साथ लोकाचार और आन्तरिकता की टकराहट जैसी समस्याएँ भी स्वयं उठ खड़ी होती हैं।

अनीता देसाई के अगले उपन्यास 'Journey to Ithaca' (1994) में महिला नायक मानव सम्बन्ध में सद्भाव और पूर्ति के उत्सुक हैं जबकि पुरुष नायक खुद को संवेदनशील मानकर ऐसा नहीं करते हैं। उपन्यास मटेयो के अलगाव और आध्यात्मिकता की तलाश में चलता है। वह अकेलेपन और अलगाव का चित्रण है। वह हमेशा दुनिया में अकेला और बीमार रहता है। वह शुरूआत से ही अपने अलगाव में निहित रहता है। वह अन्तर्मुखी स्वभाव का होने के कारण न ही वह किसी के साथ घुलता मिलता है और न ही वह अपनी भावनाएँ किसी को बताता है। उसके माता-पिता के लिए उसके प्रश्नों का जवाब खिन्न और अल्पभाषी है। दूसरे को स्पष्ट रखने का उनका प्रयास वास्तविक जीवन से बचने की इच्छा और उसके तत्काल मानव सन्दर्भों के साथ उसकी घृणा प्रकट करता है। मैटियो को स्कूल से हटा लिया गया है। उसके पिता उसके अँग्रेजी पढ़ाने के लिए एक फैबियन शिक्षक के पास भेजते हैं। लेकिन अपने

शिक्षक के हाथ में एक किताब The Journey to the East by Hermanm Hesse को देखकर मैटियो के जीवन मे एक नया मोड़ आ जाता है। इस सरल गद्य में Hermanm Hess एक भौगोलिक और आध्यात्मिक दोनों यात्रा के बारे में बताता है। इसमें नूह ऐरिक ने अन्तरिक्ष और समय दोनों को पार किया था। जिसमें तीर्थयात्रियों का अंतिम गंतव्य पूर्व में 'Home of the Light' में जाना है, जहाँ वह आध्यात्मिक नवीकरण पाने की उम्मीद करते हैं। फिर भी यात्रा के शुरू में आने वाली सद्भावन जल्द ही खुले संघर्ष के रूप में सामने आ जाती है। प्रत्येक यात्री के समूह में असहिष्णुता की भावना दिखाई पड़ती है। शिक्षक और मैटियो अच्छे दोस्त बना जाते हैं क्योंकि वह एक दूसरे की जरूरतों को समझते हैं। वास्तव में फैबियन अपने दोस्त का दार्शनिक गाइड बन गया है। लेकिन मैटियो के माता-पिता विशेषकर माँ को उसकी और शिक्षक की निकटता को स्वीकार नहीं करते है। मैटियो को अपने भविष्य और वर्तमान में माता-पिता की भागीदारी अच्छी नहीं लगती। एक आत्मविश्वासी पत्रकार सोफी अपने माता-पिता का बहुत ही सामान्य बच्चा इस समय उपन्यास में सामने आता है। मैटियो और सोफी एक संक्षिप्त प्रेम कहानी के बाद शादी कर लेते हैं और भारतीय तटों पर घूमने के लिए निकलते हैं। मैटियो का अपने माता-पिता, समुदाय से बचन और उसका अलगाव उसकी शादीशुदा ज़िन्दगी को प्रभावित करता है। वैचारिक ध्रुवीयताओं के कारण मैटियो को अपनी पत्नी सोफी से साथ संतुष्टि और खुशी नहीं मिलती। जल्द ही उनकी शादी कड़वाहट, निराशा-आघात से गुजरती है। सोफी मैटियो की सोच और ज़िन्दगी जीने के तरीके को समायोजित करने में असमर्थ है क्योंकि वह सोफी और अपने माता-पिता की तुलना में गुरू की दुनिया को वास्तविक और सत्य मानते हैं। भौतिकवादी और व्यवहारवादी सोफी प्राथमिक सम्बन्धों को मजबूत रखना चाहती है। वह सचाई, भगवान या गुरू को खोजने के लिए भारत आये थे। वह सिर्फ विदेशी सुन्दरता और भारत की प्रसन्नता का आनन्द लेके के लिए और साहसिक झुकाव की तरह बाहर घूमने आई थी। उसने भारत के बारे में मैटियो से अपने सपने साझें किए। वह एक आदर्श पत्नी की तरह देखभाल और समझदारी भरा जीवन जीन चाहती है। वह अपनी बीमारी से

ठीक होने के बाद मैटियो और आश्रम से दूर रहना चाहती है। लेकिन मैटियो इस सुझाव से परेशान हो जाता है। वह यह सोचता है कि आध्यात्मिकता को हासिल करना बहुत आसान है। मैटियो एक आश्रम से दूसरे आश्रम, एक योगी से दूसरे योगी के पास जाता है लेकिन मन की शाँति और आंतरिक खुशी से दूर हो जाता है। ये सभी व्यर्थ के उद्यम उसके स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। सोफी को उसकी तरसयोग्य हालत पर दयालुता और हास्यपद परिस्थिति पर निराशा होती है। मैटियो का शिकार अभी खत्म नहीं हुआ है। पत्रिका स्टाल से वह 'द-मदर' नामक पुस्तक प्राप्त करने में सक्षम होता है। माँ की तस्वीर उसके लिए अत्यंत आनन्द का प्रतीक बन जाती है। जैसे ही मैटियो माँ के आश्रम तक पहुँचता है उसकी खुशी भक्तों से बात करने पर नहीं माँ से बात करने की होती है। जब वह पहली बार इटली के लिए रवाना होता है तो उसे सांसारिकता और दैव्यता के बीच सम्बन्ध समझ में आता है। वह माँ के पवित्र प्रेम के जादू और उसकी अज्ञात उत्पत्ति, बुद्धिमान, भयानक, व्यवहारिक और उच्च उत्साहित और रहस्यमय आध्यात्मिक आकर्षण से आकर्षित होता है। वह सोफी को बताता है कि उसके उसने भौतिक आध्यात्मिकता के साथ अन्धेरे और प्रकृति की एकता का अनुभव किया है। आश्रम के कार्यों के लिए मैटियो इतनी गहराई से शोषित है कि पारिवारिक के लिए उसके पास समय ही नहीं रहता। सोफी उससे स्वाल करती है कि क्यों घर, परिवार और बच्चा उसके लिए पर्याप्त नहीं है। सोफी को मैटियो के अपनी माँ के लिए प्रेम और भक्तिभाव के बारे में गलत फहमी होती है। माँ के बारे में उसकी टिप्पणियों ने उसको भावनात्मक रूप से चोट पहुँचाई। वह खुद क्को इस हद तक अपमानित कराने के बाद सोफी के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने में असफल महसूस करता है। वह निरंत्तर उसकी माँ से घृणा करने लगती है। सोफी यह भी जानान चाहती है कि शिक्षक और माँ के यौन सम्बन्ध तो नहीं है, 'Did they marry ?' वह पूछती है। इसके उत्तर में मैटियो और कहता है कि,

> We are not speaking of-of ordinary beings, please. We are talking of supernatural beings and the union of divine." परन्तु

> सोफी बात नहीं बदलती और कहती है, "Did they live as man and wife? ...As man and wife – physically? (Journey to Ithaca 130)

मैटियो को यह बात सुनकर पसीन आ जाता है और वह रुमाल निकालकर अपना चेहरा साफ करता है और कहता है, "As body and soul are one, yes." (Journey to Ithaca 131) यह घटना सोफी के दिल में माँ के प्रति दृष्टिकोण पर प्रकाश डालती है। इसके बाद वह मैटियो को ताने देती है, "What is she anyway? ...Look Indian sounds Indian, but not Indian. Well, what is she then?" (Journey to Ithaca 131) सोफी अपने दो बच्चों को साथ लेकर इटली में मैटियो के माता-पिता के बारे में जाँच पड़ताल करने के लिए निकलती है और यह कार्य करने का उसका मकसद सिर्फ उसको बदनाम करने का होता है। असल में मैटियो और सोफी दोनों ज़िन्दगी के प्रति अलग-अलग सोच के लिए हुए हैं। मैटियो हर कार्य और रिश्ते दिल से निभाता है वहीं सोफी दिमाग से निभाती है। सोफी देश के लोगों, पवित्र पुरुषों और विशेष रूप से माँ के बारे में यह सोचती है कि इन सबने मिलकर उससे उसका पति छीन लिया है। अनुमानतः सोफी भारत की पवित्रता और सभयता को समझ पाने में असमर्थ है और सोफी के लिए भारत की छवी एक कठोर रूप में सामने आती है। उसके लिए भारत के लोग हास्यपद या बस अप्रिय हैं। सोफी और मैटियो का इटली से भारत प्रस्थान करना एक विरोधाबास, मुठभेड़ जैसे है क्योंकि जब वह बिहार में एक आश्रम में जाते है तो मैटियो वहाँ की सक्रियता को देखना और समझना चाहता है जबकि सोफी को यह सब एक घुटन की महसूस होती है। वह आश्रम और मैटियो के इस व्यवहार के खिलाफ है। उपन्यास में शुरू से ही मैटियो और सोफी के बीच शारीरिक भिन्नताएँ दिखाई गई हैं जैसे मैटियो के सिर के बाल लम्बें और सोफी के पुरुषों की तरह कटे हुए। मैटियो की भारतीय आध्यात्मिकता की तरफ मानने वाली इच्छाशक्ति और वह आत्मसमर्पण भी कर चुका है लेकिन वहीं सोफी इसके बारे में संदेहजनक है। मैटियो आध्यात्मिक रूप से इच्छुक गुरू के बताए रास्ते पर चलन चाहता है,

> ...To understand India, and the ways that is at the heart of India. (Journey to Ithaca 134) लेकिन सोफी भौतिक, व्यवहारिक और तर्कसंगत है, wants to go and gat shrimp, to go to Kashmir and live on a houseboat, and lie on the sun and shampoo her hair and eat omelets all day. (Journey to Ithaca 135)

वास्तव में सोफी लगातार मैटियो और भारतीय चीजों दोनों की आलोचना करती है। उपन्यास के शुरू से ही भारतीय महिलाओं के व्यवहार और भक्तों के अंधविश्वासपूर्ण व्हवहार को स्वीकार नहीं कर पाती जैसे अपने आठवें बच्चे के लिए अस्पताल जाने की बजाए संत को पूछने मंदिर जाना।

अपने अगले उपन्यास 'The Zigzag Way' में अनीता देसाई एक टूटते परिवार और और नारी-पुरुष के सम्बन्धों के बारे में बताया है। अपने बच्चों के लिए एक नौकरानी की तलाश में बैट्टी जेनिंग्स डेलाबोल, कॉर्नवाल, लिवरपूल हैमर के साथ मेक्सिको आए थे। मेक्सिको में वह प्रस्तावित डेवी रोउस द्वारा प्रस्ताव स्वीकार करती है और कहती है कि,

> Now Davey has come to fetech me and my bag is all packed again and we are to take the train north. We will go straight to the chapel from the boarding house and be married there. Devey says the chapel is just like the one at home and we will have his Comish friends as witness… (The Zigzag Way 123)

यह नहीं कि बैट्टी ने उसको डरा दमकाकर भयभीत किया है, उसने तो हर पंक्ति में डेवी में अपना विश्वास और उसके साथ रहने की खुशी को व्यक्त किया है। कॉर्नवॉल में चैपल स्कूल में मिस फ्रांसिस को लिखे एक पत्र में बैट्टी अपने नए घर का विस्तार देता है,

> We have moved into our own home in a row on the hillside amongst the other miner's cottages. They are not so unlike

> the ones at home in Cornwall, except they have red-tiled roofs and the walls are as coloured as a rainbow…there is a stone trough for washing in, and along the wall are trees with lemons and oranges and a dark fruit like a near that they call the avvycado. The kitchen is quite small and a bit dark, but Davey has put in all the shelves I need and pretty painted tiles around the sink so it is a treat to do the dishes here. (The Zigzag Way 125)

जो लोग बैट्टी के पत्र पढ़ते है वह उसे एक बच्चे के रूप में उसको सोचते हैं क्योंकि उसके जीवन के पहलू उल्लेख करने के ही थे। उसके अपने खंडित परिवार और शादी के बारे में नहीं लिखा, जिसमें उसका पति रोज शहर शराब पीता और रविवार को पैसे लुटाकर आता, न हो उसने घर में होने वाले मुर्गो की तरह होने वाले झगड़े के बारे में लिखा जिससे घर अनियंत्रित हुआ। उसने बताया उनकी दुनिया के पहलू बहुत अजीब थे। इस प्रकार देखा जा सकता है कि तीनों लेखकों के कथा-साहित्य में पात्र कैसे असामान्य मनोविज्ञान से झूझते हुए दिखाई पड़ते हैं।

निष्कर्ष

अध्याय तीन में अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा-साहित्य में असामान्य बिन्दुओं को देखा गया है। जिसमें यह पाया गया है कि कैसे तीनों लेखकों के पात्र अपनी असामान्य क्रिया-कलापों से पीड़ित और संघर्षरत दिखाई देते हैं। तीनों ही अलोच्य लेखकों का अधार लेखन मनोवैज्ञानिक है और इसीकारण इनके पात्र भी अपने आप में ही मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस अध्याय में पहले असामान्य मनोविज्ञान के अर्थ, परिभाषाओं और असामान्य व्यवहार के लक्षणों को दर्शाया गया है। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा-साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान को दर्शाते हुए असामान्य बिन्दुओं के आधार पर इनका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

लेखकों ने मनोविज्ञान सम्बन्धी पाश्चात्य एवं भारतीय अवधारणाओं का गहन अध्ययन किया है। इनके उपन्यास व्यक्ति-चेतन प्रधान हैं। इन्होंने मनोवैज्ञानिक धरातल पर अपने औपन्यासिक पात्रों का चित्रण किया है, उपन्यासकार मानव-मन के सूक्ष्म पारखी हैं। इन्होंने अपने सभी उपन्यासों में व्यक्ति-चरित्रों पर सामाजिक परिवेश के दबाव को भी चित्रित करने तथा व्यक्ति के चरित्र के सबल एवं दुर्बल पक्षों का यथार्थ अंकन करने का प्रयास किया है। 'शेखर एक जीवनी' अज्ञेय की कालजयी कृति है। इस में शेखर के चरित्र को बाल-मनोविज्ञान के अधार पर चित्रित किया गया है। अपने पारिवारिक परिवेश में तीव्र उपेक्षा का शिकार बना कर शेखर अन्तर्मुखता की ओर प्रस्थान करता है। व्यक्ति के बाह्य एवं अन्तर जगत के सबल एवं दुर्बल पक्षों को उपन्यासकार ने शेखर के माध्यम से चित्रित किया है। तीनों लेखकों के पात्रों की जिज्ञासावृत्ति का शाँत न होने, अहम व भय से मुक्ति न मिलने, अकेलेपन और पराजय बोध का अनुभव करने तथा कुंठाग्रस्त होने के कारण व्यक्तित्व-चेतनता खंडित हो जाती है और आत्महीनता का वे प्रतिरूप बनते हैं। इस चरित्र के विकास के साथ-साथ लेखकों ने उनके समाज के साथ सम्बन्धों को कई रूपों में चित्रित किया है। नारी-पुरुष सम्बन्धों को कामुकता से परिचालित पात्रों की दृष्टि से चित्रित किया गया है। अपनी प्रेयसी पर एकाधिकार की चाहत को लेकर शेखर, भुवन, चन्द्रमाध्व, मैटियो, निरोद, जीवन, रमन इत्यादि पात्र सेक्सुअल अहम से ग्रस्त चरित्र के रूप में वर्णित हुआ है। क्षणवादी दर्शन के सम्बन्ध में अज्ञेय और अनीता देसाई के विचार अत्यंत महत्त्व रखते हैं। पात्रों की आंतरिक वृत्तियों को प्रकाश में लाने के लिए अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई तीनों ने ही स्वप्न-मनोविज्ञान का सहारा लिया है। दिवास्वप्नों व निशास्वप्नों के माध्यम से पात्रों की अतृप्त वासनाओं तथा उस के कुंठित व्यक्तित्व की ओर संकेत किया गया है।

अज्ञेय और अनीता देसाई के पात्रों की चरित्र-सृष्टि मनोवैज्ञानिक धरातल पर की गयी है। काम और प्रेम के द्वन्द्व को कई रूपों में लेखकों ने स्पष्ट किया है। विभिन्न

पात्रों के व्यक्तित्वों की द्वीपीय परिकल्पना में इनको अनूठी सफलता मिली है। ईर्ष्या-मुक्त प्रेम को प्रतीकत्व को लेकर गौरा और आत्म पीड़ा को झेलने में आस्थावान चरित्र के रूप में भुवन का चित्रण पाया जाता है। ये अपने पात्रों में परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों को दर्शाते हैं। आशावादी होकर भी पात्रों का कुंठाग्रस्त व्यक्तित्व और उपेक्षा से आहत भी पात्र दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं उपन्यासों में अस्तित्ववादी दर्शन के एक पहलू के रूप प्रेम और पीड़ा के बोध को अपने पात्रों के माध्यम से स्पष्ट करते हुए भी दिखाई पड़ते हैं। इस रचना में अज्ञेय ने व्यक्ति की गरिमा और उस के पृथक अस्तित्व का प्रबल समर्थन किया है। इनके उपन्यासों में पश्चिमी चिंतन की विकृति को दर्शाने हेतु पात्रों की परिकल्पना की गई है। ये व्यक्ति और समाज को एक-दूसरे के पूरक के रूप में मानते हैं। व्यक्ति की सत्ता का प्रतिपादन सामाजिक स्थितियों के नेपथ्य में ही वे करते हैं और समाज की स्वस्थ संरचना को ही वे व्यक्ति का एक मात्र लक्ष्य मानते हैं। अस्तित्ववादी दर्शन के प्रतिपादन के सन्दर्भों में उपन्यासकारों के विचार मौखिक एवं परिवेश संगत प्रतीत होते हैं।

उपन्यासों में अनेक स्तरों पर विभिन्न विसंगतियों एवं समस्याओं का अन्तस्पर्श करने वाले हैं। मानव मन की अन्तर्धाराएँ अनेक रंग-रूपों में प्रस्फुटित होकर समग्र जीवन का आभास देती हैं। लगता है काल बोध न केवल घटनाओं के माध्यम से बल्कि पात्रों की चिन्ताओं-दुश्चिन्ताओं के रूप में अपनी उपस्थिति को साकार करता है। ऐसे ही कई पात्र हैं, जो काल की घटनाओं के द्वारा प्रताड़ित हैं तथा उन अवांछित, अरोपित, दर्दनक, घटनाओं के भूत से निरंतर त्रस्त हैं। एक पात्र की त्रासदी नहीं बल्कि पूरे समाज एवं विभिन्न वर्गों में फैले वैमनस्य की कहानी है। उन्हें कीड़े पड़ेंगे इस वाक्य की आवृत्ति से जहाँ उन अज्ञात राक्षसों की क्रूरता का चित्र उभरता है, वहीं पात्रों की यातनाओं की गम्भीरता भी मुखरित होती है।

भारत विभाजन से जो लोग विस्थापित हुए थे, वे अभी पुनर्स्थापित भी नहीं हो पाए कि सन 1984 के दंगों के आलोक में निरीह लोग ही अधिकांशतः बलि का बकरा बने। सन 1984 के दंगों पर अनेक ग्रंथों की रचना हुई है परन्तु उनमें भी प्रायः

लगता है कि अखबार की करतनों पर आधारित घटनाओं का विवरण ही है, जबकि लेखकों के उपन्यासों में चित्रित कई पात्र उनका परिवेश, शहरों और गाँवों की दहशत सत्य एवं यथार्थ की गन्ध लिए है। ब्ल्यू स्टार आप्रेशन की मर्मान्तक पीड़ा को भी अपने कई उपन्यासों के माध्यम से लेखकों ने दर्शाया है।

निष्कर्षतः अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों में अहम से ग्रस्ति व्यक्तित्व वाले पात्र, संदेहशील, क्रोध में अपना आपा खोने वाले पात्र, ईर्ष्या युक्त व्यक्तित्व, कुंठित व्यक्तित्व, अन्तर्द्वन्द्व के शिकार और अकेलेपन और परायपन के बोध के शिकार पात्र तीनों लेखकों के कथा-साहित्य में पाए गये हैं। सम्बन्ध अक्सर सामंजस्यपूर्ण नहीं होते हैं। पति और पत्नी में अलगाव, महिलाओं की अतिसंवेदनाशील प्रकृति, अपने साथी के साथ सम्पर्क बिन्दु स्थापित करने में असमर्थता और सार्थक जीवन की खोज ही इनके उपन्यासों का विषय है। इनके उपन्यासों में पात्रों के बीच चल रहे आंतरिक संघर्ष और अपने अस्तित्व चाहे वह परिवार में हो या जीवित रहने के लिए अपने अस्तित्व की समस्याओं का सामना करते हुए ही दिखाई देते हैं। लेखकों के हर उपन्यास में चाहे वह देशी हो या विदेशी हर एक पात्र अपने जीवन के संघर्ष से झूझ रहा है। इसीकारण आपस में और परिवार में सामंजस्य बनाने में नाकामयाब हो रहे हैं। उपन्यासों में, चाहे वे अज्ञेय के हों, अजय शर्मा के हों या फिर अनीता देसाई के ही पात्र क्यों न हों, सब परिस्थितियों से झूझते हुए और असामान्य क्रियाएँ करते हुए देखे जा सकते हैं। समाज में हर व्यक्ति अपने आप को प्रतिष्ठित करने और दूसरे को नीचा दिखाने की होड़ में लगा हुआ है। इसीकारण व्यक्ति अपनी हार और दूसरे की होती हुई जीत नहीं देख पाता। ऐसे ही समाजिक और आतंरिक संघर्ष को लेखकों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से दर्शाने का प्रयत्न किया है। शायद यहीं वजह है कि लोगों के व्यवहार और सोचने के ढंग में बहुत सारे बदलाव देखे जा सकते है और इसीकारण वह समान्य से असमान्य व्यवहार की तरफ अग्रसर होते हुए मिलते हैं। यही कहा जा सकता है कि लेखकों ने नारी-पुरुष और मानव सम्बन्ध पर पड़ने वाले प्रभावों के विभिन्न पहलूओं को अपने उपन्यासों में दर्शाया है।

अध्याय चार

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में नारी मनोविज्ञान

साहित्य का आधार समाज है और मनोविज्ञान का केंद्र व्यक्ति सम्बन्धी विवेचन है। साहित्य समाज के साथ सम्बन्धित होता है तथा मनोविज्ञान व्यक्ति की मानसिकता को प्रदर्शित करता हैं। समाज और व्यक्ति का आचरण सम्बन्धी तालमेल और सजृनात्मक द्वन्द्व ही मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन का केंद्र बिन्दु होता है। उपन्यास का मुख्य विषय मानव जीवन होता है। मानव जीवन में मन का इतना बड़ा स्थान होता है कि कोई भी उपन्यासकार उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता है। इसी कारण समस्त उपन्यास साहित्य में मन और उसके विविध क्रिया-कलापों का न्यूनाधिक वर्णन अवश्य पाया जाता है। फ्रायड, एडलर, युंग आदि पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके सिद्धांतों के आविर्भाव के उपरांत उपन्यास में पात्रों के अन्तर मन का चित्रण अधिकाधिक सूक्ष्म होने लगा है। मनोविज्ञान के माध्यम से व्यक्ति का अन्तर मन अभिव्यक्त होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व में अन्तःवृत्तियों का प्रमुख स्थान है। समस्त बाहरी जगत इन्हीं प्रवृतियों की बाह्राभिव्यक्ति है। मनोविश्लेषण ने मानव अन्तर्जगत में चेतन मन के साथ अचेतन मन की स्थिति को रूप दिया है। अचेतन की कल्पना फ्रायड का मूल सिद्धांत है। व्यक्ति की इच्छा शक्ति बाह्राभिव्यक्ति न पाकर अन्तर्मुखी हो जाती है और अचेतन में अक्षुण्ण रहकर कुंठाओं एवं अस्पष्ट स्पप्न चित्रों को जन्म देती है। व्यक्ति की कामेच्छाएँ अचेतन के क्षेत्र में प्रवेश कर उनका मानसिक संतुलन नष्ट कर के अराजकता फैला देती है। मानव के इसी व्यवहार को अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई ने अपनी कृतियों के माध्यम से दर्शाया है। जहाँ तक नारी मनोविज्ञान की बात है उससे भी तीनों लेखकों ने अपने उपन्यासों मे बखूबी चित्रित किया है। इस अध्याय में लेखकों के उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान और लेखकों की नारी पात्रों की अस्मिता के प्रश्न, सामाजिक और मानसिक समस्याएँ इत्यादि को देखा गया है।

नारी मनोविज्ञान का अर्थ: हिन्दी उपन्यासकारों ने मनोविज्ञान के इन्हीं सिद्धांतों को कथा साहित्य में प्रस्तुत करने के लिए नारी जीवन को भी नवीन रूप में लिया है। नारी के परम्परागत स्वरूप को त्यागकर, नारी की मानसिक जटिलताओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, परीक्षण एवं मूल्याकंन किया जाने लगा है। इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में नारी-पुरुष सम्बन्धों की नई व्याख्याएँ उभरकर आई हैं। मनोविज्ञान ने आदर्श के स्थान पर यथार्थ को स्थापित किया। व्यक्ति को उसकी संपूर्ण विकृतियों, विसंगतियों एवं मनोविकारों के साथ उपन्यास साहित्य में प्रस्तुत किया है। सिनेमा जगत में भी ऐसी बहुत सी फिल्में हैं, जिनमें नारी की मानसिक स्थिति को प्रस्तुत किया गया हैं। विशाल भारद्वाज एक ऐसे निर्देशक है, जिनकी हर फिल्म में अँधेरा रहता है। यह अँधेरा कभी मन का तो कभी समाज का, तो कभी रिश्तों का होता है। 'सात खून' एक ऐसी ही फिल्म है, जिसमें नारी की मानसिक स्थिति को स्पष्ट किया गया है। उसके मन में दबी हुई ख्वाहिशें और प्रतिकार हैं। वह जितनी बार भी शादी करती है, अपने हरेक पति को पूर्णरूप से चाहती है। प्रेम, समर्पण और बराबरी का भाव चाहती है, लेकिन वह उसे प्राप्त नहीं होता। उसे कदम-कदम पर अपमान ही हासिल होता है, जिससे उसका मन प्रतिशोध की ज्वाला से भर जाता है। फिल्म के अंतिम दृश्य में वह अरुण से कहती है कि, हर बीवी अपनी शादीशुदा जिन्दगी में कभी न कभी अपने शोहर से छुटकारा चाहती हैं। यह संवाद एक पत्नी की मानसिकता को प्रकट करता है। वह अपने शोहर से इसलिए छुटकारा चाहती है, क्योंकि उसने कभी भी उसे प्रेम नहीं किया, उसका सम्मान नहीं किया, जिसके कारण उसमें हीन भावना पैदा हो जाती है, जो अलगाव का कारण बनती है। नारी भी पुरुष की भाँति सम्मान चाहती है, लेकिन पुरुष प्रधान समाज नारी की इस चाह तथा उसके अरमानों का गला घोंट देता है। समय-समय पर अनेक साहित्यकारों ने नारी की पीड़ा को समझा तथा अपनी कलम के माध्यम से उसे सहारा तथा आवाज दी। नारी की मानसिक स्थिति को प्रकट करने में नारी लेखिकाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होंने खुद इस समस्या को झेला है और भोगा है। नारी लेखिकाओं में मन्नु भण्डारी,

प्रभा खेतान, शिवानी, मैत्री पुष्पा, अनामिका, मृदुलागर्ग, महाश्वेता देवी, इन्दु बाला आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नारी साहित्यकारों के अतिरिक्त पुरुष लेखक भी हैं जिन्होनें नारी का मनोवैज्ञानिक चित्रण करके अपनी अदभुत काव्य कला को प्रकट किया हैं, उन्होंने नारी की पीड़ा, कामवासना, प्रेम आदि का चित्रण बड़े ही कलात्मक ढँग से किया हैं। पुरुष लेखकों में मुंशी प्रेमचंद, मोहन राकेश, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, जगदीशचंद्र माथुर, राकेश सिन्हा नाम उल्लेखनीय हैं।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई ने अपने उपन्यास साहित्य में नारी की मानसिक अवस्था का चित्रण बड़े ही कलात्मक तथा यथार्थ के धरातल पर किया है। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि लेखकों मनुष्य के अन्तर्मन को परखने में काफी कुशल है। इनके उपन्यास की नारी आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है। जो क्रोध, अहम, कुंठा, विद्रोह, अन्तर्द्वन्द्व जैसे मनोविकारों से ग्रस्ति है। पारिवारिक उपेक्षा तथा पति का व्यवहार उसे इतना मानसिक कष्ट देता है कि आखिर में वह अपने पति से अलग हो जाने के बारे में सोचने पर मज़बूर हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप उनकी जिन्दगी अन्जान दिशा में खो जाती है, जहाँ उसे कोई किनारा नहीं मिलता। इस प्रकार अनेक साहित्यकारों ने नारी की मनोवैज्ञानिक स्थिति का वर्णन किया है। मन्नु भण्डारी की कहानियों के नारी पात्र भी इन्हीं विशेषाताओं सहित चित्रित किए गए हैं। मन्नु भण्डारी ने अपनी नारी चरित्रों की सृष्टि उनके बाहरी तथा आंतरिक व्यक्तित्व के यथार्थ चित्रण से ग्रहण किया है। मन्नु भण्डारी ने अपनी पुस्तक मेरी प्रिय कहानियों की भूमिका में एक जगह लिखा है,

> लेखकों ने या तो नारी की मूर्ति को अपनी कुंठाओं के अनुसार विकृतियों से तोड़-मरोड़ दिया है या अपनी स्वप्न-नारी की तस्वीर उतारी है। वह देवी और दानवी के दो छोरों के बीच टकराती पहेली नहीं, हाड-माँस की मानवी भी है, उसे प्राय: एक सिरे नज़र अंदाज करते रहे हैं। (मेरी प्रिय कहानियाँ 2)

मन्नु भण्डारी के कहने का अर्थ यह है कि लेखक अपनी कुंठाओं और स्वप्नों को नारी के माध्यम से प्रस्तुत करता है। वह नारी के एक ही पक्ष का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढँग से करता है जबकि दूसरे पक्ष को नजरअंदाज कर देता है। लेखकों ने नारी के प्रत्येक पक्ष का वर्णन बड़े ही सूक्ष्म तथा मनोवैज्ञानिक ढँग से किया है। एक गृहिणी तथा कामकाजी नारी की मानसिकता का वर्णन उन्होंने आधुनिक सन्दर्भ में किया है, जो कि यथार्थ की अनुभूति कराता है। एक नारी की मानसिकता क्या होती है, उसकी क्या-क्या इच्छाएँ होती हैं, जब उसकी इच्छाओं का गला घोंट दिया जाता है तब उसका मन विरोधाभास से भर जाता है। इन सभी महत्त्वपूर्ण बातों को उन्होंने मनोविज्ञान के धागे में पिरोकर बड़े ही कलात्मक ढँग से अपने पात्रों के माध्यम से प्रकट किया है। नि:संदेह वे अपनी इस अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं।

नारी एक ऐसा शब्द है जिसकी अनेक प्रकारों से व्याख्या और विश्लेषण किया गया है। कुछ के लिए वह मात्र एक शब्द है और अधिकांश के लिए महज एक शरीर जिसका कई प्रकार से 'प्रयोग' किया जा सकता है। लेकिन एक पृथक अस्तित्व के रूप में उसे बहुत कम लोगों ने स्वीकारा है। इसके साथ ही नारी से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार करना या तो मजे के लिए है या महज एक बुद्धिविलास, एक किताबी बातें जिसके द्वारा प्रसिद्ध हुआ जा सकती है। शायद यही कारण है कि पूंजीवाद से लेकर मार्क्सवाद तक के नारीवादी आन्दोलन किसी क्रांति की ज्वाला नहीं जला पाते। इस सबके पीछे शायद एक जो सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है, वह यह है कि हम नारी की 'मानव' रूप में कल्पना ही नहीं कर पाते। औरत होने की सज़ा नामक पुस्तक में अरविंद जैन नारी के बारे में अपने विचार देते हुए कहते है,

> सच तो यह है कि हमारे परम्पागत सोच में नारी को दो हिस्सों में बाँट दिया गया है। कमर के ऊपर की नारी और कमर के नीचे की औरत। हम पुरुष को उसकी सम्पूर्णता में देखते हैं, उसकी कमियों और कमजोरियों के साथ उसका मूल्यांकन करते हैं। नारी को हम सम्पूर्णता

> में नहीं देख पाते। कमर के ऊपर की नारी महिमामयी है, करूणाभरी है, सुंदरता और शील की देवी है- वह कविता है, संगीत है, अध्यात्म और अमूर्त है। कमर के नीचे वह काम कंदरा है, कुत्सित और अश्लील है, ध्वंसकारिणी है, राक्षसी है और सब मिलाकर नरक है। (औरत होने की सज़ा 12)

यानी कुल मिलाकर नारी की कल्पना दो अतिवादी छोरों के बीच की गई। नारी को मानव न मानकर एक जाति विशेष मानने के कारण समस्या उत्पन्न हुई। आदिम समाज में जब कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं थी, नारी का भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व था। स्वतंत्र प्राणी होने के नाते उसके पास बराबर के अधिकार थे। कालान्तर में जैसे-जैसे समाज व्यवस्था में परिवर्तन आया, नारी के अधिकारों का ह्रास हुआ और वह पुरुष पर आश्रित होती चली गई इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए अरविंद जैन औरत होने की सजा नामक पुस्तक में आगे लिखते हैं,

> इसी के समानांतर उसकी स्वतंत्रता भी छिनती चली गई। नारी 'मानव' न होकर महज नारी रह गई। एक शरीर ! एक देह ! जिससे पुरुष मोहित भी है और भयभीत भी। पुरुष जब उसके साथ होता है तो उसे केन्द्र में रखकर कलाओं की सृष्टि करता है और जब उससे बचकर भागता है तो दर्शनशास्त्र और धर्म का निर्माण करता है। इसी क्रम में पुरुष ने नारी के चारों ओर साहित्य, संस्कृति और धर्म का एक गरिमामय जाल रचा तथा इसके द्वारा आदमी ने औरत की जिस एक चीज को मारा, कुचला या पालतू बनाया वह है उसकी स्वतंत्रता। आदमी हमेशा से नारी की स्वतंत्र सत्ता से डरता रहा है और उसे ही उसने बकायदा अपने आक्रमण का केन्द्र बनाया है। अपनी अखंडता में नारी दुर्जेय है।...आदमी ने लगातार और हर तरह कोशिश की है कि उसे परतंत्र और निष्क्रिय बनाया जा सके। (औरत होने की सज़ा 13)

नारी प्रश्नों का स्वरूप

वैदिक युग में नारी की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी दिखाई देती है। डॉ. रमेशनंदन द्विवेदी अपनी पुस्तक आन्दोलनों का समाजशास्त्र में इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखते हैं,

> वैदिक साहित्य में प्रयुक्त ऋचाओं के अनुशीलन से स्पष्ट होता है, कि नारियों का स्थान पूजनीय था। स्त्रियाँ कुलदेवी मानी जाती थीं, गृहस्वामिनी तो होती ही थीं। क्षत्रिय कुलोत्पन्न नारियों को युद्ध में सार्थय करने का अधिकार भी प्राप्त था। वे असाधारण विचारिका और पंडित भी होती थीं। वेदों की कितनी ही ऋचाएँ नारियों की रची हुई हैं। (आन्दोलनों का समाजशास्त्र 81)

इस काल को इस दृष्टि से नारी स्वतंत्रता का स्वर्ण युग माना जा सकता है। यह वह समय था जब कन्या के जन्म को अपशकुन नहीं माना जाता था। ऋग्वेद के पाँचवें अध्याय में उल्लिखित है कि ऋग्वेद की एक ऋचा विश्वधारा नामक नारी ने रची थी। अगस्तय ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा भी एक ख्याति प्राप्त रचियता थीं। इस काल की नारी अधिकार सम्पन्न थी। रेणुका नैयर अपनी पुस्तक नारी स्वातंत्र्य के बदलते रूप में नारी के बारे में अपने विचार देते हुए कहती हैं कि, "नारी को अपने जीवन साथी का चयन करने की यहाँ तक कि शिशु को गोद लेने का भी अधिकार था। उदाहरणार्थ वाधारीमती ने हिरणयास्ता और लोपामुद्रा ने दशरथ की पुत्री सांथा को गोद किया था।" (नारी स्वातंत्र्य के बदलते रूप 19) इससे स्पष्ट होता है कि नारी को शिक्षा और जीवन के सम्बन्ध में निर्णय लेने का अधिकार इस काल तक प्राप्त था। वे ऋग्वेद की मंत्रदृष्टा बनीं। जिसमें घोष, आपाला, विश्वधारा, लोपामुद्रा, शची, मौलमी तथा वग्भृणी आदि के नाम ऋग्वेद में भी अंकित हैं। उस ऋग्वेद में जिसे कलांतर में पढ़ने का अधिकार भी उससे छीन लिया गया। ऐतिहासिक तथ्यों से उस समय नारी की ऊँची सामाजिक स्थिति का पता सरस्वती मिश्र द्वारा रचित पुस्तक भारतीय स्त्रियों की

परिस्थिति में चलता है कि, "पूर्व आर्यन युग के उत्खनन से प्राप्त मातृ देवी की प्रतिमाएँ व मुहरें नारी की ऊँची सामाजिक स्थिति को उजागर करती हैं।" (भारतीय स्त्रियों की परिस्थिति 8) इस काल की नारी सामाजिक कार्यों में बराबर का योगदान देती थीं। शिक्षा और आर्थिक अधिकार प्राप्त होने के कारण वे ऊँची सामाजिक स्थिति का आनंद उठाती थी। भारत ही नहीं यूरोपियन समाज में भी नारी की ऊँची परिस्थिति के उदाहरण मिलते हैं। फ्रेड्रिक एंगेल्स ने अपनी पुस्तक परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति में कहा है कि, "यूनानियों की पुराण कथाओं में देवियों का जो स्थान है वह उसके पूर्वकाल का प्रतिनिधित्व करता है जब नारी की स्थिति अधिक सम्मानप्रद और स्वतंत्र थी।" (परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति 13) इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि नारी की स्थिति एक समय इतनी दयनीय नहीं थी जितनी कालांतर में होती गई। उस युग में पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। राजसी परिवारों में स्वयंवर की प्रथा भी प्रचलित थी। यहाँ तक कि विधवा को भी पुनर्विवाह की स्वतंत्रता उपलब्ध थी। अथर्वेद में पुनर्विवाह के बाद नारी के जीवन को 'पुर्नभु' या पुनः जन्म की संज्ञा दी गई है। नारी को सम्पत्ति में भी अधिकार था।

कालांतर में निजी सम्पत्ति की धारणा का उदय हुआ। चूँकि पुरुष शारीरिक दृष्टि से अधिक बलशाली था, फलतः उसने जमीन और पशुओं के साथ-साथ नारी पर भी अधिकार जमाना शुरू कर दिया। नारी के रूप में उसे एक ऐसा दास मिल गया जो उसकी अनुपस्थिति में उसके घर की देखभाल कर सके और उसके कार्य कर सके। इस अवधारणा ने नारी को दोयम दर्जे का नागरिक बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उमा शुक्ल अपनी पुस्तक भारतीय नारी अस्मिता की पहचान में कहती हैं कि, "जो स्त्रियाँ वैदिक युग में धर्म और समाज का प्राण थीं उन्हें श्रुति का पाठ करने के अयोग्य घोषित कर दिया गया।...'नारी शूद्रो नाधीयताम' जैसे वाक्य रचकर उसे शूद्र की कोटि में रख दिया।" (भारतिय नारी अस्मिता की पहचान 14) उनसे उसके अधिकार छीन लिए गए। शुचिता और लिंग भेद के नियम कठोर से कठोरतम होते चले गए। कौटिल्य

के अर्थशास्त्र व मानवधर्म शास्त्र से उस समय की सामाजिक स्थिति का पता चलता है। इस समय तक समाज के ठेकेदारों ने संस्कार व्यवस्था के अन्तर्गत समाज के कुछ ही वर्गों को ये संस्कार करने की अनुमति प्रदान की। इसके अतिरिक्त जिस वर्ग को संस्कार सम्पन्न करने की अनुमति नहीं थी उनकी स्थिति निम्न समझी जाती थी। इस संस्कारों से वंचित करके नारी को उसकी सामाजिक स्थिति से गिराने का कार्य तत्कालीन ब्राह्मणवादी व्यवस्था में बहुत ही सुनियोजित तरीके से किया गया। नारी को विवाह के अतिरिक्त किसी भी संस्कार में वेद मंत्रों का उच्चारण वर्जित कर दिया गया। ब्राह्मण इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि ज्ञान जिसके पास रहेगा वास्तविक सत्ता भी उसी के हाथ रहेगी। इसीकारण उन्होंने समाज के प्रत्येक तबके को ज्ञान से वंचित करने की एक कार्य प्रणाली चलाई जिसके तहत ज्ञान को वर्जित क्षेत्र घोषित कर दिया गया और इसके परिणामस्वरूप ज्ञान पर उनका ऐकाधिकार हो गया। वंचित किए जाने वाले वर्गों में स्त्रियाँ भी शामिल थीं। भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति नामक पुस्तक में सरस्वती मिश्र कहते हैं कि, "उपनयन न होने के कारण वे शिक्षा व वेदों के ज्ञान से वंचित हो गई। कौटिल्य के अर्थशास्त्र व मनुसंहिता में कहीं भी नारी के लिएशिक्षा का उल्लेख नहीं है।" (भारतीय स्तियों की परिस्थिति 12) तात्कालिक ब्राह्मणवादी समाज इस तथ्य से भली-भाँति अवगत था कि शिक्षा प्राप्ति से ही अधिकार प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

वैदिक काल के समाप्त होते-होते नारी को संस्कारों के जाल में जकड़ दिया गया। उसकी राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक स्वतंत्रता समाप्त-सी हो गई। मनुस्मृति में शारीरिक परिपक्वता से पहले ही विवाह की आयु सुनिश्चित कर दी गई। विधुर हो जाने की दशा में पुरुषों को पुनर्विवाह की अनुमति थी, लेकिन नारी को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं दी गई। इस प्रकार इस समय नैतिकता का दोहरा मापदंड समाज में स्थापित हो गया। विद्वानों ने इस युग में उत्पन्न निजी सम्पति की अवधारणा को नारी की स्वतंत्रता के हनन के लिए उत्तरदायी ठहराया है। जसबीर जैन ने इस सम्बन्ध में

लिखा, “नारी की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने और उसे विनिमय की वस्तु के रूप में प्रयुक्त करने तथा नारी को सम्पत्ति समझने के लिएसम्पत्ति का अधिकार प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है।” (फेमिनाइजिंग पालिटिकल डिसकोर्स, वुमैन एंड द नावल इन इंडिया 43) सम्पत्ति के रूप में व्यहृत करने के कारण नारी पर अधिकार जमाने की पुरुष की भावना तीव्र होती चली गई। उसने उसे अपनी वस्तु समझा और उस पर अनेक प्रतिबँध थोप दिए। नारी का धार्मिक जीवन केवल कुछ व्रत रखने तक ही सिमित कर दिया गया। उसके द्वारा वेद का पठन-पाठन पहले ही बन्द हो चुका था। पति के चयन में वधू की इच्छा का कोई प्रश्न ही नहीं रह गया। नारी महज भोग-विलास की वस्तु बन कर रह गई। दरबारों में वह राज नर्तकी होती थी, समाज में वेश्या और मंदिरों में देवदासी। नाम भले ही अलग-अलग हों लेकिन कार्य एक ही था-पुरुष को रिझाना। नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व तो एक प्रकार से समाप्त ही हो गया।

देशकाल में परिवर्तन के साथ-साथ नारी की सामाजिक परिस्थिति में दिनों-दिन ह्रास होता चला गया। मध्यकाल तक आते-आते नारी की दशा दयनीय हो गई। यूनानियों, हूणों और शकों के आक्रमण से समाज व्यवस्था को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से अमानवीय परम्पराओं का उद्भव हुआ। कन्या को जन्म लेते ही मार दिया जाना, सती प्रथा, पर्दा प्रथा आदि। सती तथा जौहर जैसी प्रथाओं के पीछे विदेशी अक्रमणकारियों के हाथों बेइज्जत होने से बचने का भाव था। विदेशी अक्रमणकारियों के हाथों प्रताड़ित होने के बजाए उन्हें मृत्यु कम कष्टदायक लगी होगी। सामाजिक परिस्थितियां भी इसके लिएकम जिम्मेदार नहीं थी। यौन शुचिता के नियम इतने कठोर थे कि विधर्मियों के हाथों एक बार अपमानित हुई नारी को समाज पुनः स्वीकार नहीं करता था। यद्यपि सती का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी मिलता है लेकिन इस प्रथा की विभिषिका 17वीं- 18वीं शताब्दी के भारत में अपने चरम पर थी। विद्वानों ने भारत में मुस्लिम राज्य को भी नारी की पतनशील स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराया है। नारी शोषण आईने और आवास नामक पुस्तक में आशारानी बोहरा कहती हैं कि,

> भारत में मुस्लिम हमलों व मुस्लिम राज्य के प्रभाव से हिन्दु नारी पर अनेकानेक अधिशप्त स्थिति, सती प्रथा की अनिच्छुक विधवाओं को जबरदस्ती चिता में झौंका देना, जौहर में हजारों नारी का एक साथ चिता में कूद पड़ना, पर्दा प्रथा के कारण लड़कियों को शिक्षा से वंचित कर दिया जाना, अशिक्षा और अंधविश्वासों से जकड़ी नारी को अधिकाधिक पुरुषों का गुलाम बना दिया जाना। (नारी शोषण आईने और आवास 14)

नारी की अस्मिता का प्रश्न उसके अधिकार उसकी अस्मिता से जुड़ा प्रश्न है। आदिम समाज में नारी की एक निश्चित पहचान थी। उसको भी पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे। उस पर वर्जनाएँ नहीं थोपी गई थीं। इस स्थिति का उल्लेख फ्रेडरिक एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में किया है, "न केवल एक पुरुष एक से अधिक नारी के साथ सम्बन्ध रख सकता था अपितु एक नारी भी परम्पराओं को तोड़े बिना एक से अधिक पुरुषों से सम्बन्ध रख सकती थी।" (परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति 12) कमोबेश यही स्थिति भारत में भी थी। चूँकि उस समय कृषि व्यवस्था नहीं थी। मनुष्य भोजन के लिए शिकार पर निर्भर था। शिकार करते समय पुरुष जंगलों में दूर-दूर तक चले जाते थे और कई बार काफी दिनों के बाद घरों को वापस आते थे। इस बीच नारी ही घरों की देख-रेख करती थीं। वे पूर्ण स्वामिनी होती थीं। इस काल में परिवारों का मातृ सत्तात्मक रूप दिखाई देता है। ब्रिफाल्ट और मार्गन जैसे समाजशात्रियों ने अपने अध्ययनों द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की है कि आदिम परिवार मातृ सत्तात्मक होते थे। नारी समान रूप से अधिकारिणी थी। यौन शुचिता जैसी कोई अवधारणा नहीं थी। आज भी आदिवासी समाजों में यौन शुचिता को अत्यधिक महत्व नहीं दिया जाता। विवाहपूर्व यौन सम्बन्धों को कई आदिवासी समाजों में घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता। आदिवासी मुरिया में 'घोटुल' की प्रथा इसका एक उदाहरण है। जिसमें युवक और युवतियां गाँव से बाहर घोटुल बनाकर एक साथ रहते हैं और उनमें विवाहपूर्व सम्बन्ध भी होते हैं। कालांतर में

सभ्यता के विकास के साथ-साथ शिकार के स्थान पर कृषि व्यवस्था और पशु पालन व्यवस्था आई। आदमी ने एक स्थान पर रहना शुरू कर दिया। भूमि और पशु धन जो पहले समाज की सम्पत्ति थे अब व्यक्ति की सम्पत्ति बन गए। कृषि कार्यों के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती थी। अतः दास प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ, और पत्नीयों से अच्छी दास शायद ही कहीं उपलब्ध हों। पिता और पति की सम्पत्ति पर नारी के अधिकार को समाप्त कर दिया गया अतः वे आर्थिक दृष्टि से निर्बल हो गई और पितृसत्तात्मक समाज की स्थापना हुई इसकी ओर संकेत करते हुए एंगेल्स अपनी पुस्तक परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति में लिखते हैं, "जैसे-जैसे सम्पदा में वृद्धि हुई वैसे-वैसे परिवार में पुरुष की परिस्थिति महत्त्वपूर्ण होती चली गई।" (परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति 57)

मार्क्स ने आर्थिक दृष्टि से नारी प्रश्नों को देखा। आदिम समाज में जब भूमि समुदाय की सम्पत्ति थी तब आर्थिक अधिकार निर्धारित नहीं थे। इस समाज में नारी की बराबरी की हिस्सेदारी थी। परिवार भी मातृसत्तात्मक थे। उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार होने से व्यक्ति की कोई पृथक सत्ता नहीं थी। लेकिन धीरे-धीरे जब जनसंख्या बढ़ी और कृषि सभ्यता का प्रसार हुआ तो मनुष्य ने भूमि पर अपना निजी स्वामित्व स्थापित कर लिया। शारीरिक रूप से बलशाली व्यक्तियों ने भूमि अर्थात उत्पादन के साधन पर अपना अधिकार कर लिया उर निर्बल व्यक्तियों से इस पर कार्य कराना शुरू कर दिया। पुरुष ने भूमि और पशुओं का आर्थिक अधिकार अपने हाथ में रखा। चूँकि नारी के रूप में उसे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने और काम करने के लिए एक प्राणी उपलब्ध था और वह जानता था कि आर्थिक अधिकार जिसके हाथ में रहेंगे वही शासन करेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि पुरुष ने सभी प्रकार के आर्थिक अधिकार अपने हाथ में रखे और नारी दोयम दर्जे की नागरिक बन कर रह गई। परिवार का मातृ सत्तात्मक रूप समाप्त हो गया और पितृसत्तात्मक परिवारों की स्थापना हुई। अब चूँकि पुरुष से ही वंश चलना था अतः पुत्री के ऊपर पुत्र की प्रधानता की स्थापना हुई। आर्थिक परतंत्रता और अधिकारों से वंचित होने के कारण नारी और

गुलामों की स्थिति समाज में तकरीबन एक जैसी थी। पत्नी को ऐसा घरेलू नौकर माना गया जो बिना वेतन के काम करता है। फ्रेड्रिक एंगेल्स अपनी पुस्तक परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति में कहते हैं कि, "पत्नी पहली घरेलू नौकर बनी, जिसे सामाजिक उत्पादन कार्यों में भाग लेने के लिए मजबूर किया गया।" (परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति 73) सामाजिक व्यवस्था में बदलाव और विकास के साथ-साथ उपभोक्तावादी पूंजीवादी व्यवस्था आई और हर वस्तु बिकाऊ बन गई। पूंजीवादी व्यवस्था में बाज़ारीकरण की भावना के चलते वस्तु के साथ-साथ नारी को भी बिकाऊ बना दिया गया।

हालांकि पूंजीवादी समाज ने नारी को आर्थिक स्वतंत्रता (कमाने के अर्थ में) प्रदान की लेकिन उससे उसकी पहचान छीन ली। पूंजीवाद ने नारी ही नहीं मानव मात्र के समक्ष पहचान बनाए रखने का संकट उपस्थिति कर दिया। औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में विलुप्त मानवीय संवेदना की खोज में बीटनिक, हिप्पी आदि कई आन्दोलन चले। पूंजीवादी समाज ने उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया और पहचान बनाए रखने के इस संकटकाल में अन्य आन्दोलनों के साथ नारीवादी आन्दोलन की शुरूआत भी हुई। जिसके द्वारा नारी ने अपनी अस्मित्ता की तलाश की चेष्टा शुरू की। इस आन्दोलन के उद्देश्य के सम्बन्ध में पाम मारिस ने लिखा, "नारीवादी आन्दोलन का उद्देश्य स्वयं को और संसार को नए तरीके से जानना और लैंगिक पहचान के वर्तमान दृढ़ स्वरूप को हटाना है।" (लिट्रेचर एंड फेमिनिज्म, एन इंट्रोडक्शन 6) नारीवादी आन्दोलनों के जरिए नारी ने समाज में अपनी पहचान बनाने की कोशिश की। इसी विषय पर एम.पी. सिंह अपने लेख में कहते हैं कि, "नारीवाद का मुद्दा इस तथ्य को मान्यता देने के कारण सामने आया कि यद्यपि लिंग का निर्धारण जीवन वैज्ञानिक रूप से होता है, लेकिन उससे सम्बद्ध भूमिका विशेष इतिहास के सन्दर्भ में निर्मित होती है।" (इकानॉमिक एंड पालिटिकल वीकली, जेंडर ला एंड सेक्सुअल एसल्ट 543) नारी के सामने प्रश्न अपनी स्वतंत्र सत्ता की स्थापना के बजाए

अपने को मानव रूप में स्थापित करने का अधिक है। नारी को जब तक महज देह माना जाता रहेगा उसका अस्तित्व स्थपित ही नहीं हो सकेगा। नारी को जब भोग और प्रण्य वस्तु बना दिया जाता है तो उसे अधिकार देने का प्रश्न ही नहीं उठता। पुरुष के लिए नारी महज एक शरीर है जो पुरुष के लिए वंशवृद्धि का माध्यम है और पुरुष अधिकांशतः उसे इसी रूप में स्वीकार करता है। प्रो. मैनेजर पाण्डेय नारी के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते है कि,

> नारी को पुरुष अत्यंत भद्रता के साथ अधिक से अधिक पुनरूत्पादन के साधन के रूप में स्वीकार करता है और साधन को स्वतंत्रता नहीं होती कि वह स्वेच्छा से जिए मरे या कुछ भी करे। नारी जब इस परिभाषा के अनुसार पुनरूत्पादन का रोल स्वीकार कर लेती है तो उसकी आज्ञाकारिता की एवज में समाज उसे महिमा मंडित भी करता है। (हंस, औरत उत्तर कथा अंक 28)

लेकिन यहाँ भी उसे तब तक ही महिमा-मंडित किया जाएगा जब पुनरूत्पादन पुत्र के रूप में हो। क्योंकि वंश पुत्र से ही चलेगा, मोक्ष भी पुत्र से ही प्राप्त होगा। सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि नारी संतान को जन्म दे उसका पालन-पोषण करे और इसके बाद भी संतान पर अधिकार पुरुष का हो। नारी द्वारा उत्पन्न संतान पुरुष का वंश चलाती है, नारी का नहीं। संतान के मोहजाल में जकड़कर पुरुष ने नारी के लिए एक अति सुदृढ़ जाल की रचना की है। नारी की संतान उत्पादन की क्षमता के आधार पर भी उसका शोषण किया गया। तर्क दिए गए कि नारी चूँकि गर्भ धारण करती है इस कारण वह उस समय अधिक शारीरिक श्रम नहीं कर सकती अतः उसे पुरुष पर आश्रित रहना चाहिए। पाम मारिस अपनी पुस्तक में किसी एक मिथक के अनुसार नारी के बारे में बताते हुए कहते हैं कि,

> नारी की रचना आदम की पसली से की गई है इसी कारण वह उसके अधीन और अपनी आवश्यकताओं के लिए उस पर निर्भर है। सबसे

> 'कष्टपूर्ण' शिशु जन्म को नारी के पापों की सज़ा माना गया और इस प्रकार नारी की सृजनात्मक क्षमता अपराध और अधीनता स्वीकार करने की एक सूची बन गई। (लिट्रेचर एन फेमिनिज्म एंड इंट्रोडक्शन 20)

संतान उत्पन्न करने की क्षमता भले ही प्रकृति ने नारी को दी हो लेकिन संतान लड़की हो या लड़का इसका निर्धारण पुरुष द्वारा ही किया जाता है। पुरुष प्रधान समाज में वंश चलाने वाला पुत्र ही है। अतः अधिकांश पुरुष नहीं चाहते हैं कि उनके घर में पुत्री का जन्म हो। पहले तो कन्या शिशु को जन्म समय ही मार दिया जाता था, लेकिन अब विज्ञान की सहायता से कन्या शिशु को भ्रूण अवस्था में ही समाप्त कर दिया जाता है। पुरुष का वंश चूँकि पुरुष के अंश से ही चलना चाहिए अतः यदि किसी की पत्नी संतान उत्पन्न करने में असमर्थ होती है तो वह दूसरा विवाह करने की सोचता है या ऐसा इंतजाम करता है कि वह दूसरी नारी से अपनी संतान पा सके। किश्वर नाहिद अपनी पुस्तक वुमैन: मिथ एंड रीयलटीज़ में नारी के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि,

> पुरुष ने पुराने उद्देश्यों के लिएनई तकनीक का प्रयोग किया उदाहरण के लिए कन्या शिशु की हत्या के लिए भ्रूण परिक्षण या ऐसे बच्चों की प्राप्ति के लिएजिन्हें वह अपना कह सकें नई प्रजनन तकनीक (सेरोगेट मदर)। ये कार्य नारी के खिलाफ एक वैश्विक युद्ध है। इस युद्ध का उद्देश्य नारी शरीर विशेषकर उसकी यौन और प्रजनन क्षमता पर पुरुष के नियंत्रण को और कठोर करना है। (वुमैन: मिथ एंड रीयलटीज़ 12)

सेरोगेट मदर के माध्यम से पुरुष ने नारी की देह के साथ-साथ उसकी कोख को भी बिकाऊ बना दिया है। जब भी कोई नारी समाज में स्वतंत्रता की माँग करती है तो उसे पुरुष समाज में पतित का दर्जा दे दिया जाता है। पुरुष इस तथ्य से भली-भाँति अवगत

है कि जिस दिन औरत जाग जाएगी, जिस दिन वह अपनी ताकत को पहचान लेगी, जिस दिन स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगी उस दिन पुरुष का वर्चस्व टूट जाएगा। यही कारण है कि पुरुष ने हर उस बात का विरोध किया है जिससे नारी को जरा-सी भी स्वतंत्रता मिलती हो। यह मानसिकता समाजवादी, लोकतांत्रिक, पूंजीवादी सभी देशों के पुरुषों में विद्यमान है। वे स्वतंत्र नारी को वेश्या शब्द का भय दिखाकर उसे घर की चारदिवारी में कैद कर देना चाहते हैं।

विश्व के प्रत्येक देश में नारी के पक्ष में चलाए जा रहे आन्दोलनों को कुचलने की कोशिशें की गई। नारी की स्थिति को उठाने के जितने भी प्रयास किए गए प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने उनकी राह में रोड़े अटकाए। भारत में भी जब-जब नारी की दशा सुधारने के लिए सुधारवादी आन्दोलन चलाए गए उसका किसी न किसी रूप में विरोध हुआ। इकनॉमिक एंड पालिटिकल वीकली नामक पुस्तक में नंदिता गाँधी नारी के सम्बन्धी अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहती हैं,

> नारी के लिए लिंग के भेदभाव पर आधारित न्याय या अत्याचारों पर रोक लगाने से सम्बन्धित कानूनों के समक्ष हमेशा ही समस्याएँ आई और उनका विरोध हुआ। अँग्रेजों द्वारा चलाए गए सुधारवादी आन्दोलनों का हिन्दू परम्परावादियों ने विरोध किया। नारी को विवाह, तलाक, देख-रेख भत्ता, हिरासत और दत्तक ग्रहण के क्षेत्र में अनुकूल प्रावधान उपलब्ध कराने वाले यूनिफार्म कोड बिल का धार्मिक आधार पर विरोध किया गया। (इकनॉमिक एंड पालिटिकल वीकली, ड्राफ्टिंग जेंडर जस्ट ला 858)

नारी की स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता को पुरुष भी पसंद नहीं करता। वह तथ्य को भली प्रकार से जानता है, कि वर्चस्व उसी का होता है जिसके पास निर्णय लेने का अधिकार होता है। पर परिवार या समाज सभी स्थानों पर छोटे बड़े निर्णय करने का एकाधिकार पुरुष के हाथों में सुरक्षित है। यदि नारी को कोई पुरुष स्वतंत्रता देने का

दावा भी करता है तो निर्णय का अधिकार साड़ी की पसंद या सब्जी कौन-सी बननी है यही तक सीमित रहता है और सही मायने में देखा जाए तो यहाँ भी पुरुष की पसंद, नापसंद ही हावी रहती है। नारी के शरीर और मन पर पुरुष अपना अधिकार रखना चाहता है। अरविंद जैन अपनी पुस्तक औरत होने की सज़ा में नारी के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि,

> साहित्य और समाज की सबसे बदनाम बहिष्कृत और गुमराह औरतें वे हैं जो अपने शरीर और मन को अपने पतियों, स्वामियों या अभिभावकों तक ही सीमित नहीं रख पाईं। यानी शरीर की माँग ने जिनके भीतर एक स्वतंत्र इच्छा शक्ति जगा दी- वे कुलटा, छिनाल, पतित इत्यादि के नाम से सजा की अदिकारिणी हुई। इस स्वतंत्रता की सजा मौत ही थी। उन्हें गुपचुप या सार्वजनिक रूप से सजा देने को हर समाज ने जायज ही माना। (औरत होने की सज़ा 14)

उसे कहीं भी जीवन के चुनाव की स्वतंत्रता नहीं है। पुरुष समाज ने नारी को रिश्तों की मर्यादा में बाँध दिया और उसे इतना परतंत्र बना दिया कि वह सदैव दूसरे पर आश्रित रहे। आश्रय के लिए पुरुष का मुँह जोहती रहे। क्योंकि यही एक वस्तु है जिसने नारी को सबसे ज्यादा दयनीय बनाया है। पुत्री के रूप में वह पिता पर आश्रित है, पत्नी रूप में पति पर और माँ के रूप में वह पुत्र पर आश्रित है। उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व तो माना ही नहीं गया है। सामंती समाज ने नारी को सिर्फ तीन नाम दिए हैं- पत्नी, रखैल और वेश्या। इसके अलावा वह किसी चौथे सम्बन्ध को स्वीकार ही नहीं करता। जब औरत को वह संरक्षण यानी रोटी कपड़ा और मकान देने के साथ अपना नाम देकर सामाजिक स्वीकृति देता है तो कहता है पत्नी, लेकिन जब संरक्षण देकर अपना नाम नहीं देता तो वह रखैल है। जहाँ वह न संरक्षण देता है, न सामाजिक स्वीकृति तो वह वेश्या होती है, क्योंकि उसे संरक्षण के लिए बहुतों पर निर्भर रहना पड़ता है, नतीजे में सामाजिक सम्मान का प्रश्न ही नहीं उठता।

नारी के सामने अस्तित्व, अस्मिता, अधिकार, अभिव्यक्ति जैसे कई प्रश्न मुँह बाए खड़े हैं, जिनका कोई ठोस जवाब उसके पास नहीं है। पुरुष प्रधान समाज ने एक सोची-समझी रणनीति के तहत औरत की सोच को ही कुंठित कर दिया है। ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने जैसे अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए समाज का स्तरीकरण करके उसे सवर्ण और अछूतों के सोपानों में बाँट कर अपनी सत्ता कायम की हुई है, उसी प्रकार पुरुष प्रधान समाज ने सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक आधार पर नारी पर प्रतिबँध लगाकर अपनी सत्ता कायम रखने का कार्य किया है। कभी माँ के रूप में उससे त्याग करवाया, कभी प्रेमिका के रूप में ठगा तो कभी पत्नी के रूप में सामाजिक बँधन लगाकर उसे घरेलू नौकर और प्रजनन करने वाली मशीन के रूप में व्यवहार किया गया। यहाँ तक कि पुरुष प्रधान समाज में नारी को यदि आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान भी की तो उसका उपयोग वह व्यक्तिगत रूप से करने के बजाए सिर्फ परिवार के लिए करती रही। सुझाता माडोस्कर अपने एक लेख में नारी बारे में अपने विचार प्रस्तुत करती हुई कहती हैं,

> ऐसा बहुत सा लेखन उपलब्ध है, जिसमें यह बताया गया है कि यदि नारी अर्थोपार्जन करती है तो उसे घर पर खर्च करती है। नारी की कमाई में वृद्धि का अर्थ है घर के स्तर में वृद्धि। जबकि पुरुष अपनी कमाई का सर्वाधिक घर के बजाए स्वयं पर खर्च करता है। (इकानॉमिक एंड पालिटिकल विकली, वुमैन वर्क ऐंड हेल्थ 16)

नारी प्रश्न नारी की स्वतंत्रता, अस्मिता और अस्तित्व से जुड़ा प्रश्न है। नारीवादी आन्दोलनों के जरिए इन प्रश्नों का जवाब ढूँढने की कोशिशें की गई। नारी के समक्ष अस्मिता का ही नहीं अपितु अस्तित्व का भी संकट उत्पन्न हो गया है। कन्या की हत्या करने से भी पुरुष प्रधान समाज पीछे नहीं है। भले ही इससे प्रकृतिक संतुलन कितना भी बिगड़ जाए। मार्क्सवादियों ने नारी प्रश्नों को अर्थिक आधार पर समझाया और आर्थिक स्वतंत्रता में उसका हल ढूँढा तो पूंजीवादी ने यौन स्वतंत्रता में, लेकिन यह

दोनों ही दृष्टिकोण नारी प्रश्नों को देखने के एकाकी दृष्टिकोण हैं। क्योंकि मात्र आर्थिक और यौन स्वतंत्रता से वास्तविक स्वतंत्रता नहीं मिल सकती है। वास्तव में जब तक सामाजिक जीवन में नारी की पूर्ण भागीदारी नहीं होगी तथा पुरुष के दृष्टिकोण में बदलाव नहीं होगा, नारी की वास्तविक स्वतंत्रता यूटोपिया ही रहेगी।

नारी की भूमिका

आदिम समाज में जब नारी पुरुष के समान सभी कार्यों में भाग लेती थी तब नारी की मुख्य भूमिका थी। चूँकि नारी पुरुष दोनों ही समान रूप से कार्य कर रहे थे अतः किसी की कोई सुनिश्चित भूमिका नहीं थी। कालांतर में जब सामाजिक परिवर्तन हुआ और पुरुष ने नारी पर वर्चस्व स्थापित कर उसे अपनी निजी सम्पत्ति के रूप में व्यवहार करना शुरू किया तो उसकी भूमिका निर्धारित कर दी गई। उससे घर और घर से सम्बन्धित कार्यों को ही करने की अपेक्षा की गई। घर से बाहर सामाजिक कार्यों में उसकी कोई भूमिका नहीं थी। नारी की भूमिका और उसकी पहचान पुरुष के सन्दर्भ में ही निर्धारित की गई। पाम मारिस ने इस सन्दर्भ में अपनी पुस्तक लिट्रेचर ऐंड फेमिनिज्म, एन इंट्रोडक्शन में कहते हैं कि,

> नारी और पुरुष शब्द का प्रयोग समान रूप से नहीं किया जाता। 'पुरुष' शब्द का प्रयोग सामान्यतः सकारात्मक, आदर्श और मानवता के अर्थ में होता है। 'नारी' द्वितीयक शब्द है, जो आदर्श के विपरीत है। इसी कारण स्वयं के अधिकार के अर्थ में नारी का कोई सकारात्मक अर्थ नहीं है, वरन उसे पुरुष के सन्दर्भ में परिभाषित किया जाता है। (लिट्रेचर ऐंड फेमिनिज्म, एन इंट्रोडक्शन 14)

पुरुष से सम्बद्ध रिश्तों के अर्थ में ही नारी की भूमिका को स्वीकार किया गया। इन रिश्तों से इतर उसकी कोई मुख्य भूमिका निर्धारित नहीं की गई। इन भूमिकाओं के साथ ऐसे कार्य जोड़े गए जिनके निर्वहण ने नारी को परतंत्र बनाने में ही योगदान

दिया। पत्नी, माता आदि के रूप में उससे हर प्रकार के त्याग की अपेक्षा की गई। चाहे वह सम्पत्ति का त्याग हो या अधिकारों का। पुरुष से ऐसे किसी भी त्याग की आशा या अपेक्षा नहीं की गई। चाहे वह सम्पत्ति का त्याग हो या अधिकारों का। त्याग अन्ततः नारी को ही करना पड़ता है। इस त्याग के बदले पुरुष ने नारी को महिमा-मंडित किया, उसे देवी बना दिया और इस रूप में उसका शोषण किया। सामाजिक भूमिकाओं से वंचित करके उसकी स्वतंत्रता का हनन किया और उसे घर की कैद में डाल दिया। नारी को अंतःपुर की वासी बना दिया गया। पुरुष ने नारी को देह और सम्पत्ति से अधिक कुछ नहीं माना और इसी कारण कई युद्धों में परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप से नारी पर अधिकार जमाने का मुद्दा मुख्य था। पशु और भूमि के साथ नारी को भी लड़ाई का एक कारण माना गया क्योंकि पशु और भूमि पुरुष की सम्पत्ति है इस तरह नारी भी पुरुष की सम्पत्ति है।

नारी जब तक पुरुष समाज की बनाई राह पर चलती है और पुरुष द्वारा निर्धारित भूमिका को स्वीकारती है, तब तक ही पुरुष उसे संरक्षण देता है। जब उसने अधिकारों की या पुरुष द्वारा निर्धारित भूमिका से हटकर समाज में अपनी भूमिका तलाश करने की कोशिश की तब ही पुरुष ने उसके खिलाफ कोई न कोई षड़यंत्र रचा। पुरुष चाहे स्वयं कितना भी पथभ्रष्ट हो पत्नी के रूप में उसे ऐसी नारी चाहिए जो उसके द्वारा निर्मित राह पर चलती रहे और किसी अधिकार की माँग न करे। पुरुष ने नारी को मातृत्व और विवाह की बेड़ियों में जकड़ने का निर्णय उसे अधीन रखने के लिए किया। शास्त्रों द्वारा निर्धारित संस्कारों में से नारी को सिर्फ विवाह संस्कार के ही योग्य माना गया है। विवाह से जहाँ पुरुष को स्वतंत्रता मिलती है, नारी पर और अधिक प्रतिबँध लगाए जाते हैं। दीवारों के पार आकाश नामक पुस्तक में किंदनिका कपाड़िया नारी के सम्बन्धी अपने विचार देते हुए कहती हैं कि, "विवाह से पुरुष को प्रभुता, एक व्यक्ति पर अधिकार, उससे सेवा करवाने का हक मिलता है। नारी के लिएवही विवाह आनन्द भरी मुक्त हवेली में प्रवेश है।" (दीवारों के पार आकाश 4) विवाह और मातृत्व ने नारी पर सिर्फ बेड़ियाँ लादने का कार्य किया है। पुरुष समाज ने

नारी के संरक्षण का मिथक रचकर उसे विवाह बँधन में बांधा। इस विवेचन का आशय विवाह का नकार या प्रतिरोध नहीं अपितु स्वतंत्र और उचित चयन है। प्राचीन काल में भले ही नारी को वर के चयन की स्वतंत्रता मिलती रही हो, बाद में ऐसी स्थिति नहीं रही। जब विवाह की आयु कम करते-करते नवजात अवस्था तक पहुँच गई तब स्वतंत्र चयन का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

मार्क्सवादियों ने आर्थिक परतंत्रता को नारी को दोयम दर्जे की भूमिका के लिए जिम्मेदार ठहराया। नारी उत्पादन कार्यों में भाग लेती थी लेकिन उसकी हैसियत उस श्रमिक के समान थी जिसका उत्पादन के साधनों पर अधिकार नहीं था। मार्क्सवादी अवधारणा के अनुसार समाज में उसी की सत्ता चलती है जिसका उत्पादन के साधनों पर अधिकार होता है। पूंजीवादी समाज में बहुधा ऐसी स्थिति है कि उत्पादन के साधनों पर पुरुष पूंजीपतियों का अधिकार है। नारी के पास चूँकि पहले से सम्पत्ति का अधिकार नहीं था अतः उत्पादन के साधनों पर उसका अधिकार होना करीब-करीब असम्भव ही था। आर्थिक शक्ति नारी के हाथों में न होने के कारण वह भरण-पोषण के लिए पुरुष पर निर्भर रहती है। लेकिन सिर्फ आर्थिक आधार पर नारी की समस्याओं का विवेचन करके मार्क्सवादियों ने नारी की समस्याओं को बहुत सीमित दायरे में देखा है। समाजवादी देशों में जहाँ नारी की स्थिति में कोई आमूल-चूल परिवर्तन नहीं हुआ। उन समाजों में भी घर परिवार से जुड़ी भूमिका को ही नारी की मुख्य भूमिका माना जाता है। घर के कामों को करने की अपेक्षा नारी से ही की जाती है। फ्रेड्रिक एंगेल्स अपनी पुस्तक परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति में लिखते हैं, "सोशलिस्ट देशों में नारी के विरुद्ध कानूनी भेदभाव को तो समाप्त कर दिया गया लेकिन पुरुषों को यह सिखाने का कोई प्रयास नहीं किया गया कि वह स्वयं अपने घर की, देखरेख करे।" (परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति 73)

अपनी इच्छानुसार भूमिका के चयन की समस्या भारत ही नहीं विश्व के सभी देशों की नारी के समक्ष रही हैं। नारी के सामने बार-बार यह सवाल आता है कि नारी

किस मायने में पुरुष से पीछे है और यदि ऐसा नहीं है तो उसका स्वतंत्र अस्तित्व क्यों नहीं है। आशारानी वोहरा भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार नामक अपनी पुस्तक में कहती हैं कि, "नारी और पुरुष बराबर पूरक होकर भी दो स्वतंत्र इकाइयाँ हैं। दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व है। पर दोनों की स्वतंत्र अस्मिता क्यों नहीं।" (भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार 2) समाज में नारी की भूमिका महज पुरुष के साथ उसके रिश्तों के बल पर निर्धारित होती रही है। नारी के समक्ष अपनी स्वतंत्र भूमिका का प्रश्न हमेशा विकट रूप में उपस्थित रहा है। इस समस्या से जूझती दबी कुचली नारी ने इसके खिलाफ आवाज उठाई और उनका यह विद्रोह नारी आन्दोलन के रूप में सामने आया। बींसवी शताब्दी को नारी जागरण युग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। नारी मुक्ति आन्दोलन का जन्म मुख्यतः पश्चिमी देशों में हुआ। इसकी प्रवृत्ति और कारण के बारे में आशारानी वोहरा लिखती हैं 'वहाँ इसका प्रस्फुटन वासनात्मक शोषण की अधिकता से उत्पन्न सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। पश्चिमी नारियों की सामाजिक दशा भी अत्यंत शोचनीय रही। वहाँ वह प्रेयसी तथा पत्नी पहले माँ बाद में रही। इस प्रकार उसका अस्तित्व वासना तृप्ति तक सिमट कर रह गया था। इसलिए वहाँ कृत्रिम विधियों से सौंदर्य साधन और सौंदर्य प्रसाधनों का तकनीकी विस्तार हुआ। इतना कि नारी का अपने ही शरीर पर अधिकार जैसे समाप्त हो गया। देह साधना और देह भोग के इस अतिरेक के फलस्वरूप आई सामाजिक विकृतियों के प्रति विद्रोह के रूप में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की मान्यता के लिए वहाँ नारी मुक्ति आन्दोलन ने जन्म लिया। नारी आन्दोलन का विचार सिर्फ बीसवीं शताब्दी की देन नहीं था। फ्रांसीसी क्रांति के समय नारी मुक्ति पर गहराई से विचार किया गया। नारी मुक्ति आन्दोलन 1848 में एक व्यापक राजनैतिक आन्दोलन बन गया। जल्द ही यह आन्दोलन पश्चिम के सारे देशों में फैल गया।

नारी मुक्ति आन्दोलनों ने नारी की सोच को एक नई दिशा देने का कार्य किया। इन आन्दोलनों का सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि वह नारी जिसने परतंत्रता को

अपनी नियति मान लिया था, उसने अपनी इस सोच में परिवर्तन लाने का प्रयास करना शुरू कर दिया। नारी आन्दोलन से इस विचार को मान्यता मिली कि नारी-पुरुष विभेद जन्म से नहीं होता बल्कि समाज उनमें यह भेद पैदा करता है। पाम मॉरिस की पुस्तक लिट्रेचर ऐंड फेमिनिज्म एन इंट्रोडक्शन में फ्रायड के अनुसार,

> हम नर या मादा के रूप में जन्म लेते हैं लेकिन पुरुषत्व और नारीत्व की पहचान के साथ नहीं। नारीत्व और पुरुषत्व की अवधारणा प्रकृतिक और जन्म से नहीं बल्कि बच्चे की समाज के साथ अंतः क्रिया से उत्पन्न होती है। (लिट्रेचर ऐंड फेमिनिज्म एन इंट्रोडक्शन 96)

जन्म से बच्चे में कोई ऐसी भावना नहीं होती जिसके आधार पर उसे नारी और पुरुष के रूप में विभाजित किया जा सके। समाज बच्चे से यह अपेक्षा करता है कि यदि वह लड़का है तो एक निश्चित प्रकार की भूमिका करे और यदि लड़की है तो दूसरे प्रकार की। सिमोन द बुआ ने ठीक ही कहा है 'औरत पैदा नहीं होती बनाई जाती है।' समाज लड़की से अपेक्षा करता है कि वह लड़कों के समान व्यवहार न करे। उसे लड़कों के लिए निर्धारित खेल खेलने से मना किया जाता है। उसे नाजुक और घर-परिवार जैसे गुड़िया आदि के खेल खेलने को कहा जाता है। कई बार उसे लड़के के बराबर खाना नहीं दिया जाता। लड़की से अपेक्षा होती है कि वह घर में रहकर घर के कामों में हाथ बँटाए। यह सब कारण और इनसे जुड़ी भूमिकाएँ कन्या में 'नारीत्व' के गुणों का निर्धारण करती हैं। इसके विपरीत लड़को से ऐसे कार्य करने की अपेक्षा की जाती है जो पुरुषोचित माने जाते हैं। यही भावना जन्म से समान लड़कों और लड़कियों में अन्तर उत्पन्न करती है। नारी को जब तक यह बात समझ में नहीं आती कि जैविक रूप से वह भी पुरुष के समान एक प्राणी है जिसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है और नारी की अधीनता ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं है बल्कि पुरुष प्रधान समाज द्वार आरोपित की गई है, तब तक वह अपनी दयनीय दशा में परिवर्तन के बारे में सोच भी नहीं सकती। नारी को यही समझ देने का काम नारी मुक्ति आन्दोलनों ने किया। नारीवाद का मुख्य तत्व

यह था कि असमानता पितृसत्तात्मक समाज की स्वाभाविक परिणति है और लैंगिक असमानता सामाजिक असमानता की प्राथमिक स्थिति है। उन्होंने यह तर्क भी दिया कि पितृसत्ता वह सार्वभौमिक प्रणाली है जिसमें पुरुष नारी पर अपना अधिकार रखता है। नारी मुक्ति आन्दोलनों की प्रेरणा स्रोत 'सिमोन-द-बुआ' की बहुचर्चित एवं विवादास्पद पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' बनी जिसने बड़े-बड़े विचारकों को इस दिशा में चिंतन करने को बाध्य किया। इसी प्रकार की दूसरी पुस्तक 'बेट्टी फ्राइडन' की 'द फेमिनिक मिस्टिक' थी। जिसमें दिखाया गया था कि किस प्रकार समाज में पुरुष वर्चस्व के चलते नारी को कामपूर्ति का साधन बनने के लिए बाध्य किया गया। उन्होंने पत्नी, गृहणी तथा माँ की अनुभूतियों के आधार पर नारी की दशा का वर्णन किया। 1996 में इन्होंने नारी मुक्ति आन्दोलन की अग्रणी संस्था 'नेशनल आर्गेनाइजेशन आफ वुमन' की स्थापना की। नारी आन्दोलन के द्वितीय चरण में 'केट मिलेत' लिखित पुस्तक 'सेक्सुअल पालिटिक्स' तथा 'जर्मन ग्रोअर' द्वारा लिखित पुस्तक 'फिमेल युनिक' आदि पुस्तकें आईं। मिलेट की पुस्तक में पुरुष प्रधान समाज के विरोध में यौन क्रांति का आह्वान तथा मुक्त सेक्स और लेस्बियन की वकालत मिलती है। उनका उदघोष था 'हमें क्रांति लानी है, कोई सुधारवादी आन्दोलन नहीं चलाना है।' इन पुस्तकों ने जहाँ एक ओर नारी जागृति में सराहनीय योगदान दिया वहीं उनकी अतिवादिता ने पुरुष विरोध संगठनों को जन्म दिया। 'टाइगर मिलर' ने नारी मुक्ति आन्दोलन को 'प्रोनोग्राफी' पर आधारित एक कल्पना' की संज्ञा दी। इन सबने नारी मुक्ति आन्दोलन पर दुष्प्रभाव डाला। लेकिन इस आन्दोलन और इस पुस्तकों ने जो महत्त्वपुर्ण सवाल उठाए वे ज्यादा अहम हैं। नारी स्वातंत्र्य के बदले रूप नामक पुस्तक में रेणुका नैयर नारी के सम्बन्ध में कहती हैं कि,

> नारी स्वतंत्रता संघर्ष की सबसे बड़ी उपलब्धि यह हुई कि उसे संवैधानिक रूप से पुरुष के समान घोषित कर दिया गया। लेकिन समानता का अधिकार मिलने पर भी समाज नारी को उचित स्थान कहाँ दे पाया। अभी भी कोई यह कहने कि स्थिति में नहीं आया है कि

> नारी को उसके अधिकार मिल गए हैं, वह सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त हो गई है या समाज ने उसे नये सन्दर्भों में पुरुष के समान स्वीकार कर लिया है। आज भी पुत्र प्राप्ति के उपाए किए जाते हैं और पुत्री को पराया धन माना जाता है। (नारी स्वातंत्र्य के बदले रूप 2)

पुरुष समाज का जब तक ऐसा दृष्टिकोण रहेगा नारी-पुरुष सम्बन्धों में सहजता नहीं आ सकेगी। नारी मुक्ति आन्दोलनों के सम्बन्ध में एक नकारात्मक बात यह हुई कि वे नारी मुक्ति के कम पुरुष विरोध के आन्दोलन ज्यादा बन गए। हमें इस तरह के तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि लड़ाई पुरुष के विरुद्ध नहीं अपितु अपने-अपने अधिकारों के लिए है। यह अन्तर कम परन्तु महत्त्वपूर्ण है।

नारी को यदि समाज में अपने अनुरूप भूमिका निश्चित करनी है तो उसे अपने अधिकारों को पहचानना होगा और उनकी प्राप्ति के लिए उचित प्रयास करने होंगे। सवाल पुरुषों के विरुद्ध जाने का नहीं अपनी स्वतंत्र चेतना का है। नारी को सिर्फ माँ, बहन, बेटी आदि की भूमिका से निकलकर 'मानव' की भूमिका स्वीकार करनी होगी। नारी की समस्या को किसी एक पहलू से नहीं देखा जा सकता। नारी की समस्या बहुआयामी है। महानगर की आधुनिक नारी से लेकर बीहड़ वनों तक में रहने वाली आदिवासी नारियाँ हैं और यह प्रकट सत्य है कि इनकी समस्याएँ भी भिन्न-भिन्न होंगी। नारी की समस्या को महज आर्थिक स्वतंत्रता, यौन स्वतंत्रता, कानूनी स्वतंत्रता आदि से जोड़कर नहीं देखा जा सकता इसे समग्र रूप से देखना होगा। निम्न और उच्च वर्ग दोनों में ही नारी आत्म-निर्भर होने और कहीं-कहीं पति से अधिक अर्जित करने के बावजूद प्रताड़ित की जाती हैं। भय और असुरक्षा की भावना लिए जब तक नारी पुरुष से सहारा माँगती रहेगी श्रेष्ठता और हीनता की भावना से मुक्ति नहीं मिल सकती। नारी को अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए तर्कशील वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। तब ही नारी परीधि से केन्द्र में आ सकेगी और समाज में उसकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी। इस सन्दर्भ में एक और बात महत्त्वपुर्ण है कि महज नारी की सोच में

परिवर्तन से कुछ नहीं होगा अपितु पुरुष की सोच में भी बदलाव लाना होगा। इस बदलाव के बिना नारी स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है।

भारतीय संस्कृति में नारी को गौरवशाली स्थान प्राप्त है। वैसे तो नारी का बहुविध चित्रण विश्व साहित्य में भी हुआ है। लेकिन भारतीय साहित्य में नारी का जैसा चरित्राँकन हुआ है वैसा अन्यत्र प्रायः नहीं हुआ। हमारे प्रचीन ग्रन्थों में नारी को अनन्त की महिमा, विश्व की गरिमा और सृष्टि निपुणता माना गया है। सृष्टि का मूल कारण नारी ही है। वह उस पुष्प के समान है जो सृष्टि की साधना के परिणाम स्वरूप प्रस्फुटित हुई है। मानव विकास में संस्कृति ही मानवों के समुन्नत होने का बोधक है इसलिए यदि मानव साधना का परिणाम संस्कृति है तो सृष्टि साधना का नारी। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हिन्दी साहित्य में प्रायः भारतीय संस्कृति और नारी चरित्र को गौरवपूर्ण और महिमामय स्थान दिया गया है। जितने भी श्रेष्ठ कवि, नाटककार, उपन्यासकार हुए हैं उन सबने नारी को सृष्टि की एक स्वर्गिक सुषमा से मण्डित और अपूर्व गरिमा से गौरवान्वित किया है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में यथार्थवादी दृष्टि को प्रश्रय देने वाले साहित्यकारों ने यथार्थ के धरातल पर जो नारी चित्रण किया है उसमें भी नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण व्यापक रहा है। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यासों में भी दूसरे उपन्यासकारों की तरह करुणा, विनय, प्रेम, सहानुभूति, उदारत, आत्मसमर्पण, क्षमाशीलता, वात्सल्य, उत्सर्ग, नम्रता इत्यादि गुणों के साथ उनका वैभव, वासना के कारण आत्म पीड़ा, त्याग, अन्तः मन की परिस्थितियों को झेलती हुई नारी का यथार्थपरक दृष्टि से चित्रण किया है। तीनों लेखकों की नारी पात्र की सबसे बड़ी भिन्नता यही है कि नारी पात्रों का बहुविध स्वरूप को मनोवैज्ञानिक धरातल पर अंकित करते हुए नारी के गौरवशाली पक्ष को ही उद्घाटित किया है और उन्हें अपने वर्तमान परिवेश से ऊपर उठाया है।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में नारी मनोविज्ञान

अज्ञेय, अजय शर्मा के कथा-साहित्य में अगर देखा जाएँ तो पुरुष पात्र ही केन्द्र में पाये जाते हैं और नारी पात्र जैसे उनके जीवन में प्रेम के अभाव को पूरा करने के लिए ही किया गया प्रतीत होता है, परन्तु बावजूद इसके अज्ञेय ने नारी पात्रों का सृजन इस ढँग से किया है कि कथा पूर्णरूप से नारी पात्रों के ऊपर ही निर्भर लगती है। उपन्यासों की कथा का ताना-बाना इन्हीं के इर्द-गिर्द बुना गया लगता है। किन्तु वहीं अनीता देसाई के कथा-साहित्य में नारी पात्रों को मुख्य भूमिका में देखा जा सकता है। परन्तु तीनों लेखकों ने चाहे नारी चाहे पुरुष पात्रों को मुख्य भूमिका में रखा हो किन्तु दूसरे पात्रों के साथ अन्याय नहीं होने दिया है। अज्ञेय और अजय शर्मा पुरुष लेखक होने के नाते नारी पात्रों के मनोविज्ञान को बखूबी चित्रित करने में कामयाब रहे और अनीता देसाई महिला लेखिका होने के साथ उन्होंने अपने पुरुष पात्रों के मनोविज्ञान को भी बखूबी ढंग से चित्रित किया है। प्रस्तुत अध्याय में तीनों लेखकों के नारी पात्रों का मनोविज्ञान विश्लेषण किया गया है और साथ ही समाज में नारी की भूमिका, प्रश्नों और समस्याओं को उजाग्रित किया गया है।

त्याग एवं क्षमाशीलता की मूर्त नारी

शशि अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर एक जीवन' की नायिका है। शशि के व्यक्तित्व में त्याग, क्षमाशीलता आदि की भावना को अज्ञेय ने मुख्य रूप से उभारा है। शशि यूँ तो सामाजिक रिश्ते से शेखर की बहन लगती है लेकिन उनका सम्बन्ध इससे भी आगे का है। शेखर का तो मानना है कि उसके जीवन का अर्थ ही शशि से मिलकर मिला है। वह शशि को अपने जीवन की अनिवार्यता मानता है। शशि को अपने जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र मानते हुए शेखर कहता है,

> सबसे पहले तुम, शशि।...इसलिए नहीं कि तुम जीवन में सबसे पहले आई या कि तुम सबसे ताजी स्मृति हो। इसलिए कि मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है- ठीक वैसे ही जैसे तलवार में धार का होना सान की पूर्वकल्पना करता है। तुम वह सान रही हो, जिस पर मेरा जीवन बराबर चढ़ाया जाकर तेज होता रहा है- जिस पर मंज-मंज कर मैं कुछ बना हूँ, जो संसार के आगे खड़ा होने में लज्जित नहीं है। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 175)

इस प्रकार अज्ञेय ने शशि को शेखर की प्रेरणा शक्ति के रूप में चित्रित किया है। शशि के व्यक्तित्व में क्षमाशीलता का गुण उसके उपन्यास में प्रवेश के साथ ही स्पष्ट होना शुरू हो जाता है। उपन्यास में हम शशि का परिचय उस घटना से पाते हैं जब शशि पहली बार शेखर के घर आती है। वे दोनों ही तब बच्चे होते हैं। शशि को शेखर की माँ उसका लोटा नहाने के लिए देती है। शेखर शशि से अपना लोटा वापस माँगता है और न देने पर उसे लोटे से मार देता है। जब शेखर की माँ उससे इस सम्बन्ध में पूछती है तो शशि चोट के बारे में कह देती है कि वह अपने-आप लग गई। इसी प्रकार शशि का पति रामेश्वर उसे मार कर घर से निकाल देता है, तब भी शशि अपने मन में पति के प्रति कोई विद्वेष की भावना नहीं पालती और उसे क्षमा कर देती है।

शशि की त्याग की भावना को अज्ञेय ने उपन्यास में महिमा-मंडित किया है। त्याग भावना शशि के चरित्र की प्रमुख विशेषता है। शशि की माँ उसका विवाह निश्चित कर देती है। शशि कुछ समय तक विवाह करने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं है वह इस सम्बन्ध में जेल में शेखर को पत्र लिखती है, लेकिन शेखर कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देता और उसे स्वयं निर्णय लेने को कहता है। अनिच्छा के बावजूद शशि विवाह का मुखर विरोध नहीं करती उसके पीछे उसकी त्याग भावना ही प्रमुख है। शशि शेखर को पत्र में लिखती है,

> मैं जानती हूँ मेरी सम्पूर्ण अनिच्छा है। पर क्या मुझे अनिच्छा का, अनिच्छा के बाद अस्वीकृति का, अधिकार है ? समाज का मैं अंग हूँ, उसके प्रति मेरी जवाबदेही है, पर मैं उसकी उपेक्षा कर सकती हूँ, क्योंकि वह मेरे प्रति कर्त्तव्यशील नहीं है और उसके आदर्श भी बदलते रहते हैं और रहेंगे। पर माँ, माँ तो सनातन है, सदा माँ है, उसके प्रति भी तो मेरा कर्त्तव्य है...मेरी अस्वीकृति समाज के सम्मुख उनकी क्या अवस्था करेगी, यह तो अभी नहीं कह सकती, पर स्वयं अपने ही सामने उन्हें तोड़ देगी...मैं अपना युद्ध लड़ सकती हूँ, पर मुझे क्या अधिकार है, मैं उनसे अपना युद्ध लड़वाऊँ?...और अगर किसी को मूक होकर जलना ही है, तो वह कोई मैं ही क्यों न होऊं? (शेखर: एक जीवनी भाग दो 79)

इस प्रकार से शशि माँ के लिए आत्म बलिदान देने का निश्चय करती है जो उसकी त्याग भावना को ही दिखाता है। अजय शर्मा के उपन्यासों में महत्त्वपूर्ण विषय है नारी की व्यथा-कथा। नारी सृष्टि की जननी है, अपना सर्वस्व त्याग कर भी सदैव अपने कर्तव्य को पूर्ण करती है। दूसरों के लिए मर-मिटने को तैयार हो जाती है। हर रिश्ते की गरिमा को बनाए रखने के लिए अपना-आप मिटा देती है। लाख मुश्किलें आएँ, अपनों पर आँच नहीं आने देती। मुश्किलों तथा अपनों के बीच दीवार बन कर खड़ी हो जाती है। परन्तु कभी उसे सहारे की जरूरत पड़े तो कोई भी उसके साथ खड़ा नहीं होता पर फिर भी वह उफ तक नहीं करती। कुछ ऐसी ही है, 'बसरा की गलियों' की बुशरा। नायक से वह प्रेम करती है। नहीं चाहती कि उसके प्रियतम के साथ ना-इन्साफी हो और उसे कोई भी मुसीबत आए परन्तु माँ के दबाव में आकर उसे वह सब कुछ करना पड़ता है जो वह कभी नहीं करना चाहती थी। इसके लिए उसे नायक के कई जुल्मों का शिकार होना पड़ता है। परन्तु वह उफ तक नहीं करती। आकाश (नायक) बहुत शराब

पीता है परन्तु बुशरा कभी कोई सवाल नहीं करती। एक दिन वह बुशरा से पूछता भी है कि तुमने कभी मुझे कुछ क्यों नहीं कहा। बुशरा जो कभी नहीं बोली, कहती है,

> हर आदमी की अपनी-अपनी सज़ा होती है और वह भुगत्ता है। अल्लाह की मर्जी देखो, जब तुम मेरे कुछ नहीं थे, तब तुम मेरे सब कुछ थे। अब सब कुछ मेरा है और मेरा कुछ भी नहीं है। शरीर में दँश बन कर चुभ रहा है। उससे तो अच्छा है अल्लाह मुझे मौत दे दे और मैं कब्र में चुपचाप लेटी रहूँ और कयामत की घड़ी में जब मुझसे कुछ माँगने के लिए कहा जाएगा तो मैं सिर्फ यही कहूँगी कि इस तरह की सज़ा किसी और औरत को न नसीब हो। (बसरा की गलियां 56)

आकाश यह बात कभी समझ नहीं पाया कि अगर उसके साथ गलत हुआ है तो बुशरा के साथ भी बहुत गलत हुआ है। उसे जो सब मिलना चाहिए था और जिस पर एक पत्नी का जो हक होता है, उसे कुछ भी नहीं मिला। गुलनार जो एक वेश्या थी। आकाश अक्सर उसके पास जाता था। उसे वह भी समझाती है,

> तुम दोनों में कोई खास फर्क नहीं है। तुमने सज़ा पाई है मैं मानती हूँ। क्या बुशरा के लिए भी यह किसी सज़ा से कम नहीं हैं कि तुम आज तक उसे अपना नहीं सके। औरत का यही सबसे बड़ा दर्द है। शायद तुम न समझ सको। (बसरा की गलियां 60)

'बसरा की गलियां' में ईरान-इराक अमेरिका युद्ध के सन्दर्भ में नारी एक बड़े कैनवस पर चित्रित की गई है। उपन्यास में भिन्न देशों की कोई नारी पात्रों का ज़िक्र है। बुशरा, उसकी माँ, बहन, मुहल्ले की औरतें, गुलनार, सद्दाम की बेटियाँ, जागीरदार के गाँव की बेटियाँ और उसकी बेटी सभी इराकी औरतें हैं। आकाश की माँ, नानी, प्रेमिका संचिता, यश की पत्नी-भारतीय हैं। डॉ. मोना जेम्स मिस्र से है। जुलिया, एलाईजा, दूसरी औरत-अमेरिका से है। यह एक नायक प्रधान उपन्यास है। इसका नायक है-आकाश। उसने अपने जीवन का एक भाग बसरा की गलियों में बिताया है। वह समय-

समय पर सलीम और स्मिथ बनता है। आकाश के रूप में वह माँ, नानी, संचिता से सम्बद्ध है। कार्य स्थल पर वह मोना जेम्स के सम्पर्क में आता है। बुशरा से निकाह करने के बाद वह उसकी माँ, बहन, मुहल्ले की औरतों के सम्पर्क में आता है। अमेरिकन फौजों द्वारा बन्धी बनाए जाने तथा अमेरिकन फौज का एक हिस्सा बन जाने के बाद वह जूलिया और एलाइजा के सम्पर्क में आता है। वह निहायत बौना, अभिशप्त, असहाय एवं विसंगति का शिकार पुरुष है। उपन्यास में यह देखना जरूरी हो जाता है कि लेखक ने किसी एक नारी को मुख्य भूमिका में नहीं रखा। बल्कि उपन्यास में मौजूद सभी नारी पात्र मुख्य भूमिका में दिखाई पड़ते हैं। नायक की भारत की प्रेमिका संचिता को हम नायिका नहीं कह सकते, क्योंकि वह कहीं भी प्रत्यक्ष रूप में हमारे सामने नहीं आती। अमेरिकन सी.आई.डी. की खोजों के सन्दर्भ में उपन्यास के द्वितीय भाग के परिच्छेद चार में उसका उल्लेख मात्र आता है। मोना जेम्स की कथा सहायक कथा या प्रहरी के रूप में है। मोना का परिचय उपन्यास के प्रथम भाग परिच्छेद में मिल जाता है, लेकिन उपन्यास के इसी भाग के सातवें परिच्छेद में ही उसका मुख्यतः चित्रण मिलता है। द्वितीय भाग में मनोवैज्ञानिक डॉ. जूलिया अमेरिकन नज़रबंदी के दौरान गूँगी औरत बनकर नायक के आसपास बनी रहती है। एलाइजा नायक स्मिथ की साथिन मिलिटरी आफिसर भर है। उपन्यास की नायिका बुशरा को ही कह सकते हैं। वह नायक आकाश से प्रेम करती है। उससे विवाह कर उसे सलीम बनाती है। संस्कारगत, धर्मगत कट्टरताओं के कारण उसकी घृणा का पात्र बनकर भी अपने संवेगों से दाम्पत्य का लालित्य बनाए रखती है। उसके बच्चों को जन्म देती है। उसके स्मिथ रूप को अस्वीकार करती है। उपन्यास के तीनों भागों में वह किसी न किसी रूप में उपस्थित है।

देसाई अपने अगले उपन्यास Bye-Bye Blackbird में दो अलग-अलग सभ्यताओं के आदित्य और सारा की कहानी को बताता है। आदित्य अपनी इंग्लैंड की ज़िन्दगी को लेकर खुश है वह कहता है,

> I see gold, everywhere gold, like Sarah's golden hair. It's my favorite color….Pack up all my cares and woe here I go, Singing low, Bye-Bye Blackbird. Where somebody cares for me, sugar is sweet and so is she, Bye- Bye Blackbird. (Bye-Bye Blackbird 19)

यह आदित्य का पसंदीदा गीत है और वह बहुत ही अच्छे से अपने आप को इंग्लैंड में रखता है। उसे भारतीय लोगों का आलस, समय के पाबन्द न होना, गन्दगी और गर्मी पसंद नहीं है जो कि वहाँ आम बात है। वह इंग्लैंड की अच्छाई को देखकर महसूस करता है, "Pick up a glass of Gin and eye the girls and be happy again." (Bye-Bye Blackbird 49) वह उस दुनिया को देखकर बहुत ही ज्यादा खुश है लेकिन कई चीज़े जो उसे भारत की याद दिला देती हैं और शर्मनाक महसूस कराती है,

> It was as though some black magician had placed an evil pair of spectacles on his eyes which led him to see, not what was before him, but what the black magician wished him to see, distorted and terrifying. (Bye-Bye Blackbird 177)

वह अपनी पत्नी के साथ दफ़तर में अजीब सा व्यवहार करता है जो उसे सारा को समझने में मुश्किल लाता है, "the lot of yearning shut up and enclosed inside him for so long, releasing it now like a dam that releases its water when it is full to bursting." (Bye-Bye Blackbird 184) आदित्य जब अपने ससुराल वालों के साथ उनके घर में रहता है तब वह इस दुनिया की असलीयत के बारे में जान पाता है जिसके पीछे वह अब तक भाग रहा होता है, "pack up all my cares and woe…wild, wild grandeur, its supreme grandeur, its loneliness and black, glittering enhancement." (Bye-Bye Blackbird 205) जब वह Hampshire का परिदृश्य देखता है तो उसे भारत की याद आ जाती है,

> The truth was that his disenchantment with England had begun sometimes before he read the news in the papers, but

> this he stowed away in his subconscious and it was the myth he lived by and acted on. (Bye-Bye Blackbird 229)

आदित्य जहाँ की ज़िन्दगी के बारे में सोचकर परेशान हो जाता है और कहता है कि भारत में वह इसके लिएदावा करता है कि वहाँ प्यार, हिफ़ाजत और आदर है लेकिन जहाँ यह कुछ भी दिखाई नहीं देता। वह यह महसूस करता है कि जहाँ की जिन्दगी एक नकली और दिखावे की ज़िन्दगी है, "It has no reality at all, we just pretend all the time…Now it has to be the real thing. I must go." (Bye-Bye Blackbird 204) एक भारतीय पुरुष के साथ शादी करके सारा को भी कई मानसिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। वह मानती है कि आदित्य से शादी करके उसने अपने व्यक्तित्व को खो दिया है और मानती है कि आदित्य को मिलने के बाद उसकी ज़िन्दगी एक अँधेरे में चली गई है, "To her closed eyes the darkness moved in a tumult of black shapes that would not settle. Her dreams too were in pieces." (Bye-Bye Blackbird 58) उसको भारतीय सभ्यता और लोगों से बहुत प्रेम है यहाँ तक कि वह भारत जाने के लिए अपने देश को छोड़ने के लिए तैयार हो जाती है, "I could, when I think of all the Millers of England, I could leave at once." (Bye-Bye Blackbird 83) सारा जब अपने देश को छोड़ने के लिए जाती है तब वह अपने देश को छोड़ने के अहसास को जान और समझ सकती है,

> It was her England-self that was receding and fading and dying. She knew it was her England-self to which she must say goodbye. That was what hurt… (Bye-Bye Blackbird 255)

परन्तु फिर भी वह अपनी शादीशुदा ज़िन्दगी को बचाने के लिए यह त्याग करना उचित मानती है और अपना देश छोड़कर उसके साथ जाने के लिए तैयार हो जाती है।

नारी में आत्म-बलिदान भावना

शेखर शशि के सम्बन्धों में भी शशि का आत्म-बलिदान प्रमुख रूप से उभर कर सामने आता है। शशि का सम्पूर्ण जीवन शेखर को साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित

करने के लिएहो जाता है। वह बार-बार शेखर पर लिखने के लिए जोर डालती है। उसे इस बात से बहुत क्लेश होता है कि उसकी बीमारी के कारण शेखर उसका बहुत ध्यान रखता है और घर के कामों में व्यस्त रहता है, परिणामस्वरूप वह लिख नहीं पाता। इसके कारण अपने कष्ट के सम्बन्ध में वह शेखर को पूरी तरह से नहीं बताती। बीमारी के बावजूद शेखर के लेखन को प्रोत्साहन देने के लिएरात-रात भर जाग कर पत्र लिखती है जिसमें शेखर से आग्रह किया जाता है- "मैंने कहा था मेरे लिए लिखो...तुम्हारे जीवन में आशा देने के लिए नहीं, तुमसे आशा माँगने के लिए।" (शेखर: एक जीवनी भाग दो 250) वस्तुतः शेखर को बचाने, बढ़ाने में शशि स्वयं मिट जाती है। शेखर उपन्यास में एक स्थान पर स्वीकार करता है कि शशि का विवेक बहुत गहरा और उसकी प्रज्ञा बहुत विशद है। कई स्थानों पर हम पाते हैं कि शशि के विचार प्रखर है लेकिन वह अपनी सारी प्रज्ञा, सारे विवेक का उपयोग शेखर को महान बनाने में करती है। अपने जीवन से वह नारी के त्याग और बलिदान का महान आदर्श उपस्थित करती है। जब उसके बलिदान के लिए शेखर कृतज्ञता प्रकट करता है तो वह उत्तर देती है,

> नारी हमेशा से अपने को मिटाती आई है। ज्ञान सब उसमें संचित है, जैसे धरती में चेतना संचित है। पर बीज अंकुरित होता है, तो धरती को फोड़कर, धरती अपने आप नहीं फूलती-फलती। मेरी भूल हो सकती है, पर मैं इसे अपमान नहीं समझती कि सम्पूर्णता की ओर पुरुष की प्रगति में नारी माध्यम है- और वही एक माध्यम है। धरती-धरती ही है, पर वह भी समान सृष्टा है, क्या हुआ अगर उसके लिए सृजन पुलक और उन्माद नहीं, क्लेश और वेदना है। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 219)

इस प्रकार शशि का पूरा जीवन शेखर को बढ़ाने, बनाने में ही निकल जाता है। उसके अपने जीवन की कोई महत्वकांक्षा नहीं है। उसके सम्पूर्ण जीवन का केन्द्र बिन्दु शेखर

है। यद्यपि गौरा भुवन और रेखा के सम्बन्धों के बारे में सब कुछ जानती है, लेकिन उसके मन में उन दोनों के सम्बन्धों को लेकर किसी प्रकार की ईर्ष्या या वैमनस्य का भाव नहीं है। वह रेखा से ईर्ष्या नहीं करती बल्कि उसका सम्मान करती है और उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है। जब रेखा उसे चूड़ियाँ और अँगूठी भेंट देती है तो वह अत्यंत विनीत भाव से उन्हें स्वीकार करती है। वह रेखा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहती है, "इनके और आप के स्नेह के सहारे मुझे लगता है कि मैं चारों और बहते अजस्र प्रवाह में खड़ी रह सकूँगी।" (नदी के द्वीप 332)

गौरा के हृदय में भुवन के प्रति आपार स्नेह भावना है। लेकिन वह भी रेखा के समान ही अपने प्रेम में भुवन को बाँधने की बात नहीं सोचती। वह उसके व्यक्तित्त्व के विकास के मार्ग में रोड़ा नहीं बनना चाहती। इसी कारण वह भुवन को पत्र में लिखती है कि, "आप कहेंगे तो तुरंत हट जाऊँगी, नहीं भी कहेंगे तो भी जानूंगी कि आप वैसा चाहते हैं, या उसमें आपका हित या सुख या शान्ति है तो भी हट जाऊँगी।"(नदी के द्वीप 304) अज्ञेय की दूसरी नारी पात्रों के समान ही गौरा में भी प्रण्य पर स्वयं को उत्सर्ग कर देने की प्रबल भावना है। वह भी भुवन के सुख, उसकी शान्ति के लिए स्वयं का बलिदान करने की बात बार-बार दुहराती है। वह मानती है कि भुवन ही उसका भविष्य है, उसमें वह देवत्व देखती है। यहाँ तक कि उसके परिताप को घटाने के लिएवह स्वयं को भी होम करने की बात कहती है,

> तुम मेरे भविष्य हो, इसलिए मैं तुम्हे बताती हूँ।...आग से तुम नहीं डरोगे अब- किसी चीज से नहीं डरोगे। आग को मैं सुगन्धित कर दूँगी, जब जरूरत होगी तो स्वयं उसमें होम हो जाऊँगी, पर तुम नहीं डरोगे, मुझे वचन दो, अपने को नहीं सताओगे- डर से नहीं- परिताप से नहीं- और हाँ प्यार से भी नहीं- वह तुम्हें क्लेश दे तो उसे भी हटा देना। तुम एवत्व की साँस हो, देवत्व की शिखा हो जिसे मैं अंतःकरण में पालूँगी। (नदी के द्वीप 304)

भुवन के प्रति गौरा के मन में असीम स्नेह और प्रेम की भावना है। भुवन रेखा से प्रेम करता है पर उसके सम्बन्धों का गौरा कभी उलाहना नहीं देती। अपितु वह स्वयं भुवन से जानना चाहती है कि क्या वह रेखा दीदी से नहीं मिलेगा। जब भुवन गौरा को छोड़कर दक्षिण चला जाता है तब भी वह उसके प्रति क्रोध प्रकट नहीं करती। भुवन के परिताप धोने के लिएवह सहर्ष ही कुछ भी करने को तैयार है। भुवन को ही वह अपने जीवन का इष्ट मानती है और उसे सुखी देखने के लिए वह स्वयं को उत्सर्ग करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहती है। भुवन के प्रति स्वयं को उत्सर्ग करने में ही वह अपने की सफलता मानती है। वह कहती है, "मैं सोच रही थी...किसी भी तरह, कुछ भी करके, अपने को उत्सर्ग करके आपके घाव भर सकती...तो अपने जीवन को सफल मानती।"(नदी के द्वीप 299) इस प्रकार हम देखते हैं कि गौरा 'नदी के द्वीप' का पात्र होने के बावजूद अपने चरित्र की साहस, विचारशीलता और प्रेम भावना के कारण एक महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में हमारे समक्ष आता है। गौरा के चरित्र के सम्बन्ध में डॉ. भागवतीशरण उपाध्याय का यह कथन ठीक प्रतीत होता है, "...भाव बँधन प्रेम जिसका मार्ग है, प्रिय का अखंडित प्रेम जिसका लक्ष्य।...उसका व्यक्तित्त्व बहुत कोमल है, बहुत सम्पन्न भी। उसमें साहस भी है और वह असम्मत विवाह को अस्वीकार कर देती है।" (समीक्षा के सन्दर्भ 98)

देश प्रेम, देशभक्ति और देश के प्रति गर्व का भाव इन नारी पात्रों में कूट-कूट कर भरा पड़ा है। बुशरा को इस बात पर गर्व है कि इराक की सभ्यता ने अल्जेब्रा को जन्म दिया। वह बात दूसरी है कि जीरो की खोज इराक ने नहीं कर पाया। उसे अमेरिकी फौजों द्वारा मिली आज़ादी नहीं चाहिए। नायक से कहती है, "किसी दूसरे देश के बादशाह द्वारा मिली आज़ादी से हमें अपने मुल्क के बादशाह की गुलामी अच्छी है।...तुम तो इतने खुदगर्ज निकले, प्यार की खातिर अपने आपको भी नहीं भुला सके और उस देश को, जिस देश की लड़की से तुमने प्यार किया, उसी की हस्ती को आज मिटाने आए हो। तुम तो पूरे गिरगिट निकले।" (बसरा की गलियाँ 151) हरिद्वार के

मेडिकेशन कैंप में भी आकाश को लगता है, “जैसे बुशरा मेरे पास खड़ी कह रही हो-सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली।”(बसरा की गलियाँ 156) गुलनार के अनुसार शाही फरमान है कि मुल्क और कौम पर फिदा हुए शहीदों को रोकर नहीं, हँसकर विदा करते हैं।

देसाई के अगले उपन्यास में हम देखते हैं कि मुख्य पात्र सीता अपनी बिना उद्देश्य के चल रही ज़िन्दगी के बारे में परेशान है और वह यह मानने के लिए असमर्थ है कि,

> This was all there is to life, that life would continue thus, inside this small enclosed area, with these few characters, churning around and then past her, leaving her always n this grey, dull-lit, empty shell. (Where Shall We go in this summer? 36)

सीता अपने आस-पास के भौतिक वातावरण को समझने और उसमें सामन्जसय बनाने में असमर्थ है क्योंकि वह अपने पिता के घर की असलीयत और जादूमय दुनिया को ही सच मानती है और उसी में जीना चाहती है,

> If reality were not to be born, then illusion was the only alternative. She saw that island illusion as a refuge, a protection. It would hold her body safely unborn, by magic. (Where Shall We go in this summer? 101)

सीता किसी भी हालात में अपने बचपन के दिनों को भूलना नहीं चाहती। वह वहीं सुख सुविधा का आनन्द लेना चाहती है जो उसने अपने पिता के घर लिया होता है किन्तु जल्द ही उसे ज़िन्दगी की असलीयत महसूस होती है और वह अपने आप में सुधार ले आती है। जैसे कि उसे जादुई दुनिया में यकीन रहता है और वह असलीयत से दूर होती है। इसीकारण वह परिवारक जिम्मेदारियों को नहीं निभाती और न ही उनको निभाना चाहती है,

> She had escaped from duties and responsibilities, from order and routine, from life and city, to the unlovable island. She had refused to give birth to a child in a world not fit to receive the child. She had the imagination to offer it an alternative, a life unlived, a life bewitched. She had cried out her great 'NO' but now the time had come for her epitaph to be written *Che free per viltate it gran rifiute*. (Where Shall We go in this summer? 139)

उसका पति उसको समझाने की कोशिश करता है, "Raman tries to disillusion her about the 'contraries' in life by saying 'other people put up with it'- it's not so-so insufferable." (Where Shall We go in this summer 143) जब वह समन्दर के किनारे रमन के पैरों के निशानों के ऊपर चलती है तब उसे ज़िन्दगी की असलीयत और ख्वाबों की दुनिया के बारे में पता चलता है,

> ...Follow the footsteps he had laid out for her… she realizes, instead of living of life of primitive reality on the island, she was to return to a life of retirement, off stage. (Where Shall We go in this summer? 153)

इसके बाद वह सच्चाई और ख्वाबों की दुनिया में फर्क करने में सक्षम होती है। देसाई के अगले उपन्यास Fire on the Mountain में नंदा कौल के अलगाव की कहानी है कि उसने जो कसौली में सहा होता है उसके बाद वह किस प्रकार इन पहाड़ियों में अपने आप को रखती है। उसका भूत बहुत ही ज्यादा भारी जिम्मेदारियों से लदा हुआ होता है। एक Vice-Chancellor की पत्नी होने के नाते उसकी कई सामाजिक और संयुक्त पारिवारिक जिम्मेदारियां निभाती है परन्तु इन सबके बावजूद नंदा अकेली ही देखाई पड़ती है। इन सारी जिम्मेदारियों को निभाते हुए वह सबसे अलग हो जाती है जहाँ तक कि उसकी अपने बच्चों के साथ भी वह लगाव नहीं रहता जो आमतौर पर एक माँ

का होता है। इसी वजह से अपने बुढ़ापे में भी वह उनकी खैरियत जानने की इच्छुक नहीं होती, "Discharge me, she groaned, I have discharges all my duties Discharge." (Fire on the Mountain 30) नंदा कौल का अपने पति के साथ सिर्फ एक समाजिक रिश्ता ही होता है इससे ज्यादा कुछ उनमें स्नेह या प्रेम नहीं होता क्योंकि उसके पति का किसी और औरत के साथ सम्बन्ध होता है जिसके बारे में वह जानती भी है लेकिन कुछ बोलती नहीं, "To sustain this meager present, she resorts to fantasy which eventually replaces reality. Withdrawal becomes a necessity to nourish all illusions. Being alone is 'a moment of private triumph, cold and proud' for her. It proves an amour against hurts and betrayals. It is an escape route from responsibilities, demands and obligatons that she detests, the emotional frigidity that she wears at times is a mask, at times very much a part of her because of regular wear." (Fire on the Mountain 19) नंदा को अब इस समय में किसी भी किस्म की महमान-नवाज़ी अच्छी नहीं लगती। रॉका उसकी पड़पोती एक दिन उसके पास आती है लेकिन शुरू में वह उससे दूर-दूर रहती है लेकिन नंदा उसकी जरूरत महसूस करती है, "good, a challenge to her the illusive fish, the golden catch." (Fire on the Mountain 99) नंदा ने अब अपने ही ख्यालों का घर बना रखा है जिसमें उसको किसी भी इन्सान की जरूरत महसूस नहीं होती क्योंकि उसने अपने भूत में बहुत सुखों का सामना किया होता है परन्तु जब रॉका उसके पास आती है तो वह उसे अन्देख-अन्सुना नहीं कर पाती क्योंकि वह सबसे अलग है,

> She would have to break out into freedom again. She could not bear to be confined to the old lady's fantasy world when the rality outside appealed so strongly….And here she was hedged, smothered, stifled inside the old lady's words, dream and more words. (Fire on the Mountain 100)

राका उसके दुखी हृदय को समझती है और उसे सच्चाई से सामना करने को कहती है और उनके नौकर रामलाल को उसके दुखी रहने की वजह बताती है जैसे कि जसबीर जैन ने बताया है,

> Ram Lal and Raka meet as equals, not as an adult and child, and share the wonder and the awe that the existence of such beings is likely to arouse. Ram Lal's belief in the supernatural is neither an escape nor an emotional prop. It is integral part of his world and of his background. Raka accepts it unquestioningly because it has a certain authenticity and cohesion. (Jain 20)

राका भी रिश्तों की सच्चाई से भागती है क्योंकि उसके पिता उसकी माता को बहुत मारते-पीटते थे जिसका उसके दिमाग पर एक गहरा प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि इस जंगल की आग में अपने आप को जलाने के लिएवह सब सुख सुविधाओं को छोड़कर आ जाती है। जब नंदा इस सच्चाई से रुबरू होती है वह इसको सहन नहीं कर पाती। जैसे जसबीर जैन ने इस उपन्यास के बारे में अपना मत रखते हुए कहते हैं,

> ...Withdrawal, which does not come naturally to her, takes her nowhere and involvement is equally meaningless. Death is the ultimate reality f life whereas life is a painful process. Thus, we see, fantasy is an escape from reality, a way of life, a survival strategy to deal with the present. It is fantasy with a purpose first to make her solitary life bearable and then to win Raka over. Both invariably lead to self-deception. When the past and the present are, thus, built on and of lies, one has to pay the price, and the price, in Nanda's case, is confrontation with reality. (Panigrahi 75)

विचारवान एवं विद्रोही नारी

शशि एक विचारवान और विद्रोही नारी भी है। यद्यपि उसका यह रूप उपन्यास में बहुत उभरकर सामने नहीं आया है, लेकिन फिर भी कुछ प्रसंगों में शशि के विचारशील और विद्रोही रूप के दर्शन हो जाते हैं। शशि के पिता की मृत्यु हो जाने पर शेखर सांत्वना देने के लिएशशि के घर जाता है, वहाँ जाने पर देखता है कि शशि की माँ की तबीयत खराब है। अपने कॉलेज की छुट्टियां खत्म हो जाने के बाद भी वह शशि के घर रुका रहता है तो शशि उसे कॉलेज वापस जाने के लिए कहती है क्योंकि वह जानती है कि यदि शेखर उनके घर पर रुका रहा तो उसे कॉलेज में दाखिला लेने में परेशानी होगी और यहाँ रुकने पर उसकी पढ़ाई का भी नुकसान होगा। शेखर अभी वापस नहीं जाना चाहता उसके मन में शशि का दुख बाँटने की भावना है, इस पर शशि उसे समझाती है,

> आप हमारे दुख में आकर मिल गए, हमें उसमें सांत्वना भी मिली, पर आपका कर्त्तव्य क्या वहीं तक था ? दुःख सब जगह है। आप उसे एक ही जगह समझकर उसकी छाया में रहना चाहते हैं, और आपका जो काम है उसमें अनिच्छा दिखा रहे हैं। आप कॉलेज जाइए। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 123)

इसी प्रकार जब शशि का पति रामेश्वर उसे घर से निकाल देता है और शशि शेखर के साथ रहने लगती है, तब वह बीमार होने पर भी नहीं चाहती कि शेखर उसकी सेवा करे। उसे लगता है कि शेखर उसके बजाए अपना कार्य करने में समय लगाए। इसी कारण वह बार-बार शेखर को लिखने के लिए प्रोत्साहन करती है। उसे अपनी चोट आदि के सम्बन्ध में भी नहीं बताती। शशि के चरित्र में विद्रोह की भी चेतना है। जब उसका पति रामेश्वर उसे मार-पीट कर घर से बाहर निकाल देता है तो वह उसके साथ नहीं रहती। शशि रामेश्वर के सामने रोती-गिड़गिड़ाती भी नहीं है। उसे पता है कि रामेश्वर द्वारा उस पर लगाया गया लांछन झूठा है। वह इसे स्वीकार नहीं करती। वह

रामेश्वर का घर छोड़ देती है। शशि के विद्रोही व्यक्तित्व की झलक उस प्रसंग में भी दिखाई देती है, जब वह एक सभा को सम्बोधित करते हुए विवाह के सम्बन्ध में अपने विचार रखती है,

> ...आदर्शों का अभिमान आसान है, विवाह का हिन्दु आदर्श, गृहस्थ धर्म, सतीत्व का हिन्दु आदर्श- किंतु अभिमान की काई के नीचे आदर्श का पानी क्या बहता है कि बँधकर सड़ गया ? गृहस्थ धर्म उभयमुखी होता है किंतु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, सख्य तो दूर, करूणा भी देय नहीं रही और नारी केवल पुरुष के उपभोग का साधन रह गई है, निरी सामग्री, जिसे वह जब चाहे, जैसे चाहे, जहाँ चाहे अपनी तुष्टि की आग में होम कर दे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि नारी कभी दुहाई दे तो उत्तर स्पष्ट है कि 'और शादी की किस लिए जाती है ? यह आदर्श नहीं, आदर्शों की समाधि है, देह नहीं, सदियों की सूखी त्वचा में निर्जीव हडिडयों का ढांचा है। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 211)

इस प्रसंग से पता चलता है कि शशि परम्परागत पितृसत्तात्मक सत्ता के प्रति विद्रोह का भाव रखती है। भले ही उसका विवाह रामेश्वर के साथ हो गया है, लेकिन वह नारी-पुरुष का स्वस्थ सम्बन्ध नहीं हैं शशि सिर्फ उस विवाह का निर्वाह करती है, वह उससे मन से संतुष्ट नहीं हैं। उसकी विद्रोही चेतना का ही परिणाम है कि वह रामेश्वर के घर को छोड़ देती है और उसके विरोध की परवाह न करते हुए शेखर के साथ रहने के लिए आ जाती है। अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' की नायिका रेखा है। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने रेखा को 'नदी के द्वीप' की अक्षत कीर्ति कहा है। उपन्यास की कथावस्तु के विकास में रेखा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। रेखा 'नदी के द्वीप' की प्रमुख नारी पात्र है। रेखा विदूषी नारी है- यह तथ्य लेखक रेखा और भुवन के प्रथम परिचय के समय ही स्पष्ट कर देता है। परिचय के समय भुवन लक्ष्य करता है कि रेखा के पास

रूप भी है और बुद्धि भी। उसकी बुद्धि की छाप पुरे व्यक्तित्व पर है। 'नदी के द्वीप' के पात्रों पर बहुधा असाधारणत्व का ठप्पा लगाया जाता है। इस उपन्यास की कथावस्तु और चरित्रों के सम्बन्ध में अज्ञेय ने लिखा है,

> नदी के द्वीप' समाज के जीवन का चित्र नहीं है, जीवन का एक अंग है। पात्र साधारण जन नहीं हैं, एक वर्ग के व्यक्ति हैं और वह वर्ग भी संस्था की दृष्टि से अप्रधान है...क्या वह जिस भी वर्ग का चित्रण है, उसका सच्चा चित्र है ? क्या उस वर्ग के ऐसे लग हैं, उनका जीवन ऐसा जीवन होता है, संवेदनाएं ऐसी संवेदनाएं होती हैं ? अगर हाँ तो उपन्यास सच्चा और प्रमाणिक है और उसके चरित्र भी वास्तविक और सच्चे हैं, न साधारण टाइप हैं, न असाधारण प्रतीक हैं। (आत्मपरक 64)

इस प्रकार अज्ञेय इसे स्वीकार करते हैं कि यह पूरे समाज की नहीं एक विशिष्ट वर्ग की कथा है और रेखा इसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' का एक प्रमुख नारी चरित्र गौरा है। उपन्यास में गौरा का स्थान रेखा के बाद आता है और उसकी तुलना में कथा में उसे स्थान भी कम दिया गया है, लेकिन सहिष्णुता, साहस, त्याग आदि चारित्रिक विशेषताओं के चलते वह एक प्रमुख नारी चरित्र के रूप में हमारे सामने आती है।

भुवन और गौरा का परिचय उस समय से है, जब गौरा की अवस्था मात्र पाँच-छह वर्ष की थी, इसके बाद वे पुनः तब मिलते हैं जब वह मैट्रिक की परिक्षा और भुवन एम.एस.सी. की परीक्षा उत्तीर्ण हो चुका होता है। वह गौरा को कुछ समय तक पढ़ाता भी है। बाद में उसके रिसर्च के सिलसिले में बंगलौर चले जाने पर गौरा का भुवन से पत्रों द्वारा ही सम्पर्क होता है। इस समय गौरा के मन में भुवन के प्रति प्रणय भावना का विकास होना शुरू होता है उसके माता-पिता उसका विवाह निश्चित करने की बात करते हैं। वह विवाह के प्रति अनिच्छुक है और इस सम्बन्ध में पत्र द्वारा भुवन से सलाह माँगती है। भुवन के प्रत्युत्तर देने पर कि जब तुम्हे कोई उचित पात्र मिले, तब ही

विवाह करना, वह विवाह से इन्कार कर देती है। इस सम्बन्ध में गौरा का निर्णय अज्ञेय के अन्य नारी पात्रों यथा शशि और रेखा से भिन्न है। वे दोनों ही अनिच्छा के बावजूद माता-पिता के निर्णय से विवाह करना स्वीकार करती हैं। इस दृष्टि से वह साहसी और विचारशील नारी के रूप में हमारे सामने आती है, जिसमें अपने सम्बन्ध में स्वयं निर्णय लेने की चेतना है। उपन्यास में मुख्यतः उच्चशिक्षित, कामकाजी, स्वावलम्भी, सुन्दर-समार्ट नारी पात्र ही दिखाई देती है। सद्दाम हुसैन ने इस देश से नाम मात्र पर्दा प्रथा खत्म की है, अपितु देश में पूरा पश्चिमी कल्चर ले आए हैं। यह वह देश है, जहाँ नारी को फैशन भत्ता मिलता है,

> सड़कों पर नारी बिंदास घूमती देखी जा सकती हैं। यही नहीं, सरकारी दफतरों में भी नारी का ही बोलबाला है। उन्हें सड़कों पर घूमते देखते तो अक्सर हिन्दी गाने की पँक्तियां 'देखो जी चाँद निकला...पीछे खजूर के...बसरा की हूर नीचे आगे हजूर के'- हमारे मुँह से अनायस ही निकल आती। (बसरा की गलियाँ 98)

बुशरा की हिस्ट्री में एम. ए है और कम्पनी के टेलीफोन एक्सचेंज में काम करती है। वह पाँच फुट छह इँच लम्बी है। हँसती है तो लगता है, मानो साक्षात कोई परी धरती पर उत्तर आई हो। उसकी आँखें ऐसी हैं कि देखने वाले का मन उनमें डूबने को मचल उठे। उसका सौंदर्य, तेज, प्रेम की गरिमा ही है कि नायक उसे कभी भूल नहीं पाता। हाँ ! भूलने के प्रयास में वीतरागी अवश्य हो जाता है। मोना डॉक्टर है। सुन्दर इतनी है कि कई मरीज उसे देखने के लिएबीमारियों के बहाने गढ़ते रहते हैं। वह परी सी है। एशियन ही नहीं, बड़े-बड़े गोरे डॉक्टर भी उसके दीदार को बेताब रहते हैं। टॉप-स्कर्ट पहनती है। जूलिया मनोवैज्ञानिक है और फौजी अस्पताल में नौकरी करती है। एलाइजा अमेरिकन फौज में भटकती-भटकती अकसर थक जाती है। वह फौजी वेशभूषा में रहती है। सिगरेट पीती है। वेदना का सैलाब, जो इन नारी पात्रों को जीने नहीं देता, सुख की साँस नहीं लेने देता। कुछ विवशताओं को छोड़ दें तो बुशरा मन,

वचन, कर्म से आकाशमय है। वह अकेले बेटे उदय का पालन करती है, न कभी चतुराइयों का परिचय देती है न मर्यादाओं का उलँघन करती है। कैंप का जनरल मैजेजर स्टाडॉलिक जनून की हद तक मोना को चाहता है और स्वाभिमानी मोना से चाँटा खाता है। मोना की यातनाओं की गाथा यही से आरम्भ होती है। उसे वापिस मिस्र जाने के लिएकहा जाता है। उसके घर का पानी का कनैक्शन कटवा दिया जाता है। उसका ओवर टाईम बँद करवा दिया जाता है। मरीजों को उनके विभागीय बॉस मोना से दवाई लेने से मना करते हैं। जूलिया साल में सिर्फ एक बार घर जा सकती है। इस बार तो किसी अपने की सूरत देखे वर्षों हो गए हैं। वह दिन-रात ऐसे मरीजों के बीच रहती है कि कई बार लगता है कि कहीं उनके बीच रहती-रहती वह स्वयं पागल न हो जाए। उसे गूँगी औरत भी बनना पड़ता है। आकाश अपनी प्रेमिका संचिता की इच्छा के विरुद्ध इराक आता है और उसके परिवार वाले उसकी कहीं और शादी कर देते हैं। संचिता की वेदना यह है कि आकाश को याद करके रोती रहती है। न वह उस घर के लोगों को खुश कर पाती है और न स्वयं वहाँ ढँग से एडजस्ट हो पाती है। अजय शर्मा ने वेदना तो उस सद्दाम हुसैन की बेटियों की भी चित्रित की है, जिनके पतियों को पिता ही गोलियों से मरवा देता है। वे खुलकर सिसक भी नहीं पाती। उनकी आवाज़ को सदा के लिएदबा दिया जाता है। वेदना उस गुलनार की भी कम नहीं, जो अपने ग्राहकों से कह देती है, “इन दीनारों को ऐसे बर्बाद मत करो। कहीं ऐसा न हो कि पैसे की लाचारी से तुम्हारी माँ-बहन मेरी तरह बाज़ार में बैठने को मज़बूर हो जाएं !” (बसरा की गलियाँ 105) यहाँ तीसरी दुनिया की संशक्त औरतें हैं। अपनी शक्ति से जिन्होंने परिवार को मातृसत्तात्मक बना लिया है। वे पुरुष को गुलाम बना सकती है। उसका धर्म बदल सकती हैं। उसका नाम बदल सकती हैं। उसका खतना करवा सकती हैं। उसकी मातृभूमि बदल सकती हैं। उपन्यास की औरतें वे लताएँ नहीं हैं, जो किसी बट का सहारा ले फुनगी तक पहुँच अपने को धन्य मानें, वे छत्रछाया देने वाले बट का पेड़ होने की क्षमता लिए है। इसलिए आकाश का अहम बार-बार आहत होता है, बौखलाता है और वह बट की जड़ों को ही अपनी कुल्हाड़ियों का निशाना बनाता

बुशरा को गृहस्थ के, घर-परिवार के, जीवन के हर सुख से वंचित रखता है। बुशरा की वेदनाओं को युद्ध ने भी चहुंमुखी बनाया है। उसका बारह वर्षीय बेटा उदय इराकी कानून के अनुसार युद्ध की ट्रेनिंग के लिएजाता है और दूसरे विकलांग बेटे की मृत्यु का कारण युद्ध का प्रदूषण है।

देसाई के अगले उपन्यास Clear Light of Day में चार भाई बहनों बिम, तारा, राजा और बाबा के बीच के मतभेदों को दिखाया गया है। दोनों बहनें तारा और बिम अलग-अलग मायनों में ज़िन्दगी की सच्चाई का सामना करती हैं। तारा हमेशा ही कल्पनाओं की दुनिया जो कविताओं और किताबों में दिखाई जाती है उसमें जीती है और फिर वह एक विदेशी बकुल नाम पुरुष से शादी कर लेती है। किन्तु जब वह उसके घर जाती है वहाँ की दुनिया एक अलग होती है जिसके बारे में उसने कभी कल्पना भी नहीं की होती फिर वह अपने बचपन और अपने परिवार में गुज़ारे दिनों को याद करती है और पूछती है, “why had nothing changed ? She had changed- why it did not keep up with her?” (Clear Light of Day 12) जब तारा इस सब में सामन्जसय बनाने में नाकाम रहती है तब उसे अपनी बहन की मुश्किलों का अहसास होता है। जो वह बचपन से ही सहन कर रही होती है क्योंकि उनके पिता की मृत्यु के बाद बिम ही होती है जो घर और परिवार को सम्भाले रखती है। तारा को बिम के लिएबुरा लगता है और अब वह सोचती है कि हम दोनों की हालत एक जैसी हो गई है बिल्कुल भी एक दूसरे से भिन्न नहीं है। इसलिए वह अब उसको छोड़कर नहीं जाना चाहती जब उसका पति उसे लेने आता है वह अपनी बहन को कहती है, “We’re not really. We may seem to be, but we have everything in common. That makes us one.” (Clear Light of Day 162) बिम तारा और राजा से बिल्कुल भिन्न है शायद इसलिए कि वह इतिहास के साथ जुड़ी हुई है और चीज़ों को देखने का उसका एक अलग नज़रिया है। जब तारा और राजा उसे उसके मंदबुद्धि भाई बाबा के साथ अकेला छोड़कर चले जाते हैं तो वह और ज्यादा ज़िन्दगी में सख्त होकर जीना सीख जाती है,

> Her love for Raja has too much of a battering, she had felt herself so humiliated by his going away and leaving her, by his reversal of role from brother to landlord, that it had never recovered and become the tall shining thing it had been once. (Clear Light of Day 62)

वह राजा और तारा की तरह अपनी जिम्मेदारियों से भागती नहीं है बल्कि अपनी ज़िन्दगी में सुखों का त्यागकर वह अपने भाई बहनों को पालती है लेकिन वह उन पर गुस्सा जरूर होती है, "her anger was as raw as a rash of prickly heat that she compulsively scratched and made worse." (Clear Light of Day 162) यही गुस्सा वह अपने भाई बाबा पर निकालती है लेकिन बाद में उसको अपनी गलती का जल्द ही अहसास हो जाता है,

> They were really all parts of her- inseparable, so many aspects of her as she was of them, so that the anger or the disappointment she felt at herself. Whatever hurt they felt. She felt…Bim could see well as by the clear light of the day that these gashes and wounds in her side that bled, then it was only because her love was imperfect and did not encompass them thoroughly enough and because it had flaws and inadequancies and did not extend to all qually. (Clear Light of Day 165)

वह अपने गुस्से को असलीयत में ढालकर समझ जाती है कि इस दुनिया की सच्चाई यही है और बाद में वह महसूस करती है कि अपने परिवार को एक करने में सफल हुई थी।

स्वच्छंद व्यक्तित्व में आस्था

रेखा के चरित्र में व्यक्तिवादिता का आग्रह दिखाई देता है। वह समाज नहीं वरन व्यक्ति को महत्त्वपूर्ण मानती है। उसकी व्यक्तिवाद में दृढ़ आस्था है। वह किसी भी

मूल्य पर अपनी स्वतंत्र इकाई नहीं खोना चाहती। वह मानवता को केवल एक अवधारणा या एक युक्ति सत्य मानते हुए भुवन से कहती है, "जब आप मानव से हटकर मानवता की बात सोचते हैं तभी आप जीवन से दुर चले जाते हैं, और जीवन के लिएवह मानव की स्वतंत्रता पर विशेष बल देती है।" (नदी के द्वीप 225) रेखा प्रत्येक नर नारी के स्वतंत्र स्वच्छंद व्यक्तित्व में आस्था रखती है और उसका विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति का जीवनमार्ग भी उसके व्यक्तित्व के अनुसार भिन्न हो सकता है। वह समाज के परम्परागत तरीकों और रूढ़ियों पर चलने से इन्कार का समर्थन करते हुए कहती है कि मनुष्य किसी बंधी हुई जीवन रीति या परम्परा का अंधानुकरण करने के स्थान पर नवीन लीक या नए मार्ग का अनुसरण कर सकता है,

> रेखा किसी सभ्यता की ह्रासोन्मुखता का मूल लक्षण ही यह मानती है कि उसमें नर-नारियों के स्वतंत्र व्यक्तित्व की अवहेलना की जाती है और परम्परागत मान्यताओं के बोझ से व्यक्ति के स्वतंत्र व्यक्तित्व को दबा दिया जाता है। (अज्ञेय का उपन्यास साहित्य 157)

इसी कारण वह अपने सम्बन्ध में निर्णय का अधिकार समाज को न देने की बात करती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रेखा विवाह पूर्व किसी अन्य पुरुष से प्रेम करती है लेकिन परिवार द्वारा हेमेन्द्र के साथ विवाह निश्चित किए जाने का विरोध नहीं करती। लेकिन जब भुवन उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है जिसके पिछे उसके शिशु को वैध ठहराने की भावना है, तब वह विवाह से इन्कार करती है और कहती है कि इसके पीछे भुवन की समाज को देखने की दृष्टि है। रेखा भुवन से कहती है,

> तुम समाज की दृष्टि से देखते हो, यह दृष्टि गलत नहीं है, अप्रासंगिक भी नहीं है, पर निर्णायक भी वह नहीं है। व्यक्ति को दबा कर इस मामले का जो भी निर्णय होगा- गलत होगा- घृण्य होगा, असह्य होगा...मेरे कर्म का- सामाजिक व्यवहार का नियमन समाज करे ठीक है, मेरे अन्तरंग जीवन का- नहीं। वह मेरा है। मेरा यानि हर व्यक्ति का निजी। (नदी के द्वीप 230)

वस्तुतः रेखा का स्वतंत्र चिंतन उसकी व्यक्तिवादिता का स्पष्ट प्रमाण है। अपने जीवन की अन्तरंगता में जाने का अधिकार वह समाज या दूसरे व्यक्ति को नहीं देना चाहती। रेखा की व्यक्तिवादी चेतना का प्रसार इस सीमा तक है कि वह अपने व्यक्तित्त्व के पहलू को भुवन से भी अछूता रखना चाहती है। उस भुवन से जिसे वह जीवन का सर्वस्व मानती है। इस कोने को वह सिर्फ अपने लिए रखना चाहती है। वह भुवन को पत्र में लिखती है,

> जो जब तक है, सुंदर हो और हमारे व्यक्तित्वों का प्रस्फुटन हो, एक तुम्हारे और एक मेरे व्यक्तित्त्व का नहीं, तुम्हारे अनेक व्यक्तित्त्वों का, मेरे भी अनेक व्यक्तित्त्वों का सम्मिलन और विकसन- केवल मेरे उस पहलू का नहीं, जिसे मैं तुम्हें नहीं छूने दूँगी- जिससे मैं तुम्हें असम्प्रक्त रखूँगी भुवन, तुम्हीं को नहीं उस अपने को भी जिसे तुमने प्यार किया है। (नदी के द्वीप 310)

रेखा क्षण की वास्तविक्ता में विश्वास रखती है वह क्षण को माँग लेने में जीवन की सार्थकता ही नहीं बल्कि जीवन का वैभव भी मानती है। उसके लिए वही क्षण सत्य है जब वह भुवन द्वारा 'फुलफिल्ड' हुई थी। इस एक क्षण के बाद उसे मरने का भी कोई दुख नहीं है। क्योंकि वह मानती है कि फुलफिलमेंट के बाद वह ईश्वर के प्रति और भुवन के प्रति कृतज्ञ भाव लेकर ही इस संसार से जाएगी। रेखा कहती है,

> मैं सचमुच कहीं पहुँचना नहीं चाहती...चाहना ही नहीं चाहती। मेरे लिए काल का प्रवाह प्रवाह नहीं केवल क्षण और क्षण का योगदान है...मानवता की तरह काल प्रवाह भी मेरे निकट युक्ति सत्य है, वास्तविक्ता क्षण ही की है। क्षण सनातन है।" (नदी के द्वीप 36)

इससे पता चलता है कि रेखा क्षण को ही विराट मानती है उसके प्रति समर्पित है। रेखा की आस्था भविष्य में नहीं है वह वर्तमान को ही वास्तविक मानती है और वर्तमान के

हर क्षण का जीवन के विकास के लिए प्रयोग करना उचित समझती है। रेखा के व्यक्तित्व में दुखवाद के प्रति एक आग्रह सा भी दिखाई देता है। उपन्यास के आरम्भ में अज्ञेय ने यह कविता प्रस्तुत की है-

दुख सबको माँजता है

और-

चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु-

जिनको माँजता है

उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें। (नदी के द्वीप 2)

कविता में दो मुख्य बातें हैं- पहली कि दुख व्यक्तित्त्व का परिष्कार करता है और दूसरी कि ऐसा व्यक्ति सबको मुक्त करने में विश्वास रखता है। यह दोनों ही विशेषताएँ रेखा के चरित्र में दिखाई देती हैं। रेखा के व्यक्तित्त्व के सम्बन्ध में भुवन गौरा को बताता है कि रेखा एक स्वाधीन नारी है जिसका व्यक्तित्त्व प्रतिभा के सहज तेज से नहीं, दुख की आँच से निखरा है। इसी प्रकार रेखा मानव मात्र की मुक्ति में विश्वास रखती है। वह भुवन से प्रेम करती है, लेकिन यह नहीं चाहती कि भुवन जीवन भर के लिएउससे बँध जाए। वह प्रेम को बँधन नहीं अपितु मुक्ति का पर्याय मानती है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार, "रेखा के चरित्र में प्रेम बाँधता नहीं, मुक्त करता है।" (अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या 103) वह चाहती तो भुवन से विवाह कर सकती थी, लेकिन वह गौरा के प्रति भुवन के लगाव को जानती है और इसी कारण उसे मुक्त करने का प्रयास करती है और बिना किसी परिताप और गौरा के प्रति बिना ईर्ष्या भाव के। रेखा भुवन से कहती है, "तुम मुक्त हो भुवन बिल्कुल मुक्त मैं चाहती हूँ कि सर्वदा सगर्व कहती रह सकूं कि तुम मुक्त हो मेरे भुवन, मुझे भूल जाने के लिए उतने ही मुक्त जितने मुझे प्यार करने के लिए थे और हो।"(नदी के द्वीप 251) अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' दोनों ही उपन्यासों में नारी की त्याग भावना का खूब महिमामंडन किया है। शशि के समान ही रेखा भुवन के प्रति सदैव त्याग के लिए तत्पर रहती है। रेखा भुवन

के प्रति अपना समर्पण करके स्वयं को फुलफिल्ड मानती है भुवन के जीवन को सफल और सार्थक बनाने के संकल्प में रेखा भुवन को कृतज्ञता के भाव से मुक्त करती है। वह चाहती है कि प्रेम पाने के प्रति भुवन किसी प्रकार की कृतज्ञता अनुभव न करे अगर वह चाहती तो भुवन को अपने भविष्य से बाँध कर रख सकती थी। विमल सहस्रबुद्धे के मतानुसार किन्तु रेखा ऐसा नहीं करती,

> उसमें न ईर्ष्या है न माँगकर कुछ लेने की इच्छा है, बिना कुछ सुरक्षा चाहे बल्कि सुरक्षाओं की सब सम्भावनाओं को दूर करके भुवन से बेहद प्रेम करती है और अपनी ओर से सब देना चाहती है, सब कुछ अपना आप। (हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण 362)

भुवन के प्रेम में वह दुख को भी सहज भाव से स्वीकार करती है। रेखा भुवन से प्रेम करती है लेकिन उससे प्रतिदान की चाह नहीं करती। यहाँ तक कि जब रेखा उसके शिशु की माँ बनने वाली होती है और भुवन इस सम्बन्ध को वैधता देने के लिए उससे विवाह का प्रस्ताव रखता है तो वह इसे अस्वीकार कर देती है। जब उसे लगता है कि वह शिशु भुवन की मुक्ति में बाधक है तो वह अपने शिशु को भी समाप्त करने से नहीं झिझकती। रेखा भुवन को अपने प्रेम में बाँधना नहीं अपितु मुक्त करना चाहती है। वह भुवन के लिएसोचती है,

> जो सुंदर है निरंतर विकास करता है, रुक नहीं सकता : दूसरों को आनंद देता है ! तो क्या मैं भूल करती आई हूँ, क्या मैं बहते पानी को बाँधना चाहती आई हूँ...दूसरों के लिए मैंने दुख नहीं दिया...मैं धारे बैठी हूँ कि यह दर्द भी आगे आनंद देगा क्योंकि वह विश्वास के साथ अपनाया गया है, मैं अपने को समर्पि करके उसको ले रही हूँ...इसलिए तुम भुवन चले जाना। मैं शिकायत नहीं करूँगी मन में भी नहीं। मान लूँगी मेरा व्रत पूरा हुआ कि मैंने तुम्हें वही दिया जो देय था, स्वच्छ था और उससे बचा लिया जिससे तुम्हें रखना चाहती थी। (नदी के द्वीप 238-239)

रेखा भुवन में पूर्ण विश्वास और आस्था रखती है। जब उसे गौरा के प्रति भुवन के लगाव का पता चलता है तो वह भुवन और गौरा के बीच से हटने का फैसला करती है। गौरा के प्रति उसके मन में ईर्ष्या का भाव नहीं है अपितु स्नेह का भाव है। वह गौरा को अपनी चूड़ियाँ और अँगूठियाँ भेंट करती है। वह डॉ. रामेशचन्द्र से विवाह का फैसला करती है, लेकिन रामेशचन्द्र से विवाह के बाद भुवन के प्रति उसका प्रेम अक्षुण्ण बना रहता है। वह भुवन को पत्र में लिखती है, "मेरे लिए यह सब मिथ्या है। मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी, तुम्हारी ही हुई हूँ और किसी की कभी नहीं, न कभी हो सकूँगी।"(नदी के द्वीप 270)

डॉ. रामेशचन्द्र से विवाह करने के पीछे रेखा का मनोभाव बहुत स्पष्ट नहीं होता। अज्ञेय यदि रेखा का विवाह न कराते तो खास अन्तर नहीं पड़ने वाला था। यदि रेखा विवाह के बाद भी भुवन से प्रेम करती है तो फिर विवाह की आवश्यकता क्या थी। यहाँ पर विवाह समाज के कारण भी नहीं है क्योंकि समाज के प्रति जवाबदेह होने की बात वह पहले ही अस्वीकार करती है। भुवन और गौरा के बीच से हटने के लिए विवाह करना जरूरी नहीं था उसके बिना भी भुवन की याद में जीवन बिता सकती थी। इस प्रकार अजय शर्मा ने अपने उपन्यासों में इस सत्य को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है कि एक औरत का अस्तित्व केवल तब तक है जब तक मर्द का सहारा उसे मिलता है। फिर चाहे वह विवाहित है या विधवा। बुशरा अपने पति के साथ रह कर भी उसका प्रेम, स्नेह, पति-पत्नी का भावात्मक लगाव जो इस रिश्ते का आधार होता है। वह न पा सकी और सदैव पति के प्रेम के लिए तरसती रही। दूसरी तरफ ललिता पति का प्रेम पा कर भी उमर भर के लिएतन्हा हो गई। उसका जीवन पति से शुरू होकर उसी पर खत्म होता था। उसके न रहने से मानो उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। तलाकशुदा औरत की भी स्थिति अजय शर्मा ने वर्णित की है। तलाकशुदा औरत को अपनाने के पीछे मर्द की मानसिकता सदैव स्वार्थपूर्ण रही है। 'काल-कथा' में आशा नामक नारी का जिक्र है जो तलाकशुदा है। वज़ीर चन्द से उसके बहुत पुराने सम्बन्ध

हैं। वह उससे शादी भी करना चाहता है पर परिस्थितिवश ऐसा नहीं हुआ। आशा का तलाक के बाद जीवन ही बदल जाता है। तलाकशुदा की मनोवृत्ति का बहुत मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। मर्द का दृष्टिकोण उसके बारे में जो बन जाता है कटाक्षपूर्ण ढँग से व्यक्त हुआ है,

> किसी भी तलाकशुदा औरत को देखने के बाद जो पहला भाव मर्द के मन में पैदा होता है, वह दम्भ है। दम्भ में भी स्वार्थ। उसी में मछली फँसाने के लिएकाँटा फेंकता है। अगर मछली उसमें फँस गई तो ठीक है, अगर नहीं फँसी तो स्वार्थ को ठेस पहुँचते देर नहीं लगती। अगर स्वार्थ को ठेस पहुँच जाए, तो उसे घृणा में बदलते पल भी नहीं लगता। एक तलाकशुदा नारी के प्रति कटुता घुलनी शुरू हो जाती है जो धीरे-धीरे ज़हर बनने लगती है। उसी ज़हर में पलती है तलाकशुदा औरत की ज़िन्दगी। (खुली हुई खिड़की 121)

औरत के जीवन की प्रत्येक स्थिति का वर्णन किया गया है। चाहे वह विवाहिता हो या तलाकशुदा। भूमण्डलीकरण की स्थिति में आज नारी-पुरुष सम्बन्ध भी निरन्तर बदल रहे हैं। नारी पहले घर की चारदीवारी में कैद रहती थी, पर्दे में रहना, पराए मर्द से बात करना तो दूर उसके सामने जाने की आज्ञा भी नहीं थी पर आज की स्थितियां बदल गईं हैं। आज पति को कोई ऐतराज नहीं। अगर उसकी पत्नी किसी से हँस कर बात करती है या पति के दोस्त से उसकी गैर-हाजिरी में बात भी करती है। 'खुली हुई खिड़की' में नायक के घर वालों को ऐतराज है कि उसका दोस्त उसकी गैर-हाज़िरी में उसकी पत्नी से अकेले मिलता है पर उसे इसमें कोई ऐतराज नहीं। उसके इन शब्दों से स्पष्ट है,

> वह आएगा और जरूर आएगा। किस की हिम्मत जो उसे आने से रोक सके।...वह मेरा दोस्त है। मुझे भरोसा है उस पर। अगर वह मेरी गैर-हाजिरी में भी आता है तो उस पर विश्वास कर सकता हूँ। मेरे दफ्तर

> जाने के बाद अगर तुम्हें कोई जरूरी काम आन पड़े तो तुम उसे बेझिझक फोन कर सकती हो। (खुली हुई खिड़की 98)

नायिका को यही बात जीने का आधार देती है। पति की मृत्यु के बाद जब हर रिश्ता बेगाना हो जाता है तो नायिका को पति का दोस्त ही प्रोत्साहित करता है। नौकरी करने के बारे में नायिका ने कभी सपने में भी नही सोचा होता। कोई आवश्यकता भी नहीं थी पर हालात इन्सान से क्या कुछ नहीं करवाते। नायिका नौकरी नहीं करना चाहती, डॉक्टर (दोस्त) समझाता है अपना फर्ज पूर्णतः निभाता है वह भी बिना किसी स्वार्थ के अपने मरे हुए दोस्त की दोस्ती के नाम पर। उसे समझाता है नौकरी मिले या सरकार के घर से पैसा मिले तो किसी को एक भी पैसा न दे। "भाभी, कोई सोने का बन कर भी आ जाए, किसी को एक फूटी कौड़ी भी मत देना।" (खुली हुई खिड़की 107) पूरी जद्दोजहद के बाद नायिका नौकरी कर पाती है। तब डॉक्टर पल्ला नहीं झाड़ लेता बल्कि उसे कहता है जब भी किसी चीज़ की जरूरत पड़े तो कभी भी आवाज़ देना हाजिर हो जाऊँगा। नायिका जो अपने पति को बहुत प्यार करती थी। परन्तु बदले नारी-पुरुष सम्बन्धों के कारण पति के मरने पर उसका प्यार केवल शारीर की भूख तक सीमित होकर रह जाता है वह पति की कमी डॉक्टर के जरिए पूरी करना चाहती है। डॉक्टर उसे जब भी कहता और किसी काम आ सकता हूँ बस अपने दोस्त की भरपाई नहीं कर पाऊँगा। तो हमेशा यही शब्द दोहराती है, 'क्यों नहीं कर सकते तुम उसकी भरपाई ?' यहाँ नायिका का नज़रिया बदल गया है। परन्तु नायिका का नज़रिया भी इसलिए बदला क्योंकि एक पराया मर्द उसे क्यों कहता है कि बहुत दिन हो गये अपने दुपट्टे का रंग बदल दे। पहले की तरह न सही, पर तैयार होकर रहे। चेहरा पीला पड़ गया है, अपने आप पर ध्यान दे। यह सब डॉक्टर से सुनने के बाद नायिका के मन के भाव उसके प्रति बदलने लगते हैं। बदलते नारी-पुरुष सम्बन्धों से जहाँ समाज के संकीर्ण दृष्टिकोण के दायरे की सीमा रेखा मिटी है वहीं मर्यादा रीति-रिवाज़ को जो कि भारतीय संस्कृति का आधार-बिन्दु है उसका भी निरन्तर हनन हुआ

है। तभी आज भारत जिसे सारी दुनिया में उसकी संस्कृति के लिएपहचाना जाता था उसी कतार में आ खड़ा हुआ है जहाँ अन्य पाश्चात्य जगत के देश।

शंकालु एवं संदेहशील स्वभाव

उपन्यास में योके का पात्र सेल्मा से विपरीत है। लेखक योक का मनोविज्ञान के माध्यम से अस्तित्त्ववादी विचारधारा का बोध कराना चाहता है। सेल्मा और योके में लगातार मृत्यु की उपस्थिति है, एक में स्वीकार भाव है, दूसरे में अस्वीकार। योके के मन में सेल्मा के प्रति, मृत्यु के प्रति विरोध भाव है, लेकिन जब वह सेल्मा में न तो मृत्यु के प्रति, न तो अपने प्रति कोई विरोध का भाव देखती है। तब उसे लगता है कि, "कहीं न कहीं जरूर बुढ़िया में झूठ है।" (अपने-अपने अजनबी 96) योके संदेहशील स्वभाव की है, उसके मन में हमेशा विरोधाभाव है, जो जिज्ञासा तक पहुँच कर अन्त में आत्महत्या के बोध तक पहुँचता है। योके हमेशा सेल्मा को बुढ़िया समझती है और 'बुढ़िया' शब्द का व्यवहार करती है। सेल्मा और योके में व्यक्तित्त्व सामर्थ्य की चर्चा होती है, तब योके कहती है, "किसी के लिएक्या तय है, इसका निश्चय अपने आप करते चलना क्या भगवान को अपने ऊपर ओढ़ लेना नहीं है।" (अपने-अपने अजनबी 98) तब सेल्मा कहती है, "देखो योके मेरी आँखों में देखो। क्या तुम्हें नहीं दिखता कि भगवान के सिवाय मेरे पास कुछ नहीं ओढ़ने को।"(अपने-अपने अजनबी 98) तब योके सेल्मा के इन शब्दों को सहन नहीं कर पाती, क्योंकि भगवान का नाम उसे पसंद नहीं है।

सार्त्र ने कहा कि ईश्वर का अवसान हुआ है और यहाँ यही बात योके में दिखाई दे रही है। योके एकदम हारने वाली नहीं है। उपन्यास के अंतिम खंड में यही बात आती है। जर्मनों द्वारा कब्जा लिए हुए आतंकित नगर की एक गली है, जिसमें एक दुकान से सौदा खरीदने के लिएभीड़ लग गई है। ऐसी भीड़ जिसमें सब अकेले थे अजनबी थे। जिसमें जगन्नाथ है, जो सामान खरीद कर जा रहा है और एक अर्ध विक्षिप्त-सी आगँतुका आकर अपने होंठ से चिपका हुआ सिगरेट जगन्नाथ के खरीदे हुए पनीर में

रगड़कर बुझाती है। जगन्नाथ पूछता है कि तुमने क्या किया ? वह समझ गया कि आगँतुका वेश्या है। वह दौड़ती है तो उसके पीछे जगन्नाथ दौड़ता है और फिर जाकर मृदु स्वर में पूछता है कि क्या लाचारी थी जिससे उसने ऐसा किया था ? जगन्नाथ उसे 'वैश्या' नहीं कह सकता। उसका व्यवहार खिलखिलाकर हँसने वाली आगँतुका के चेहरे पर गम्भीरता ला देता है और वह फिर कुछ खा लेती है और जगन्नाथ के पूछने पर कहती है कि अब उसकी तबियत ठीक हो जाएगी। वह धीरे-धीरे शिथिल होकर जगन्नाथ की गोद में गिर जाती है और माफी माँग कर कहती है कि वह मर रही है। वह कहती है, "मैंने चुन लिया। मैंने स्वतंत्रता को चुन किया...मैं चाहती थी कि किसी अच्छे आदमी के पास मरूँ। क्योंकि मैं मरना नहीं चाहती थी- कभी नहीं चाहती थी।" (अपने-अपने अजनबी 102) फिर वह अपने को ईसा की माँ मरियम बताती है, जिसे जर्मनों ने वैश्या बनाया था। अपना पहले का नाम योके बताती है। तो यह योके का पात्र है, अब भी वह वरण की स्वतंत्रता की बात करती है। वह कहती है कि वह अपनी इच्छा से चुनकर मर रही है। फिर भी मौत को 'हरामी' कहती है। वह कहती है उसने अच्छे आदमी को चुना है और 'उसमें' बह जाएगी। वह जगन्नाथ से माफी चाहती है और जगन्नाथ को भी माफ करती है। यहाँ तक की वह ईश्वर को भी माफ करती है। नारी भारतीय समाज का वह तबका है जो सर्वाधिक शोषित और पिछड़ा है। नारी को पुरुष के समान अधिकार देना तो बहुत दूर की बात है, उन्हें मनुष्य तक नहीं समझा जाता। पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी के साथ वस्तु के समान व्यवहार किया जाता रहा है।

देसाई के अगले उपन्यास Journey to Ithaca में ऐसा कोई मुख्य पात्र नहीं है जो ऐसे अलगाव की स्थिति में हो लेकिन यह उपन्यास एक अटल सच्चाई, दुनियावी सच, सौंदर्य, खुशी और सच्चाई के बारे में कहता है। इस उपन्यास में लैला जो कि माँ है और सोफी मैटियो की पत्नी है, वह सचाई को ढूँढने के प्रयास में है। लैला अपने माता-पिता की बागी औलाद है जिसको यह धार्मिक कट्टरता समझ में नहीं आती क्योंकि वह

इन सब चीज़ों में विश्वास नहीं रखती और हमेशा वह अपनी आज़ादी के बारे में सोचती रहती है जबकि यह बात उसकी अपनी दोस्त फातिमा को भी नहीं पता होती। लैला एक क्रांतिकारी विद्यार्थी होती है और अपने माता-पिता से भी अठारह वर्ष की आयु में वह कहती है कि उसे इस घर में नहीं रहना जिस तरह के तौर तरीकों के साथ वह रहती है। बाद में उसके माता-पिता यह निर्णय लेते हैं कि उसको पेरिस पढ़ने के लिएभेज दिया जाए लेकिन वह नहीं जाना चाहती। वहाँ अपनी चाची फैंस्किको के साथ बहुत ही असभ्य व्यवहार करती है क्योंकि वहाँ भी उसको उनके रहने और खाने पीने के तौर तरीके अच्छे नहीं लगते। जब उसके चाचा उसे मीट खाने के लिएमनाते है वह कहती है, "I am a vegetarian. No one will make me eat the flesh of slaughtered animals." (Journey to Ithaca 185) पेरिस में भी इस्लामिक किताबें खरीदने की बजाए दर्शन की किताबें खरीदती और पढ़ती है। वहाँ वह एक नृत्य की मँडली में मिल जाती है और शानारीय नृत्य सीखने के प्रयास करती है परन्तु वह इसमें नाकामयाब होती है लेकिन उसे असली सच्चाई और भक्ति के बारे में पता चल जाता है और वह भगवान की खोज में जाने को अग्रसर होती है। वह हिन्दु संत के द्वारा सीखाई गई शिक्षा के अनुसार एक मुस्लिम लड़की के रूप में वापस नहीं आना चाहती और सभी धर्मों की कट्टरता के बारे में वह कहती है कि,

> This is no church, my friends, this is no temple or mosque or Vihara. We have no religion. Religion? Like the black crows uo in the tree caw-caw-caw, scolding, scolding! But, do they crow at us now? No, they are silent! We have silenced them…Religion makes one ashamed, makes one guilty not to feel ashamed, not to be afraid. (Journey to Ithaca 98)

इसमें काले कौएँ के बारे में जो धर्म के लिए कहा गया है वह सभी धर्मों के अन्दर के खोखलेपन को दिखाता है। एक माँ को अपने बच्चे को सिर्फ एक अच्छा इन्सान बनाना चाहिए न कि धर्मों की आड़ में उसके विश्वासों को दवस्त करना चाहिए,

> You must know I mean honey made from spiritual nectar, to nourish your souls. All organizations are useless, Matteo, useless and dry and empty, if they do not contain the nectar of spirit. I want it to be rich, rich, rich with this nectar. (Journey to Ithaca 118)

सोफी एक विदेशी विचारों वाली युवती है जो सभी धार्मिक यात्रियों, जो आश्रम में रहते हैं उनकी श्रद्धा को नज़र-अंदाज करती है,

> She scrambled to her feet and returned to eat some bread from the night before and drink a tumbler of tea given to her, and even smoked a cigarette furtively behind a hut…feeling both guilty and grateful to be excluded. (Journey to Ithaca 53-54)

सिगरेट पीना एक तो आश्रम के नियमों के खिलाफ था और दूसरा यह कि उसे किसी तरह की हिचकचाहट नहीं थी कि वह यह सब कर रही थी। वह वहाँ रहने वाले किसी भी यात्री के कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती थी और वह अपने पति से भी सवाल करती है, "Couldn't we stay in our own country? To die there?" (Journey to Ithaca 57) वह वहाँ किसी भी हालात में नहीं रहना चाहती और बच्चों की तरह रोना शुरू कर देती है, "I want to go home." (Journey to Ithaca 89) सोफी मैटियो की माँ से बहुत ही इर्ष्या करती है और उसकी सच्चाई के बारे में पता करना चाहती है,

> It sounds as if she gets up on a stage and hypnotizes you all like a magician... a monster spider who had spun this web to catch these silly flies...looking for a rich somebody to pick her up. (Journey to Ithaca 131)

सोफी अपने पति को छोड़कर अपने माता-पिता के पास इटली चली जाती है और वहाँ एक समारोह में पॉलो नाम के आदमी को मिलती है लेकिन फिर भी मैटियो उसके दिमाग से नहीं निकलता और वह कहती है, "Her life with Matteo had spoilt her

life with a man like Paolo, it was no longer possible." (Journey to Ithaca 155) अनीता देसाई के उपन्यास में लैला पात्र जो धार्मिक सच्चाई को मानना चाहती थी लेकिन वह बाद में एक माँ के रूप में सामने आती है। वह अपने माता-पिता की अलोचना करने के बाद पेरिस में और फिर बाद में भगवान की खोज में इंडिया आती है। यह दोनों नारी पात्र अपने आसपास की दुनिया को न मानते हुए उनसे अलग होने का प्रयास करती हैं, लैला धार्मिक आज़ादी चाहती है जबकि सोफी सब चीज़ों से आज़ादी चाहती है।

सेल्मा ईश्वर की उपस्थिति को मानती है। वह मृत्यु के स्वागत के लिए तैयार है। वह दूसरे दिन तक कहती है कि मन से ईश्वर को तब तक पहचान नहीं सकते, जब तक कि मृत्यु के रूम में उसे न पहचाना जा सकता हो, फिर कहती है, "मौत ही तो ईश्वर का एक मात्र पहचाना जा सकने वाला रूप है। पूरे नकार का ज्ञान ही सच्चा ईश्वर ज्ञान है।"(अपने-अपने अजनबी 108) सेल्मा आस्थावान है। निर्जीव चीजों के प्रति भी उसके मन में 'दुलार' का भाव है। सेल्मा का चरित्र सार्त्र के स्वतंत्र सिद्धांत का निषेध करता है। उपन्यास में विषय आता है 'वरण की स्वतंत्रता का' जब सेल्मा बीमार होती है, तब बीमार सेल्मा ने योके के लिए नाश्ता लगाया। उसे लगा कि बीमार व्यक्ति से सेवा लेकर वह अपने को स्वतंत्र महसूस नहीं कर पाती। सेल्मा उसकी इस 'स्वतंत्रता' की बात का प्रतिवाद करते हुए कहती है,

> ...और स्वतंत्र- कौन स्वतंत्र है ? कौन चुन सकता है कि वह कैसे रहेगा या नहीं रहेगा ? मैं क्या स्वतंत्र हूँ कि बीमार न रहूँ या कि अब बीमार हूँ तो क्या इतनी स्वतंत्र हूँ कि मर जाऊँ ? मैंने चाहा कि अंतिम दिनों में मेरे पास कोई न हो। लेकिन वह भी क्या मैं चुन सकी ? (अपने-अपने अजनबी 110)

उसके बाद जब योके ने सेल्मा की गर्दन की ओर हाथ बढ़ा दिए थे। दूसरे दिन उसने अपने अपराध की क्षमा याचना की। उस समय सेल्मा उसे वही बात सुनाती है,

> तुम जो अपने को स्वतंत्र मानती हो, वही सब कठिनाइयों की जड़ है। न तो हम अकेले हैं, न तो स्वतंत्र। बल्कि अकेले नहीं हैं और हो नहीं सकते। इसलिए स्वतंत्रता नहीं है और इसलिए चुनने या फैसला करने का अधिकार हमारा नहीं है। मैंने तुम्हें बताया कि मैं चाहती थी कि मैं अकेली मरूँ। लेकिन वह निश्चित करना मेरे बस का था ? क्या मैं अपनी मनपसंद स्थिति चुन सकी ? और तुम क्या स्वतंत्र हो कि मुझे मरती हुई न देखो ? ऐसी सब स्वतंत्रताओं की कल्पना निरा अहमकार है और उसी से स्वतंत्रता को छोड़कर कोई दूसरी स्वतंत्रता नहीं है ? (अपने-अपने अजनबी 108)

सेल्मा में जो आस्था का, ईश्वर का, मृत्यु का स्वीकार देखते हैं, वह उसकी परिवर्तित जीवन दृष्टि का परिचायक है। बुढ़िया सेल्मा जब तरुणी थी और पुल पर रहती थी, तब उसका भी जीवन व्यवहार एक तरह से अस्तित्त्वबोध से आक्राँत था। टूटे पुल पर फोटोग्राफर मरता था, जब भी वह अपने बारे में सोचती है, यान को खाने के लिएदेना है, तब भी वह उसकी कीमत के बारे में सोचती है। वह अपने मन में यान के प्रति विरोधाभाव बनाए रखती है। यान उसके पास आता है, तो वह आत्म रक्षा के लिए लोहे की छड़ लेती है लेकिन मृत्यु के आसन्न उपस्थित के बोध ने उसकी दृष्टि में परिवर्तन ला दिया।

भावुकता के कारण अन्तर्द्वन्द्वात्मक व्यक्तित्व

'नौ दिशाएं' उपन्यास की मुख्य पात्र रजनी है, जिसमें अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति बनी रहती है। यही अन्तर्द्वन्द्व उसमें विद्रोह, क्रोध अहम आदि मनोविकारों को भर देता है। इसके अतिरिक्त उपन्यास की दूसरी नारी पात्र रुकमणि है, जो कि रजनी की सास है तथा तीसरी पात्र रजनी की अपनी माँ है। प्रत्येक व्यक्ति के सोचने तथा देखने का दृष्टिकोण अलग होता है। इसी प्रकार उपन्यास में दोनों नारी की मानसिकता उनके व्यक्तित्व को प्रकट करती हैं। एक नारी की मानसिकता क्या होती है, उसकी क्या-क्या

इच्छाएँ होती हैं, जब उसकी इच्छाओं का गला घोंट दिया जाता है तब उसका मन विरोधाभास से भर जाता है। नारी को अपने ससुराल से कोई सम्मान नहीं मिलता, चाहे वह घर का कितना काम क्यों न करती हो। ऐसी परिस्थिति में उसकी मानसिकता बदल जाती है। उसमें पलायन की प्रवृत्ति आ जाती है। रजनी भी इसी का शिकार होती है क्योंकि उसे बात-बात पर ताने मिलते हैं तो वह घर से जाने का निश्चय करती है। इसी प्रकार जब वह अपने घर में आ जाती है तब उसका पति संजीव उसे वापिस अपने घर जाने के लिए कहता है, लेकिन रजनी उसकी एक नहीं सुनती। संजीव अपने दोस्त और उसकी मदद से रजनी को घर वापिस लाने में कामयाब हो जाता है। रुकमणि को अपनी बहु की प्रत्येक बात गलत लगती है चाहे वह सही ही क्यों न हो। जब रजनी की तबीयत खराब होती है तो उसकी सास ईर्ष्या से भरे शब्दों में कहती है, "ड्रामा मत किया कर, तुमने तो अभी एक बच्चा भी नहीं जना।" (नौं दिशाएँ 45) रुकमणि दोहरे व्यक्तित्त्व की नारी है। उसे अपनी बहू रजनी से इसलिए ईर्ष्या है क्योंकि रजनी उस से तर्क-वितर्क करने लगती है। वह हमेशा यही इन्तज़ार करती है कि कब उसकी बहू कोई गलती करे और उसे उसके विरुद्ध बात करने का मौका मिले। आगे चलकर यही पारिवारिक विखंडन का कारण सिद्ध होता है। वह चाहती है कि उसकी बहू खाने पीने की चीजें भी उस से माँग कर खाये। एक रात को रजनी की तबीयत खराब थी। उसने बिना पूछे एक गिलास दूध का पी लिया। लेकिन अगले दिन ही रजनी की सास ने पूरे परिवार को इकठा कर अपनी बहू पर आरोप लगाने शुरू कर दिये। अपने परिवार के सामने वह उच्च स्वर में कहने लगी, "न जाने भगवान ने हमें कैसी औरत से वास्ता डाल दिया है, जो खाने-पीने की चीज़ें भी चुराकर खाती है।"(नौं दिशाएँ 46) रुकमणि की इस निम्न स्तर की मानसिकता को देख कर कोई भी उसे बुद्धिमान नारी नहीं कह सकता। इस व्यवहार के पीछे उसकी विकृत मानसिकता ही है। जब रजनी की तबीयत अधिक खराब हो जाती है तो उसका पति संजीव उसे अस्पताल में ले जाता है। अस्पताल में रजनी के मायके वाले भी आ जाते हैं। अपनी बहू

की सेवा न करनी पड़े तो उस समय रुकमणि सबके सामने कहती है, “बहन जी, आप इस हालत में इसे अपने साथ ही ले जाइए, क्योंकि ऐसी हालत में माँ के बिना बेटी का दर्द कौन समझ सकता है ?” (नौं दिशाएँ 48) इससे स्पष्ट होता है कि उसमें बिल्कुल भी ममता नहीं है। यदि उसमें थोडी बहुत भी ममता होती तो शायद वह कभी भी ऐसी बात ना कहती। इसके अतिरिक्त उसके कहे गए यह शब्द ‘माँ के अलावा बेटी का दर्द कौन समझ सकता है?’ उस पर लाँछन लगाने के लिएपर्याप्त है। क्या रजनी उसकी बेटी नहीं है? क्या रजनी उसको माँ कहकर नहीं पुकारती ? यह सभी बातें रुकमणि के निम्नस्तर के व्यक्तित्त्व को दर्शाती हैं। रजनी का अपने पति और अपनी सास से तर्क-वितर्क होने के कारण घर का प्रत्येक सदस्य रजनी के व्यवहार से आहत है और रजनी घर के सदस्यों से दुखी है। घर का कोई भी सदस्य हो, चाहे उसका पति संजीव ही क्यों न हो, प्रत्येक को रजनी की ईर्ष्या की आग में जलना पड़ता है। रजनी द्वारा अपने पति को कहे गए यह शब्द, “मैं तुम्हें खुलेआम कहती हूँ, जाओ अपनी भाभी के पास।”(नौं दिशाएँ 44) एक औरत दूसरी औरत की किस तरह दुश्मन बन जाती है। यह हम रुकमणि के चरित्र से भली भाँति समझ सकते हैं। अपने बेटे को अपनी ही बहू के विरुद्ध करने के लिए वह कहती है, “बेटा रात को तुम्हारी पत्नी चोरी-चुपके दूध पीती है, वह भी रूह अफज़ा डालकर।” (नौं दिशाएँ 42) यदि रुकमणि की बात का गहन अध्ययन किया जाए तो इस से एक बात सामने यह आती है कि एक तो उसकी बहू बीमार है और यदि उसने दूध पी भी लिया तो इससे क्या हो गया? रुकमणि एक माँ है और एक माँ को चाहिए यदि कोई गलती करता है तो उसे उचित मार्ग दिखाए, लेकिन अपने अहम के वश में होने के कारण रुकमणि स्वयं ही अनुचित मार्ग पर चल रही है। वह दूसरों को सही रास्ता कहाँ से दिखाएगी। जब उसने देखा कि उसका बेटा संजीव अपनी बीवी की बात का समर्थन कर रहा है तो रुकमणि तिलमिला उठती है और अपने बेटे के कान भरते हुए कहती है, “वाह बच्चू, तुम भी अपनी बीवी की वकालत पर उतर आए।”(नौं दिशाएँ 43) जब व्यक्ति की सोच पर अहम का प्रभाव पड़ जाता है

तो वह अपनी बात को सिद्ध और सही करने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। रुकमणि ने भी अपनी बात को सही ठहराने के लिए झुठ का सहारा लिया। जब मनुष्य में मैं शब्द का प्रसार अधिक मात्रा में होने लगता है तो वह किसी की भी बात को सुनने को तैयार नहीं होता। वह सिर्फ अपनी बात को ही सर्वोपरि मानता है। रुकमणि और रजनी में किसी बात को लेकर तर्क-वितर्क होने लगता है। रजनी कहती है कि यदि डॉक्टर नहीं होता तो मैं कभी भी इस घर में नहीं आती। डॉक्टर के कहने पर ही मैं इस घर में आई हूँ। रुकमणि यह सुनते ही भड़क जाती है और कहती है, "याद रखना डॉक्टर हमारे रिश्तेदार हैं, तुम्हारे नहीं। जरूरत पड़ी तो वह हमारा साथ देगा, तुम्हारा नहीं।"(नौं दिशाएँ 59) रजनी को अपनी सास रुकमणि की किसी बात पर गुस्सा आ जाता है और उसका अहम क्रोध में परिवर्तित हो जाता है। वह अपनी सास को कहती है, "सारा दिन घर में बैठकर खाने और खाट तोड़ने के सिवा काम ही क्या हैं।"(नौं दिशाएँ 74) जब रजनी के अहम को चोट लगती है तो वह तिलमिला उठती है और कहती है, "यह संस्कारों का भाषण मुझे मत दीजिए कि संस्कार किस चिड़िया का नाम है?" (नौं दिशाएँ 74) रजनी अपनी पति संजीव का आदर तो क्या उस से ठीक ढँग से बात भी नहीं करती। रजनी द्वारा अपने पति को कहे गए यह शब्द, "ज्यादा बक-बक करने की ज़रूरत नहीं है।"(नौं दिशाएँ 74) उसकी घटिया मानसिकता तथा उसके निम्न स्तर के नैतिक आचरण को प्रस्तुत करते हैं। उसे भी कदापि यह पसंद नहीं था कि उसका पति संजीव अपनी भाभी की तारीफ करे। अपनी ननद की तारीफ सुनकर रजनी के अहम पर गहरी चोट लगती है और वह अपने पति से कहती है जाओ अपनी भाभी के पास। वही तुम्हें मालपूए बनाकर खिलाएगी। मुझे तो कुछ बनाना नहीं आता। इतना कहने पर भी जब उसके अहम की अग्नि शान्त नहीं होती तो वह उच्च स्वर में कहती है, "अरे उसकी औकात ही क्या है ? मेरी जूती के बराबर भी नहीं है।"(नौं दिशाएँ 75) आधुनिकता आने से नारी स्वतंत्र हो गई है। इसके साथ- साथ शिक्षा के प्रसार ने उसे और भी स्वतंत्र कर दिया है। उसे आज अपने अधिकारों की

पहचान है। शिक्षा तो मनुष्य को एक नैतिक मार्ग दिखाती है। उसमे धैर्य, विश्वास, सहनशीलता आदि गुणों का विकास करती है। लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने अहम के लिएशिक्षा को माध्यम बनाते हैं। जो सर्वदा गलत है। रजनी भी पढ़ी लिखी है। वह जानती है कि एक औरत के क्या-क्या अधिकार होते हैं। शिक्षा को अपने अहम का माध्यम बनाती हुई वह संजीव से कहती है, "गाँव की गँवार औरत नहीं हूँ, जो तुम्हारे पाँव की जूती बनकर रहूँगी। दहेज के केस में सबकों जेल की सलाखों के पीछे नहीं किया, वर्ना सब लोग वहाँ बैठकर चक्की पीस रहे होते।" (नौं दिशाएँ 76) ईगो के कारण ही व्यक्ति दूसरे को नीचा दिखाता है। अपने आप को सिद्ध करने के लिए वह अपशब्द बोलता है, नकारात्मक कार्यों की सहायता लेता है। दाम्पत्य जीवन में प्रेम का होना अति आवश्यक है। खेद की बात है कि जिस नारी-पुरुष में अहम की प्रधानता है। वहाँ दाम्पत्य जीवन नष्ट हो जाता है। अपने असामान्य व्यवहार के कारण रजनी अपनी जुबान पर नियंत्रण नहीं कर पाती तथा अहम से भरे शब्दों से संजीव को कहती है, "अगर तुम सोचते हो कि मैं तुम्हें तलाक दे दूँगी, तो तुम बहुत बड़ी गलतफहमी में जी रहे हो। यही मरोगे मेरी चौख्ट पर, कहीं मरने भी नहीं दूँगी।" (नौं दिशाएँ 78) जो नारी अपनी पति से इस प्रकार का व्यवहार करती है। उसे कदम-कदम पर अपशब्द और धमकियाँ देती है। उसकी मानसिकता को भली प्रकार से देखा जा सकता है। रजनी और संजीव दोनों पति-पत्नी होने के बावजूद भी एक दूसरे से अलग थे। डॉक्टर भी अन्त में रजनी से कहता है, "भाभी जी, बुरा मत मानना, जिद्द तो आप दोनों में थी। ईगो से आप दोनो ही भरे हुए थे।" (नौं दिशाएँ 89) डॉक्टर के कहने का अर्थ यह है कि जब तक पति-पत्नी में अहम नष्ट नहीं होता तब तक वह एक अन्जान दिशा में ही भटकते रहेंगे। रजनी को जब अपनी सास की बातों पर बहुत क्रोध आ जाता है तो वह आग बबूला होकर कहती है, "यह संस्कारों का भाषण मुझे मत दीजिए कि संस्कार किस चिड़िया का नाम है ? बात तू-तू, मैं-मैं से शुरू हुई थी, गाली गलोच पर उतर आई।"(नौं दिशाएँ 90) यह स्वाभाविक है, जब व्यक्ति अपने क्रोध की सीमा पार कर

लेता है तो उसकी वाणी विगड़ जाती है और वह छोटा-बड़ा कुछ नहीं देखता। क्रोध व्यक्ति में अहम को जन्म देता है। सहनशीलता, धैर्य, विन्रमता जैसे सदगुणों के बारे में वह कभी सोच भी नहीं सकता। इसलिए वह किसी के आगे झुकता भी नहीं है चाहे कुछ भी हो जाए। ऐसी ही आदत रजनी में भी थी। क्योंकि वह क्रोध के आवेश में सदैव रहती थी। एक दिन घर में चायपत्ती खत्म हो जाने पर संजीव अपनी पत्नी रजनी को पड़ोसियों से माँग लाने के लिए कहता है। उसी समय अहम से ग्रस्ति रजनी बहुत ऊँचे स्वर में कहती है, "मैं किसी के आगे हाथ फैलाने नहीं जाऊँगी।" (नौं दिशाएँ 92) संजीव सब कुछ भूलकर रजनी को अपनी वैवाहिक वर्षगाँठ पर कार्ड देता है ताकि उनमें प्रेम बना रहे। लेकिन रजनी अपने अहम तथा क्रोध के कारण संजीव को कहती है, "यह उपदेश देने की मुझे कोई ज़रूरत नहीं है। तुम्हारे तो सारे खानदान की यही आदत है।"(नौं दिशाएँ 92) क्रोध की आग व्यक्ति को पल-पल जलाती है। दूसरा चाहे उसके हित की बात ही क्यों न कर रहा हो लेकिन क्रोध की अग्नि में अन्धा व्यक्ति स्वयं ही अपना अहित कर बैठता है। क्रोध जब व्यक्ति पर सवार होता है तो व्यक्ति सिर्फ क्रोधित नहीं होता बल्कि संदेह की आदत भी उसमें आ जाती है जिसके कारण उसका मानसिक संतुलन असंतुलित हो जाता है।

अनीता देसाई के पहले उपन्यास की पात्र माया शुरू में अपने कुत्ते की मौत को सहन नहीं कर पा रही क्योंकि वह उससे बहुत ज्यादा प्यार करती थी। जब वह टोटो के मृत शरीर को देखती है, "screamed and rushed to the garden top to wash the vision from her eyes, continued to cry and ran, defeated, into the house." (Cry, the Peacock 5) उसकी मौत और गौतम का उसके प्रति व्यवहार उसको अलगाव और उसके बचपन की यादों की तरफ ले जाता है जहाँ वह बहुत ही खुश थी, "like a toy, especially made for me, painted into my favorite colors, set moving to my favorite tunes. (Cry, the Peacock 36) माया जब अपने पिता के साथ सुबह का नाश्ता करती है, वह भी उसे याद आता है,

> she enjoyed the sumptuous fare of the fantasies of the Arabian Nights, the glories and bravado of Indian mythology, long and astounding tales of princes and regal queens, jackal and tigers, and, being my father's daughter, of the lovely English and Irish fairy tales as well… (Cry, the Peacock 43)

माया अपनी काल्पनिक और आरामदायक दुनिया के ख्यालों में ही रहती है जो उसके अपने बचपन में बिताया होता है, "Which grew steadily more restricted, unnatural even." (Cry, the Peacock 89) परन्तु उसके जीवन की असलीयत कुछ और ही थी जो एक भयानक स्थिति पैदा करती और उसके दुखों का कारण बनता है,

> Its presence was very real and truly physical-shadows cast by trees, split across the leaves and grass towards me, with horrifying swiftness…I leapt from my chair in terror, overcome by a sensation of snakes coiling and unlocking their moist lengths about me, of evil descending from an overhanging branch, of an insane death, unprepared for, heralded by deafening drum beats. (Cry, the Peacock 12-13)

माया प्रकृति से बहुत प्रेम करती है और उसे हर एक पौधे-फूल के बारे में पता है। वह हमेशा से ही प्रकृति की गोद में माँ की गोद सा सुख महसूस करती है,

> A sense of all good things coming to an end and only the long, weary summer to look forward to…a Sunday evening sense that proceeds each tedious Monday. (Cry, the Peacock 19)

माया को एक डरावना सपना आता है और इसके बारे में वह अपने दोस्तों को बताती है परन्तु उसके मन को कहीं भी शाँति नहीं मिलती। दोनों के दार्शनिक भावों में भी बहुत अन्तर है। गौतम भागवत गीता की शिक्षाओं के बारे में बताता है,

> Life is a tale to you still. What have you learnt of realities ? The realities of common human existence, not love and romance, but living and dying and working, all that constitutes life for the ordinary man. (Cry, the Peacock 15)

परन्तु माया अपने काल्पनिक ख्यालों की दुनिया में बहुत ही खुश रहती है। वह गौतम को कहती है कि,

> I don't care to detach myself into any other world than this. It isn't boring for me...the world is full-full, Gautama. Do you know what that means? I am not bored with it that I should need to hunt another one! (Cry, the Peacock 117-118)

देसाई के इस उपन्यास में माया अपनी असलीयत की ज़िन्दगी के साथ सामन्जसय करने में असमर्थ रहती है और अपने पति को मारने के बाद ऐसा महसूस करती है जैसे उसने अपने बचपन को बचा लिया हो। देसाई की सभी नारी पात्र चाहे वह लड़की हो या औरत सब नारी मनोविज्ञान से ही ग्रस्ति हैं। अनीता देसाई का Voices in the City उपन्यास तीन भागों में विभक्त है- निरोद, मनीषा, अमला और माता। यह उपन्यास कलकता शहर के बारे में और वहाँ रहने वाले लोगों के मनोविज्ञान पर आधारित है। इसमें हम देखते हैं कि दो व्यक्तियों के बीच असलीयत और विश्वास को लेकर मतभेद हैं। मनीषा पात्र किसी से बातचीत न करने की वजह से अपने आप को अँधेरे बन्द कमरे में बन्द रखती है और दूसरी तरफ वह अपने पति जीवन को समझने की असमर्थत्ता से झूझती है। यही उसके अलगाव और परेशानियों का कारण बनता है और वह जीवन की असलीयत का सामना करने में असमर्थ है। वह अपनी ज़िन्दगी बिना भावनाओं और प्रेम से गुज़ारती है। वह ऐसा महसूस करती है कि जैसे कोई चक्रवात में फँस गई हो और इसी बीच उसके ऊपर चोरी का इल्ज़ाम लग जाता है जिसमें उसका पति जीवन भी उसपर विश्वास नहीं करता। इसी दोष से मुक्ति पाने के लिएवह अपने आप को आग से जला कर आत्महत्या कर लेती है।

अमला, मनीषा की छोटी बहन भी कलकता शहर के महौल को देखकर आचँबित थी। उसे वहाँ एक अधेड़ आयु के पुरुष धर्म के साथ पहली नज़र का प्रेम हो जाता है और वह अपने आप में बदलाव सा महसूस करती है,

> ...Chivalrous, tender, subtle and prophetic...she felt herself being torn, torn with excruciating slowness and without anesthesia, from the Amla of a day, an afternoon ago. (Voices in the City 188, 186)

इस रिश्ते को मनीषा, निरोद और चाची लीला सहमती नहीं देते है परन्तु अमला किसी की बात मानने को तैयार नहीं होती क्योंकि धर्म और अमला एक दूसरे से प्रभावित है,

> What the subconscious does to an impressionable creature, how much more power it has on them than sun and circumstances put together. (Voices in the City 223)

एक दूसरे के लिए इतनी समझ और प्रेम होने के बाद भी कुछ था जो उन्हें खुश नहीं रहने दे पा रहा था। वह सब का विरोध करके धर्म के साथ रहने तो लग गई थी परन्तु ऐसे रिश्तों को समाज में मान्यता नहीं मिल पाती। लेकिन दोनों एक दूसरे के सामने तो इसकी प्रवाह नहीं करते किन्तु अन्दर ही अन्दर यह बात दोनों के लिएपरेशानी का कारण है। धर्म एक ऐसी तस्वीर बनाता है जिसमे वह अमला को अपने सपनों में दर्शाता है लेकिन यह उनकी परेशानी की मुक्ति नहीं कर सकता। आगे चलकर अमला को धर्म की पुत्री और परिवार के बारे में पता चलता है जो दूसरे शहर में रह रहा होता है। इसके बाद अमला यह फैसला करती है कि वह उसको अकेला छोड़ देगी। जैसे कि ऊषा बन्दे कहती हैं,

> love, which could be an active force in their minds, has a different effect, as it is not love. What their conscious minds construe as love is an illusion, created unconsciously, though, to relieve them of their isolation. (Bande 109)

दूसरी तरफ निरोद भी ज़िन्दगी की असलीयत से भागने की कोशिश करता है। वह अपनी माँ के मेजर चड्ढा के साथ सम्बन्धों को लेकर परेशान रहता है और सब कुछ भूल जाना चाहता है। वह अपनी माँ के साथ भी कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता, "It was sinking his teeth through a sweet mulberry to bite into a caterpillar's entrails." (Voices in the City 37) वह अपने भूत से भागना चाहता है और इसी कारण वह अपनी नौकरी में व्यस्त रहता है। उसकी माँ उसकी माली सहायता करने के लिए कहती है लेकिन वह गुस्से से भर जाता है, "Raising himself on an elbow which shakes and trembles with the pressure of his shrunken body, he speaks with ferocity." (Voices in the City 134) निरोद केवल अपनी माँ से नाराज़ है और इसके बारे में अमला को कहता है और उससे प्रश्न पूछता है,

> Ask her about the love that made her swallow father whole, like a cobra swallows a fat, petrified rat, then spews him out in one flabby yellow mess. (Voices in the City 190)

अमला को निरोद की यह बातें अच्छी नहीं लगती कि निरोद उससे यह सब पूछ रहा है, "What do you know of mother ? Or her relationship with father? What do you know of Major Chadha?" (Voices in the City 191) वह निरोद को कहती है कि यह अपनी कल्पनाओं की दुनिया से बाहर आकर असलीयत की ज़िन्दगी में जीओ और यह तुम ही हो जो ऐसा सोच रहे हो, "It is you, it is you who are depraved, who makes love into something ugly and degenerate." (Voices in the City 191) अन्त में मनीषा की मृत्यु के बाद निरोद अमला से कहता है,

> She is not merely good, she is not merely evil, she is good and she is evil. She is our knowledge and our ignorance, she is everything to which we are attached, and she is everything from which we will always be detached. She is reality and illusion, she is the world and she is Maya. (Voices in the City 256)

निरोद अपनी माँ को देवी माँ काली के रूप में बताता है और भ्रम की उलझनों से झूझता रहता है। देसाई के अगले उपन्यास In Custody में देवन और नूर के बारे में है जो कि उर्दू का कवि है लेकिन अपनी असलीयत की ज़िन्दगी से दूर रहता है जीवन की सच्चाईयों से दूर,

> He had not found a way to reconcile the meanness of his physical existence with the purity and immensity of his literary yearning. (In Custody 26)

देवन की कविताओं में सच्चाई के बाहर की ही ज़िन्दगी के बारे में दिखाई पड़ता है,

> That, he saw, was the glory of the poets that they could distance events and emotions, place them where perspective made it possible to view things clearly and calmly. He realized that he loved poetry not because it made things immediate but it removed them to a position where they become bearable." (In Custody 54)

देवन के लिए कविता एक मनोरंजन है। जब मुराद उसको कविता में कुछ खास आँकड़े के बारे में कहता है, तब यह दिखाई पड़ता है, "a glow creep through him at the thought of writing." (In Custody 16) देवन एक कवि की निजी और सामाजिक ज़िन्दगी के बारे में सोचकर हैरान होता है, "how, out of all this hubbub, the poet drew the threads and wove his poetry of philosophy." (In Custody 52) देवन कवि की निजी जीवन के बारे में सोचता है कि ऐसे भी कोई कवि अपनी कल्पनाओं की दुनिया के बाहर ज़िन्दगी जीता है,

> Pictured him living either surrounded by elderly, sage and dignified literatures or else entirely alone, in divine isolation. What else are these clowns and jokers and jugglers doing around him or him with them? (In Custody 51)

कवि नूर को मिलने के बाद और जीवन की सच्चाईयों के बारे में जानने के बाद देवन को असलीयत का पता चलता लेकिन वह फिर भी ऐसी सच्चाईयों को अपनाने में झिझकता क्योंकि वह उससी संसार में रहना पसंद करता है। यह सब बातें उसको रात भर तक सोने नहीं देती क्योंकि वह यकीन नहीं कर पाता कि वह किस तरह भ्रम के जाल में फँसा हुआ था फिर वह सोचता है कि सिर्फ वह ही नहीं नूर कवि भी ऐसे ही जाल के भवँडर में फँसा हुआ है,

> The unexpected friendship had given him the illusion that the doors of the trap had opened and he could escape, after all, into a wider world that lay outside but a closer familiarity with the poet had shown him that what he thought of as the 'wider world' was an illusion too it was only a kind of zoo in which he would not hope to find freedom. He would only blunder into another cage, inhabited by some other trapped animal. (In Custody 131)

आखिर में देवन को सब समझ आता है और फिर वह आगे बढ़ने की कोशिश करता है। अपनी ज़िन्दगी को नए सिरे से शुरू करता है।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में नारी समस्याएँ:

बीसवीं शताब्दी में नारी के बीच भी शिक्षा के प्रसार प्रचार से नारी में चेतना आई और उनकी एक अलग सोच विकसित होने लगी। नारी ने पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ फेंकने का प्रयास करना आरम्भ कर दिया था। जब भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। पुरानी परम्पराओं को नकारा जा रहा था और नए मूल्य विकसित हो रहे थे। जब समाज के हर क्षेत्र में परिवर्तन आ रहा था तब नारी जीवन भी इस प्रक्रिया से अछूता नहीं रहा। नारी ने भी अपनी स्थिति के सन्दर्भ में गम्भीरतापूर्वक विचार करना शुरू कर दिया। जहाँ उसने एक ओर रूढ़ियों को नकारा वहीं दूसरी ओर नई सोच के अनुसार अपने को ढालने का कार्य भी शुरू कर दिया।

समाज में जब परम्पराओं और रूढ़ियों को नकारने का प्रयास किया जाता है तो सदैव ही इस प्रयास का विरोध होता है।

शोषण की समस्या

पुरातन समाज से लेकर आज तक वर्ण व्यवस्था शोषण का प्रमुख आधार रही है। वर्ण-व्यवस्था के नाम पर जितना शोषण भारत में हुआ है शायद विश्व के किसी अन्य देश में न हुआ हो। समाज की दोयम दर्जे की नागारिक होने के कारण नारी इस प्रथा से सर्वाधिक पीड़ित रही है। मनु आदि ने पुरुष को तो अनुलोम विवाह के नाम पर अपने वर्ण से नीचे वर्ण की स्थिति में विवाह का अधिकार दिया हुआ था, लेकिन नारी के लिए प्रतिलोम विवाह का निषेध करके उसके नीचे वर्ण के पुरुष के साथ विवाह पर रोक लगा दी। इसके बावजूद यदि किसी नारी ने ऐसा करने का दुःसाहस किया तो उससे उत्पन्न संतान को चांडाल की संज्ञा देकर समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। समज में प्रचलित विवाह एक ऐसी प्रथा है जिसने पुरुष को नारी पर अत्याचार के अनेक अवसर उपलब्ध कराए हैं। विवाह वह संस्था है जिसके द्वारा नारी का सर्वाधिक शारीरिक, मानसिक शोषण हुआ है। विवाह ने नारी को पुरुष की पराधीन बनाने का काम बखूबी किया है। अज्ञेय ने अपने उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' में शशि के पति और परिवारजनों द्वारा किए जा रहे शारिरिक और मानसिक शोषण का उल्लेख किया है। एक दिन शेखर बहुत परेशान होकर आत्मघात करने की सोचता है तब शशि उसे सांत्वना देने के लिएउस रात उसके घर रुक जाती है। जब वह दूसरे दिन वापस अपने पति के घर जाती है तो उसका पति रामेशचन्द्र उसे मारकर घर से निकाल देता है, "रामेशचन्द्र झटक कर आगे बढ़ता है और चट्टी पहने हुए पैर की भरपूर ठोकर शशि की पीठ पर पड़ती है।" (शेखर: एक जीवनी भाग दो 188) रामेशचन्द्र को शेखर और शशि के सम्बन्धों पर संदेह है। रामेशचन्द्र उस पुरुष समाज का प्रतिनिधि है जो स्वयं चाहे कुछ भी करे लेकिन नारी को सती-सावित्री के आदर्श रूप में देखना चाहता है। पारिवारिक जीवन में नारी पर जो अत्याचार लिए जाते हैं उसका परिचय शेखर को

शशि की स्थिति से मिलता है। रामेशचन्द्र के व्यंग और शशि के हठात मौन ने पहली मुलाकात में ही शशि की यातना को उजागर कर दिया था। उसके और शशि के सम्बन्ध जिनमें परस्पर विश्वास की पवित्रता थी, अविश्वास की दृष्टि से देखा गया। शशि का पति ही नहीं सास और ससुर भी शेखर के साथ उसके सम्बन्धों को लेकर उस पर लाँछन लगाते हैं। जब शेखर शशि के सम्बन्ध में बात करने रामेशचन्द्र के पास जाता है तो रामेशचन्द्र के माता-पिता शेखर के साथ भी दुर्व्यवहार करते हैं। वे शशि और शेखर के सम्बन्धों पर अँगुली उठाते हैं, "बेहया पैरवी करने आया है- तेरे पास गई थी, निकल जाओ मेरे घर से- तुम्हारी क्या लगती थी वो।" (शेखर: एक जीवनी भाग दो 179) इस वक्तव्य में समाज की वह सोच प्रतिबिम्बित होती है जो नारी-पुरुष के सम्बन्ध को समाज द्वारा निर्धारित नाते-रिश्तों के दायरे में ही देख सकता है। समाज द्वारा स्वीकृत सम्बन्ध के अतिरिक्त कोई और सम्बन्ध नारी पुरुष के बीच नहीं हो सकता है। पुरुष ने नारी को भोग की वस्तु मात्र समझा है। समाज में प्रचलित यह सामान्य प्रवृत्ति है कि यदि पुरुष में कोई कमी हो तो उसे दबाया-छुपाया जाता है। लेकिन नारी की कमी को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाता है पुरुष द्वारा किए जा रहे शोषण को पुरुषोचित माना जाता है। नारी पुरुष के व्यवहार की कोई शिकायत नहीं कर सकती। पति चाहे जैसा भी हो पत्नी उसे सर्वगुण सम्पन्न ही चाहिए। साथ ही वह पति की अनुगामिनी, उसकी दासी और उसकी प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करने वाली हो। विवाह के बँधन ने नारी की स्थिति को भोग्या बनाने में अपना योगदान दिया है। अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' में हेमेन्द्र रेखा से विवाह करता है पर उसे मानसिक यातना देता है उसकी दृष्टि में नारी एक वस्तु मात्र है जिसके साथ वह चाहे जो भी खेल खेल सकता है, क्योंकि वैवाहिक सम्बन्ध उसे इसकी छूट देता है।

देसाई की नारी पात्र आम तौर पर दर्दनाक परिस्थितियों के जाल में पड़ जाते हैं, उनके उपन्यासों में समस्या, सामन्जसय सम्बन्ध में समायोजन की कठिनाई, और परिस्थितियों के लिए समग्र दृष्टिकोण बनाया है। अनीता देसाई की मुख्य चिन्ताएँ

नफरत, प्यार, स्नेह, अवसाद और एकांत है। कई शताब्दियों की पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था में नारी के समुदायों को हमेशा पुरुषों के लिए सहायक माना जाता है। पुरुष वर्चस्व वाले बुर्जुआ समाज में समाहित समुदाय को उनके जीवन के सभी क्षेत्रों में 'अपमानित', 'पीड़ित', 'चुप्पी' और 'अत्याचार' सामाजिक और आर्थिक रूप से वास्तव में बोलते हुए किया गया है। आधुनिकीकरण आयु में नारी ने अपनी आँखों से ब्रह्मांड को देखना शुरू किया वह भी पुरुष की नज़र से नहीं। भारत में मातृ संघर्ष के साथ पितृसत्ता के खिलाफ एक अन्य आंतरिक क्रांति ने साहित्य में विशेष रूप से नारी के लेखन को प्रकट करना शुरू कर दिया। इस शोध का उद्देश्य गम्भीर रूप से जाँच करना है कि कैसे आधुनिक युग के अँग्रेजी में भारतीय नारी लेखकों ने नारी के प्रश्नों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने एक ज्वलंत आवाज उठाई है और मानव अधिकारों को प्राप्त करने के लिएपारम्परिक क्रम, व्यवस्था और लिंग भेदभाव के खिलाफ आंतरिक क्रांति की शुरूआत की है। अँग्रेजी में लिखने वाले सबसे प्रसिद्ध भारतीय लेखकों में अनीता देसाई के उपन्यास हैं। इस शोधकार्य में देसाई के आधुनिक नारीवादी आदर्शों को दर्शाया गया है। 'माया' आधुनिक नारीवाद के प्रतिनिधि के रूप का पहला पात्र है। अनीता देसाई ने पुरुष नायक के नायिका माया के माध्यम से आधुनिक युग के भीतर की सच्चाई को अनावरण करने का प्रयास किया है भारतीय बुर्जुआ समाज की उपेक्षित, पीड़ा, नारी को जागृत करने के लिएपुरुष प्रभुत्व वाले समाज में माया अपने परिवार, पति-गौतम के साथ समायोजित करने में सक्षम नहीं हो पाती। माया के माध्यम से देसाई ने मनोवैज्ञानिक संघर्षों, पीड़ाओं और अलगाववादों का पर्दाफाश करना चाहा है। इसी कारण नायिका का असामान्य उपचार और व्यवहार, भयावह भय, पागल लक्षण और आत्मघाती अधिनियम का नतीजा पर पहुँच जाती है। इसी के माध्यम से उपन्यास में देसाई भय, दुःख, एकाँत, भीतर की उदासीनता पर केन्द्रित है। भारत के आधुनिक नारीवाद की आशावाद को दबा दिया गया। भारतीय वैवाहिक विवाद और अकेलेपन

के मुख्य कारण अनमेल विवाह, आयु-अन्तर में नारी, परिपक्वता में अन्तर, पति और पत्नी के बीच अलगाव का मानसिक सम्बन्ध है। भारतीय नारी समुदाय की मानसिकता यह है कि उन्हें कमजोर होना चाहिए। माया अपने पिता के साथ एक गहरा स्नेही सम्बन्ध रखती है और शादी में माता-पिता के घर छोड़ने के लिएदुखी है। उसकी अनदेखी मानसिक पीड़ाएँ और उनकी माँ की मृत्यु की वजह से उठने वाली विपत्तियाँ उन्हें बाहरी दुनिया से अलग कर देती हैं। महत्वाकाँक्षाओं और उम्मीदों की वह शादीशुदा ज़िन्दगी में पूर्णरूप में सफल नहीं हुई है और नतीजतन उनका सम्बन्ध विषेद हो जाता है इसी वजह से वह मानसिक रूप से परेशान हो जाती है। इस प्रकार माया को अति अतिसंवेदनशील आकृति के रूप में उजागर किया गया है। देसाई एक उन्मादपूर्ण और न्यूरटेटिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था से निपटने में नाकाम हो जाती है, जहाँ वह चुपचाप और असहाय व्यक्ति तरह विद्रोह करती है। ऐसा लगता है कि माया प्रकृतिक सत्य और यथार्थवादी मुद्दों को स्वीकार करने में विफलता होती है। वह एक पलायनवादी पथ पर चलने लगती है और 'प्रकृति का बच्चा' बन जाती है जिसमें वह यथार्थवादी वातावरण और परिदृश्य में शोक का पता लगाने की कोशिश करती है। वह पक्षियों, जानवरों और अन्तरिक्ष के साथ मिश्रित होकर भी कुछ चीजों से छुटकारा नहीं पाती है। पारम्परिक और पारम्परिक मानकों और सिद्धान्तों से माया को अलग-अलग माना जा सकता है। दरअसल वह गौतम के मध्यवर्गीय परिवार में एक आदर्श पत्नी की आदर्शवादी भावना का समर्थन नहीं करती। अपने पति पर उनकी आर्थिक निर्भरता उसे असुरक्षा, असहाय और शक्तिहीन महसूस करती है क्योंकि वह खुद को शासक की नज़र पर शासन के रूप में मानती है। उपन्यासकार माया को एकमात्र आधुनिकतावादी नारी के रूप में ध्यान केंद्रित करना चाहती है। जिससे वह अपने एकान्त जीवन के द्वार के लोहे को उखाड़ने को तैयार हो जाएँ। माया एक शुद्ध दुनिया की खोज करना चाहती है जहाँ वह पुरुष और नारी के बीच कोई फर्क न होने के बावजूद इक्कठे रहे। गौतम और माया के बीच वैवाहिक विवाद

चलता है। यह उपन्यास की दयनीय नारी की भावनाओं पर अधारित है जिसे उसका पति समझने में असमर्थ है।

खुद को मोर के साथ अत्याधिक आनन्द, संघर्ष, प्यार और स्नेह के उसके भयानक आंतरिक अनुभवों के परमानंद के साथ प्रकट करते हैं। हमें उसके क्रूर अतीत और ज्योतिषी अल्बिनों के विरोधाभास के बारे में बताया गया है, जिन्होंने कभी उससे भविष्यवाणी की थी कि या तो वह या उसके पति अपने वैवाहिक जीवन के चार वर्षों में समय से पहले ही मर जाएँगे। इस भविष्यवाणी की वजह से चिंता का समय कम हो गया था लेकिन उनके पालतू कुत्ते टोटो की मृत्यु के साथ इन सभी अप्रत्याशित घटनाओं और अप्रिय यादें अक्सर उसका पीछा नहीं छोड़ती थी। अपने बचपन के अतीत की क्रूरता, मृत्यु का निरंतर डर, उसका प्रतिगमन, ये सभी अल्बिनों ज्योतिषी के शब्दों से निकटता से सम्बन्धित हैं। यह भी एक कारण है कि वह अपनी ज़िन्दगी में अलगाव झेलती है क्योंकि उसका मानना है कि ज्योतिषी की बातें उसके जीवन में सच हो रही हैं।

यह कहा जा सकता है कि माया के अस्तित्व की कहानी तथ्य के तीन गुना पैटर्नों में से एक है- धीरे-धीरे वंचित, अलगाव और उन्मूलन धीरे-धीरे। सबसे पहले, माया को भाई-बहन के साथ-साथ माता-पिता की देखभाल और स्नेह से वंचित किया जाता है। दूसरे, वह अपने पिता के पति से विमुख हो जाती है और अन्त में, वह जीवन से उन्मूलन और पारिवारिक जिम्मेदारी और कर्तव्य से अपने स्वयं के बारे में लाती है। अनीता देसाई के 'क्रॉय, द पीकॉक' ने अपनी नारी नायक-माया की कड़ी मेहनत का वर्णन किया है, जो उस पुरुष के साथ विवाह कर रहे हैं, जो उस खंडित पहचान को महसूस करने में विफल रहते हैं। माया के मनोवैज्ञानिक दुःखों के बारे में माया का डर बढ़ जाता है। पति और पत्नी के बीच वहाँ एक भयानक संचार अन्तराल मौजूद है क्योंकि दोनों एक साथ होकर भी अलग-अलग रहते हैं। दूसरी तरफ माया भावनाओं से

एक निष्क्रिय नारी है। माया को अपने पति की उपस्थिति को एक प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखती है और उसकी मानसिक समस्या एक अस्तित्ववादी बन जाती है। गौतम की सहानुभूति और समझ की कमी पर माया को निराशा का एहसास नहीं है। वह अपनी चिंताओं में कभी भी कहती नहीं, लेकिन उसका पति हालात से निपटने में उसकी मदद करने की कोशिश करता है वह उसे शान्त करने में विफल रहता है क्योंकि वह बदलती नहीं है। उपन्यास 'क्रॉय, द पीकॉक' वैवाहिक विसंगति और दुखी वैवाहिक जीवन की धारणा को उजागर करता है।

नारी स्वतंत्रता की समस्या

अज्ञेय ने नारी स्वतंत्रता की समस्या को अपने उपन्यासों में उठाया है। पुरुष ने नारी पर अधिकार जमाने के लिए उसे हर प्रकार के अधिकार से वंचित रखा और उसकी स्वतंत्रता का दमन किया। स्वतंत्र व्यक्तित्त्व का विकास न होने देने के लिएउसने नारी पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से बँधन लगाए। समाज नारी को स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में नहीं देखता वह उसे पत्नी, माँ, बेटी आदि किसी न किसी रिश्ते के बँधन में देखना चाहता है। स्वतंत्र रूप में उसका कोई अस्तित्व नहीं है। यदि पुरुष समाज में स्वतंत्र रूप से रहना चाहता है तो उस पर कोई रोक नहीं है, लेकिन यदि कोई नारी ऐसा करती है तो समाज में उसे चरित्रहीन और उच्छृँखल प्रवृत्ति की माना जाता है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता और मूल्यवत्ता अज्ञेय के लिए अहम मसले हैं। वे प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्र व्यक्ति मानते हैं और नारी की स्वतंत्रता का सम्मान करते हैं। इस सीमा पर आकर वे समाज के बँधनों को नकार देते हैं। नारी और पुरुष दोनों को चयन की स्वतंत्रता होनी चाहिए। हमारे समाज की नीति इतनी दोहरी है कि वह पुरुष को चयन की स्वतंत्रता देती है, लेकिन नारी को इस अधिकार से सर्वथा से वंचित रखना चाहती है। जबकि एक स्वतंत्र व्यक्तित्त्व होने के नाते वरण का अधिकार नारी को भी मिलना चाहिए। इसी कारण अज्ञेय के उपन्यासों की नायिकाएँ शशि, रेखा, गौरा

अपनी इच्छानुसार अपना जीवन जीने का फैसला करती हैं। 'अपने-अपने अजनबी' की योके तो मृत्यु के लिए भी वरण का अधिकार चाहती है। उसकी इच्छा थी कि वह किसी अच्छे आदमी के पास मरे अन्त में वह जगन्ननाथ के पास मरती है। वह कहती है, "कह दो सारी दुनिया से कह दो, अन्त में मैं हारी नहीं- अन्त में मैंने जो चाहा सो किया- मर्जी से किया। चुनकर किया।" (अपने-अपने अजनबी 116)

अज्ञेय मानते हैं अपना जीवन अपनी इच्छानुसार चुनने की स्वतंत्रता मिलनी ही चाहिए। उनके उपन्यासों की नायिकाएँ अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतित करना चाहती हैं और इसी कारण उन्हें समाज में कठिनाईयाँ उठानी पड़ती हैं। अज्ञेय ने अपने उपन्यास 'नदी के द्वीप' में नारी स्वतंत्रता की समस्या को उठाया है। इस सन्दर्भ में डॉ. ब्रह्मदेव मिश्र लिखते हैं,

> उपन्यास के प्रमुख पात्र वैयक्तिक चेतना से सम्पन्न हैं तथा उसकी समूची सेटिंग इस कला के साथ की गई है कि कहीं से औपन्यासिक सन्दर्भ अविश्वनीय न लगें। प्रेम जो कि वैयक्तिक सम्बन्धों तक सीमित होने के कारण सांस्कृतिक उत्थान के मुद्दों में बहुत अहम नहीं माना जाता, पर सर्वाधिक दवाब इसी पर पाए हैं। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के बनने के साथ ही काम भावना और उससे जुड़े प्रेम को निरन्तर नियमों और निषेधों में जकड़ने की प्रक्रिया शुरू हुई और कौमार्य को नारी के जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश बना दिया गया। उसके अस्तित्व को इस बिन्दु से जोड़कर इतना बौना कर दिया गया कि उसे आन्दोलन करने को विवश होना पड़ा। समकालीन आन्दोलनों पर गौर करें तो पाते हैं कि आज भी वह विविध अन्तर्विरोधों से जकड़ी हुई दीन-हीन ही है। जीवन में वरण का अधिकार व्यक्ति के अस्तित्व के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, किन्तु समाज ने नारी को यह अधिकार कभी नहीं दिया। रेखा और गौरा इसी

> वरण के अधिकार की माँग करती हैं। पुरुष को इसमें सहयोग करना होगा जैसा भुवन करता है। चन्द्रमाधव और हेमेन्द्र नहीं करते। उन्हें नारी की स्वतंत्रता में विश्वास नहीं। वे आधुनिक पुराण-पंथी हैं जो जर, जोरू और गुलाम को एक धरातल पर रखकर अपनी भोगवादी पितृसत्तात्मक संस्कृति का परिचय देते हैं। लेखक ने प्रेम प्रसंग के रूप में व्यक्तित्त्व, अस्तित्त्व और खासतौर से नारी स्वतंत्रता के गम्भीर तथा उलझे हुए मसले को उठाया है। जिस वर्ग में नारी के प्रति यह भोगवादी रुझान अधिक है 'नदी के द्वीप' की कथा उसी वर्ग के दायरे में चलती है। सम्भ्रांत होने का ठप्पा अपने चेहरे पर लगाए यह मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी समाज औरत के निजी अस्तित्व को स्वीकार करने के मामले में सदा दो- मुँहा रहा है। (अज्ञेय और उनका उपन्यास संसार 108)

अज्ञेय ने सामाजिक रूढ़ियों को नारी की स्वतंत्रता की राह में रुकावट माना है। 'शेखर एक जीवनी' की शशि सामाजिक रूढ़ियों के कारण अपने पति रामेशचन्द्र के अत्याचारों को सहती है। रामेशचन्द्र की दृष्टि में उसकी पत्नी की भावनाओं का कोई मूल्य नहीं है। उसके लिए पुरुष की इच्छानुसार चलना ही नारी का प्रमुख कर्तव्य माना गया है। 'नदी के द्वीप' की रेखा भी अपनी निजता की रक्षा के लिए भुवन के विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। वह कहती है,

> तुम समाज की दृष्टि से देखते हो, यह दृष्टि गलत नहीं है, अप्रासंगिक भी नहीं, निर्णायक भी वह नहीं है। व्यक्ति को दबाकर इस मामले में जो भी निर्णय होगा असहय होगा...मेरे कर्म का सामाजिक व्यवहार का नियमन समाज करे ठीक है। मेरे अन्तरंग जीवन का नहीं। वह मेरा है। यानि हर व्यक्ति का निजी। (नदी के द्वीप 102)

अज्ञेय नारी की आत्म स्वतंत्रता की चेतना का समर्थन करते हैं। इस ओर संकेत करते हुए डॉ. ब्रह्मदेव लिखते हैं कि,

> व्यक्ति के आत्म को कहीं न कहीं उपन्यासकार ने सबसे स्वतंत्र महसूस किया है। नारी शोषण के लंबे इतिहास में वह गौरा और रेखा जैसे नारी पात्रों का सृजन करने में कामयाब हुआ है जो हर कीमत पर आत्म स्वतंत्रता का चयन करते हैं। (अज्ञेय और उनका उपन्यास संसार 105)

अज्ञेय के उपन्यासों में नारी आत्म स्वतंत्रता का चयन करती हैं और अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का मुद्दा रखती हैं और यही कारण हैं कि अत्याचारों का शिकार होती हैं। अपने निजी जीवन के सम्बन्ध में भी स्वतंत्रता का अधिकार नारी को नहीं दिया जाता इस अधिकार की प्राप्ति के लिए उसे घर एवं बाहर हर जगह संघर्ष करना पड़ता है। विवाह नारी की स्वतंत्रता को सीमित करने का एक परम्परागत साधन है। जिसने नारी को कर्तव्यों के जाल में जकड़ कर पराधीन बना दिया। विवाह के साथ जितने भी कर्तव्य जुड़े हैं उनका निर्वाह करना नारी का धर्म माना जाता है। पत्नी भक्ति व्यंग्य लेकिन पति भक्ति गुण है। समाज में पतिव्रता के समान पत्नीव्रता की कोई अवधारणा नहीं है। पति के प्रति हर प्रकार का समर्पण नारी का धर्म माना जाता है। पुरुष के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। विवाह के पश्चात यदि किसी नारी का सम्बन्ध दूसरे पुरुष से हो जाता है तो उस नारी को चरित्रहीन माना जाता है और उसकी हर प्रकार से अवमानना की जाती है लेकिन इसके विपरीत यदि पुरुष का सम्बन्ध पर नारी से हो जाता है तो इसमें उसकी पत्नी या दूसरी नारी को दोष दिया जाता है। ये उपन्यासकार विवाह की रूढ़िबद्ध व्यवस्था का विरोध करते हैं और रिश्तों को ढोते रहने में विश्वास नहीं करते। दाम्पत्य जीवन में परस्पर मनमुटाव, तनाव एवं घुटन से त्राण पाने के लिए पति-पत्नी को तलाक मिलने के नए मूल्य विकसित हुए हैं। रिश्ते जब दोनों ओर से अर्थ खो दें तो उन्हें ढोते जाने में कोई तुक नहीं। अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' की रेखा भी पति हेमेन्द्र से तलाक लेती है और डॉक्टर रामेशचन्द्र से पुनर्विवाह करती है।

आकाश भले ही बुशरा की माँ को क्रूर और पत्थर दिल औरत मान ले, लेकिन फौजियों द्वारा दामाद को ले जाने पर वह भभक उठती है और एक अरसे के बाद

अमेरिकी फौजी के रूप में उसे देखकर भी उसकी ज़िन्दगी के लिएदुआ करती है। एलाइजा के फौज में भर्ती होने के पीछे खाड़ी युद्ध में हुई पति की मौत है। एक वात्सल्य बुशरा की माँ का है कि वह बेटी को सुहागिन देखना चाहती है। उसे उसके परिवार के साथ देखना चाहती है, दूसरा आकाश की माँ का है, कि वह स्वदेश लौटे बेटे के दोस्त से उसकी हर बात कुरेद-कुरेद कर पूछती है। बेटे के लौट आने पर उसका जीवन फिर से शुरू करवाना चाहती है। युद्ध ने इन पात्रों को बदहवासी, दहशत, मौत के साए और प्रदूषित हवा-पानी दिया है। युद्ध ने एलाइजा को पुरुष बना दिया है। अपने नारीगत अहसासों को जड़ से उखाड़ने के लिए उसने ऐसी-ऐसी दवाइयाँ खाई हैं कि शरीर की बनावट भीतर से पुरुष के समान हो गई है। हाथों में राइफल ले फौज की ट्रेनिंग लेते-लेते उसके अन्दर से औरत होने का एहसास ही जाता रहा है। इस औरत में मनोवैज्ञानिकों के अन्तर्मन की स्थिति नहीं मिलती, उसने दवाइयों से अपने अन्दर की औरत को खत्म कर दिया है। युद्ध की छाया तले जी रहे 'बसरा की गलियां' के नारी पात्रों का अध्ययन काव्यशानारीय परम्पराओं के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता। यहाँ तेल के कुंओं की सम्पन्नता ने औरतों के जीवन में विपन्नता भर दी है। अपनी सारी वेदना, विडम्बना के बावजूद ये पात्र देश और रागात्मकता में बँधे हैं।

नारी का दर्द, उसके मन की व्यथा-कथा का वर्णन अजय शर्मा के उपन्यासों में बखूबी दिखाई दिया है। एक नारी के लिए मर्द का सहारा इस दुनिया में जीने के लिए बेहद जरूरी है। 'खुली हुई खिड़की' की नायिका ललिता पूरी तरह पति पर निर्भर है। छोटे-से-छोटा काम करवाने के लिएभी उस पर निर्भर रहती है। पति की मृत्यु के पश्चात उसे जीवन काटना बेहद मुश्किल लगता है। "पता नहीं क्यों, आजकल मेरे मन में एक बोझ सा बना रहता है, कभी-कभी तो मैं डर जाती हूँ। कभी-कभी मुझे लगता है कि पहाड़ जैसी जिन्दगी कैसे कटेगी ?" (खुली हुई खिड़की 94) औरत का अस्तित्व अजय शर्मा के उपन्यासों में पूरी तरह बँधा है। जब तक पति जिन्दा था तो वह सज धज कर चहकी-महकी सी रहती थी। परन्तु अब

> चेहरा पीला पड़ चुका था। सफेद चुन्नी गले में लहराने की बजाय सिर पर बंधी रहती थी। हाथ की चुड़ियों की खन-खन के बिना सूने लग रहे थे, ठोडी के नीचे दो-तीन बाल उग आए थे। मैं उदास हो गई और अचानक फफक-फफक रोने लगी, रोते-रोते मेरा ध्यान उसकी तस्वीर पर गया तो मुझे लगा, सती प्रथा का रिवाज़ भी गलत नहीं था औरत का अस्तित्व तो मर्द से ही बँधा है। (खुली हुई खिड़की 95)

ललिता को सदैव लगता है कि उसे किसी के सहारे की जरूरत है। वह अकेलापन महसूस करती है। एक व्यक्ति के चले जाने से रिश्ते सब खत्म हो गए। उसे असुरक्षा महसूस होती है,

> ...मेरे चारों तरफ गहरा समुद्र है। लगता है कि मुझे किसी सहारे की जरूरत है, कोई मुझे किनारे लगा दे। लेकिन दूर-दूर तक कोई किनारा नज़र नहीं आ रहा और लगता है कि समुद्र से कोई मगरमच्छ निकल कर मेरी तरफ बढ़ रहा है और मुझे निगल जाना चाहता है। (खुली हुई खिड़की 96)

आज दुनिया में हर रिश्ता मतलब का है। जीते जी ही हर रिश्ता कायम है, मानो एक-दूसरे के बिना साँस नहीं लेते। मर मिटने को तत्पर है, परन्तु इधर इन्सान ने आँखें मूँदी, उधर मैं कौन तू कौन। ऐसी ही कुछ हालत नायिका की है,

> धीरे-धीरे रिश्तों के प्रति मेरा मोहभँग होने लगा। मुझे लगा कि एक ही इन्सान के ज़िन्दा रहने से सभी रिश्ते कायम हैं। सभी एक-दूसरे के साथ मिलकर एक कड़ी में बँधे हैं, जो मिलकर एक चेन का रूप धारण किए हुए हैं। अचानक एक कड़ी निकलने से चेन का वजूद खत्म हो जाता है। वैसे ही एक इन्सान के जाने से मेरा वजूद खत्म हो गया। हर रिश्ता मुझे बोझ लगने लगा है। मुझे लगता है कि हर रिश्ते की गरिमा कम हो गई है। (खुली हुई खिड़की 98)

'खुली हुई खिड़की' की अमिता को पँद्रह वर्ष के सामान्य गृहस्थ के बाद पति की मृत्यु सरकँडों के बियाबान में छोड़ जाती है। उसे जीवन में पहली बार अहसास होता है कि उसका अपना न कोई ससुराल में है और न मायके में। न जेठ को उसकी फिक्र है, न भाई को उसकी चिन्ता। वह जान जाती है अगर आप चाहते हैं कि रिश्तों का भ्रम कायम रहे तो इसके लिएजरूरी है कि आपका हाथ किसी के आगे मदद, कम से कम पैसों के लिए न उठे। इसलिए वह नौकरी का चुनाव करती है। यह चुनाव उसे जीवन पर छाये डिप्रेशन से मुक्ति दिलाता है, जीने-जूझने का सामर्थ्य देता है और सबसे बड़ी बात उसे वह आत्मविश्वास देता है जिसके लिएवह वर्षों से प्रयत्नशील थी, पर हर बार वह दसों अँगलियों से फिसल-फिसल जाता है। उपन्यासकार ने अमिता और बीजी के सन्दर्भ में अकेलेपन और शून्यताबोध का चित्रण किया है। पति की मृत्यु उसे इतना निःस्पन्द कर जाती है, मानो वह दीवार पर लगी बेजुबान तस्वीर हो। लगता है सती प्रथा का रिवाज़ गलत नहीं था। औरत का अस्तित्व ही मर्द से बँधा है। डिप्रेशन और ब्लड-प्रैशर की गोलियाँ जीवन का अभिन्न अंग बन जाती हैं। किन्तु धीरे-धीरे उसे इन सबसे थोड़ी-बहुत मुक्ति मिल जाती है। उसके पास बच्चे हैं। बच्चों का भविष्य बनाने का मकसद है। नौकरी है, पारिवारिक उत्तरदायित्व है। व्यर्थताबोध एवं फालतूपन का एहसास अमिता की सास, यानि बीजी के जीवन में गहरे तक उतरा है। वह विधवा, जिसका एक बेटा संसार छोड़ जाए और दूसरा घर-कहाँ रहे ? अर्थ और सामर्थ्य छूट जाने पर तो व्यक्ति वैसे भी फालतू हो जाता है। उसने बोल-कुबोल सुनना सीख लिया है, भले ही इसके लिएबहरेपन का ढोंग करना पड़े। वह जानती है कि उसकी मृत्यु की सभी को प्रतीक्षा है और वह जीने के लिएअभिशप्त है। उसके शव को पहनाने के लिए छोटी बहू ने कब से चाँदी के आभूषण बनवा कर रखे हुए हैं। बड़ी बहू टी.वी. समाचारों का हवाला देकर सुनाती है कि लोग महाकुम्भ में एक लाख बुजुर्ग छोड़ आए हैं। बीजी सब सुनती है, समझती है, किन्तु वह व्यर्थबोध झेलने को अभिशप्त है।

नायिका की संत्रास्त मनःस्थिति भी उपन्यास में आई है। अमिता को कभी थाना नं. दस से रात के समय अमन की दुर्घटना की सूचना मिली थी। तबसे वह रात

को फोन बन्द कर देती है, रिसीवर नीचे रख देती है, किन्तु बत्ती बन्द करके आँखें बन्द करते ही लगता है जैसे फोन की घंटी बज रही है। मन सदैव अनजाने भय से त्रस्त रहता है। इसलिए उसे हर रात इस संत्रास से मुक्ति पाने के लिए एक के बाद दूसरी नींद की गोली लेनी पड़तीं है। अमन की मृत्यु के वर्षों बाद भी डिप्रेशन की गोलियाँ चलती रहती हैं।

'खुली हुई खिड़की' भले ही फेमिनिस्ट रचना न हो, किन्तु बेटों के लिए तड़पने वाली, मन्नतें माँगने वाली माँओं ने समझ भी लिया है और जान भी लिया है कि रिश्तों के सूत्र में सबसे सशक्त रिश्ता मात्र माँ-बेटी का ही होता है। इसे डॉ. शर्मा ने तीन सन्दर्भों में लिया है। पिता की मृत्यु के पश्चात नन्हीं जसलीन ही माँ की दुआओं का ध्यान रखती है। अमिता की सास को बेटी की मृत्यु का दुःख इतना है कि हर वर्ष बेटी की याद में एक गमला लगाती है। यहाँ तक कि बेटे की मृत्यु के समय भी इन गमलों को पानी देना नहीं भूलती। वह प्रतिवर्ष अपने घर में तुलसी का विवाह रचाती है। उसका विश्वास है कि तुलसी-विवाह कन्यादान सा फल देता है। विधवा अमिता को जब मायके तथा ससुराल वाले सभी छोड़ जाते हैं, भूल जाते हैं- उसकी माँ हर तीसरे दिन आई रहती है। ऐसे अवसरों पर अमिता की सास सोचती है,

> काश हमारी भी कोई बेटी होती ! आज मेरे सुख-दुःख में शरीक होती। बहू की माँ की तरह। लोग तो यूँ ही बेटियों को दुत्कारते हैं। बेटियाँ सुख-दुःख बाँट लेती हैं। मगर बेटों का खून जाने क्यों सफेद हो जाता है। मुझे बहू की माँ पर गुस्सा नहीं आता, बल्कि खुशी होती है कि जननी की इज्जत करने वाला कोई तो इस दुनिया में है। (खुली हुई खिड़की 102)

नारी सशक्तिकरण का स्वर उपन्यास में कामकाजी औरत के सन्दर्भ में मुखरित हुआ है। कामकाजी औरतें आज अपनी नज़र में ही नहीं, नाते-रिश्ते, मायके-ससुराल में सर्वत्र आत्मविश्वास से खड़ी हैं। उनका कद ऊँचा है। इसलिए अमिता पति के मित्र डॉक्टर की

नौकरीपेशा पत्नी को देखकर अकसर तिलमिला उठती है। उसका लैदर का पर्स, लिबर्टी के जूते, कायनेटिक, सादगी में समाया आभिजात्य घी में अग्नि डालने का काम करते हैं। अमिता ने नौकरी के लिए वर्षों यत्न किए, घर में महाभारत किए और अन्ततः नौकरी मिली भी तो पति के मृत्यु उपराँत अनुकम्पा नियुक्ति के रूप में। नौकरी मिलने पर अमिता की खुशी का ठिकाना नहीं रहता। उसको फालतू एवं बोझ समझने वाला बड़ा भाई उसकी चिंता करता है। मन में आत्मविश्वास, रिश्तेदारियों में सम्मान और समाज में ऊँचा कद उसे नौकरी ही देती है। नौकरी के बाद ही वह परम्परिक नैतिकता का अतिक्रमण कर अपनी देह की आवाज़ सुनने की सामर्थ्य जुटाती है।

अनीता देसाई की सभी नारी पात्र समाज शिकार बनी हुई सामने आती है। अगर वह अपनी समस्याओं को लेकर बोलती भी हैं तो उनको दबा दिया जाता है परन्तु उन्होंने अपने Fasting, Feasting उपन्यास में ऐसे किसी पात्र को नहीं दिखाया है। यहाँ उमा जो मुख्य पात्र है वह परेशान व्यक्तित्व नहीं है। वह सिर्फ अपनी किस्मत की शिकार है या फिर कूछ महौल ही ऐसा पैदा होता है कि उसको कई चीज़ों का सामना करना पड़ता है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वह नासमझ है। उसकी भी अपनी ख्वाहिशें है, सपने हैं, उम्मीदें हैं जिनको वह जाहिर करने में असमर्थ हैं। उमा पात्र देसाई के बाकी सभी पात्रों से एक अलग पात्र है। वह न ही कोई परेशानियों या सामाजिक बुराईयों का शिकार हुई है। जबकि उसकी बह अरुणा इन सभी मुश्किलों का सामना करती है। उमा एक ऐसी पात्र है जो समाज में हो रही हर तरह की बुराई, शिकायतें, नइंसाफ इत्यादि बातों को अपना चुकी है बिना कोई अवाज़ उठाए जैसे एक परम्परावादी भारतीय औरत करती है बिल्कुल वैसे ही। उमा ऐसा करके अपनी समझ को दिखाती है जब उसके पति हरीश के साथ एक भयानक रूप लेकर रिश्ता टूटता है। उसकी छोटी बहन अरुणा उससे पूछती है, “Uma, Uma Didi did he touch you?...Uma burries her head in her pillow and howls- No, No” (Fasting, Feasting 171) यहाँ पर उमा को एक और ऐसी दुखद स्थिति का सामना करना पड़ता है जो कोई भी ऐसी स्थिति के बारे में उत्तर नहीं देना चाहता होगा।

देसाई ने अपनी नारी पात्रों व्यक्तित्व के गहन दिमाग की एक बहुरूपदर्शक छवि को प्रस्तुत किया है। देसाई की कथा में नारी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि जागरुकता और सामन्जसय के लिएलेखक की खोज का प्रतीक हैं। वे लेखक की चेतना और दुनिया के बीच सम्पर्क का केन्द्र बिन्दु है, जहाँ से नारी विचलित हो जाती हैं इसलिए उनकी नारी को संघर्ष का सामना करना पड़ता है, उनके व्यक्तित्व पर जोर देते हैं और सोचते हैं कि ऐसा करने का उनका फैसला सही है, संकट को कैसे हल करें और इन आघातों से कैसे उभरा जाए हैं। देसाई ने भारतीय नारी के बारे में ज्यादा लिखा है और यहाँ के पुरुष प्रधान समाज के बारे में भी बहतर जानती हैं कि किस प्रकार नारी को प्रताड़ित किया जाता था। नारी पात्रों को हम अपनी पहचान को खोजते हुए ही पाते हैं। जो अपने जीवन में अपने आप को किसी न किसी तरह ढालने की कोशिश में लगीं है। यहाँ तक कि उनके सम्मेलन में बाधा डालने के सम्बन्ध में एक पारम्परिक समाज है। लेकिन माया को नारीवादी प्रेरणा से पैदा हुए एक चरित्र के रूप में चित्रित करने में देसाई अपने खुद के बारे में स्पष्ट रूप से अस्पष्ट है क्योंकि माया खुद के लिए एक पहचान बनाने और स्थिर जीवन की अग्रणी बनाने में दोनों में विफल हो जाती है। मोर रो रहा है एक नारी की प्रकृतिक प्रवृत्ति रो रही है, जो मानसिक रूप से सन्तुष्ट नहीं है। माया को पता है कि वह गौतम की शारीरिक उपस्थिति, उनका प्यार और एक सामान्य जीवन चाहती है। वह सहानुभूति के लिए सक्षम है जो उसे मोर के अनुभवों को अनुभव करने में सक्षम बनाता है, लेकिन उसे वह अधिक तीव्रता से महसूस होता है कि हालांकि एक भावनात्मक उत्तेजना है, वहाँ कोई शारीरिक संतुष्टि नहीं है जो गौतम के खिलाफ उसकी पीड़ा का मुख्य कारण है और उसकी यही अपूर्णता की भावना माया के मनोविज्ञान को प्रभावित करती है। एक अन्तर्मुखी होने के नाते माया को सामाजिकता पसंद नहीं है, न ही वह यथार्थवाद का सामना करने में सक्षम है बस घर में रहती है। उपन्यास में अनीता देसाई ने नायिका माया के माध्यम से आधुनिक नारी पीढ़ी को

नारीवादी संदेश दिया है। पत्नी और पति की एक छोटी सी दुनिया के माध्यम से देसाई ने एक सार्वभौमिक नारीवाद को तैयार किया है, जहाँ उन्होंने एक बुनियादी चित्र को चित्रित किया है। पितृसत्ता और मातृशाही के बीच के अन्तर को हम आधुनिक समय के बाद इस स्थिति को थोड़ा बेहतर पाते हैं। वास्तव में भारतीय लेखकों ने साहित्य के रूप में बढ़ते नारीवादियों के सवालों को कम करने की कोशिश की है। हमें लगता है कि देसाई ने अपने पात्रों के माध्यम से पुरुष और नारी के बीच अन्तर को सामान्य करने का प्रयास किया है। माया भारतीय बुर्जुआ समुदाय, संस्कृति और समाज के बाद-आधुनिकतावादी नारीवाद का प्रतीक है। दोनों उपन्यासों का विषय विरोधाभास पितृसत्तात्मक संरचना तक सीमित है और कई बार खराब समायोजित की वजह से माया को मातृहीनता, और सीता को 'ओडीपस कॉम्प्लेक्स' से ग्रस्त है।

भारतीय नारीवाद के प्रतिरूप के रूप में 'सीता' नायिका के माध्यम से संदेश को प्रकाशित करना है, सीता अनीता देसाई की where shall we go in this summer ? (1975) की नारी पात्र है। अनीता देसाई की मुख्य चिंता मानव सम्बन्ध है और वह आधुनिक भारतीय नारी की प्रताड़ित मानसिकता की खोज करती हैं। नायिका सीता एक परेशान, संवेदनशील, मध्यम आयु वर्ग की एक नारी जो अपने पति और बच्चों से अलग होकर मनोरी चली जाती है। वह अपने बचपन की मिट्टी, मनोरी के साथ अपने सम्बन्ध को फिर से परिभाषित करती है, जहाँ वह अपने पति, बच्चों और शहर के जीवन को समझती है। सीता की पहचान में भी बदलाव आया और वह अपने पति के साथ अपने रिश्ते को फिर से परिभाषित करना चाहती है। वह अपने पति के साथ जाने को स्वीकार करती है वह अपने पति के साथ मुख्य भूमि पर लौटती है और उसकी प्राप्ति का परिणाम होता है और उसकी भावनाओं पर ध्यान नहीं दिया जाता। अनीता देसाई की नायिका सीता काल्पनिक दुनिया के साथ से सम्बन्धित है वह शारीरिक रूप से भी प्रभावी और अति संवेदनशील है। उसकी अधिक संवेदनशीलता उसे एक

साधारण जीवन के साथ मिलने नहीं देती है। यह उसे इस भारी और भीड़ भरे क्षेत्र से दूर जाने के लिए मजबूर करती है। सीता मनोरी से भागने का फैसला करती है। जहाँ परिदृश्य के अलावा कोई भीड़ नहीं है, उसकी अधिक संवेदनशीलता भी नहीं है। उसे अपने पाँचवें बच्चे को जन्म देने की अनुमति है लेकिन मनोरी में रहने पर उसे यह समझने में मदद मिलती है कि वह एक मस्तिष्क मँच पर हमेशा से नहीं जी सकती है और उसे पूरी तरह से उसके अस्तित्व को स्वीकार करना होगा। सीता पात्र भी अतीत से सम्बन्धित है वह अपने वर्तमान के व्यवहारिक जीवन से खुश नहीं है। सीता की दुर्दशा की तुलना माया के साथ हो सकती है। वह रमन के साथ अपने प्रेमहीन विवाह के साथ मनोवैज्ञानिक रूप से झूझती है। यहाँ वैवाहिक सम्बन्ध और साथ ही असामान्य पुरुष-नारी सम्बन्ध को उल्लेखनीय मादक पदार्थ के साथ चित्रित किया गया है।

प्रेम की समस्या

प्रेम जीवन का एक शाश्वत सत्य है। सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों ही रूप में प्रेम की अवधारणा अपना एक अलग महत्त्व रखती है। प्रेम जीवन का एक ऐसा मूल्यवान एहसास है जिसमें व्यक्तिगत निर्णय सर्व-प्रधान होता है। सामाजिकता का स्थान उसके बाद ही आता है। इसी कारण प्रेम किसी न किसी रूप में समाज से विद्रोह करता है। उसे समाज से संघर्ष करना पड़ता है। प्रेम की स्वच्छंदता को नियंत्रित करने वाली कठोर सामाजिकता को वैयक्तिक आग्रह ही तोड़ते और लचीला बनाते हैं। प्रेम नारी-पुरुष के मन के सम्बन्धों पर आधारित है। सम्मान द्वारा निर्मित रिश्तों पर नहीं। नारी प्रेम करने की स्वतंत्रता समाज नहीं देता। क्योंकि प्रेम सामाजिक सम्बन्धों की अवहेलना करता है, सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ता है अतः वर्जय है।

प्रेम जाति-धर्म, ऊँच-नीच, रिश्तों-नातों की परिधि से ऊपर उठकर है, उसके इसी रूप को अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में उठाया है। इनके उपन्यासों के पात्र प्रेम में रिश्तों-नातों के सामाजिक सम्बन्धों को नकार देते हैं। 'शेखर एक जीवनी' के शशि-

शेखर सामाजिक रिश्ते से आपस में भाई-बहन लगते हैं, लेकिन उनमें प्रेमी-प्रेमिका का सम्बन्ध है,

> शेखर और शशि सामाजिक दृष्टि से भाई बहन हैं। शशि विवाहिता है, फिर भी वह शेखर की प्रेमिका है। उसने इच्छा के विरुद्ध विवाह किया। दुर्व्यवहार सहा और विविधता की सीमाएँ तोड़ कर आगे बढ़ी वह शेखर को बचाने में स्वयं मिट जाती है। (अज्ञेय चेतना के समान्त 366)

अज्ञेय के उपन्यासों में एक तथ्य हमें कई स्थानों पर दिखाई देता है कि उनके पुरुष पात्रों में प्रेम को स्वीकारने का उतना उत्कट सहस नहीं है जितना नारी पात्रों में। उनके उपन्यासों की नारी खुलकर अपने प्रेम को स्वीकार करती हैं और इस स्वीकृति को लेकर उन के मन में कोई हीन भावना, कोई ग्रन्थी नहीं है। जबकि पुरुष पात्रों में ऐसा द्वन्द्व दिखाई देता है। अपने और शशि के सम्बन्ध को लेकर शेखर के मन में द्वन्द्व है लेकिन शशि के मन में नहीं। वह सहज भाव से अपने प्रेम को स्वीकार करती है। शेखर पूछता है, "शशि, क्या मैंने पाप किया है ? और शशि का उत्तर है, शेखर मैंने सदा तुमको प्यार किया है। पाप मैंने कभी नहीं किया है।" (शेखर: एक जीवनी 222) 'नदी के द्वीप' की रेखा और गौरा में भी अपने प्रेम के प्रति ईमानदारी का भाव है रेखा विवाहित होने के बावजूद भुवन से प्रेम करती है और अपने सम्बन्धों को स्वीकार करती हैं अपने समर्पण को लेकर उसके मन में कोई दुविधा नहीं है। बिना दुविधा के वह आत्मसमर्पण करती है और कोई अपेक्षा नहीं रखती है।

अज्ञेय के उपन्यासों में प्रेम की जो अवधारणा है उसमें नारी के आत्मोसर्ग का भाव बहुत तीव्र है। 'नदी के द्वीप' में रेखा भुवन को अपने गर्भवती होने की सुचना देती है। भुवन उससे भेंट कर विवाह का प्रस्ताव रखता है, लेकिन रेखा निश्चयात्मक ढ़ंग से इन्कार करते हुए कहती है, "मैंने तुमसे प्यार माँगा था, तुम्हारा भविष्य नहीं माँगा था, न वह मैं लूँगी।" (नदी के द्वीप 252) वह समझ जाती है कि भुवन का विवाह प्रस्ताव परिस्थितियों की बाध्यता (उसके माँ बनने की) के कारण है। इस समय तक रेखा भुवन

के प्रति गौरा की भावनाओं से परिचित हो चुकी थी। उसने मन में निश्चय कर लिया था कि गौरा और भुवन के बीच नहीं आएगी। वह अपने गर्भस्थ शिशु को भी नष्ट कर देती है। रेखा का यह कदम उचित नहीं लगता है। यदि रेखा बच्चे को जन्म देने का फैसला करती तो सम्भवतः उसके चरित्र में विशिष्टता आती। गौरा भी रेखा के समान सदैव स्वयं को भुवन पर समर्पित करने के लिए तैयार रहती है। रेखा से अलग होकर भुवन जब इधर-उधर भटकता है, उसके पत्रों से उसकी मनोव्यथा झलकती है तो गौरा उसके पास जाने को व्याकुल हो उठती है। वह भुवन को लिखती है, "क्यों आप मुझसे दूर भाग रहे हैं, जो आपको अपने पथ का प्रकाश मानकर जी रही हूँ।"(नदी के द्वीप 265) 'शेखर एक जीवनी' की शशि को जब उसका पति रामेशचन्द्र घर से निकाल देता है, तब वह शेखर के साथ रहने लगती है। शशि जब देखती है कि उसकी देखभाल के कारण शेखर अपने लिखने का काम नहीं कर पा रहा है वह पुनः रामेशचन्द्र के पास जाने का प्रस्ताव रखती है। जबकि वह इस तथ्य को भलीभांति जानती है कि वहाँ जाने पर उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाएँगा। फिर भी वह शेखर से कहती है, "शेखर, मैं देख रही हूँ कि मैं तुम्हारे मार्ग में बाधा हूँ तुम्हें नीचे खींच रही हूँ। वह मैं कभी नहीं होने दूँगी, उससे कहीं आसान है लौट जाना।" (शेखर: एक जीवनी 218) 'नदी के द्वीप' की गौरा भुवन से कहती है,

> मैं सोच रही थी किसी भी तरह कुछ भी करके अपने को उत्सर्ग करके आपके ये घाव भर सकती- तो अपने जीवन को सफल मानती...मैं तुम्हें कुछ नहीं दे रही, वह मेरी ही साधना होती, मैंने इससे बढ़कर कभी कुछ नहीं माँगा कि- तुम्हारे काम आ सकूँ। (नदी के द्वीप 299)

इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय के नारी पात्रों की यह विशिष्टता है कि वे अपने प्रिय पर तन-मन से पूर्णतः समर्पित हो जाते हैं। प्रिय के भले के लिएसब कुछ करने को तैयार रहती हैं प्रतिदान की आशा कभी नहीं करतीं। जबकि पुरुष पात्रों में इतनी उत्कट भावना कभी नहीं दिखाई देती। विवाह के बाद भी रेखा भुवन से प्रेम करती है

और उसे पत्र लिखती है कि वह भुवन की है और कभी किसी की नहीं हो सकेगी, जबकि भुवन गौरा से बँधने के बाद रेखा को ही सब कुछ नहीं मानता। पूरे उपन्यास में रेखा के समान भुवन की कोई स्वीकारोक्ति नहीं सुनाई देती कि वह गौरा के साथ आने के बाद भी सिर्फ रेखा का है और किसी का नहीं हो सकेगा। उनके नारी पात्र अपना बलिदान करके अपने प्रिय का जीवन सँवारना चाहते हैं। अज्ञेय की नारी में सिर्फ देने का भाव दिखाई देता है। प्रेमिका अपने प्रिय को सब कुछ देना चाहती है, लेकिन बदले में उसे कुछ नहीं चाहिए। यहाँ केवल त्याग का भाव है प्रतिदान की आशा नहीं। 'नदी के द्वीप' की रेखा भुवन को अपना सर्वस्व अर्पित करती है लेकिन बदले में कुछ भी नहीं चाहती, "भुवन सोचता है कैसे यह नारी सब कुछ इस तरह उत्सर्ग कर दे सकती है, बिना कुछ प्रतिदान माँगे, बिना कोई सुरक्षा चाहे बल्कि सुरक्षा की सब सम्भावनाओं को लात मात कर।" (नदी के द्वीप 76) अज्ञेय की नायिकाएँ अपनी-अपनी तरह से अपने प्रिय की उन्नति का साधन बनती हैं। शशि शेखर को लिखने की प्रेरणा देती है कि वह लिखे, वह कहती है, "इसलिए मैंने तुमसे कहा था मेरे लिए लिखो, मेरे जीवन में आशा देने के लिए नहीं तुमसे आशा माँगने के लिए।" (शेखर: एक जीवनी भाग दो 269) अपने प्रिय, उसके जीवन की उपलब्धि और सुख के लिए वे हर चीज का बलिदान करने के लिए तैयार हैं। शशि बहुत बीमार है मृत्यु से संघर्ष कर रही है लेकिन ऐसे समय भी वह शेखर के लिए जीना चाहती है स्वयं के लिए नहीं। रेखा और गौरा दोनों ही भुवन के सुख के लिए तत्पर रहती हैं। अज्ञेय के उपन्यासों में प्रेम जीवन की अनिवार्यता है। अनिवार्यता इस हद तक कि एक के आधार पर दूसरे के जीवन का अर्थ है। 'शेखर एक जीवनी' में शेखर शशि से कहता है कि,

> इसलिए कि मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है- ठीक वैसे ही जैसे तलवार में धार का होना सान की पूर्व कल्पना करता है। तुम वह सान रही हो जिस पर मेरा जीवन बराबर चढ़ाया जाकर तेज होता रहा है। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 275)

अज्ञेय की प्रेम सम्बन्धी अवधारणा में मुक्ति की भावना भी महत्त्वपूर्ण है। उनके पात्र प्रेम में एक-दूसरे को बाँधते नहीं हैं अपितु मुक्त करते हैं। बुशरा का अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम विवाह है, लेकिन काज़ी के पूछने पर, 'क्या आपको यह निकाह कबूल है ?' वह नारी सुलभ लज्जा और देश की रिवायत के कारण कुछ देर खामोश रह कर ही हाँ कहती है। इराक के लोग जन्म से लेकर मृत्यु तक संस्कारों में बँधे रहते हैं और बुशरा का इन संस्कारों से पूरा विश्वास है। इसलिए वह हिन्दु पति को गौ-माँस खाने या खतने का ज़रा भी विरोध नहीं करती, बल्कि उसे डांटती है 'खुशी के मौके पर आँसू बहाने की कोई जरूरत नहीं है।' नायक के चरित्र में कोई दुर्बलता (हैमर्शिया) अवश्य रहती है। नायिका बुशरा की दुर्बलता उसकी धर्म और संस्कारों के प्रति कट्टरता है, यही दुर्बलता उसके जीवन को नरक बना देती है, त्रासद बना देती है। बुशरा की इस Tragedy of error में कट्टरपंथी की धर्मांधता का सम्मिश्रण भी है। आकाश की माँ त्यौहार वाले दिन अपने घर के सभी कमरों को विशेष रूप से लीपती-पोतती है। पूरे घर को साफ-सुथरा करती है।

एक बहुआयामी रागात्मकता से उपन्यास के सभी नारी पात्र ओतप्रोत हैं। यह रागात्मकता परिवार-प्रेम, पति-प्रेम, देश-प्रेम, धर्म-प्रेम, संस्कृति-प्रेम में मुखर हुई है। आकाश को बार-बार माँ का स्नेहिल व्यक्तित्व याद आता है। बेटे के बीमार होने पर जिसके हाथ ही थर्मामीटर का काम करते थे। बेटे के सिर में ज़रा सा दर्द होने पर ही बैचेन हो जाती थी। पूरे घर की आर्थिक समस्याएँ अपने जेवर गिरवी रखकर ही सुलझाती थी। वह स्वदेश लौटे आकाश के मित्र से आकाश के जीवन के प्रत्येक पहलू कुरेद-कुरेद कर पूछती रहती है। आकाश के लौट आने पर उसके विवाह की चिन्ता करती है। यश की पत्नी भावुक है। उसे पैसों से नहीं पति से प्रेम है। इसलिए वह बार-बार उसे लौट आने का आग्रह करती है, "चले आओ। रूखी-सूखी खाकर गुजारा कर लेंगे।" (बसरा की गलियाँ 105) एलाइजा डयूटी पर पूरी तरह चौकस बैठती है, लेकिन एक उदासी उसका पाँव नहीं छोड़ती। लम्बी और गहरी साँस लेकर कहती है,

पहले अफगानिस्तान में जंग झेलती रही और अब रेगिस्तान में पड़ी हूँ। मेरी वर्दी में जितने स्टार बढ़ते गए, समझो उतनी ही ज्यादा जानें मैंने लीं...पता नहीं कितने लोगों के घर हमने शाँति के नाम पर उजाड़ दिए, लेकिन शाँति तो कहीं नहीं मिली।"(बसरा की गलियाँ 108)

विवाह की समस्या

घर-परिवार बनाने के लिए नारी-पुरुष में आवश्यक सम्बन्ध स्थापित करने, उसमें स्थिरता लाने के लिए कोई न कोई संस्थात्मक व्यवस्था प्रत्येक समाज में पाई जाती है, जिसे विवाह कहते हैं। विवाह प्रत्येक समाज की संस्कृति तथा सभ्यता का आवश्यक अंग रहा है चाहे वह आदिम समाज हो या फिर सभ्य समाज। विवाह एक ऐसा साधन है जिसके आधार पर परिवार का जन्म होता है। प्रत्येक समाज और काल में विवाह की प्रथा किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। विवाह समाज द्वारा मान्यता प्राप्त ऐसी प्रथा है जिसके द्वारा यौन सम्बन्धों को नियमित और नियंत्रित किया जाता है। यौन सम्बन्धी अवश्यकताओं की पूर्ति और समाज को नियमबद्ध तरीके से चलाने के लिए परिवार बहुत आवश्यक है और परिवार के निर्माण के लिए विवाह। विवाह जैसी प्रथा का प्रचलन न होने से समाज में यौन स्वच्छंदतावाद जैसी प्रवृत्ति फैल जाएगी जिससे अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं ऐसी प्रवृत्ति आदिम समाज तक तो ठीक थी लेकिन आधुनिक जटिल समाज में इससे अराजकता जैसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

एक स्वस्थ और अच्छे उद्देश्य को लेकर चली विवाह संस्था में बाद अनेक दोष आ गए। प्राचीन काल में विवाह के समय नारी को भी कुछ हद तक चयन की स्वतंत्रता प्राप्त थी लेकिन बाद में विवाह सिर्फ माता-पिता की मर्जी से तय होने लगे। विवाह तथा वैवाहिक चुनाव वह बिन्दु है जिससे किसी व्यक्ति के सामाजिक विचारों की परख की जाती है। विशेष रूप से आधुनिक भारत की सामाजिक स्थिति में, जो संक्रातिकालीन स्थिति से गुजर रहा है। जीवन के निश्चित मापदंडों के अभाव में व्यक्ति

के लिए निर्णय करना कठिन हो जाता है। यह स्थिति शिक्षित भारतीय नारी के लिए और भी अधिक चिंतनीय है। विवाह के माध्यम से नारी पर अनेक अत्याचार किए गये हैं और किए जा रहे हैं। विवाह उसकी स्वतंत्रता के हनन का एक साधन बन गया। 'नदी के द्वीप' में अज्ञेय भुवन के माध्यम से गौरा को उचित पात्र से अपनी मन-मर्जी द्वारा विवाह करने की सलाह देते हैं। 'नदी के द्वीप' में भुवन अपने अनुभवों के आधार पर उचित प्रतीत होने वाले पात्र से विवाह करना ठीक समझता है, विवाह के सम्बन्ध में यही परामर्श वह गौरा को देता है,

> तुम्हें जो राह दिखती है उसी पर चलो गौरा ! धैर्य के साथ, साहस के साथ और हाँ जो तुमसे सहमत नहीं है, उनके प्रति उदारता के साथ, जो बाधक हैं उनके प्रति करूणा के साथ। और राह पर जब ऐसा साथी मिलेगा, जिसका साथ हमें वाँछनीय, कल्याणप्रद लगे, तब किसी की बात नहीं सुनना, जान लेना कि अब स्वतंत्र रूप से जोखिम उठाने का समय आ गया। यही मैं मानता हूँ। (नदी के द्वीप 92)

विवाह के नाम पर सुरक्षा देने के बहाने से नारी का जितना शोषण किया गया उतना और किसी अन्य प्रकार से नहीं किया गया। विवाह पुरुष को नारी पर अधिकार जमाने का एक सामाजिक हक देता है। विवाह में नारी को इज्जत देने के नाम पर उसका शोषण किया गया है। विवाह की प्रथा के द्वारा नारी को संस्कारों के ऐसे जाल में जकड़ दिया जाता है कि उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं रहता। परम्परागत भारतीय समाज में लड़की को बचपन से यही शिक्षा दी जाती है कि उसके पति का घर ही उसका अपना घर है। विवाह द्वारा निर्मित बँधन ही सच्चे बँधन हैं। तब वह उसी में अपनी सार्थकता देखती है। हिन्दु विवाह को एक धार्मिक संस्कार माना जाता है और धर्म के अनुसार पति-पत्नी का साथ जन्म-जन्मांतर का साथ होता है। इस धार्मिक संस्कार में भी पुरुष के लिए अधिकार और नारी के लिएकर्तव्य सुनिश्चित लिए गये हैं। पुरुष के लिए भी कुछ कर्तव्य सुनिश्चित हैं लेकिन उनका पालन न करने पर उसे नारी

के समान सामाजिक अवहेलना सहन नहीं करनी पड़ती। हिन्दु विवाह के इस आदर्श की ओर इशारा करते हुए 'शेखर एक जीवनी' में शशि कहती है,

> आदर्शों का अभिमान है। विवाह का हिन्दु आदर्श, गृहस्थ धर्म, सतीत्व का हिन्दु आदर्श, किन्तु अभिमान की काई के नीचे आदर्श का पानी क्या अभी बहता है कि बँधकर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म उभयमुखी होता है, किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ नहीं है, सख्य तो दूर करुणा भी देय नहीं रही और नारी केवल पुरुष के उपभोग का साधन रह गई है, जिसे वह जब चाहे जैसे चाहे, जहाँ चाहे अपनी तुष्टि की आग में होम कर दे और इसकी कहीं अपील नहीं है। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 211)

यदि कोई नारी विवाह का विरोध करती है तो समाज उसे स्वीकार नहीं करता क्योंकि वह नारी को स्वतंत्र रहने का अधिकार नहीं देता। संस्कारों और कर्तव्यों के जाल में जकड़ी नारी के सामने स्वयं को विवाह की बलिवेदी पर चढ़ा देने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं बचता। 'शेखर: एक जीवन' की शशि विवाह नहीं करना चाहती लेकिन वृद्धा माँ की लाचारी को देखकर वह विवाह करने के लिएमजबूर हो जाती है। पुरुष सुरक्षा का आश्वासन देकर नारी को विवाह प्रथा स्वीकार करने के लिए बाध्य करता है। लड़की के मन में बचपन से ही असुरक्षा की भावना भर दी जाती है। यह भावना उसके मन में जीवन पर्यारत रहती है कि वह पुरुष के बिना असुरक्षित रहती है। यह असुरक्षित नारी विवाह में सुरक्षा ढूँढती है लेकिन क्या विवाह भी उसको पूर्ण सुरक्षा की गारंटी दे सकता है ? सामाजिक संस्कारों की बँधनकारी सुरक्षा प्रवृत्ति पर अज्ञेय की यह टिप्पणी उचित ही है,

> इस सब वस्तुओं (सुरक्षा के साधनों) में भी कोई गारंटी नहीं है कि कल्पना का देव पुरुष वास्तविक्ता का यज्ञ ध्वंसक राक्षस नहीं होगा। शशि के जीवन का कल्पना पुरुष आगे चलकर यज्ञ ध्वंसक राक्षस बना।

> कितनी ही लड़कियों के देव-पुरुष वास्तविक्ता के राक्षस प्रमाणित होते हैं, यह तथ्य सबके सामने स्पष्ट है। इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 60)

विवाह के सम्बन्ध में अज्ञेय व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्त्व देते हैं। 'नदी के द्वीप' की रेखा व्यकित्व को दबाकर समाज के भय से निर्णित विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। ऐसा निर्णय उसकी दृष्टि में अनुचित, घृण्य तथा असहाय होगा। उसे अपने निजी जीवन एवं व्यक्तित्व का नियमन करने में समाज का हस्तक्षेप स्वीकार्य नहीं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हनन से वैवाहिक सम्बन्धों में अनेक विसंगतियाँ पैदा हो जाती हैं। कई बार एक जैसे विचारों और एक साथ जीवन बिताना चाहने वालों के बीच विवाह सिर्फ इसी कारण नहीं हो पाता क्योंकि परिवार और समाज की रूढ़ियाँ उन्हें इसकी इजाजत नहीं देती। विवाह में पुरुष की इच्छा का तो फिर भी थोड़ा बहुत ध्यान रखा जाता है, लेकिन नारी को चयन की बिल्कुल भी स्वतंत्रता नहीं दी जाती। नारी की उसके विवाह के सम्बन्ध में राय तक नहीं ली जाती कि वह उस व्यक्ति से विवाह करना चाहती भी है या नहीं। वरण का अधिकार तो बहुत दूर की बात है। 'शेखर एक जीवनी' में शशि का विवाह सम्बन्ध तय होने पर वह शेखर को पत्र लिखती है कि मैं यह विवाह नहीं कर सकती। यहाँ पर शेखर सोचता है, "यह मामला शशि का है, शशि के अतिरिक्त किसी का भी नहीं, शशि इस समस्या से लड़े और किसी निष्पत्ति तक पहुँचे।" (शेखर: एक जीवनी भाग दो 78) यहाँ अज्ञेय संघर्ष की बात तो करते हैं, लेकिन अपने उपन्यासों में इस प्रकार का कोई विद्रोह नहीं दिखाते। अज्ञेय इस तथ्य को अनदेखा कर देते हैं कि उसके विद्रोह के लिएसमाज में स्थिति कितनी विकट है। नारी के इस विद्रोह में औरों को भी साथ देना पड़ेगा तभी यह विद्रोह सफल हो सकेगा।

उपन्यास का कथावस्तु उस इराक की है, जिसमें मर्दों का अकाल पड़ चुका है। सारे पुरुष युद्ध की भेंट चढ़ते जा रहे हैं। यहाँ आम आदमी के नसीब में जेहाद है, युद्ध की शहादत है। आम औरत के नसीब में उच्चाधिकारियों की हवस है और पूरी कौम के

नसीब में नस्ल का बदलना है। शादी एक जंग बन चुकी है। बुशरा की बहन का पति ईरान युद्ध में शहीद हो चुका है। गुलनार के फौजी शौहर ने शादी के कुछ दिन बाद ही शहादत प्राप्त की है। गुलनार नायक से कहती है, "खुशनसीब है तुम्हारी पत्नी, जिसे तुम्हारे जैसा पति मिला।" (बसरा की गलियाँ 105) हर घर में बेबस विधवाएँ भरी हुई हैं। बुशरा की माँ कहती है,

> उस लड़ाई का ही नतीजा है, हर आँगन में विधवाएँ पड़ी हैं। मर्दों की संख्या कम हो गई है। घर-घर में बूढ़े हाजी हैं या फिर बच्चे। इतना असंतुलन हो गया है कि अगर उनको संतुलित करना हो तो कई सौ वर्ष लगेंगे। (बसरा की गलियाँ 107)

यहाँ नारी के समक्ष दोयम दर्जे की भी कोई समस्या नहीं है। यहाँ समस्या उस पुरुष की है, जो तेल के कुंओं वाले देश में दीनार कमाने के लिए गया था, लेकिन कंधों पर शस्त्रों का भार और मन में गुलामी का बोझ लिए पराए देश और पराई संस्कृति से मुक्ति पाने के लिए छटपटा रहा है। नारी की समस्याएँ यहाँ अपने ढँग से आई हैं। इनमें प्रमुख गृहस्थ, लैंगिक असंतुलन, अर्थ/नौकरी एवं राजनैतिक स्तर की हैं यह औरत एक ओर धर्म और परम्पराओं में बन्धी है और दूसरी ओर भावात्मक जीवन/गृहस्थ जीवन की लालसा लिए है। इराक की बुशरा भारत के आकाश से प्रेम करके उसे पा लेती है, लेकिन विवाह करके उसे खो भी देती है। क्योंकि जबरन धर्म परिवर्तन, गौमाँस खाने की विवशता, खतना करने की रिवायत आकाश को सलीम भले ही बना दे, लेकिन बुशरा और उसकी माँ के लिए उसकी नफ़रत सातवाँ आसमान छूने लगती है। उसका हर प्रयास इस गुलामी से मुक्ति के लिए है- पत्नी से मुक्ति, पत्नी के परिवार से मुक्ति, उसकी रिवायतों से मुक्ति। गुलनार की समस्या बसरा की विधवा औरत की समस्या है। कैसी त्रासदी है कि जिस औरत को शहीद की पत्नी का सम्मान मिलना चाहिए वह जीने के लिएदेह का बाज़ार लगाए बैठी है। मोना जेम्स की समस्या कामकाजी औरत की खूबसूरती से उत्पन्न है। उसका सौंन्दर्य ही उसका दुश्मन बन जाता है। जैसे ही वह

बास के स्टैडिंग आर्डर मानने से इन्कार करती है, मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ता है। एलाइजा और जूलिया को सेना की नौकरी ने इस कदर बाँध रखा है कि वे घर जाने को, अपनों से मिलने को तड़पती रहती हैं।

सभी नारी पात्र अपने-अपने देश की संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज़ों के प्रति प्रतिबद्ध हैं। बुशरा की माँ रिवायत पसंद-सी है और हर समय अपने को बुरके से ढके रखती है। बेटी की शादी पूरे रीति-रिवाज़ों के साथ करती है। शादी की रस्म काज़ी अदा करता है। वह मुस्लिम रीति से शादी करवाती है। दूल्हे का नाम आकाश से सलीम हो जाता है। मुस्लिम रिवाज़ के अनुसार उसका खतना किया जाता है। वह चाहती है कि उसे नमाज़ पढ़ने की आदत पड़े, बच्चे के जन्म पर उसके कान में पहली अज़ान वह पढ़े। उसके अनुसार अज़ान वह पवित्र आवाज़ है, जो मन और तन दोनों को स्वस्थ रखती है। वह दामाद को फौज में भेजने से पहले कुछ शगुन करना चाहती है।

देसाई ने अपने कथा-साहित्य में नारी मनोविज्ञान के हर एक पहलू को दर्शाया है। इसी सम्बन्ध में आर.के गुप्ता कहते हैं,

> Anita Desai not only portrays the feminine psyche of a common woman but also the subnormal bordering on abnormal woman. The woman who are under so much of psychic pressure that they cannot be known for insanity but then they are explicitly normal. (A critical study of Anita Desai's novels 45)

माया अपने वैवाहिक जीवन से बिल्कुल भी खुश नहीं है। वह शादी के बाद के जीवन की कल्पना करती है किन्तु असलीयत में वह वैसा नहीं पाती जैसा उसने सोचा होता है। इसीकारण वश वह अपने आपको ससुराल और पति के साथ सामंज्सय बनाने में असमर्थ रहती है। इसी विषय में डॉ. संजय कुमार कहते हैं कि,

> Maaya's fear is aggravated as she fails to relate to Gautama her husband. Between the husband and wife there exists a terrible communication gap as both of them seen to live in different worlds. (A critical study of Anita Desai's novels 47)

अपने पति को उसकी भावनाओं को न समझता हुआ देख माया बहुत ही नारश होती है। वह उससे प्रेम की उम्मीद करती है किन्तु पति गौतम उसकी भावनाओं को समझने में असमर्थ दिखाई पड़ता है। इसके बारे में शीतल ठाकुर कहती हैं,

> Maya hungered and hungered. And when this hunger was not satisfied, what was she do? Protest like her brother Arjuna? That she was incapable of because her father had taught her to accept life. And accept she could not because it told upon her nerves. She would lie awake at night stifled by the hunger...she felt not only the Gautama but for all that life represented. She came to look upon her relationship with Gautama as a relationship with death. (A critical study of Anita Desai's novels 48)

माया अपनी शादीशुदा ज़िन्दगी को बचाने का हर सम्भव प्रयास करती है क्योंकि एक पिता के साथ स्नेह और पति के प्रेम में काफी अन्तर होता है। एक पिता अपनी बेटी को प्यार करता है किन्तु बदले में कोई उम्मीद नहीं करता। वहीं दूसरी और पति-पत्नी का प्रेम तो एक हाथ लेना और दूसरे हाथ देने वाला होता है। किन्तु गौतम उसके प्रेम को समझ नहीं पाता और उसके पिता को इसका दोषी मानता है,

> He (father) is the one responsible for this-for making you believe that all that is important in this world is the possess, possess-riches, comforts, posies, dollies, loyal retainers- all the luxurious of fairy tales you were brought up on life is a fairy take to you all. What have you learnt of the realities? The realities of common human existence are not love and

> romance, but living and working, all that constitutes life for an ordinary man. You want find it in your picture books. What wickedness to raise a child like that. (A critical study of Anita Desai's novels 49)

सीता एक विवाहित नारी है और उसके चार बच्चे हैं लेकिन दुख और निराशा की तस्वीर में वह अपने आप को अपने घर में एक घिरी हुई चिड़िया मानती है, जो निराशाजनक, एक नीरस टेडियम का एक टुकड़ा है, लेकिन उसे कुछ नहीं पता रहता है। उसके क्रूर बचपन, वंचित संदेह और निराशा से पीड़ित उसके मनोविज्ञान पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। वह खुद को मुक्त करने के लिएइन संदेहों और संघर्षों के भीतर गुलाम महसूस करती है।

सीता असामान्य रूप से प्रतिक्रिया करती है और मानसिक संकोच से ग्रस्त होती है। किसी अन्य व्यक्ति द्वारा शायद ही कम से कम ध्यान दिया जाएगा कि वह उसे उत्पीड़न का कार्य करने के लिएत्याग देता है। वह एक भयावह भय को विकसित करती है कि उसके चारों ओर एक विरोधाभास है। सचेत व्यक्ति और उसके चारों ओर संलिप्तता के बीच एक संघर्ष है। सीता का धूम्रपान आत्मविश्वास का मूक विद्रोह है। खुद को और दुनिया को दिखाने का प्रयास करती है जबकि वास्तविक्ता में वह वास्तव में नीचे गिर रही है। उसके पति से पहले उसकी अन्तर्निहित इच्छा का नतीजा है कि वह किसी ऐसी दुनिया में किसी की परवाह नहीं करता है जिसने उसके लिएपरवाह नहीं की है। पितृसत्ता के खिलाफ घृणा, धीरे-धीरे, उसके सभी आयामों की समस्याएँ और जटिलताएँ बढ़ती गयी। अनीता देसाई के अन्य नायिकाओं की तरह, सीता हर किसी से पीछे हटती है। लेकिन वह एक साम्प्रदायिक विचारों वाली नारी की तरह बनी हुई है। वह कभी भी शाँति प्राप्त नहीं कर सकी फिर चाहे वह मुम्बई में हो या मनोरी में।

सीता का मानना है कि उसके फैसले से समाज को 'नहीं' कहने के लिए, अपने मानदंडों को तोड़ने के लिए और बच्चे को जन्म न देना सही है। उनकी ससुराल और सामाजिक उक्ति से उनके अलगाव की अस्वीकृति केवल छिपी हुई है, जिस तरह से एक छोटे से प्राणी अपनी असुरक्षित को छुपाने के लिएकुछ खास विशेषताओं को अपना सकते हैं, वैसे ही उसकी असलियत को छुपाने के लिए उसकी खोज के लिए बेचैनी और अपने स्वयं के अनजाने में भीतरी घर से वह अकेलेपन में उसकी अपेक्षाओं को सुनिश्चित करेगा। सीता के पाँचवें बच्चे को जन्म देने के लिए अनजाने में चिंता करती है असल में वह एक बच्चे के रूप में खुद पुनर्जन्म लेना चाहती है। जिसके लिए उसे एक वयस्क की भूमिका ग्रहण करनी पड़ती है। इससे पहले कि वह पूरी तरह से एक शिशु के जीवन का नेतृत्व कर सके। कोई आश्चर्य नहीं कि वह अपने पाँचवें बच्चे को रखने के बजाय उसे जाने या बढ़ने की वजह से पागल है। मनोरी में खुशी गम्भीर वास्तविक्ताओं के लिए एक मृगतृष्णा साबित होती है। जीवन के इस द्वीप पर मौजूद हैं जैसे मुंम्बई में सीता मनोरी के साथ कल्पित रूप से उलझन में पड़ती है और वास्तविक्ता का सामना करना पड़ता है। मनोरी में रहने के बाद उन्होंने अपना मनोविज्ञान को ताजा कर लिया है और अब वह दुनिया को वास्तविक्ता से देख सकती है। माया, सीता के अपने पति के साथ सम्बन्ध असामान्य नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सीता समय पर एक अस्थायी एकाँत मनोरी में आती है, लेकिन अनुपस्थिति ने उसके दिल को आगे बढ़ाया और उसे पता है कि जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण अधिक है। अपने आंतरिक 'स्व' से तर्कसंगत जटिलताओं और जीवन की वास्तविक्ताओं का सामना करने का उसमें अधिक साहस नहीं था। वह केवल एक डरपोक थी और सभी के साथ व्यथित महसूस करते हुए 'अर्थहीन जीवन की कुरूपता' का सामना करती है। सीता अपने पति के साथ रहने और अकेले यात्रा करने के लिए एक समझौता करने का अनुभव करती थी लेकिन मानसिक और भावनात्मक रूप से परन्तु बाद में उसे करना असम्भव सा हो गया।

निस्संदेह सीता की कल्पनाओं ने उसे नुकसान ही पहुँचाया था। गहन अहसास उसे वास्तविक्ता में पीड़ादायक बनाता है, जिससे उसे अपने बच्चे को जन्म देने के लिए इंतजार करने के लिए मुंम्बई में सुरक्षा और उसकी घर की सुरक्षा के लिए अपने कदम वापस लेने पड़ते हैं। माया का प्रयास खुद को शान्त रखता है और वह विनाश से पहले ही काम करता पाया जाता है। सीता को अंतिम क्षण में प्राप्ति होती है, विडम्बना यह नहीं है कि जब उसका पति उसके साथ तर्क करने की हमेशा कोशिश करता रहता, लेकिन एक वक्त था जब सीता ने उसे छोड़ दिया था तब वह अपने-आप को तनाव-मुक्त महसूस करती है। उसके मनोविज्ञान के भीतर तनाव और भावनाएँ उसके पति से काफी स्वतंत्र हैं। यह उसके साथ जीवन की वास्तविक और भविष्य अतीत की तुलना में अधिक मूल्यवान है। इसकी प्राप्ति उसे इसके सच्चाई के साथ होती है कि उसका व्यवहार पूरी तरह अप्रकृतिक नहीं था क्योंकि गौ-माँस, अनाज, झुग्गियों वाले सभी को जन्म देने से पहले छिपाने और अलगाव की आशा है। प्रत्येक मामले में एकमात्र अनुभव सृजन से पहले होता है। वह सामान्य जन्म के लिए अपने पाँचवें बच्चे को जन्म देने के लिए मनोरी लौटती है। अब तक उसके विचारों में जटिलताएँ थीं वह एक बेचैन आत्मा की तरह थी जो साँत्वना पाने में असमर्थ थी परन्तु वास्तविक हिम्मत जटिलताओं का सामना करने में है वस्तुतः जीवन की वास्तविक्ताओं से भागने को वह भयावहता का ही कार्य कहती है। वह अपने आप में शाँति के लिए आती है। उसे अपने घर और शहरी परिवेश से दूर भागने से कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि उसके संदेह और समस्याओं में उसको कोई भी हल नहीं मिला। एक और सबसे महत्वपूर्ण पहलू जहाँ वह मनोरी से बचने में विजयी हो गई है, वह उसकी विवेक और सामान्यता है। इसका मतलब है कि परिस्थितियों से निपटने और उनसे चुपचाप, साहसपूर्वक और रचनात्मक रूप से शब्दों के साथ खड़े होकर प्रयास करना चाहिए। अलगाव में उसने पाया है कि उसकी असली पहचान केवल सम्बन्धों में देखी जा सकती है। यदि उसे पृथ्वी पर रहना पड़ता है तो वह केवल उसके परिस्थितियों के अनुकूल होकर या दूसरों

के साथ नकल कर सकती है जिनके जीवन में वह काम कर सकती है। सीता के साथ यह अहसास और उसके बाद के मेल-मिलाप पिछले दिमाग से ज़्यादा ज़रूरी हैं, जो उसके दिमाग को भूल गए थे। इस तरह की प्राप्ति में कोई व्यक्ति देसाई के दृष्टिकोण को प्रगति के रूप में देख सकता है कि उसे अपने अस्तित्व को खोजने के लिए एक नारी के संघर्ष की जानकारी है कि कोई भी अनुचित रूप से प्रस्ताव नहीं दे सकता है कि नायिका का नाम न केवल रामायण में उनके महान नाम का नाम याद करता है बल्कि यह भी यकीन है कि उनकी असली पहचान दृढ़ता से उनके पति रामायण के साथ जुड़ी हुई थी। इस उपन्यास में यह स्पष्ट हो जाता है कि देसाई ने रूढ़िवादी और कट्टरपंथी परिवर्तन को बढ़ावा दिया है। हालाँकि अनीता देसाई की नायिका अक्सर हिंसक कार्य करती रही हैं लेकिन इस उपन्यास में एक सकारात्मक बदलाव आया है। सीता खुद को अपने भाग्य के साथ मिलती है वह अपने भीतर के आत्म और बाहरी दुनिया के बीच एक आदर्श संतुलन पर अमल करती है माया के विपरीत उनका अलगाव मनोवैज्ञानिक नहीं है। यह उपन्यास पश्चिमी आज़ादी के जीवन में एक भारतीय नारी का असली चित्रण दर्शाता है जो समेलन के खिलाफ विद्रोहियों और जीवन के पुराने तरीके से विद्रोह करता है। कला के रूप में अपने अनुभव को रूपांतरित करने में देसाई का देशकाल वातावरण को व्यक्त करने के लिए प्रभाववादी शैली का उपयोग करती हैं जिसका अर्थ है कि हर रोज़ मामलों, तरीके और उपचार के अन्तर्निहित अर्थ को व्यक्त करना है। कई आलोचकों और देसाई विद्वानों के अनुसार, माया और सीता भारतीय नारीवाद के प्रतिनिधियों के रूप में सामने आती हैं। मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन के दौरान, हम माया और सीता को दमित नारी समुदाय के प्रतिनिधियों के रूप में देख सकते हैं। माया की न्यूरोसिस से निपटने के लिए अप्रत्याशित रूप से हिंसा हो जाती है, जबकि सीता के साथ समझौता और समायोजन से शाँति से घर लौटते हैं। ऐसा माना जाता है कि अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी के मनोविज्ञान को गहराई से समझने का प्रयास किया है। वह हमेशा अपनी मनोवैज्ञानिक भावनाओं को बताती हुई कहती हैं कि,

> It has been my personal luck that my termperament and circumstances have combined to give me the shelter, privacy and solitude required for the writing of such novels, there by avoiding problems a more objectives writer has to deal with since he depends upon observation rather than a private vision. (A critical study of Anita Desai's novels 52)

उनकी लेखनी के माध्यम से पात्रों की आन्तरिक मनोवैज्ञनिक गूँज सामने आती है। ज्यादात्तर उनके उपन्यासों में नारी-पुरुष के आपसी सम्बन्धों, उत्तार-चढ़ाव और व्यक्तित्व को स्थापित करते पात्र ही सामने आते हैं। उन्होंने अपने पात्रों का चयन साधारण न लेकर उनकी विलक्षण मनोवैज्ञानिकता को ही बनाया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी आत्मनिरीक्षण की दुर्दशा को अत्यंत मार्मिक ढँग से प्रस्तुत किया है। व्यक्ति के भावों और आत्मिक अकेलेपन को अनीता देसाई के उपन्यासों की रीढ़ माना जाता है। मधुमालती के शब्दों में,

> In her novels, the moral values of women are conveniently altereted to suit the demands of men who treat them as their 'objects', 'possession' to be ruled and controlled by psychological insecurity nurtured in them through myths, customs and social discourse. (A critical study of Anita Desai's novels 53)

देसाई के उपन्यासों के पात्रों में परिस्थितियों और मनोविज्ञान का एक अच्छा सुमेल दिखाया गया है। भारतीय समाज में नारी के शादी होते ही कैसे वह रस्मों और रिवाजों में अपना आप खो बैठती है, उन सभी के माध्यम से भारतीय शादीशुदा नारी को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उनका चित्रण किया गया है। एक नारी जो शादी के बाद अपने अस्तित्व को खोजती रहती है। इसी सम्बन्ध में पूर्णिमा मेहता कहती हैं कि,

> The male characters are shown as free moving but their movement is always on the periphery. If they are placed within the female space they are shown as threatening presence. (A critical study of Anita Desai's novels 54)

देसाई के कई उपन्यासों में पुरुष पात्र नारी के विरोधी खड़े भी देखाई देते हैं। मनाक्षी मुखर्जी देसाई की पात्र माया के बारे में कहती हैं,

> Maya's slow advance towards insanity is the theme of the novel, and the main pattern is the contrast between woman's response to the world through her senses, and her husband's response through his intellect. (A critical study of Anita Desai's novels 54)

माया अपने पिता के घर में एकाँत प्रिय रहती है, अपने माता-पिता की देखभाल करती है अब उसे अपना वर्तमान एक बोझ सा प्रतीत होता है क्योंकि वह अपने भूत में मानसिक परेशानियों से कोसों दूर रहती थी। वह हमेशा अपनी शादी के बारे में परियों की कहानियों जैसा अराम, सुख और प्रेम करने वाला पति देखती थी परन्तु असलीयत उसके बिल्कुल विपरीत पाई जाती है। पिता का प्यार उसे बचपन से ही अपने आप से और समाज के साथ घुलने मिलने से दूर रखता है, "Maya's tragedy psychologically lies in this inadequate transference from the father to the husband." (A critical study of Anita Desai's novels 55)

शादी के बाद उसके पति गौतम की छवी पिता से बिल्कुल भिन्न दिखाई देती है। गौतम को यह महसूस होता है कि उसके पिता के हद से ज्यादा प्यार ने उसके व्यवहार को ऐसा बना रखा है कि वह किसी ओर के साथ रहना पसंद नहीं करती। उसके पिता ने ही उसकी स्वतंत्र सोच को अपने प्यार में जकड़ा हुआ है,

> Emotional alienation is the central problem of the novel. Her childlessness is on reason why Maya cares so much for her dog and Anita Desai explores the occasion of the dog's death to point out their singularities, the warm and cold-blooded reponses to the world about them and within them. (A critical study of Anita Desai's novels 57)

अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों के माध्यम से घरेलू झगड़ों के जाल में बूरी तरह घिरी नारी का चित्रण किया है। वह अपनी स्वतंत्र सोच और विचारों तक से हाथ धोती नज़र आती हैं चाहे वह शादी-शुदा, अविवाहित और बुजुर्ग औरत ही क्यों न हो। अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों के माध्यम से विवाहित और बाल विवाह की प्रथाओं को भी दिखाया है जहाँ लड़कियों के विधवा होने के बाद जो समाजिक सरोकारों को बूरी तरह झेलती हैं उनका भी स्टीक चित्र किया गया है जिसमें उनका ससुराल ही उनकी दुर्दशा का कारण बनता ही है किन्तु मायका परिवार भी उनको इन मुश्किलों से बाहर करने में असहाय प्रतीत होता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय में तीनों लेखकों के कथा-साहित्य में नारी मनोविज्ञान को विश्लेषित किया गया है। लेखकों ने अपने साहित्य में नारी के हर पक्ष का बहुत ही स्टीक ढंग से चित्रण किया है फिर चाहे वह पुरुष लेखक हैं या अनीता देसाई। तीनों लेखकों ने पुरुष और नारी पात्रों को पूर्णरूप से विश्लेषित किया है। लेखकों ने अपने कथा-साहित्य में नारी-जीवन और सामाजिक जीवन से जुड़े कई पक्षों को पूरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। मूल्य सापेक्ष व्यवस्था के अंर्तगत नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की माँग भी की है और सामाजिक व्यवस्था के विकास में नारी की भूमिका की सराहना भी करते हैं। नारी के अन्तरंग का और युगीन परिवेश का सूक्ष्म परीक्षण करने, अनुभूतियों की ईमानदारी अभिव्यक्ति और अद्भुत कल्पना-शक्ति के सामर्थ्य के बल पर लेखकों ने उपन्यासों की रचना की है और अपनी सृजनधर्मिता का परिचय दिया है।

अज्ञेय ने नारी को एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में मान्यता दी है। वह नारी की अस्मिता में विश्वास रखते हैं। नारी अस्मिता की भावना नारी को वह समझ देती है जिसके आलोक में वह अपने भले-बुरे पर विचार करती है। नारी की अपने सम्बन्ध में, अपने जीवन के सम्बन्ध में, क्या सोच है-इसका निर्णय उसकी अस्मिता से होता है। नारी की समाज में क्या पहचान है और वह उस पहचान के लिए जागरूक है या नहीं या वह किस प्रकार से अपनी पहचान बनाती है। अस्मिता से जुड़े इन सवालों को अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में उठाया है। इनके उपन्यासों की नारी में वह जज्बा है जिसके जरिए वे समाज में अपनी पहचान बनाए रखना चाहती हैं। लेकिन नारी चूँकि पुरुष के सुख भोग का साधन है अतः समाज उसे इतनी स्वतंत्रता नहीं देना चाहता कि वह अपनी एक अलग पहचान बना सके। नारी की पहचान किसी की माँ, बहन, बेटी या पत्नी आदि के रूप में ही की जा सकती है। नारी भले ही कितनी समर्थ हो, लेकिन पुरुष के बिना उसके जीवन की सार्थकता नहीं। समाज में नारी को इतना अवसर नहीं दिया कि वह एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में अपने अस्तित्व का विकास कर सके। अज्ञेय इस प्रवृत्ति का विरोध करते हैं। उनके लिए व्यक्ति की आज़ादी का सवाल प्राथमिक है।

नारी चूँकि स्वतंत्र नहीं थी, वह पुरुष की पराश्रित थी अतः उसके जीवन के सम्बन्ध में निर्णय लेने का अधिकार भी पुरुष का ही माना गया। पुरुष ही नारी के सम्बन्ध में निर्णय लेता है कि वह कैसे रहेगी किसके साथ रहेगी या किसके साथ नहीं रहेगी। पुरुष चूँकि इस तथ्य को स्पष्ट रूप से जानता है कि यदि नारी में चेतना आयेगी तो पुरुष का एकछत्र साम्राज्य समाप्त हो जाएगा। नारी में जब अपनी अस्मिता की चेतना आ जाएगी तो वह अपने अधिकारों की माँग ही नहीं करेगी, अपितु छीनकर अपने अधिकार ले लेगी।

नारी अपनी अस्मिता के प्रति जब तक जागरूक नहीं होती और शोषण का शिकार बनती रहती हैं। समाज में ऐसी भी नारी मिलती हैं जो शिक्षित और आधुनिक हैं लेकिन उनके पास वह दृष्टि नहीं है जिससे वह अपनी अस्मिता को पहचान सकें।

अज्ञेय ने 'शेखर: एक जीवनी' में मणिका के माध्यम से इस प्रकार की नारी का चित्रण किया है। सभ्यता का यह एक दूसरा दल था जहाँ नारी चर्चा एक वचन में होती थी और नारी जहाँ सभ्यता का केन्द्र थी। ये वे नारी हैं जो देर रात तक घर से बाहर रहना, पार्टीबाजी करने और पुरुषों के साथ मित्रता करने को ही वास्तविक स्वतंत्रता मान बैठती हैं। उन्हें लगता है कि पुरुष उनके चारों ओर मंडरा रहे हैं इसी में उनकी विजय है। मणिका का अनुभव कि चमड़ी के नीचे सब एक हैं उसके जीवन की विसंगति की कहानी आप ही कहता है। उसमें प्रतिभा थी लेकिन स्वयं को संयत रखने की दृढ़ता नहीं थी। ये नारी इस तथ्य को भूल जाती हैं कि यह स्वतंत्रता नहीं पुरुष समाज की गुलामी का ही प्रतीक है। ऐसी नारी की प्रशंसा कर पुरुष वास्तव में उन्हें बेवकूफ बना रहा होता है। ऐसा नहीं कि उसके मन में उनके लिए कोई विशेष स्थान है। इन नारी के अपने स्वतंत्र अस्तित्व की कोई पहचान नहीं होती। पश्चिम के मद में डूबी मणिका जैसी नारियाँ अपनी वास्तविक पहचान खो बैठती है।

अज्ञेय के उपन्यासों में उन नारी का भी चित्रण किया है जो अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक हैं और समाज में अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनाने के लिएसंघर्षशील हैं। अपनी अस्मिता के लिए, अपनी पहचान बानए रखने के लिए समाज और घर-परिवार से संघर्ष करती हैं। जरूरत पड़ने पर अपने प्रिय व्यक्ति को छोड़ने से भी नहीं झिझकती, जिनके कारण उनकी अस्मिता पर आँच आ रही हो। उपन्यासकार नारी को अपना जीवन आप बिताने के लिए चयन करने की स्वतंत्रता देने के पक्षधर हैं। अपनी अस्मिता के प्रति चेतन जागरूक नारी कभी भी यह सहन नहीं कर सकती कि उसके जीवन का निर्णय कोई और ले। वह स्वयं इतनी जागरूक है कि अपने भले-बुरे का निर्णय स्वयं कर सकती है और इसमें किसी का हस्तक्षेप उसे स्वीकार्य नहीं। वे स्वयं अपनी सामर्थ्य को पहचानती हैं और इसी कारण किसी भी दायरे को तोड़कर आगे बढ़ना चाहती हैं। जिससे कि वे अपनी स्वतंत्र पहचान बना सकें। नारी अस्मिता की समस्या नारी की स्वतंत्रता से जुड़ी समस्या है। समाज में नारी को इतने बँधनों में जकड़ दिया जाता है कि कभी-कभी तो उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। मोक्ष

के लिए पुत्र का होना अनिवार्य है। इसी धारणा के चलते कन्या शिशु की हत्या कर दी जाती है। ऐसे समाज में अस्मिता का प्रश्न अस्तित्व के प्रश्न से भी जुड़ जाता है। अपने अस्तित्व की, अपनी अस्मिता की लड़ाई नारी को स्वयं ही लड़नी होगी तब ही वह अपना व्यक्तित्त्व बनाए रखने में सफल हो सकती है। 'शेखर एक जीवनी' में शेखर की मान्यता है कि वैवाहिक जीवन के लिए वरण का अंतिम अधिकार नारी को ही होना चाहिए। उसे संस्कारों और परम्पराओं की झूठी वेदी पर बलिदान नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु यह पहल नारी को ही करनी होगी, अंतिम निर्णय उसी को लेना होगा।

साहित्यकारों के उपन्यासों की नायिकाएँ पति को ही सब कुछ नहीं मानतीं। समाज की दोहरी मानसिकता का विरोध करती हैं और अपना जीवन अपने आप जीने का मुद्दा रखती हैं। वे अपने निर्णय स्वयं लेती हैं और इस तरह समाज में अपनी एक अलग पहचान बनाने में सक्षम होती हैं।

भारतीय समाज में विवाह को एक प्रकार से नारी के लिए अनिवार्य-सा कर दिया है। पतिगृह को ही उसका वास्तविक घर कहा जाता है। लड़की को आरम्भ से ही सुगृहणी बनने की शिक्षा दी जाती है। यही कारण है कि अधिकांश नारी विवाह में ही अपने जीवन की सार्थकता देखती हैं। लेकिन अज्ञेय के उपन्यासों की नारी अपनी अस्मिता की राह में रुकावट बनने वाले सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करतीं। इनकी नारी में अपने जीवन का निर्णय आप लेने का साहस है। इस साहस के कारण उन्हें जीवन में संघर्ष करना पड़ता है, वे पुरुष के हाथों छली जाती हैं, लेकिन पराजित नहीं होतीं। यही जिजिविषा उनके जीवन को एक नया अर्थ देती है। उनकी अस्मिता को पहचान देकर उनके व्यक्तित्त्व को उल्लेखनीय बनाती है। अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक वास्तविक्ताओं का बहुत ही अच्छे ढँग से वर्णन किया है। उपन्यास को लिखने का उनका उद्देश्य खुद को खोजना, सौंदर्यवाद, एक नारी की मानसिकता की गहराई से जाँच करना और समाज के साथ इसके सम्बन्धों को दिखाना है।

आधुनिक भारतीय अँग्रेजी साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यास में प्रमुख उनके पात्रों के चरित-चित्रण की कला है। उनका मानना है कि मनोविज्ञान नारी के आन्तरिक क्रिया-कलाप और उनकी प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत करता है। उनके उपन्यासों की नारी पात्र माया और सीता मानसिक तनाव से पीड़ित पात्र हैं इनकी भावनात्मक दुनिया की खोज अनीता देसाई अपनी लेखनी के माध्यम से करती हैं। निस्संदेह अनीता देसाई समकालीन भारतीय नारीवादवादी उपन्यासकारों की सर्वोच्च स्थिति में विराजमान है। परिवार, सामाज, आर्थिक लेन-देन की प्रकृति उनके प्रमुख उपन्यासों में अतिसंवेदनशीलता से स्थान पाया है। उनके उपन्यास सार्वभौमिक नारीवाद का प्रतीक हैं। उन्होंने नारी की अनियंत्रित पीड़ा, अविवेक पति, पिता के अधीन पुत्री की मानसिकता, श्रमिक वर्ग की दुखी कष्टदायी दुर्बलता आदि ज्वलंत विषयों के साथ अपनी कल्पना को निभाया है। पुरुष प्रधान समाज के खिलाफ देसाई मातृप्रधान समाज को उजागर करना चाहती है। उन्होंने अपने आंतरिक नज़रिए के साथ नारीवादी संदेश को सार्वभौमिक बनाया है, किन्तु स्वयं को नारीवादी लेखक के रूप में समझने की कोई इच्छा नहीं रखती है। अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों में अन्तःमन की उदासी अवसाद, निराशावाद, आत्म-तूफान से पीड़ित, अत्याचार और स्व-निराश नारीवाद के सूक्ष्म चित्रों पर केंद्रित है। उपन्यासकार मनोवैज्ञानिक असंगति, वैवाहिक अराजकता और विवादित दुविधाओं की स्पष्ट और अस्पष्ट कटौती की समस्याएँ, नर और मादा के बीच लगातार बढ़ती नफरत और तुच्छ असहमति की चर्चा करती है। उनके उपन्यासों में नायक और नायिकाओं के साथ, दुनिया, समाज, परिवार, माता-पिता, और यहाँ तक कि अपने स्वयं से भी अलग-थलग हो गए हैं, क्योंकि वे सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। उनकी नारी-चरित्र की कलाएँ शानदार हैं। नारीत्व और नारीत्व सामाजिक अनुबन्धों से घिरे नहीं हैं उनकी कहानी और उपन्यास नारी की संवेदनशीलता और व्यवहारिकता के माध्यम से अर्थ प्रस्तुत किए जाते हैं। देसाई का

उद्देश्य प्रकृतिक, सामाजिक और कट्टरपंथी बँधनों की जाँच करना है। दुःख और दुखद दिल का विषय और एक अनजान विवाह-बँधन के कारण नारी के मन में अवसाद और अलगाव के कारण उनके लोकप्रिय उपन्यासों पर प्रभाव पड़ा। अनीता देसाई को एक आंतरिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में माना जाता है क्योंकि उनकी मुख्य चिंता नारी की मानसिकता के नाजुक और अस्पष्ट माहौल के साथ मिलती-जुलती है। प्रेरणा, विवेक और मानसिक उत्तेजना और अपने परिवेश के नारी समुदाय के तूफानी मनोविज्ञान के अशान्त आन्दोलन को देसाई ने अपने उपन्यासों में मुख्य घटनाओं के साथ पेश किया जाता है। अनीता देसाई ने अपने शक्तिशाली पात्रों के गहन और गहरे विचारों को बढ़ावा देने के द्वारा नारी की खोजों का स्पष्ट चित्रण चित्रित किया। अनीता देसाई ने अपने नारी पात्रों को सुगमता और समझदारी के साथ आगे बढ़ाया है, जो उनके उपन्यास-संसार के माध्यम से अपने सौंदर्यवाद को उज्ज्वल करता है। देसाई के पात्र समृद्ध वर्गों या भारतीय समाज से हैं जो कि उन्हें जीवित रहने और अस्तित्व के लिए जीवन के संघर्ष की व्यवहारिकता से निपटना मुश्किल नहीं है। देसाई वर्गीकृत पात्रों के बारे में लिखती हैं क्योंकि वह उन्हें तीव्र ज्ञान और समझदारी के साथ समझती है। अनीता देसाई ने चरित्र और प्रकृतिक परिवेश को प्रतीक चिन्ह के माध्यम से लक्षण वर्णन और घटनाओं की कला में परिपूर्ण प्रतीकात्मक चित्रण के माध्यम से उत्कृष्ट और कलात्मक रूप से काल्पनिक दुनिया में सामाजिक बँधनों के एक समान मिश्रण में हस्तक्षेप किया है। अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों में से अधिकाँश में वास्तविक्ता को बहुत ही सुविख्यात और साहसी ढँग से वर्णित किया है।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई ने अपने कथा-साहित्य में नारी के हरेक पक्ष का बखूबी चित्रण किया है। तीनों लेखकों के नारी पात्र यदि समाज में किसी तरह की समस्याओं का सामना भी करते हुए दिखाई देते है, उन्हें भी लेखकों ने एक सामाजिक समस्याँ के नाते दिखाने का प्रयास किया है। लेखकों के कथा साहित्य में देखा गया है कि नारी अपने त्याग, आत्म-बलिदान, क्षमाशीलता, विद्रोही भावना,

भावनात्मक अन्तर्द्वन्द्वात्मकता के कारण अपने अस्तित्व को ढूँढने का प्रयास करते हुए दिखाई पड़ते हैं। वहीं दूसरी और नारी की समस्याओं को लेखकों ने अपने कथा-साहित्य में उजागरित करने का प्रयत्न भी किया है।

अध्याय पाँच

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में समाज मनोविज्ञान

समाज मनोविज्ञान एक महत्त्वपूर्ण शाखा है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के मानसिक जीवन एवं चरित्र का अध्ययन सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर किया जाता है। मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक की सब मानसिक प्रक्रियायें एवं प्रवृत्तियाँ विभिन्न सामाजिक घटकों से प्रभावित रहती हैं। मनोविज्ञान की तरह समाज मनोविज्ञान के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु मानवी व्यवहार ही है। समाज मनोविज्ञान विशेष रूप से उस मानवी व्यवहार द्वारा उद्दीप्त होकर अनुक्रिया के रूप में किया जाता है। समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का विवेचन सामाजिक दशा और मानवीय अन्तः क्रियाओं के सन्दर्भ में करता है। व्यक्ति के जटिल मानसिक जीवन को सामाजिक पर्यावरण किस प्रकार रूपायित करता है, उसकी आदतों में वह किस प्रकार के प्रभाव डालता है, इन सभी प्रश्नों का उत्तर समाज मनोविज्ञान ही दे सकता है। यह वह विज्ञान है, जो समाज में व्यक्ति के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। इस तरह समाज में रहने वाले व्यक्ति को समझने का विज्ञान ही वास्तव में समाज मनोविज्ञान कहलाता है। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा-साहित्य में समाज मनोविज्ञान के विभिन्न अंगों को प्रस्तुत किया गया है। इन लेखकों ने समाज में रह रहे व्यक्ति विशेष की सामाजिक रीतियों और मर्यादाओं इत्यादि को अपनी कृतियों के माध्यम से सशक्त पेश करने की कोशिश की है। फिर चाहे वह सामाजिक बुराईयाँ ही क्यों न हो, उनके खिलाफ भी लेखकों ने अपनी आवाज़ उठाकर बखूबी ढंग से अपने कथा-साहित्य में दर्शाया है। इस अध्याय में समाज मनोविज्ञान का अर्थ, परिभाषाएँ बताते हुए समाज मनोविज्ञान का अन्य विज्ञानों के साथ सम्बन्ध को बताते हुए सामाजिक मानदण्डों भी बताए गए हैं। जिसके आधार पर लेखकों के कथा-साहित्य में समाज मनोविज्ञान देखा गया है।

समाज मनोविज्ञान का अर्थ, परिभाषाएँ एवं स्वरूप

यह विज्ञान व्यक्ति और समाज की पारस्परिक प्रतिक्रियाओं और इनसे प्रभावित व्यक्ति की भावनाओं, संवेगों, अनुभवों और विचारों का विशेष रूप से अनुशीलन करता है। मनुष्य समाज तथा उसमें मनुष्य की प्रकृति व व्यवहार को अधारभूत मानते हुए मनोवैज्ञानिकों ने समाज मनोविज्ञान को अपने ढंग से परिभाषित किया है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वी. वी. अकोलकर के अनुसार, "समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के सामाजिक पर्यावरण के विशेष सन्दर्भ में व्यक्ति के मानसिक जीवन और व्यवहार का अध्ययन है।" (समाज मनोविज्ञान 3) सामाजिक पर्यावरण के विशिष्ट सन्दर्भ में व्यक्ति के मानसिक जीवन और व्यवहार के अध्ययन को ही वे समाज मनोविज्ञान के नाम से पुकारते हैं। वातावरण ही व्यक्ति की क्रियाओं, व्यवहारों और अनुभवों को प्रभावित करता है। मानसिक जीवन से अभिप्राय संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, कल्पना, संवेग, स्मृति तथा अधिगम आदि व्यक्ति की नाना ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं से हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक किम्बल यंग अपनी हैंड बुक ऑफ सोशल साइकॉलजी में कहते हैं, "व्यक्ति की अन्तक्रियात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन से समाज मनोविज्ञान का सम्बन्ध है।"(हैंड बुक ऑफ सोशल साइकॉलजी 1) इससे यह व्यक्त होता है कि समाज मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों की एक-दूसरे के साथ प्रतिक्रिया का अध्ययन करता है। अन्तक्रियाओं के द्वारा ही व्यक्ति का अन्य व्यक्ति से, व्यक्ति का समूह से और समूह का अन्य समूह से सम्बन्ध स्थापित होता है। शेरिफ और शेरिफ अपनी समाज मनोविज्ञान पुस्तक में कहते हैं, "सामाजिक उद्दीपकों के बारे में व्यक्ति के अनुभवों और व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन समाज मनोविज्ञान है।" (समाज मनोविज्ञान 8) व्यवहार जो समाज के सन्दर्भ में परिलक्षित होता है, समाज मनोविज्ञान के अध्ययन का केन्द्रबिन्दु है। व्यक्ति समाज में जिन-जिन उद्दीपनों को देखता है, परखता है तथा ग्रहण करता है, वहीं उसे परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार करने के लिए प्रेरित तथा संचालित करते हैं। किम्बल यंग अपनी हैंड बुक ऑफ सोशल साइकलॉजी में आगे कहते हैं,

> व्यक्ति स्वयं दूसरे व्यक्तियों से प्रभावित रहता है तथा उस व्यक्ति को भी प्रभावित करता है। विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के व्यवहार विभिन्न प्रकार के होते हैं, क्योंकि हर व्यक्ति की निजी विचारधारायें, भावनाएँ, संवेग तथा आदतें हैं। (हैंड बुक ऑफ सोशल साइकॉलजी 2)

कुप्पुस्वामी इसी का समर्थन करते हुए अपना विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं, "समाज मनोविज्ञान, सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्तियों की अन्तक्रियाओं द्वारा उत्पन्न सम्बन्धों का अध्ययन करता है। संक्षेप में इसका सम्बन्ध समाज में व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और कार्यों से है।" (हैंड बुक ऑफ सोशल साइकॉलजी 5) स्पष्ट है कि समाज मनोविज्ञान मनुष्य प्रकृति के व्यवहारों का अध्ययन है जो मनुष्य को समाज में गतिमान रहने में योगदान देता है। इस प्रकार मनोविज्ञान समाज में मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है।

जितनी भी परिभाषाएँ यहाँ दी गई हैं, उन सभी में व्यक्ति की समाज के साथ प्रतिक्रिया पर बल दिया गया है। व्यक्तिगत व्यवहार उस समय, जबकि व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के साथ प्रतिक्रिया करता है, उसकी अपनी प्रकृति पर निर्भर है। किन्तु सामाजिक पर्यावरण, सामाजिक पृष्ठभूमि, सामाजिक गतिविधियाँ भी बहुत बड़ी सीमा तक उसके व्यवहार के लिए उत्तरदायी हैं। यह समझने केलिए एक व्यक्ति किसी विशेष सामाजिक स्थिति में किस प्रकार का व्यवहार करेगा, इसका अध्ययन आवश्यक है। वही समाज मनोविज्ञान कहलाता है। निष्कर्षः यह कह सकते हैं कि समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है, जब वह दूसरे व्यक्तियों के संपर्क में आता है या किन्हीं सामाजिक समूहों के साथ प्रतिक्रिया करता है।

समाज मनोविज्ञान का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध

समाज मनोविज्ञान का दूसरे विज्ञानों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि यह अभी नए रूप में सामने आया है इसलिए इसका दूसरे विज्ञानों के साथ परस्पर आदान-

प्रदान के साथ सम्बन्ध और घनिष्ठ होते जा रहा है क्योंकि हर घटना समाज में होती है और उसके पीछे किसी न किसी मानसिकता की वजह आवश्य होती है। इसीकारण समाज मनोविज्ञान को अन्य विज्ञानों से अलग नहीं किया जा सकता।

समाज मनोविज्ञान और सामान्य मनोविज्ञान

समाज मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान से बहुत घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। सामान्य मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है। वह व्यक्ति का ऐसा अध्ययन बिना उसके सामाजिक वातावरण पर ध्यान दिए ही करता है। लेकिन समाज मनोविज्ञान का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार के सम्बन्ध में सर्वमान्य सिद्धान्तों की समझ हासिल करना है। किन्तु समाज में मानव व्यवहार का अध्ययन तब तक सम्भव नहीं है, जब तक कि सामान्य रूप से व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन नहीं किया जाता। सामजिक स्थितियों से अलग रखकर व्यक्ति के व्यवहारों पर विचार असम्भव है। इस तरह सामान्य मनोविज्ञान और समाज मनोविज्ञान में सम्बन्ध इस कारण से भी है कि दोनों में व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन उसे एक सामाजिक प्राणी मानकर ही किया जाता है।

समाज मनोविज्ञान और असामान्य मनोविज्ञान

जैसा कि नाम से स्पष्ट है असामान्य मनोविज्ञान व्यक्ति के असामान्य व्यवहार का अध्ययन करता है। समाज मनोविज्ञान बहुत वड़ी सीमा तक व्यक्तियों के असामाजिक, असामान्य व्यवहार को समझने के लिए असामान्य मनोविज्ञान पर निर्भर है। यदि किसी व्यक्ति का व्यवहार असामान्य या असामाजिक है तो उसके इस व्यवहार के वास्तविक कारणों को असामान्य मनोविज्ञान की सहायता से ही पहचाना जा सकता है। इस प्रकार समाज-मनोविज्ञान के अध्ययन केलिए असामान्य मनोविज्ञान का अध्ययन सहायक सिद्ध होता है।

समाज मनोविज्ञान और समाजशास्त्र

समाजशास्त्र समाज के संगठन, आकार, रचना, निर्माण, कार्य, विकास का क्रम आदि का अध्ययन करता है। बी. कुप्पु स्वामी पुस्तक इन इंट्रोडक्शन टु सोशल साइकलॉजी में कहते हैं, "समाज शानारी मानव-व्यवहारों के उन सभी रूपों का विवेचन करता है, जो समूह में दृष्टिगोचर होते हैं।" (इन इंट्रोडक्शन टु सोशल साइकलॉजी 10) समाज मनोविज्ञान भी समूह में दृष्टिगोचर होनेवाले व्यक्तिगत व्यवहार पर प्रकाश डालता है। समाज मनोवैज्ञानिक उस समय तक कुछ नहीं समझ पाता जब तक वह समाज की बनावट और संस्कृति क अध्ययन नहीं करता। समाजशास्त्र व्यक्ति का अध्ययन उसी सीमा तक करता है, जिस सीमा तक वह अध्ययन समाज को समझने में सहायता प्रदान करता है। लेकिन समाज में व्यक्तिगत व्यवहार के जो आन्तरिक कारण हैं, उनका अध्ययन समाज मनोविज्ञान ही करता है। समाजशास्त्र की अनेक समस्याओं का समाधान भी समाज मनोविज्ञान की सहायता से ही सम्भव है। समाजशास्त्र का दृष्टिकोण सामाजिक है, जबकि समाज मनोविज्ञान का दृष्टिकोण वैयक्तिक है। इस तरह कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक के लिए समाजशास्त्र का अध्ययन और समाजशानारी के लिए समाज मनोविज्ञान का अध्ययन अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

समाज मनोविज्ञान और मानवशास्त्र

समाज मनोविज्ञान का मानवशास्त्र के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनोविज्ञान व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन है, जबकि मानवशास्त्र समूह-व्यवहार का अध्ययन है। के.जी.के पेनीकर पुस्तक इन इन्ट्रोडक्शन टु सोशल साइकलॉजी में कहते हैं, "समाज मनोविज्ञान समाज में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है तो मानवशास्त्र सामूहिक व्यवहार का।" (इन इंट्रोडक्शन टु सोशल साइकलॉजी 16) मानवशास्त्र जब व्यक्ति पर विचार करने लगता है, तब वही समाज मनोविज्ञान बन जाता है।

मानवशास्त्र सम्पूर्ण संस्कृति का वर्णन व विकास का अध्ययन करता है। संस्कृति के सम्बन्ध में किए गये अध्ययन समाज मनोविज्ञान के विकास में सहायक हुए हैं, क्योंकि समाज मनोविज्ञान भी व्यक्ति का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में ही अध्ययन करता है।

प्राणिशास्त्र, शरीरशास्त्र और समाज मनोविज्ञान

प्राणिशास्त्र और शरीरशास्त्र का समाज मनोविज्ञान से गहरा सम्बन्ध है। प्राणिशास्त्र वंशानुक्रम का अध्ययन करता है और यह मानता है कि इसका प्रभाव सामाजिक व्यवहार पर निश्चित रूप से पड़ता है। व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार का आधार समझने के लिए प्राणिशास्त्र का अध्ययन भी अनिवार्य है। डॉ. एस.एम.माथुर समाज मनोविज्ञान नामक पुस्तक में कहते हैं कि,

> शरीरशास्त्र का सहयोग प्राप्त होने से ही समाज मनोविज्ञान का अध्ययन हम अच्छी तरह कर सकते हैं क्योंकि संवेग एक बड़ी सीमा तक समाज में व्यक्तियों के व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं। अतएव समाज मनोविज्ञान के अध्ययन में संवेगों के शरीरिक आधारों को समझना बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। (समाज मनोविज्ञान 34)

समाज मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र धन के उपार्जन एवं खर्च से सम्बन्धित विज्ञान है। यह उपज, वाणिज्य, धन के वितरण आदि का अध्ययन करता है। ये सभी क्रियायें सामूहिक हैं। ये व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं द्वारा संचालित हैं। अर्थशास्त्र के नियम समाज में व्यक्ति के जीवन को ध्यान में रखते हुए निर्धारित है। समाज मनोविज्ञान भी समाज में व्यक्तियों के रहने का अध्ययन करता है। उसमें किसी भी राष्ट्र की अनेक आर्थिक समस्याओं की पेचीदगी सुलझाने की क्षमता विद्यमान है। मिलों में हड़तालें क्यों होती है ? किस प्रकार से विज्ञापन प्रभावशाली हो सकते हैं ? श्रमिकों एवं मज़दूरों को कैसे संतुष्ट रखा

जा सकता है ? इन प्रश्नों का उत्तर समाज मनोविज्ञान के पास है। इस तरह ये दोनों विज्ञान एक-दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हैं।

समाज मनोविज्ञान और राजनीतिशास्त्र

अन्य विज्ञानों की तरह राजनीतिशास्त्र भी एक प्रमुख सामाजिक विज्ञान है। यह शास्त्र मुख्य रूप से विभिन्न राष्ट्रों के शासन-प्रबन्धों एवं सरकार के स्वरूपों का अध्ययन करता है। विभिन्न देशों के संविधानों का अध्ययन भी राजनीतिशास्त्र ही करता है। नागरिकों के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में अध्ययन भी इसी के अन्तर्गत आता है। संविधान का निर्माण व्यक्तियों द्वारा ही होता है। शासन-प्रबन्ध भी व्यक्तियों द्वारा ही चलाया जाता है। डॉ. एस.एस. माथुर अपनी पुस्तक समाज मनोविज्ञान में कहते हैं,

> किसी राष्ट्र विशेष के लोगों को ध्यान में रखकर ही उसमें व्यक्तियों के अधिकारों और कर्त्तव्यों का प्रतिपादन किया जाता है। इस प्रकार व्यक्ति का अध्ययन राजनीतिशास्त्र का अतिमहत्त्वपूर्ण अंग बन जाता है। दोनों विज्ञान जनमत, नेतृत्व, मतदान आदि से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करते हैं। अन्तर केवल इतना है कि राजनीतिशास्त्र केवल उन सामूहिक क्रियाओं का अध्ययन करता है, जो नियमों का निर्धारण करने और सरकार के संगठन से सम्बन्धित हैं, जबकि समाज मनोविज्ञान समाज में व्यक्ति के व्यवहार के विभिन्न रूपों का अध्ययन करता है। (समाज मनोविज्ञान 36-37)

इस प्रकार जनता की मनोवृत्ति को समझने का श्रेय समाज मनोविज्ञान को ही जाता है।

समाज मनोविज्ञान और रेडियो, टेलीविज़न, प्रेस तथा फिल्म

रेडियो, टेलीविज़न, फिल्म और प्रेस व्यक्तियों के अन्दर सामाजिक गुण और आदर्शों का विकास करने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। वर्तमान समाज में

सामाजिक आदान-प्रदान के सबसे महत्त्वपूर्ण, विपुल और सफल साधन-रेडियो, टेलीविज़न, प्रेस और फिल्म है। वास्तव में यह समाज मनोविज्ञान से इन रूपों में निकट से सम्बन्धित हैं कि वह समाज को और अच्छा बनाने के और व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण रखने के महत्त्वपूर्ण साधन है। इन्हीं संदेशवाहकों के द्वारा व्यक्ति का ध्यान सामाजिक समस्याओं की ओर आकृष्ट किया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन स्पष्ट प्रमाणित करता है कि समाज मनोविज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। यह व्यक्ति और समाज दोनों का अध्ययन करता है। जब कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के संपर्क में आता है या किसी सामाजिक स्थिति में अपने आपको पाता है, तब खड़ी होनेवाली समस्याएँ समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आती है। एक समाज मनोवैज्ञानिक को इस बात का भी अध्ययन करना पड़ता है कि व्यक्तियों के जन्मजात गुणों, योग्यताओं आदि में वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है। अनुकरण, सहानुभूति, संवेग इत्यादि बातें प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार पर प्रभाव डालती है। बालक अपने माता-पिता तथा परिवार के सदस्यों के व्यवहार से प्रभावित होता है और परिवार के सदस्य भी बालक के व्यवहार से प्रभावित होते हैं। एक व्यक्ति दूसरे के साथ किस प्रकार की प्रतिक्रिया करता है और इस प्रतिक्रिया को नियंत्रित करनेवाली शक्तियाँ कौन सी हैं ? ये सब समाज मनोविज्ञान क्षेत्र है। एक ही व्यक्ति विभिन्न सामाजिक समूहों के साथ विभिन्न प्रकार के व्यवहार क्यों करता है और एक ही सामाजिक स्थिति में विभिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रकार की व्यवहारिक प्रतिक्रियें क्यों करते हैं ? ये भी समाज मनोविज्ञान के लिए खोजपूर्ण विषय है। व्यक्तियों पर समाज के नैतिक नियमों का बन्धन रहता है। यह समाज की परम्पराओं को बनाये रखते हुए अपने कार्य करने की प्रेरणा मात्र है। समाज में व्यक्ति व्यवहार समाज सापेक्ष है। सामाजिक स्थितियाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालती हैं। समाज मनोविज्ञान मनुष्य की सामाजिक मूल प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हुए व्यवहारिक प्रकृति का आधार ढूँढ लेता है। इस प्रकार की सामाजिक मूल प्रवृत्तियों में पलायन, काम प्रवृत्ति, जिज्ञासा, अधीनता, पैतृक प्रवृत्ति आदि रहती है। समाज मनोविज्ञान मनुष्य प्रकृति के

उन व्यवहारों का अध्ययन करता है जो मनुष्य को समाज में गतिमान रहने में योगदान देते हैं।

समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र तथा मानदण्ड

समाजीकरण : बालक सामाजिक वातावरण की मदद से एक व्यक्ति के रूप में आकर शारीरिक, प्रेरणात्मक एवं बौद्धिक सम्भावनाएँ जिस स्तर तक प्राप्त कर सकता है, उसे सीमाबद्ध भी कर देती है। यह सतत चलनेवाली प्रक्रिया जिसके द्वारा बालक दूसरे व्यक्तियों के द्वारा प्रभावित होता है, जिसमें बालक के माता-पिता प्रमुख होते हैं, समाजीकरण कहलाती है। वी.वी अकोलकर के अनुसार,

> समाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यवहार के परम्परागत प्रतिमानों को व्यक्ति ग्रहण करता है। व्यक्ति का समाजीकरण तभी सम्भव है, जब दूसरे व्यक्तियों के साथ अन्तक्रिया करता है और संस्कृति के संपर्क में आता है जो उनको संचालित करती है। (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 130)

समाजीकरण में बालक के सामाजिक विकास से सम्बद्ध समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। उस समय ये सवाल उठते हैं कि बालक में सामाजिक गुणों का विकास किस प्रकार होता है। इन गुणों के विकास में किन कारकों का योगदान महत्त्वपूर्ण है कि व्यक्ति विशेष का व्यवहार अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आने से रूपान्तरिक हो जाता है। व्यवहार के रूपान्तर की यह प्रक्रिया ही समाजीकरण कहलाती है।

सामाजिक संज्ञान एवं प्रत्यक्षीकरण

किसी ज्ञानात्मक अनुभव से सम्बन्धित सभी प्रतिक्रियाओं की गणना संज्ञान के अंतर्गत की जा सकती है। व्यक्ति को स्मरण, कल्पना, चिंतन, निर्णय एवं तर्क का बोध संज्ञान द्वारा ही होता है। समाज में व्यक्तियों की संज्ञात्मक प्रक्रिया भिन्न-भिन्न होती है

क्योंकि वह उनके भौतिक और सामाजिक वातावरण, आवश्यकता और लक्ष्य, शारीरिक तथा मानसिक योग्यता तथा पूर्वानुभवों से प्रभावित है। सामाजिक परिस्थिति के सन्दर्भ में व्यक्ति के सम्पूर्ण ज्ञान का विस्तार ही प्रत्यक्षीकरण है। डॉ. के. एन. शर्मा समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त नामक पुस्तक में कहते हैं,

> किसी समूह या समाज का सदस्य बनने के लिए व्यक्ति उस समाज की परिस्थितियों को समझता है। उनसे अपने ज्ञान में वृद्धि करता है तथा उन्हें सीखकर वांछित व्यवहार जान लेता है। यदि उसका व्यवहार समाज के अनुरूप नहीं है तो उसका उस समाज का प्रत्यक्ष्ज्ञान ही उसे अपने व्यवहार में उपयुक्त परिवर्तन करने में सहायक होता है। (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 97)

सामाजिक अन्तक्रिया

समाज मनोविज्ञान एक व्यक्ति के अनुभव एवं व्यवहार, जो सामाजिक उत्तेजक परिस्थितियों के सम्बन्ध में होते हैं, का वैज्ञानिक अध्ययन है। व्यक्ति का सम्बन्ध उसके सामाजिक वातावरण के साथ किस प्रकार का होता है, इस सम्बन्ध में भी यह प्रकाश डालता है। जब हम व्यक्ति विशेष के व्यवहार का अध्ययन दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में करते हैं तो हम सामाजिक अन्तक्रियाओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। एक व्यक्ति के अनुभव एवं व्यवहार पर दूसरे व्यक्ति के अनुभवों एवं व्यवहारों का जो प्रभाव पड़ता है उनके अध्ययन पर ही सामाजिक अन्तक्रियाओं की हमारी अवधारणा निर्भर है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी सामाजिक समूह में व्यक्ति एक-दूसरे के साथ प्रतिक्रिया करता है और इस क्रिया को ही हम सामाजिक अन्तक्रिया कहते है। किम्बल यंग अन्तक्रिया को विस्तृत रूप में पारिभाषित करते हुए कहते हैं,

> अन्तक्रिया उस तथ्य की ओर संकेत करती है जिससे एक व्यक्ति का प्रत्युत्तर या उसकी शारीरिक गतिविधियाँ दूसरे केलिए उत्तेजक बनती

है और यह दूसरा व्यक्ति अब अपनी बारी में पहले को उचित जवाब देता है। (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 1)

डॉ. के.एन.शर्मा के अनुसार अन्तक्रिया में निम्नलिखित घटक प्रमुख्तः कार्यरत हैं-

संचार- एक व्यक्ति अपने भावों को दूसरे तक संचार द्वारा ही पहुँचाता है।

सहयोग- सहयोग अन्तक्रिया का प्रमुख अवयव है। अकेला व्यक्ति कोई कार्य नहीं कर सकता। अन्य लोगों की सहायता से वह अपनी आवश्यकताएँ सहयोग द्वारा मिलकर पूर्ण करता है।

समझौता- अन्तक्रियाओं के विकास केलिए विभिन्न व्यक्तियों या वर्गों में समझौता आवश्यक है।

द्वन्द्व- जब दो व्यक्तियों या वर्गों के विचार व कार्य विपरित प्रकृति के होते हैं तो उनमें द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती है।

समंजन- प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से व्यवहार में मैत्री भाव बनाये रखना चाहता है। इस समायोजन केलिए व्यक्ति को सहनशील होना पड़ता है।

आत्मसात्करण- नये पर्यावरण में घुल जाने की शक्ति आत्मसात्करण कहलाती है।

समाकलन- प्रत्येक सदस्य समूह या व्यक्तियों के सम्बन्धों को मधुर बनाये रखना चाहता है तथा दूसरी ओर उनका समाकलन भी। यदि सम्बन्ध मधुर नहीं रहता तो तनाव बढ़ता है व समाकलन कमज़ोर होता है जिससे उनके बीच आकर्षण की कमी हो जाती है।

प्रतिस्पर्धा- किसी अविभाजित लक्ष्य प्राप्ति केलिए दो या अधिक व्यक्तियों में सामाजिक प्रतिष्ठा व श्रेष्ठता अधिक पाने की इच्छा के कारण लोगों में प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न होती है।

प्रभुत्व- धनवान व्यक्ति निर्धन व्यति पर या मालिक सेवक पर प्रभुत्वात्मक अन्तक्रिया का प्रदर्शन करता है।

सामाजिक अभिप्रेरणा

सामाजिक अभिप्रेरणा के विषय में क्रेच फील्ड अपनी पुस्तक इन्ड्विज्ल इन सोसाइटी में कहते हैं,

> अभिप्रेरणा वह शक्ति है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए उत्तेजित करती है। वह व्यक्ति के व्यवहार की दिशाओं का निर्धारण करता है और उसकी क्रियाओं की गति का संचालन भी। इस तरह सामाजिक व्यवहार की प्रक्रियाओं को जागृत करनेवाली प्रक्रिया ही सामाजिक अभिप्रेरणा कहलाती है। (इन्ड्विज्ल इन सोसाइटी 69)

अभिप्रेरणा का अवलोकन प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता। उसके होने का आभास व्यवहार के पर्यवेक्षण से ही मिलता है। कार्य की दिशा और स्थायित्व का अध्ययन ही अभिप्रेरणा का अध्ययन है।

सामाजिक अभिवृत्तियाँ

सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया का आधार उसकी अभिवृत्तियाँ है तथा उसके समायोजन में इन अभिवृत्तियों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। अभिवृत्तियों के द्वारा व्यक्ति का व्यवहार संचालित रहता है। क्रच एवं क्रच फिल्ड इसकी परिभाषा इस प्रकार देते हैं, “यह चिरस्थायी संप्रेरणाओं, संवेगों प्रत्यक्षीकरण एवं ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का ऐसा एक संगठन है जो व्यक्ति की दुनिया के कुछ रूपों से सम्बद्ध है।” (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 152) अभिवृत्तियाँ स्थायी या जन्मजात नहीं होती, प्रत्युत समाज तथा पर्यावरण के अनुसार परिवर्तित होती है। इन अभिवृत्तियों के द्वारा ही व्यक्ति किसी विशेष घटना, वस्तु, परिस्थिति तथा व्यक्ति के प्रति प्रतिक्रिया करने के लिए प्रेरित होता है। अभिवृत्तियों के निर्माण एवं विकास में प्रेरणात्मक, सांस्कृतिक तथा प्रकार्यात्मक कारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। किम्बल यंग के अनुसार,

> हर अभिवृत्ति अनिवार्य रूप से किसी पूर्वज्ञान का प्रत्युत्तर है। क्रिया का प्रारम्भ है जो आवश्यक नहीं कि पूर्ण हो। प्रतिक्रिया की इस तत्परता में किसी प्रकार की उत्तेजनात्मक स्थिति चाहे वह विशिष्ट हो या सामान्य सम्मलित रहती है। (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 77)

सामाजिक अभिवृत्तियों के अन्तर्गत प्रतिबद्धता, सहयोग, समरूपता तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की अभिवृत्ति आदि सम्मलित है। विशिष्ट व्यक्तियों के प्रति अभिवृत्तियों से तात्पर्य है हमारे उन व्यवहारों से जो अपने माता-पिता के साथ, भाईयों के साथ, दूसरे सम्बन्धियों के साथ विभिन्न रहते हैं। भिन्न समूहों जैसे- धार्मिक समूह, भाषायी समूह के प्रति हमारी अभिवृत्तियाँ विभिन्न ही होती हैं।

जनमत- किसी वस्तु या घटना के सम्बन्ध में व्यक्तियों के विचारों और निर्णयों के सामूहिक रूप को जनमत कहा जाता है। जनमत बनाने में समूह तभी सफल हो सकता है जब उसमें सभी सदस्यों के बीच आदान-प्रदान, विचार-विमर्श सम्भव हो। इसमें ज्ञानात्मक तत्व अथवा ज्ञान प्रमुख होता है। जनमत के निर्माण में प्रेस, समाचार पत्र, रेडियो, चलचित्र, सास्कृतिक संस्थाएँ आदि विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

प्रचार- व्यक्तियों के मत तथा अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाने केलिए प्रचार का महत्त्व रहता है। प्रचार का प्रयोग यदि अच्छे कार्यों के लिए किया जाय तो यह सामाजिक सुधार के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन है। लोकतंत्र में जनमत तथा प्रचार, दोनों का महत्त्व है। किम्बल युंग अपनी समाज मनोविज्ञान नामक पुस्तक में कहते हैं, "प्रचार कभी-कभी हानिकारक भी हो सकता है क्योंकि प्रचार विचारों, मतों, अभिवृत्तियों का प्रभार है, जिसका वास्तविक उद्देश्य सुनने या पढ़नेवाले को स्पष्ट नहीं किया जाता है।" (समाज मनोविज्ञान 653) इस परिभाषा के अनुसार प्रचार करने वाले वास्तविकता को छिपाकर भी लोगों तक अपने विचार पहुँचा देता है।

पूर्वधारणा- समाज मनोविज्ञान में पूर्वधारणा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बी. कुपु स्वामी अपनी पुस्तक इन इन्ट्रोडक्शन टु सोशल साइकलॉजी में कहते हैं, "पूर्वधारणाएँ ऐसे निर्णयों पर आधारित होती है जिनका कोई अस्तित्व नहीं होता।" (इन्ट्रोडक्शन टु सोशल साइकलॉजी 296) पूर्वधारणाएँ और रूढ़ियुक्तियों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अभिवृत्तियों का निर्माण पूर्वधारणाओं से ही होता है।

सामाजिक मानक

सामाजिक मानकों के द्वारा समाज में व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित किया जाता है। ये मानक व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। परम्परा, रूढ़ि, कानून, प्रथा, फैशन, टैबू आदि सामाजिक मानकों के अनेक रूप हैं।

परम्परा- परम्परा को हम सामाजिक आनुवंशिकता भी कह सकते हैं। परम्परा से अभिप्राय उन सब विचारों, व्यवहारों की आदतें तथा प्रथाओं से है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है। ड्रेवर इसका समर्थन करते हुए लिखतें हैं, "यह कानून, प्रथा, कहानी, किंवदन्ती का ऐसा संग्रह है जो मौखिक रूप से एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करती है।" (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 197) समाज के लिए परम्पराएँ आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि समाज के विचार, विश्वास एवं क्रियाएँ परम्परा द्वारा ही बनाये जाते हैं।

प्रथा- किसी सामाजिक परिस्थिति में व्यवहार की विधि को प्रथा कहते हैं। यह व्यवहार के प्रतिमान समाज के प्रत्येक सदस्य में सर्वमान्य होते हैं। वी.वी. आकोलकर अपनी पुस्तक समाज मनोविज्ञान में कहते हैं, "प्रथाएँ सामाजिक एकता का मूलाधार है और समाज केलिए उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण भी हैं।" (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 187)

कानून- कानून के द्वारा समाज में व्यक्ति का जीवन सुरक्षित रहता है तथा उसके कर्त्तव्यों और अधिकारों का निर्धारण भी होता है। यह संगठित समाजों में पाये जाते हैं जिनमें सरकार होती है।

जनरीतियाँ- व्यवहार की लोकप्रिय रीतियाँ, जिसको समाज ने स्वीकृति दी है, जनरीतियाँ कहलाती है। प्रत्येक समाज की जनरीतियाँ अलग-अलग होती है।

रूढ़ियाँ- जनरीतियाँ जिनके साथ समूह-कल्याण की भावना जुड़ी होती है उसे ही रूढ़ियाँ कहते हैं। रूढ़ियाँ भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है।

नेतृत्व- नेतृत्व वह व्यवहार है जो अनुयायियों के व्यवहार की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। अच्छे नेतृत्व के द्वारा अनुयायी लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होते हैं। लैपियर एवं फ्रान्सवर्थ के अनुसार, "नेतृत्व वह व्यवहार है जो कि दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों को उससे कहीं अधिक प्रभावित करता है जितना कि उनका व्यवहार नेता को प्रभावित करता है।" (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 257) मैकाइवर और पेज के अनुसार, "नेतृत्व से हमारा तात्पर्य उस योग्यता से है, जिसके द्वारा व्यक्तियों को कायम किया जाता है या उनका पथ-प्रदर्शन किया जाता है।" (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 146) इस प्रकार नेता वह व्यक्ति होता है जो दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार का नेतृत्व करता है। नेतृत्व के द्वारा समाज में व्यक्तियों को प्रोत्साहित, निर्देशित तथा नियंत्रित किया जाता है। डॉ. के.एन शर्मा पुस्तक समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त में कहते हैं, "नेता अपने गुणों द्वारा जनता को अपनी ओर खींचता है, उससे अपनी बात को मनवाता है, जनता सहर्ष उसका पीछा करती है।"(समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 280) एक नेता के कार्य उस समूह पर निर्भर है जिसका कि वह नेतृत्व करता है। यह कार्य समूह की बनावट और उद्देश्य पर निर्भर है।

व्यक्तित्व और संस्कृति

व्यक्तित्व और संस्कृति घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। व्यक्ति जिस संस्कृति में जन्म लेता है तथा पलता है, उसी से सब कुछ सीखता व उसी के अनुरूप व्यवहार करता है। व्यक्ति का हर व्यवहार उसके पर्यावरण के अनुरूप होता है। क्रच और क्रेच फील्ड एवं बेलेची के अनुसार,

> व्यक्ति और संस्कृति का सम्बन्ध एकतरफा नहीं है। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। एक ओर व्यक्ति पर संस्कृति के व्यापक प्रभावों के कारण समाज में स्थिरता तथा उसकी संस्कृति में निरंतरता आती है, दूसरी ओर व्यक्ति भी संस्कृति को प्रभावित करता है, जिसके फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन सम्भव होता है। (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 341)

व्यक्तित्व उस संगठित रूप की ओर संकेत करता है जिसमें व्यक्ति की आदतें रूप गुण, विचार, व्यवहार, प्रेरणाएँ, उद्देश्य, अभिवृत्तियाँ और उसकी सामाजिक भूमिका तथा सामाजिक स्थिति अन्तर्निहित होती हैं। संस्कृति व्यक्तित्व को पुष्ट करने का साधन है। उसका व्यक्तित्व पर प्रभाव न केवल जन-जातियों में ही महत्त्व रखता है बल्कि वे प्रभाव सांस्कृतिक विकास होने पर भी विद्यमान रहते हैं।

सामाजिक परिवर्तन

व्यक्तियों अथवा समूहों के सम्बन्ध में रूपान्तर हो जाने पर सामाजिक परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन समाज की संरचना एवं उस समाज के सांस्कृतिक प्रतिमानों तथा व्यक्तियों में होते हैं। इस तरह समाज में होनेवाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। सामाजिक परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था का अंग है। प्रो. के.जी.के पेनीक्कर के अनुसार, “भौतिक, जैविक, एवं सांस्कृतिक घटकों के प्रभाव से ही सामाजिक परिवर्तन होता है।” (समाज मनोविज्ञान एवं उसके सिद्धान्त 189)

सामाजिक परिवर्तन तकनीकी औद्योगिक, आर्थिक, सैद्धान्तिक, धार्मिक आदि अनेक तत्त्वों द्वारा लाया जाता है। विभिन्न संस्कृतियों के व्यक्तियों के साथ सम्पर्क, वैज्ञानिक प्रगति, तथा भौगोलिक वातावरण में परिवर्तन, सांस्कृतिक परिवर्तन लाने में विशेष योगदान देते हैं। मार्क्स ने सामाजिक उन्नति के मूल में अर्थ को ही माना है। अविकसित समाजों में सामाजिक परिवर्तन लाने की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहते हैं। सामाजिक परिवर्तन न केवल हमारी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन ले आते हैं वरन सामाजीकरण के प्रतिमानों में परिवर्तन लाकर नई पीढ़ी के व्यक्तित्व के निर्माण पर भी प्रभाव डालते हैं।

समाज और साहित्य

समाज मनोविज्ञान नवीनतम विज्ञान है। यद्यपि एकाधिक आरम्भिक दार्शनिकों ने समाज तथा व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों को समझने-समझाने का प्रयत्न किया है, परन्तु समाज मनोविज्ञान सम्बन्धी सजग शोध बीसवीं शताब्दी के मध्य की बात है जबकि इसकी विद्यमानता सम्भवतः मानव की समाज-संरचना और मनवृत्तियों की सक्रियता के साथ पुरातन काल से ही सम्भव होनी चहिए। विधिवत चिन्तन-परम्परा के रूप ने इसके पूर्व-काल का आरम्भ यूनान में हुआ माना जाता है। प्लेटो और अरस्तु सामाजिक दार्शनिकों के रूप में उदित हुए। प्लेटो एवं अरस्तु वे आरम्भिक यूनानी दार्शनिक हैं जिन्होंने मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति को सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया। प्लेटो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि रिपब्लिक' में मानव प्रकृति या व्यवहार के सम्बन्ध में जो मत प्रकट किए थे, वे इस बीसवीं सदी की मनोवैज्ञानिक धारणा के पूर्णतः विरोधी नहीं है। उसने इस बात पर बल दिया था कि व्यक्ति ठीक उसी प्रकार से व्यवहार करता है, जिस प्रकार से समाज उसे व्यवहार करना सिखाता है। मानव व्यवहार उस समाज की उपज है, जिसमें एक व्यक्ति जन्म लेता है और पलता है। समाज का प्रशिक्षण व्यक्ति के व्यवहार को ढालता है। इस कारण समाज व्यक्ति को किसी भी रूप में व्यवहार करना सीख सकता है। व्यक्ति तो समाज से जैसा सीखेगा, वैसा ही व्यवहार करेगा।

अरस्तु व्यक्ति की समाजिकता को जन्मजात स्वीकार करता है। मानव प्रकृति के सम्बन्ध में आपका यह विचार था कि मनुष्य एक सामाजिक या राजनैतिक प्राणी है। उसे दूसरे व्यक्तियों के सहचर्य की आवश्यकता होती है। अरस्तु के विचार में समाज की प्रकृति व्यक्ति के स्वभाव पर निर्भर होता ह और व्यक्तियों का स्वभाव उसकी विभिन्न मूल-प्रवृत्तियों के अनुसार पनपता है। ये मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं। इस कारण इनको सब बदला नहीं जा सकता। इस अपरिवर्तनशील मूल-प्रवृत्तियों के विद्यमान होने के कारण मनुष्य या व्यक्ति के स्वभाव को परिवर्तित नहीं किया जा सकता और इसलिए समाज को भी बदलना सम्भव नहीं।

सुप्रसिद्ध युनानी विद्वान के मतानुसार समाज व्यक्ति की स्वार्थसिद्धि और आनन्द प्राप्ति का एक साधन मात्र है और इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समाज को विकसित किया गया है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के साथ इसलिए सम्बन्ध स्थापित करता है कि उसके द्वारा उसे कुछ भौतिक सुख प्राप्त होता है। यही बात रविन्द्र नाथ मुकर्जी की पुस्तक समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा में रोमन दार्शनिक सिसरो कहते हैं कि, “मानव व्यवहार का आधार सुख और दुःख है। व्यक्ति उन्हीं कार्यों की और झुकता है, जिनसे उसे सुख मिलता है या मिलने की आशा होती है, और उन कार्यों से दूर भागता है जो कि दुःखदायी होते हैं।” (समाज मनोविज्ञान कि रूपरेखा 3) इसके पश्चात जिन विचारकों ने मानव व्यवहार के विश्लेषण का प्रयत्न किया उनमें रूसो का नाम उल्लेखनीय है। जिसमें उसने ‘सामान्य संकल्प’ के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया, जिसके अनुसार यद्यपि समाज के विकास में समाज के सभी सदस्यों की इच्छाओं का योगदान होता है, फिर भी समाज के विकसित हो जाने के बाद समस्त व्यक्तिगत इच्छाओं का एकीकरण हो जाता है और सामूहिक हित और नैतिक इच्छाओं को प्रधानता प्राप्त हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि सामूहिक हित को सम्मुख व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हित की बलि दे सकता है और देता भी है।

18वीं 19वीं शताब्दी में डेविड, ह्यूम, बैन, हीगल, काम्टे एवं मार्क्स ने समाज-मनोविज्ञान की ओर ध्यान आकर्षित किया। सोशल साइकलॉजी नामक अपनी पुस्तक में हीगेल कहते हैं कि, "चिन्तन की प्रक्रिया ही वास्तविक जगत की निर्माता होती है अर्थात विचार ही वास्तविक जगत का निर्माण करता है।" (सोशल साइकलॉजी 10) हीगेल के समकालीन काम्टे ने स्वीकारात्मक यथार्थवाद के सिद्धान्त को रूपायित किया। उसने यह प्रश्न उठाया कि किस प्रकार से व्यक्ति समाज का 'कारण' और 'परिणाम' दोनों ही हो सकता है। व्यक्ति समाज का परिणाम अवश्य है, परन्तु समाज की उत्पति व्यक्ति द्वारा ही सम्भव है। मनुष्य एक ऐसा सामाजिक एवं नैतिक प्राणी है, जिसकी प्रकृति की सही जानकारी के लिए एक विशेष प्रकार के विज्ञान की आवश्यकता है। इसी धारणा के फलस्वरूप काम्टे को समाज मनोविज्ञान का जन्मदाता माना जाता है। परन्तु इस क्षेत्र में जिसका प्रभाव वास्तव में क्रांतिकारी तथा अनुलनीय था वह थी सन 1857 में प्रकाशित डॉर्विन की अमर कृति। इस पुस्तक में डॉर्विन ने प्राणी शानारीय उदयविकास में सिद्धान्त को प्रतिपादित किया, जिसके अनुसार प्रारम्भ में प्रत्येक जीवित वस्तु सरल होती है और उसके विभिन्न अंग इस प्रकार एक साथ घुले-मिले होते हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। परन्तु धीरे-धीरे उस वस्तु के विभिन्न अंग स्पष्ट तथा पृथक हो जाते हैं और प्रत्येक अंग विशेष कार्य करने लगता है। परन्तु, इन भिन्नताओं के होते हुए भी कोई भी अंग दूसरे अंगों से पूर्णतया पृथक नहीं होता, अपितु उनमें सदैव अन्तः सम्बन्ध तथा अन्तः निर्भरता बनी रहती है। प्राणी शानारीय विकास की प्रक्रिया कुछ निश्चित स्तरों से होकर गुजरती है, और इस दौरान में सरल चीजें धीरे-धीरे जटिल रूप धारण कर लेती है, परन्तु ऐसा होने में एकाधिक कारणों का योगदान रहता है। डॉर्विन के विकासवाद के सिद्धान्त से प्रभावित होकर स्पैन्सर ने संश्लेषणात्मक दर्शन को विकसित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम काल में कुछ फ्रांसीसी विद्वानों ने भी सामाजिक मनोविज्ञान के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन विद्वानों ने अपने अध्ययन द्वारा यह दर्शाने का प्रयत्न किया कि समाज में कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से पूर्णतया पृथक नहीं रह पाता जिसके

फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार का प्रभाव अन्य व्यक्तियों के व्यवहार पर निरन्तर पड़ता रहता है। इन विद्वानों में भी टार्ड का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसके मतानुसार व्यक्ति में स्वभाव से ही सुझाव ग्रहण की प्रवृति होती है, और इसलिए वह वैसा ही करता है, जैसा कि वह दूसरों को करते हुए देखता है।

एक पृथक सामाजिक विज्ञान के रूप में सामाजिक मनोविज्ञान से लोगों का परिचय सन 1908 में हुआ जब कि ई.ए.रॉस ने social psychology के नाम से एक पुस्तक सर्वप्रथम प्रकाशित की। इस पुस्तक में उसने लिखा है कि सामाजिक मनोविज्ञान 'समूह-मस्तिष्क' का अध्ययन करता है। इसको आधार मानकर सामाजिक मनोविज्ञान के अन्य पहलूओं पर उसने अपने विचार व्यक्त किए हैं। रास ने भीड़-व्यवहार हड़ताल करने वालों एवं क्रांतिकारियों के समूहों के व्यवहार को जन्मगत मूलवृत्तियों तथा संवेगों की कसौटी पर कसा है।

सामाजिक मनोविज्ञान के विकास में मेक्डूगल के अनुदान को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह बात 1908 में प्रकाशित उसकी पुस्तक An introduction to social psychology के अध्ययन से स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। आपने मानव-व्यवहार के एक विशेष मनः शारीरिक आधार पर अत्याधिक बल दिया और वह था मूल प्रवृत्तियाँ। उसके अनुसार मनुष्य को वंशानुसंक्रमण की प्रक्रिया द्वारा कुछ जन्मजात प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं। ये मूल प्रवृत्तियाँ ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में समस्त मानव व्यवहार की प्रमुख चालिकाएँ होती हैं। मूल प्रवृत्तियों द्वारा चालित मानव-व्यवहारों के फलस्वरूप ही समाज का विकास होता है। इस क्षेत्र में सिग्मण्ड फ्रायड के योगदान का भी उल्लेख अनिवार्य है। फ्रायड लगभग स्मस्त मानसिक समस्याओं का प्रमुख कारण प्रवृत्ति एवं समाज में चल रहे झगड़े को मानता है। इसकी दृष्टि में समाज का विकास मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों के दमन एवं संशोधन करने वाले साधनों के रूप में हुआ। मनुष्य की दमित वासनात्मक लालसाएँ उसके प्रत्येक कार्य की क्रियाशीलता का कारण है। सन1927 एवं 1930 में प्रकाशित उसकी पुस्तकों में किम्बल यंग ने मनोवैज्ञानिक,

समाजशानारीय और सांस्कृतिक सामग्री, सामूहिक व्यवहार एवं व्यक्तित्व के अध्ययन पर विशेष बल दिया है। वस्तुतः समयानुसार समाज मनोविज्ञान के विकास की अध्ययन की पद्धतियों एवं प्रवृत्तियों में परिवर्तन होते रहे हैं।

समाज मनोविज्ञान के ऐतिहासिक विकास का आधार समाज एवं मनोविज्ञान शास्त्र का संश्लिष्ट रूप है, और यह विकास समाज में घिरे व्यक्ति-व्यवहार की वास्तविकता के सन्दर्भ में हुआ है। समाजिक मनोविज्ञान की प्रवृत्ति की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यह मानसिक प्रक्रियाओं व सामाजिक परिस्थितियों की क्रियाशीलता के फलस्वरूप उत्पन्न मानव के व्यवहारों का अध्ययन है। यह व्यक्ति के समस्त अनुभवों, व्यवहारों, अभिरूचियों, अन्तः क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, समाजिक उद्दीपक दशाओं, सामाजिक सांस्कृतिक-राजनीतिक पर्यावरण के फलस्वरूप हुए व्यक्तित्व विकास, वैयक्तिक विघटन के समस्त विषयों, पारिवारिक सामंजस्य की समस्याओं आदि का अध्ययन प्रस्तुत करता है। व्यक्ति के समग्र व्यवहार अथवा सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन होने के कारण समाज-मनोविज्ञान एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विज्ञान है।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा-साहित्य में समाज मनोविज्ञान निम्न शीर्षकों के अंतर्गत तीनों लेखकों के उपन्यासों में चित्रित समाज के विभिन्न पक्षों का समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सामाजीकरण- परिवारिक परिवेश, व्यक्तित्त्व निर्माण एवं पारिवारिक विघटन

उपन्यास की सामाजिक चेतना पर प्रकाश डालने के पहले समाज की प्रमुख इकाई 'परिवार' का जिक्र आवश्यक हो जाता है। अज्ञेय अपने उपन्यास शेखर: एक जीवनी में समाज का मनोविज्ञान का शुरू में ही सबूत देते हैं। अपने उपन्यास के पात्र शेखर के बारे में बताते हुए कहते हैं,

> शेखर निस्संदेह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज A record o personal suffering है, यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्ति के युग-संघर्ष का प्रतिबिंब भी है। इतना और ऐसा निजी वह नहीं है कि उसके दावे को आप 'एक आदमी की निजी बात' कहकर उड़ा सकें। मेरा आग्रह है कि उसमें मेरा समाज और मेरा युग बोलता है, कि वह मेरे और शेखर के युग का प्रतीक है। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 8)

आलोच्य उपन्यास में जिस परिवार को प्रस्तुत किया गया, वह परिवार मध्यम कोटि का है। जिस की अर्थ व्यवस्था बदत्तर नहीं होती, उस परिवार का यथार्थ समस्त भारतीय मध्यवर्गीय परिवार का यथार्थ ही है। भारतीय परिवार में अब भी माँ-बाप का ही एकाधिकार है। जोकि बच्चों को स्वतंत्र रूप में विकसित होने में, व्यक्तित्व-निर्माण में बाधक बन कर रहता है। इस परिवार की और एक विशेषता यह होती है- माँ-बाप हमेशा अपने बच्चों की ओर से चिंतित रहते हैं। उपन्यास का नायक शेखर के माँ-बाप की भी यही हालत है कि वे अपने बच्चों को सदा निकम्मे तथा नालायक समझते हैं। इस प्रकार वे अपने बच्चों को कच्चे और पड़ोसी के बच्चों को अच्छे समझते हैं। इसलिए अपने बच्चों को हमेशा डांटते, फटकारते-मारते हैं और पीटते रहते हैं। शेखर भी इसका अपवाद नहीं है, इस के प्रति शेखर की जो प्रतिक्रिया है वह केवल शेखर की नहीं, भारत के समस्त मध्यवर्ग के माँ-बाप के प्रति उग्र प्रतिक्रिया है,

> वे आखिर बच्चों को समझते क्या हैं? जहाँ तक एक ओर वे कहते हैं कि बच्चे मिट्टी के लौंदे से अधिक कुछ न हो। बच्चों के सामने वे ऐसी हरकतें करते हैं, यदि वे बच्चे के बारे में तनिक भी समझते हैं, तो कल्पना में लाते भी लज्जित होते....परिवार का वातावरण ही बच्चों के भविष्य का निर्माण करता है। जो पुत्र अपनी माँ की ओर आकृष्ट होता है, वह साधारण बनकर ही रह जाता है और जो पिताजी की ओर आकर्षित होता है वह असाधारण बन जाता है। प्रतिभासंपन्न लेखक और कवि,

> संसार में उथल-पुथल मचानेवाले सुधारक क्रांतिकारी, डॉकू, जुआरी और उच्च से उच्च मानव तथा पतित से पतित, मानवता के मूर्ति होते हैं। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 59)

इस प्रकार अज्ञेय ने भारतीय परिवार के परिवेश में जहाँ माँ-बाप की यथार्थता को सशक्त रूप से अंकित किया है। बच्चों के व्यक्तित्व-निर्माण में माँ-बाप का विशेष हाथ होता है, क्योंकि वे ही बच्चों के प्रथम गुरू हैं और परिवार ही प्रथम पाठशाला। जब बच्चों को अपनी रुचि के अनुसार स्वतंत्र रूप से विकसित होने के अवसर दिये जाते हैं, वे नये-नये कीर्तिमान स्थापित करते हैं, अन्यथा कुंठा ग्रंथि के शिकार बनते हैं। शेखर ही इस का प्रत्यक्ष प्रमाण है। बालक के मन की प्रतिकूलता होने पर उसके मन में विद्रोह की भावना उत्पन्न हो जाती है। इसी विद्रोह भावना से शेखर ने छुआ-छूत मानने वाले रसोइये का चौका तीन बार खराब किया। शेखर के शिक्षक मिस्टर गैस शेखर को अनुशासन में बाँधना चाहते थे। शेखर ने उस के लिए एक कविता बनाई-

> My Teacher's name is Mister Gass
> When 'G' is gone he is an Ass" (शेखर: एक जीवनी भाग एक 78)

स्वस्थ पारिवारिक परिवेश बच्चों को स्वस्थ संस्कार प्रदत्त करता है। इस का प्रभाव बच्चों के जीवन पर विशेष रूप से दिखाई देता है। बच्चों के व्यक्तित्व-निर्माण में पारिवारिक जीवन में विरासत के रूप में प्राप्त संस्कारों की भूमिका निर्णायक होती है। माता-पिता के अच्छे व्यवहार से संतान को शिक्षा मिलती है और उनकी उपेक्षा के कारण बच्चे कुण्ठाग्रस्त हो जाते हैं। इस तथ्य को शेखर के माध्यम से उपन्यासकार ने रेखांकित किया है। स्वयं अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप' को व्यक्ति-चरित्र का ही उपन्यास माना है। इसमें घटनाओं का अभाव है। सर्वत्र पात्रों के विचार-सूत्र बिखरे हुए मिलते हैं। इस प्रकार यह चरित्र के उद्घाटन का उपन्यास है, इस पर अज्ञेय के विचार यों दृष्टव्य हैं,

> नदी के द्वीप व्यक्ति-चरित्र का उपन्यास है...चरित्र के उद्घाटन का उपन्यास है। उसमें पात्र थोड़े है। कुल चार ही पात्र हैं। चारों में फिर दो

> और दो में फिर एक और भी विशिष्ट प्राधान्य पाता है। 'शेखर' से अंतर मुख्यतः इस बात में है कि शेखर में व्यक्तित्व का क्रमशः विकास होता है, 'नदी के द्वीप; में व्यक्ति आरम्भ से ही सुगठित चरित्र लेकर आते हैं। हम जो देखते हैं अमुख स्थिति में उसका निर्माण या विकास नहीं, उन का उदघाटन भर है। चार पात्रों में जो दो प्रधान हैं उन पर यह वात और भी लागू होती है, बाकी दो पात्रों का तो कुछ क्रमिक विकास भी हो जाता है। आप चाहे तो यह भी कह सकते हैं कि 'नदी के द्वीप' चार संवेदनाओं का अध्ययन है। उसमें जो विकास है, वह चरित्र का नहीं, संवेदना का है। (आत्मनेपद-अज्ञेय 64)

इस की मूल चेतना है मनोविज्ञान। फिर भी इस में सामाजिकता कम नही है, क्योंकि परिवार की मूल इकाई व्यक्ति है और परिवार समाज की मूल इकाई है। इस प्रकार व्यक्ति तथा परिवारों के समूह से ही 'समाज' बनता है। व्यक्ति की संवेदना को समाज की संवेदना तक पहुँचना ही यहाँ सामाजिकता है। 'नदी के द्वीप' का समाज मुख्यतः मध्यवर्गीय समाज है। इसलिए पात्रों की संवेदना भी मध्यवर्गीय संवेदना है। इस उपन्यास में जो सामाजिक वातावरण उभर कर सामने आता है वह सन 1940 के आसपास के मध्यवर्गीय समाज का वातावरण ही है। इस मध्यवर्गीय समाज की प्रमुख समस्या है- प्रेम विवाह सम्बन्धी समस्या। इसी समस्या के इर्द-गिर्द पूरी कथावस्तु और पात्र मण्डराते रहते हैं। 'नदी के द्वीप' में बड़े समाज के स्थान पर छोटे समाज का व्यक्ति आया, तो उसे असामाजिक भी कहा गया। अज्ञेय के रचना संसार नामक पुस्तक में विजयमोहन सिंह लिखते हैं कि,

> नदी के द्वीप' के पात्रों के सम्मुख समाज है ही नहीं, उसके सामने केवल नदियाँ हैं, पहाड़ है या फिर अपनी डॉयरी, किताबों और अपना मन एकोन्मुख और निश्चित। वे आसानी से समाज की ओर पीठ मोड़कर खड़े हो जाते हैं। (अज्ञेय का रचना संसार 111)

किन्तु ऐसे सारे अभियोगों को अज्ञेय की दृष्टि से ही समझना चाहिए। अज्ञेय ने यह बात बार-बार कही है कि 'नदी के द्वीप' पर लगाया गया असामाजिकता का आरोप मिथ्या है। एक ओर तो उसे वैयक्तिक चेतना का उपन्यास कहा जाता है दूसरी ओर उसे आसामाजिक कहा जाता है। ऐसा आलोचकों की दोहरी दृष्टि के कारण हुआ है। अज्ञेय ने स्वयं 'नदी के द्वीप' को समाज का नहीं, बल्कि उसके एक अंग का चित्र कहा है,

> नदी के द्वीप' समाज के जीवन का चित्र नहीं है, एक अंग के जीवन का है, पात्र साधारण जन नहीं हैं, एक वर्ग के व्यक्ति हैं और वह वर्ग भी संख्या की दृष्टि से अप्रधान ही है, लेकिन कसौटी मेरी समझ में यह होनी चाहिए कि क्या वह जिस भी वर्ग का चित्रण है उसका सच्चा चित्र है ? क्या उस वर्ग में ऐसे लोग होते हैं, उनका जीवन ऐसा नवीन होता है, ऐसी संवेदनाएँ होती हैं। अगर हाँ ! तो उपन्यास सच्चा और प्रमाणिक है और उसके चरित्र भी वास्तविक और सच्चे हैं, न साधारण टाइप हैं, न असाधारण प्रतीक हैं। (आत्मनेपद-अज्ञेय-पृ. 76)

समाज के एक वर्ग की संवेदनाओं को इस रचना में वाणी देने की कोशिश की गयी है। अजय शर्मा के प्रथम उपन्यास 'चेहरा और परछाईं' सर्वप्रथम पारिवारिक विघटन के दृष्टव्य होता है। पंजाब के नवयुवकों के मायानगरी मुम्बई की ओर पलायन से उन्हें अपनी जन्मभूमि, अपने माता-पिता से, सगे-सम्बन्धियों से दूर होना पड़ता है। इस चयन से उन्हें कई मुसीबतों का सामना भी करना पड़ता है। फिल्मी दुनिया की चकाचौंध, रातों-रात बहुत अधिक धन कमा करोड़पतियों में नाम गिनवाने की इच्छा तथा घर-घर में पहचान होने की ख्वाहिश उन्हें सारे रिश्ते-नातों को तोड़ अपने कर्तव्य से मुख-मोड़कर केवल अपने सपनों को पूरा करने की होड़ उन्मुख करती है। चाहे उन्हें वहाँ हासिल कुछ नहीं होता। कथा नायक कहता है,

> यार परमिन्दर, कई साल हो गए इस नगरी में आए हुए लेकिन अभी तक वहीं खड़े हैं, जहाँ से चले थे। जब मैंने घर में सबका विरोध करके

> ग्वालियर छोड़ा था तो सबने मुझे रोकने की कोशिश की थी। छुटकी ने तो राखी का वास्ता भी दिया था। लेकिन मेरा फैसला अटल था और दावे पक्के कि मैं जल्द ही कुछ न कुछ मुकाम हासिल करके वापस लौटूँगा, लेकिन इन सालों में वह सारे दावे ताश के पत्तों की तरह बिखर गए। मुझे लगता है कि भूख के साथ लड़ते-लड़ते सारी ज़िन्दगी निकल जाएगी। घर से निकला था तो सपने बहुत हसीन थे लेकिन यहाँ आकर रोटी के एक-एक निवाले की खातिर लड़ना पड़ा। (चेहरा और परछाईं 37)

विपिन के माता-पिता उसे रोकते हैं कि वह मुम्बई न जाए। बहन भी राखी का वास्ता देती है। परन्तु विपिन को अपनी जिद्द के आगे कुछ नज़र नहीं आया। अब वह वापस लौटना भी चाहता है परन्तु वह नहीं जा पाता और कहता है,

> कई बार मन में आया कि ग्वालियर वापस लौट जाऊँ लेकिन यह सोचकर मेरी रूह काँप जाया करती है कि कौन सा मुँह लेकर...वहाँ जाऊँ...कैसे जाऊँ। अब तो कभी-कभी मुकेश के गाने के बोल 'जीना यहाँ मरना यहाँ, इसके सिवा जाना कहाँ...। याद आते हैं। (चेहरा और परछाईं 38)

उपन्यास का पात्र विपिन एक ज्योतिषी भी है। उसे जिन मुश्किलों का सामना करना पड़ा, वह नहीं चाहता कि किसी और को भी करना पड़े। विपिन मुम्बई आने वाले हर स्ट्रगलर को अपने घर लौट जाने को कहता है। उसे लगता है कि यहाँ किसी किस्मत वाले की ही ज़िन्दगी बदलती है वरना सब हताश ही होते हैं। वह सबको ज्योतिष की बातों में उलझाकर वापिस लौटा देता है और कहता है,

> ...मैं तो इसलिए कहता हूँ कि यहाँ आने वाला हर नया स्ट्रगलर मेरी बातें सुनकर दहशत में आ जाए और अप्ने घर लौट जाए, क्योंकि घर

> छोड़ने का ग़म कुछ समय के बाद हर चीज़ के ऊपर हावी होने लगता है।...हो सकता है कि मेरी चोट से माँ-बाप वापस मिल जाएँ। (चेहरा और परछाईं 38)

ऐसा करके वह सिर्फ उन लोगों को वापस घर भेजना चाहता है परन्तु वह उन स्ट्रगलर को जो अपनी भूमि से, अपने परिवार के लोगों को छोड़कर स्वेच्छा से यहाँ पहुँचे थे नहीं समझा पाता। चाहे उन्हें मुम्बई रहते हुए वहाँ के लोगों की ज्यादत्तियों को सहना पड़ता है। बद्द से बदतर स्थान पर रहना पड़ता हौ और खाना पानी सी पतली दाल खाकर पेट भरना पड़ता है। वह स्ट्रगलर्ज के साथ रहकर एक-दूसरे का ग़म बाँटते हैं। किसी भी मुसीबत में कँधे से कँधा मिलाकर चलते हैं परन्तु अकेलेपन एवं अलगाव की स्थिति हमेशा बनी रहती है और घर की याद उन्हें आ ही जाती है। इसी पारिवारिक विघटन का शिकार हुआ विवेक कहता है, "आज मुझे भी घर की याद आ गई। मुझे महसूस हुआ कि आज मुझे पँख लग जाएँ तो मैं उड़कर अपने शहर पहुँच जाऊँ।" (चेहरा और परछाईं 39) विवेक के अचेतन में कहीं न कहीं पछतावा है घर से आने का। अपनों का विरोध करके वह आ तो जाता है, परन्तु अब चाहकर भी घर नहीं लौट पाता।

'बसरा की गलियां' उपन्यास का नायक भी पैसा कमाने के चक्कर में अपने घर परिवार को छोड़कर बसरा पहुँच जाता है। पंजाब में 1984 के आतंकवाद से आतंकित लोग अपना देश छोड़कर जा रहे थे। कथानायक भी नई ज़िन्दगी की शुरूआत, पैसा कमाने की इच्छा तथा माँ की सूनी कलाईयों पर चूड़ियाँ सजाने के सपने को साकार करने के लिए इराक जाता है। परन्तु वहाँ पहुँचने पर नज़ारा ही कुछ और निकला। नायक उस घड़ी को कोसता है जिसने उसे उसका घर, देश ही नहीं छुड़वाया बल्कि उससे उसका नाम, पहचान, धर्म सब छुड़वा दिया और परिस्थितियाँ ऐसी बनती हैं कि उसका वहाँ नाम, पहचान और धर्म तक बदल जाता है। इराक पहुँचने पर जब सपनों का कत्ल होता है तो वह निर्णय लेता है कि लौट जाए परन्तु ऐसा नहीं कर पाता और कहता है,

> कई बार मेरा मन हुआ, मैं वापस लौट जाऊँ। मगर जैसे ही मेरे मन में लौटने का ख्याल आता, मेरी आँखों के सामने माँ की सूनी कलाईयाँ आ जाती हैं और मुझे ऐसा लगता है जैसे वे मुझसे कुछ माँग रही हों। फिर मैं सोचता अगर मैं चला गया तो शायद सूनी कलाइयाँ सारी ज़िन्दगी सूनी ही रह जाएँगी। (बसरा की गलियां 33)

वहाँ उसकी एक मुसलमान लड़की से शादी हो जाने पर नायक की तो ज़िन्दगी में भूचाल आ जाता है। उसकी सारी तमन्नाएँ, इच्छाएँ दफन हो जाती हैं। बेशक वह बुशरा से प्रेम करता था परन्तु धर्म परिवर्तन कर, खतना करवा वह कभी भी उससे शादी करने के हक में नहीं था। वह सदा केलिएअ अपने घर-परिवार, मुल्क से दूर हो गया था,

> ...मेरे अपने मुझसे सदा केलिए दूर हो गए थे। शायद जीते जी उनको कभी न मिल पाऊँ, मरने पर भी नहीं। क्योंकि जीते जी जिसकी सारी इच्छाएँ दफन हो गई हों, मरने पर उसकी क्या हालत होगी, इसकी कल्पना मात्र से ही मेरी रूह काँप गई। (बसरा की गलियां 14)

उसे ऐसा लगता है जैसे उसके सपनों का कत्ल हुआ है। पूरी दुनिया से उसे अलग कर दिया गया। उसे जबरदस्ती बुशरा ने पाने की कोशिश की है, प्यार नहीं एक जंग थी, जो उसने जीतनी चाही। वह बुशरा से कहता भी है,

> प्यार भावनात्मक लगाव होता है। जो जबरदस्ती किया जाता है, तो लूट होती है। फर्क सिर्फ इतना है कि आप लोगों ने मुझे धोखे से लूट लिया। उसके बावजूद लुटा हुआ माल आपका न हो सका। (बसरा की गलियां 157)

इसी वजह से वह अपनी पत्नी बुशरा के साथ कभी भावनात्मक ढंग से नहीं जुड़ पाता और न ही उसके परिवार को अपना पाता है। वहीं दूसरी ओर बुशरा जो अपने समाज

और परिवार के खिलाफ जाकर एक भारतीय हिन्दु व्यक्ति से शादी करती है। वह अपने परिवार को जोड़ने और आगे बढ़ाने में नाकामयाब रहती है। नायक जब शराब पीकर उसे तंग करता वह कभी कुछ न कहती क्योंकि वह हमेशा यहीं कोशिश करती कि वह अपने परिवार को जोड़े रखे। एक दिन आकाश उससे पूछता भी है कि तुमने मुझे कभी कुछ क्यों नहीं कहा। बुशरा जो कभी नहीं बोली थी आज कहती है,

> हर आदमी की अपनी-अपनी सज़ा है और वह उसे भुगतता है। अल्लाह की मर्ज़ी देखो, जब तुम मेरे कुछ नहीं थे, तब तुम मेरे सब कुछ थे। अब सब कुछ मेरा है और मेरा कुछ भी नहीं है। शरीर में दंश बनकर चुभ रहा है। उससे तो अच्छा है अल्लाह मुझे मौत दे दे और मैं कब्र में चुपचाप लेटी रहूँ और कयामत की घड़ी में जब मुझसे कुछ माँगने केलिए कहा जाएगा तो मैं सिर्फ यही कहूँगी कि इस तरह की सज़ा किसी और औरत को न नसीब हो। (बसरा की गलियां 60)

आकाश यह बात कभी समझ नहीं पाया कि अगर उसके साथ गलत हुआ है तो बुशरा के साथ भी बहुत गलत हुआ है। उसे जो सब मिलना चाहिए था और जिस पर एक पत्नी का जो हक होता है, उसे कुछ भी नहीं मिला। गुलनार जो एक वेश्या थी। आकाश अक्सर उसके पास जाता था। वह भी उसे समझाती है,

> तुम दोनों में कोई खास फर्क नहीं है। तुमने सज़ा पाई है मैं मानती हूँ। क्या बुशरा केलिए भी यह किसी सज़ा से कम नहीं है कि तुम आज तक उसे अपना नहीं सके। और का यही सबसे बड़ा दर्द है। शायद तुम न समझ सको। (बसरा की गलियां 13)

औरत अपने परिवार को बनाए रखने के लिए क्य-क्या नहीं करती किन्तु जब वह उसमें असफल रहती है तो उससे अपना परिवार टूटकर बिखरते हुए नहीं सहन हो पाता। यहीं पारिवारिक दंश 'काल-कथा' उपन्यास में देखने को मिलता है जब नायिका ललिता के पति की मृत्यु हो जाती है तो सब रिश्ते-नाते उसे मुँह चिढ़ाने लगते है

क्योंकि हर कोई यहीं सोचता है कि कहीं इस परिवार का बोझा उनपर न गिर पड़े। उसे ऐसा महसूस होता है कि एक आदमी (पति) के बिना परिवार की जिम्मेदारी कोई नहीं निभा सकता और वह असुरक्षित भी महसूस करती हुई कहती है कि,

> मेरे चारों तरफ गहरा समुद्र है। लगता है कि मुझे किसी सहारे की जरूरत है, कोई मुझे किनारे लगा दे। लेकिन दूर-दूर तक कोई किनारा नज़र नहीं आ रहा और लगता है कि समुद्र से कोई मगरमच्छ निकलकर मेरी तरफ बढ़ रहा है और मुझे निगल जाना चाहता है। (काल-कथा 64)

आज दुनिया में हर रिश्ता मतलब का है। जीते जी ही हर रिश्ता कायम है, मानो एक-दूसरे के बिना साँस नहीं लेते। मर मिटने को तत्पर हैं, परन्तु इधर इन्सान ने आँखे मूँदी, उधर मैं कौन तू कौन। ऐसे ही कुछ नायिका के हालात हैं,

> धीरे-धीरे रिश्तों के प्रति मेरा मोहभँग होने लगा। मुझे लगा कि एक ही इंसान के ज़िन्दा रहने से सभी रिश्ते कायम हैं। सभी एक-दूसरे के साथ मिलकर एक कड़ी में बँधे हैं, जो मिलकर एक चेन का रूप धारण किए हुए हैं। अचानक एक कड़ी निकलने से चेन का वजूद खत्म हो जाता है। वैसे ही एक-एक इंसान के जाने से मेरा वजूद खत्म हो गया। हर रिश्ता मुझे बोझ लगने लगा है। मुझे लगता है कि हर रिश्ते की गरिमा कम हो गई है। (काल-कथा 53)

परिवार में एक व्यक्ति की मृत्यु होने के बाद दूसरे पारिवारिक सदस्य कैसे एक दूसरे से मुँह मोड़ लेते हैं। इसी पारिवारिक विच्छेद को लेखक ने इस उपन्यास में दर्शाया है। अनीता देसाई अपने उपन्यासों में पारिवारिक समस्याओं को दर्शाती है। उनके उपन्यासों का हर पात्र समाज में किसी न किसी तरह झूझता नज़र आता है और अपने ही ढंग से अपनी समस्याओं को सुलझाता भी है। वह अपने पात्रों के बारे में खुद कहती हैं कि,

> There are those who can handle situations and those who can't. And my stories are generally about those who cannot. They find themselves trapped in situation over which they have no control. (A critical study of The novels of Anita Desai 49)

उनकी इसी बात का समर्थन उनके उपन्यास 'where shall we go in this summer' में देखा जा सकता है,

> To certain people there comes a day. When they must say the great Yes or the great No. He who has the Yes ready within him reveals himself at once, and saying it crosses over to the path of honor and his own conviction…He who refuses does not repent. Should he be asked again, he would say No again. And yet that No- the right No- crushes him for the rest of his life. (Where shall we go in this summer139)

अनीता देसाई के उपन्यासों में सभी पात्र 'नेसियार' नहीं हैं। कई समाज में खुशी से रहते दिखाई देते हैं क्योंकि उनके पास कोई दूसरा रास्ता नहीं बचता और कई समाज में अपने अस्तित्त्व को खोजने की लड़ाई से झूझते हैं। कई पात्र तो बिल्कुल समाजिक परेशानियों से झूझते, रूढ़िवादी और जो समाज में बिल्कुल भी खुश नहीं हैं क्योंकि उनको खाने के लिए भी कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। voices in the city उपन्यास में निरोद नाम का पात्र ऐसी ही मुश्किलों का सामना करता है,

> For meals- I scrounge off friends. It's amazing how many willing victims we parasites find ourselves. Society must have some kind of guilt complex about us after all. As for clothes, I haven't needed any for a long time now. (Voices in the city 59)

निरोद एक ऐसा पात्र है जो समाज को कुछ अच्छा प्रदान नहीं करता किन्तु उसका मानना है कि समाज में रहने वाले लोग या समाज उसके साथ हमेशा अच्छा ही करें। ऐसी भी एक समाजिक मानसिकता अनीता देसाई ने अपने उपन्यास में दर्शायी है कि किस प्रकार अपना फायदा करने के लिए लोग समाज में रह रहे दूसरे व्यक्तियों की प्रवाह नहीं करते। निरोद अपने फायदे के लिए नकली पौराणिक मूर्तियाँ बनाकर बेचता है और लोगों कि धोखे से ठगता है,

> Shiva and Parvati locked together in an upright embrace that pulsed with so grand a desire, so rich a satisfaction that soon the girls, too looked away from that inscrutable smile on Shiva's face and the taut buttocks of Parvati who had turned her back on the world as she pressed upon her consort her purpose and her delight, inexplicable to both the girls. (Voices in the city 147)

जोकि हमें बाद में पता चलता है कि यह मूर्ति अपने किसी मित्र ने बनाई होती है जिन्हें यह चुराकर तीन स्पताह तक उसे छुपाकर रखता है और लोगों को कहता है कि यह तीन हज़ार वर्ष पुरानी मूर्तियाँ हैं।

निरोद की बहन मनीषा एक अलग तरह के सामाजिक रूढियों का शिकार होती है। मनीषा अपनी शादीशुदा ज़िन्दगी से खुश नहीं होती क्यों संयुक्त परिवार के अपने कुछ रीति-रिवाज होते हैं। समाज में ऐसे परिवारों की अपनी कई मान्यताएँ होती हैं कि उन्हें बहुएँ किस प्रकार की चाहिए। अगर बहु घर में उनकी पसंद या रीति-रिवाजों की रूढ़ियाँ मानने वाली नहीं होती या उसमें किसी तरह की छोटी सी आनाकानी करती हैं तो ऐसे में या तो संयुक्त परिवारों विखण्डन हो जाता है या फिर बहु अपनी ज़िन्दगी की लीला समाप्त कर लेती है। ऐसे ही एक मनीषा नाम के पात्र को अनीता देसाई ने अपने उपन्यास में दिखाया है कि किस प्रकार वह संयुक्त परिवार की रूढियों और नियमों को संभालते-संभालते अपना अस्तित्त्व तो खो ही देती है किन्तु उन

जिम्मेदारियों को भी निभाने में नकामयाब रहती है और आत्महत्या करने के लिए मज़बूर हो जाती है। यह सब हमें उसकी लिखी हुई डॉयरी से पता चलता है। वह लिखती है,

> I think of generations of Bengali women hidden behind the barred windows of half-dark rooms, spending centuries in washing clothes, kneading dough and murmuring aloud verses from the Bhagvad Gita and the Ramayana, in the dim light of sooty lamps. Lives spent in waiting for nothing, waiting on men self-centered and indifferent and hungry and demanding and critical, waiting for death and dying misunderstood, always behind bars, those terrifying black bars that shut us in, in the old city….The eyes of these silent Bengali women are not dead, but they anticipate death, as they do everything with resignation. There is no dignity in their death as in the death of that proud and glorious beast, but only a little melancholy as in the settling of puff of dust upon the earth… (Voices in the city 120-121)

इससे पता चलता है कि वह समाज के बनाए हुए खोखले रीतियों और रूढ़ियों में फंसकर कैसे अपनी जान से हाथ धो बैठती है। वहीं दूसरी ओर उसकी बहन अमला है। जिससे किसी शादीशुदा आदमी से प्रेम हो जाता है और वह उसके साथ रहने के लिए चली जाती है किन्तु उसकी सच्चाई खुलने में ज्यादा समय नहीं लगता। वह यह सब जानकर और देखकर हैरान होती है और कहती है,

> What was it is society he truly hated- the rules and restrictions that he verbally opposed, or their transgression that is secretly feared and loathed?' (Voices in the city 228)

अमला को उसके सामाजिक व्यवहार और रहन-सहन के बारे में और उसकी पहली शादी के परिवार के बारे में जब पता चलता है तो वह उसे छोड़ने के लिए समय नहीं

लगाती। विवाह समाज की एक रीत है जिससे दो आत्माओं के साथ परिवारों का मेल होता है किन्तु देसाई ने अपने पात्र के माध्यम से उसे किसी रूढ़िवादी संस्था से कम नहीं दर्शाया है। विवाह के सम्बन्ध में उपन्यास में दो धारणाएँ सामने आती हैं और दोनों ही अपमानजनक साबित होती हैं। पहली जब निरोद अपने मित्र जीत से इसके बाते में बात करता हुआ कहता है कि,

> Marriage, bodies, touch and torture…he shuddered and, walking swiftly, was almost afraid of the dark of Calcutta, its warmth that clung to one with a moist, perspiring embrace, rich with the odors of open gutters and tuberose, garlands. All that was Jit's and Sarla's he decided, and indeed all that had to do with marriage, was destructive, negative, decadent. He could waste no time on it… (Voices in the city 35)

दूसरी धारणा तब सामने आती है जब अमला धर्मा को उसकी पहली पत्नी और बच्चे के बारे में पूछती है जो उसे छोड़कर भाग गई होती है। तब धर्मा कहता है,

> Our relationship is not all so straightforward and pat, married relationships never are. There is the matter of loyalty, habit, complicity- things I couldn't talk to you about till you married and knew for yourself. (Voices in the city 229)

इस उपन्यास में अनीता देसाई के सभी पात्र असामान्य ढंग से समाजिक मनोविज्ञान में विचरण करते हैं। निरोद इसलिए क्योंकि वह अपनी बहनों पर एक पुरुषत्व का दबदबा रखना चाहता है, दूसरा धर्मा इसलिए क्योंकि वह अपनी अति व्यस्तित्त ज़िन्दगी और शादीशुदा ज़िन्दगी में खुश नहीं है।

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, धर्म एवं संस्कृति

शताब्दियों की दासता ने भारतीयों को पाश्चात्य प्रभाव का शिकार बना दिया। इससे जहाँ कुछ हद तक फायदा हुआ, वहाँ भारत की श्रेष्ठ संस्कृति का ह्रास होने लगा।

भारतीय मूल्य विघटित हो गये। गोरे बगुलों के स्थान पर काले कौए प्रकाश में आने लगे। हम अपनी भाषा, संस्कृति, रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान सम्बन्धी आचार भूलने लगे और पश्चिम के अंधानुकरण को ही फैशन समझा जाने लगा। अपनी भाषा को भूल कर अँग्रेजी में बोलना सम्मान का सूचक समझा जाने लगा। उच्च वर्ग तथा उच्च मध्यवर्ग पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव जोरों पर था। यह इस बात का प्रमाण है। शेखर की शिक्षा अँग्रेजी से ही प्रारम्भ होती है। उनके पुत्र अँग्रेजी में बात करें, वही गौरव प्रत्येक बाप को अभिमत है। बांकीपुर स्टेशन पर अपरिचित लड़के के अँग्रेजी में ही वार्तालाप करते हैं। प्रतिभा के पिता का रहन-सहन तो पूरी तरह पाश्चात्य है। इस प्रकार, अज्ञेय ने कुछेक घटनाओं तथा पात्रों के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि शेखर-युगीन माध्यम तथा उच्च वर्ग के परिवारों पर पाश्चात्य सभ्यता का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है।

'नदी के द्वीप' मे जिस मध्यवर्गीय समाज का चित्रांकन किया गया, उसकी प्रमुख समस्या वौवाहिक व्यवस्था से जुड़ी है। यह विवाह व्यवस्था 'नदी के द्वीप' के मध्यवर्ग को कुतर-कुतर खा रही है। अर्थाभाव के कारण मध्यवर्ग में न प्रेम विवाह ही सफल हो रहे हैं और न माता-पिता द्वारा निश्चित किए गये विवाह। आर्थिक विसंगतियों के नेपथ्य में मध्यवर्गीय समाज में हमें विवाह व्यवस्था का स्वस्थ रूप नहीं दिखाई देता है। अपने प्रतिनिधि पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने 'नदी के द्वीप' में इस समस्या को उजागर किया है।

चन्द्रमाधव का विवाह माता-पिता की इच्छा से ही होता है, लेकिन दो बच्चों के बाद वह पत्नी और बच्चों से अलग रहने लगता है। वैवाहिक जीवन में उसको तृप्ति नहीं मिल रही है। अकेला रहना ही उसको अच्छा लगता है। वह मध्यवर्ग का व्यक्ति है। उसके दिमाग में कष्ट क्या होता है ? दुख क्या होता है ? अभाव क्या होता है ? परेशानी क्या होती है ? आदि शब्द ढूँढने से भी नहीं मिलते। चन्द्रमाधव रेखा के प्रति अंदर से आकर्षित है। पति से अलग होने पर नौकरी दिलाने में वह रेखा की सहायता करता है। इस रूप मे वह रेखा की आत्मीयता का पात्र बनना चाहता है। लेकिन रेखा

की धारणा बिल्कुल इसके विपरीत रही। वह चन्द्रमाधव के प्रति आभारी है, क्योंकि उसने नौकरी दिलाई, लेकिन आत्मसमर्पण के लिए वह तैयार नहीं है। वह रेखा के साथ पहाड़ी प्रांतों में यात्रा करने के कार्यक्रम की योजना करता है लेकिन इसमें वह कामयाब नहीं होता। प्रेम, वासना, विवाह तथा नारी-पुरुष सम्बन्धों के बारे में चन्द्रमाधव की विचारधारा रेखा के साथ उस के निम्न प्रसंग से स्पष्ट हो जाती है, "यू आर वेरी गुड कंपनी....मैं तो ऐसा केटलिस्ट हो गया हूँ कि सोचता हूँ, मेरा भविष्य कोई और बना दे तो बना दे।.....'जोकिंग एपार्ट रेखा जी ! आप, आप सचमुच भविष्य बना सकती है।" (नदी के द्वीप 50) रेखा का अधिक साहचर्य पाने की प्रयुक्ति के रूप में ही, वह भुवन को लखनऊ बुलाता है, लेकिन वह देखता है कि भुवन उससे बाजी ले गया था,

> परन्तु वह जिन्दगी का तमाशाई नहीं है, वह खिलाड़ी है, नायक है, वह जिन्दगी को अंगूर गुच्छे की तरह तोड़कर उसका रस निचोड़ लेगा, लता को झंडोड डालेगा, कुँज में आग लगा देगा, वह आराम से नहीं बैठेगा। (नदी के द्वीप 53)

चन्द्रमाधव को जब रेखा की ओर से निराशा ही हाथ लगती है, तो वह अपनी कामेच्छा की तृप्ति के लिए गौरा को फँसाने की चेष्टा करता है, लेकिन जब गौरा भी चन्द्र के प्रभाव में नहीं आती, तो वह भुवन और रेखा से जलने लगता है। वह यह महसूस करता है कि भुवन को रेखा और गौरा दोनों का प्यार मिल रहा है। इसलिए उन में अलगाव के लिए आग लगाना चाहता है, लेकिन वहाँ भी कामयाब नहीं हो पाता। परिवार से छूटा हुआ चन्द्रमाधव अंत में अकेलापन, बेगानापन से बचने के लिए अभिनेत्री मिस चन्द्रलेखा से विवाह कर लेता है। चन्द्रमाधव अपनी अतिरंजिता के कारण न उपन्यासकार की सहानुभूति प्राप्त कर सकता है और न पाठक की। यहाँ तक कि आलोचकों की भी नहीं। वह प्रतिनायक के रूप में हमारे सामने आता है, क्योंकि वह नशेबाज है और जीवन की महत्त्वपूर्ण चीजों को परखने की शक्ति उस के पास नहीं है। चन्द्रमाधव का सारा जीवन सनसनी की लंबी खोज है और निरी सनसनी की खोज से

व्यक्ति की सूक्ष्मतर संवेदनाएँ भाँडी हो जाती हैं। उसके पास जीवन के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण का अभाव है। इसलिए पाया कम-खोया अधिक है। क्योंकि जीवन के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण ने ही उस को इस प्रकार बनाया। उसके अनुसार शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति ही नारी-पुरुष सम्बन्धों की मूल अवधारणा है। उपन्यासकार ने चन्द्रमाधव की सृष्टि व्यक्तिवादी जीवन दृष्टियों के विरोधी तर्क को प्रस्तुत करने के लिए ही की है।

आलोच्य उपन्यासकार अज्ञेय सनातन भारतीय परिवार से सम्बन्धित व्यक्ति हैं। लेकिन इन पर पश्चिम का प्रभाव ही अधिक है। पाश्चात्य कला, साहित्य, दर्शन तथा संस्कृति को अधिक प्रभावित करनेवाले दो दर्शन हैं, एक तो मार्क्सवाद और दूसरा मनोविश्लेषणवाद। मार्क्सवाद मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर आर्थिक समानता पर बल देता है, मनोविश्लेषणवाद काम, प्रेम और श्रृंगार को पाप, शाप तथा विश्रृंखल न मानकर यौन स्वच्छंदता पर अधिक बल देते हैं। अज्ञेय प्रयोगवाद के पुरोधा है, और प्रयोगवाद के पीछे अस्तित्ववादी दर्शन है जिसमें भोगे हुए क्षणों को मात्र महत्त्व दिया जाता है, निस्सार, नीरस और निरर्थक दिन-वर्ष और युग को नहीं। जीवन को सुख तथा तृप्ति देने वाला एक क्षण भी शेष जीवन से महत्त्वपूर्ण है। एक क्षण के लिए भी सही, सच्चा, स्वच्छंद तथा समर्पित प्रेम मिल गया तो समझ लेना कि जीवन सुखमय तथा सार्थक हो गया। इसके बाद उसी स्वच्छंदता से मरण का वरण कर सकते हैं। जहाँ इच्छा से जीना वर्जित है वहाँ इच्छा से मरण का वरण करना बेहतरीन समझा गया। काम, प्रेम, श्रृंगार, विवाह तथा नारी-पुरुष सम्बन्धों पर प्रकाश डालने से अस्तित्त्ववाद से सम्बन्धित यही अवधारणा स्पष्ट होती है।

भारत नैतिक आदर्शवाद का देश है। यहाँ काम, प्रेम, श्रृंगार, विवाह तथा नारी-पुरुष सम्बन्धों के आरे में निश्चित धारणाएँ हैं। यहाँ परंपरा की नीव, दृढ़ बनी हुई है। प्रेम, विवाह तथा श्रृंगार के लिए कुछ परिधियाँ और परिसीमाएँ हैं। उन्मुक्त प्रेम का वरण यहाँ वर्जित है। अज्ञेय भारत के रूढ़िवादी समाज को पश्चिम के उन्मुक्त समाज से परिचय कराना चाहते हैं, क्योंकि यहाँ भी काम, प्रेम और श्रृंगार के प्रति स्वस्थ

दृष्टिकोण विकसित हो। उपन्यास का नायक भुवन है, रेखा जो उपन्यास की नारी पात्र है। नायक भुवन के प्रति अनुरक्त होती है और अपने को समर्पित कर देती है। भुवन से उसको यौवन तथा जीवन के वे क्षण और वह सुख मिल गया जो आत्मिक सुख और स्वर्ग की अनुभूति प्रदान करते हैं। वह भुवन के लिए अपने को पूर्णतः समर्पित कर देती है। वह सदा केवल 'फुलफिलमेंट' की बात ही करती है। वैवाहिक व्यवस्था पर उसको विश्वास नहीं है। इसलिए गर्भाधारण के बाद जब भुवन विवाह का प्रस्ताव लाता है तो वह निर्ममता से ठुकरा देती है तथा गर्भपात भी कराती है, क्योंकि वह स्वच्छंद प्रेम का पक्षधर है। वह मन से चाहती है कि भुवन स्वस्थ रहे, सानंद रहे, उसे किसी प्रकार का दुःख तथा तनाव न हो। वह विवाह के बंधन में बंदी रहना नहीं चाहती। यौन-स्वच्छंदता के प्रति उसकी ललक-झलक, प्रेम तथा विवाह-सम्बन्ध के बारे में उसकी धारणा निम्न कथनों से स्पष्ट हो जाती है, "मैंने तुमसे प्यार माँगा था, तुम्हारा भविष्य नहीं माँगा था, न मैं वह लूँगी।" (नदी के द्वीप 213) इसलिए यह बात सोचने की नहीं रही- यह तभी सोची जा सकती है, जब एक प्रकार अद्वितीय हो, दूसरी किसी बात से असंबद्ध हो। वह कहती है कि,

> उसकी बात सोचने के लिए तुम्हें मुझे नहीं कहना होगा भुवन ! नहीं, बुरा मत मानो, मैं ताना नहीं दे रही...वह थोड़ी देर रुक गई...पर भुवन, तुम समाज की दृष्टि से देखते हो, वह दृष्टि गलत नहीं है, अप्रासंगिक भी नहीं है, निर्णायक भी वह नहीं है। व्यक्ति को दबाकर इस मामले का जो भी निर्णय होगा-गलत होगा- घृण्य होगा, असह्य होगा !...फिर कहा, हो सकता है कि मेरा सोचना शुरू से ही गलत रहा हो- पर शुरू से वह यही रहा है। मेरे कर्म का-सामाजिक व्यवहार का नियमन समझा करे, ठीक है, मेरे अंतरंग जीवन का नहीं। वह मेरा, यानी हर व्यक्ति का निजी। (नदी के द्वीप 261)

इस प्रकार रेखा अपनी उलझी हुई संवेदनाओं को सुलझाना मात्र चाहती है, विवाह की अनिवार्यता पर बल नहीं देती। जब भुवन के साथ गौरा की आत्मीयता बढ़ जाती है और दोनों साथ-साथ रहने लगते हैं, तो रेखा भुवन की उपेक्षा का पात्र बनती है। दुर्घटना में उसकी रीढ़ की हड्डी टूट जाती है। उसके लिए किसी का सहारा चाहिए। एक छत की आवश्यकता महसूस होती है। स्वयं रेखा के शब्दों में,

> मैं भीतर मर गई हूँ, भुवन ! तुम के कट कर मैं कहीं भी बह जा सकती हूँ- किसी भी बुरे से बुरे नर-पशु के साथ भी रह सकती हूँ। वह भुवन से इतना तंग आई कि वह हेमेन्द्र तक जाने को भी सोच रही थी। इतना होने के बाद भी भुवन की ओर से कुछ नहीं होता, तो अपनी आपबीती यों व्यक्त करती है, "एक विशाल पैटर्न है...पूरा न होता, लेकिन उस पैटर्न का अंत नहीं हूँ...मैं सुखी हूँ कि मैं ने भी उसमें थोड़ा-सा...सब उज्ज्वल नहीं है, लेकिन कुल मिलकर यह फूल कभी अप्रीतिकर या तुम्हारे पैटर्न में बेमेल नहीं होगा यही मानती हूँ। (नदी के द्वीप 272)

फिर लाचारी की स्थिति में डॉ. रमेशचन्द्र के साथ वह विवाह कर लेती है। रेखा जो पहले 'फुलफिलमेंट' को ही सब कुछ समझती थी विवाह बंधन को अनिवार्य नहीं मानती थी। अंत में उसे वैवाहिक प्रथा को स्वीकार करना ही पड़ता है। सुखमय तथा सार्थक सामाजिक जीवन के लिए आधुनिक नारियाँ भी रेखा की भाँति दिहभ्रमित हो जाती हैं और अंत में भारतीय विवाह व्यवस्था के अंतर्गत ही सुख तथा सार्थकता की साँस लेती है। रेखा की वह विवशता वैयक्तिक भी है, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक भी। उसने रमेश को भी बहुत दिया। प्यार के स्तर पर वह 'आई डोंट फील एट आल' की मनः स्थिति में है। यहाँ काम और प्रेम का द्वन्द्व सामने आता है। इसमें अज्ञेय के प्रेमादर्श और पीड़ा-दर्शन की अभिव्यंजना है।

जहाँ रेखा और भुवन के प्रेम सम्बन्धों में वैवाहिक अनिवार्यता नहीं दीखती, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा वासना की तृप्ति को ही नारी-पुरुष सम्बन्धों का

मूल उद्देश्य बताया गया, वहाँ गौरा तथा भुवन के सम्बन्धों में ईर्ष्या मुक्त प्रेम की अवधारणा प्रतिष्ठित है। गौरा प्रोफेसर भुवन की छात्रा है, शुरू से ही एक दूसरे के प्रति रागात्मक सम्बन्ध लक्षित होता है। रेखा तथा भुवन के प्रेम सम्बन्धों के बारे में पूरी जानकारी के बाद भी वह भुवन की हृदयेश्वरी बनना चाहती है। यहाँ तक कि भुवन अब प्रोफेसर नहीं है, गौरा के लिए 'भुवन दा'। भुवन जब गौरा को रेखा विषयक प्रेम, उस के गर्भपात आदि का वृत्तांत सुनाता है जब भी गौरा ईर्ष्याग्नि से नहीं जल उठती, अपितु उस से धीमे खोए-से स्वर में पूछती है, "तुम - तुम कभी पछताओगे तो नहीं मुझे यह सब बता देने पर ?...अब तुम भोगोगे नहीं, बोझ उतर गया तो बताओ, फिर चले तो नहीं जाओगे ?" (नदी के द्वीप 295) भुवन की इस आत्मस्वीकृति के अवसर पर ही वह भुवन की अपनी पत्नी विषयक कल्पित स्थिति में खड़ी हो कर यह भाव व्यक्त कर देती है कि उसे उसकी जीवन-संगिनी बनना स्वीकार्य है। भुवन का यह कथन उसके प्रेम-भाव की तीव्रता को मन्द नहीं कर पाता,

> तुम उसके बारे में बुरा नहीं सोचोगी, गौरा, वह जैसे लोग दुर्लभ होते हैं, दुनिया में- और उसने मुझसे बहुत प्यार किया था- जितना- वह तनिक रुका और फिर कह गया- जितना किसी ने नहीं किया। और अब भी करती है। (नदी के द्वीप 294)

जो अपना जीवन ही भुवन से प्रेम-प्राप्ति की लालसा में व्यक्ति कर रही थी, ऐसी गौरा का, भुवन के सन्दर्भगत कथन को सुनकर ईर्ष्याग्नि और घृणा-भाव से भर उठना सर्वथा स्वाभाविक था, किन्तु गौरा के निर्मल-निश्चल-सात्विक प्रेम में ऐसी भावना का कोई स्थान ही नहीं है। वह भुवन पर यह भाव व्यक्त कर देती है कि, मैं आप की जीवन-सहचरी बनने को प्रस्तुत हूँ, तथा यह प्रश्न भी करती है, "आप रेखा दीदी से नहीं मिलेंगे?" (नदी के द्वीप 297) गौरा के चरित्र में रेखा से ईर्ष्या की जगह कृतज्ञता का भाव प्रकट होता है। वह उन नारियों में से नहीं है जो स्व-प्रेमी की अन्य प्रेमिकाओं से

जल-भुन उठती है, अपितु रेखा का इस दृष्टि से आभार ही स्वीकार करती है कि उसके प्रेम ने मेरे प्रेमी के व्यक्तित्व का विकास किया है।

भुवन, रेखा और गौरा के विचार लगभग एक से हैं। जहाँ वे थोड़ा भटकते हैं मात्र सामाजिक दबाव के कारण, लेकिन सम्मुख पात्र की तटस्था से सीख लेकर वे अपने ट्रेक पर लौट आते हैं। रेखा ने भुवन को मुक्त कर दिया, भुवन अपनी प्रारम्भिक सखी गौरा के पास पहुँचता है और सारी अपनी आप बीती बताता है, तो गौरा कहती है, "आप क्या कहना चाहते हैं? तो बात कहें, जजमेंट आप मुझे न दें- वह करना होगा तो स्वयं करूँगी...उतनी कठोर भी हो सकती हूँ- आप की शिष्या हूँ आखिर।" (नदी के द्वीप 293) गौरा भुवन के सारे प्रसंग को सुनती है, धैर्य से सुनती है और जजमेंट देने के लिए अपनी स्वतंत्रता चाहती है।

इस प्रकार अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप' में सामाजिक मान्यताओं के नेपथ्य में नारी-पुरुष सम्बन्धों की व्याख्या की है। इस रचना के विभिन्न पात्रों के माध्यम से प्रेम और विवाह की समस्या से जुड़े कई पक्षों का अंकन किया गया है। कई आलोचकों ने इस रचना को वस्तुगत संरचना को लेकर असामाजिकता का मिथ्याआरोप किया है। अज्ञेय ने इन आरोपों का खंडन किया है। वास्तव में इस रचना में कई अंशों को लेकर उपन्यासकार ने व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि के विरोधी तर्कों को प्रस्तुत किया है। काम, प्रेम तथा विवाह के सम्बन्ध में उपन्यासकार अज्ञेय ने जो विचार व्यक्त किए, वे न केवल समय संगत प्रतीत होते हैं, बल्कि व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि का समर्थन करते है।

'खुली हुई खिड़की' के पात्र आस्था-अनास्था के मध्य झूल रहे हैं। अमिता की सास, पति गुरुवाणी का पाठ करते रहते हैं। जपुजी तो बीजी को कंठस्थ है। यही आस्थाएँ पात्रों को जीने की शक्ति देती हैं, "करे करावे आपे आप, मानस के कछु नाहिं हाथ।...एकम ओंकार सतिनामु करता पुरुखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि॥" (खुली हुई खिड़की 36) डॉ. अजय शर्मा ने ईश्वरीय संज्ञा की दार्शनिक व्याख्या सिख धर्म, भागवत सम्प्रदाय, राम सम्प्रदाय, शिव सम्प्रदाय, उपनिषद, गीता,

इस्लाम आदि के सन्दर्भ में की है। कथा अरोड़ा परिवार से सम्बद्ध है। यहाँ कभी रामायण का भोग डाला जाता है, कभी सुखमणि साहिब या रहिरास का पाठ किया जाता है, कभी हरिद्वार के मनसादेवी मन्दिर में आगे बाँधकर मन्नत माँगी जाती है। इतना सब होने पर भी पति की मृत्यु के बाद की पहली बरसी में अमिता द्वारा पंडितों को भोजन कराने से इन्कार करना और आश्रम में जाकर दान देना न केवल ईश्वरीय सत्ता पर अविश्वास एवं उससे जुड़े ढोंगाचारों पर प्रहार करता है अपितु उसका मानवीय वेदना के प्रति संवेदना रवैया भी उद्घाटित करता है। उपन्यास में अनेक संस्कार, शकुन-अपशकुन, रीति-रिवाज़ मिलते हैं, किन्तु अनेक स्थलों पर पात्र इनका विरोध एवं अतिक्रमण करते बंद खिड़कियाँ खोल रहे हैं संस्कार है कि जब भी घर से बाहर निकलो या बाहर से आओ तो बड़ों के चरण स्पर्श करते ही हैं भले ही मन में इज्जत न हो। अमिता का जेठ भाई की बरसी को धूमधाम से मनाने की सलाह करने आता है तो गुस्से से भरी अमिता जाते समय उनके पाँव नहीं छूती। उसे शादी-विवाह की तरह बरसी पर लोगों को बुलाना, खिलाना मान्य नहीं। सुहागिनें कभी सफेद कपड़े नहीं पहनतीं और न ही किसी की शादी पर सफेद कपड़े पहनकर जाती हैं। पति की मृत्यु पर पत्नी सफ़ेद दुपट्टा ओढ़ती है और अमिता जीवन भर सास द्वारा रंगदार दुपट्टे के अनुरोध का इन्तज़ार ही करती रह जाती है। हरिद्वार के गंगा किनारे मन्दिर में विधवाओं के सभी सुहाग चिन्ह चढ़ा दिए जाते हैं, किन्तु अमिता का मन कालान्तर में इस रीति का विरोध करता दिखाई देता है। मनसादेवी के मन्दिर में मनोकामना पूर्ति हेतु धागे बाँधे जाते हैं, लेकिन अमिता का बँधा धागा उसकी मनोकामनाओं की पूर्ति नहीं करता। बीजी की मृत्यु विषयक ज्योतिषियों की भविष्यवाणी गलत सिद्ध होती है। शराब पीने से पहले धरती पर उसका छिड़काव करते हैं। यानि अदृश्य शक्तियों से कहते हैं कि पीना अच्छी बात है तो इसे स्वीकार करें, बुरी बात है तो माफ कर दें, क्योंकि ऐसा करके उनको भी अपना भागी बना लिया जाता है। जैसे काला धंधा करने वाले सबके माथे पर हल्का-हल्का काला टीका लगा दिया करते हैं। यह सब बातें लेखक ने समाज की खोखली रीतियों और रूढ़ियों को सामने लाने के लिए दर्शाई हैं कि किस प्रकार समाज में रह रहा हर व्यक्ति इन झूठे आडम्बरों में फँसा हुआ है।

'बसरा की गलियाँ' उपन्यास में लेखक ने धार्मिक कट्टरता के परिप्रेक्ष्य में मानवीय संवेदना को उभारने में सफलता अर्जित की है। नायक पैसा कमाने के लिए विदेशी धरती इराक में बसरा शहर में जाता है। इराकी नागरिकता लेने के लिए उसे ऐसी परिस्थितियाँ पनपती हैं कि उसे मुस्लिम लड़की बुशरा से शादी करनी पड़ती है लेकिन इस शादी के बदले उसे अपना धर्म यहाँ तक कि अपना अस्तित्व तक दाँव पर लगाना पड़ता है। शादी से पूर्व बुशरा के साथ बने शारीरिक सम्बन्धों का मुआवजा उसे मुसलमान बनकर भुगतना पड़ता है और यहाँ शादी खुशी का अवसर न होकर मात्र एक समझौता और विवशता बनकर रह जाती है। स्वयं आकाश के शब्दों में,

> शादी में न कोई खुशी और न ही कोई बचपन का दोस्त, न रिश्तेदार। मैं बहुत उदास था। रोना भी चाहता था, लेकिन रो नहीं सका। खून के आँसू पीकर रह गया था। जब हिन्दोस्तान में था, तो दोस्तों के साथ प्रोग्राम बनाया करता था कि शादी में फलां-फलां कार पर बैठकर जाएँगे। (बसरा की गलियाँ 19)

आकाश को धर्म परिवर्तन के कारण अनकहे मानसिक संताप तथा शारीरिक यंत्रणा में गुजरना पड़ता है। धर्म हमें वैसा आचरण करना सिखाता है जो हम दुसरों से चाहते हैं। यह केवल हिन्दु धर्म की ही बात नहीं बल्कि हर धर्म ईरानी, बौद्ध, ईसाई, चीनी, इस्लामी, सिख प्रत्येक धर्म की परम्परा में विद्यमान है। किन्तु अकाश के साथ ठीक इसके विपरीत स्थिति है कयोंकि बुशरा के साथ शादी जैसा धर्म निभाने के लिए उसको अपने मूल धर्म से अलग होने की पीड़ा झेलनी पड़ती है और उसको मुस्लिम बनने के लिए हाय का माँस खाना पड़ता है, वही गाय जिसको हिन्दु धर्म अपनी माता के समान मानते हैं और दूसरी ओर 'खतने' जैसी दर्दनाक शारीरिक रस्म को भी मन मारकर निभाना पड़ता है। गौ-माँस खाने की अनैच्छइत घटना को व्यक्त करती आकाश की सामाजिक मानसिकता और आन्तरिक घृणा पक्ट होती है,

> मैंने अपनी हार स्वीकार कर ली। मुक्ति का एक मार्ग था आत्महत्या। लेकिन मैं उसके बिल्कुल खिलाफ था। इसलिए मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि परिस्थितियों से हर हाल में जूझूंगा, लेकिन कायरता नहीं दिखाऊँगा। सारी बातें सोचकर मैंने हथियार डाल दिए थे और गौ-माँस अपने हलक में उगल लिया था। गौ-माँस हलक में उतारते ही सभी ने तालियाँ बजाई थीं। जैसे-जैसे तालियों की आवाज़ बढ़ती गई, वैसे-वैसे मेरे मन में नफ़रत के कई बीज अंकुरित होने लगे थे। ऐसा लग रहा था जैसे ये बीज मेरे पूरे बदन में फैल गए हों और मेरा मन नफ़रत से भर गया हो। मैंने मन ही मन एक गंदी गाली दी थी बुशरा को, लेकिन वह गाली भी अपेक्षाकृत कम थी। (बसरा की गलियाँ 20)

अकाश की मानसिक व्यथा नफ़रत के रूप में उजागर होती है क्योंकि धर्म से टूटना उसके मन में नफ़रत के भावों का संचार करता है। गौ-माँस खाने के साथ ही पूर्णरूप से मुस्लिम बनने की रस्म 'खतना' को स्वीकार करना उसके लिए और भी असहनीय हो उठता है और अपनी असहनीय व्यथा को मन ही मन वह ऐसे व्यक्त करता है,

> एक कमरे में शस्त्रधारी आदमी और मुझे अकेले बंद कर दिया गया। मुझे ऐसा लगा, जैसे बलि के बकरे को एक कसाई के हाथों बेच दिया गया हो। उसने मुझे कपड़े उतारने का आदेश दिया...मेरी तो चीख ही निकल गई...मैं जैसे मूर्छा और अर्द्ध मूर्छा की स्थिति में आ गया था...। (बसरा की गलियाँ 23)

बात केवल यहीं तक ही खत्म नहीं हो जाती। आकाश को धर्म बदलने की पीड़ा का अहसास उस समय चरम-सीमा पर होता है जब अन्य मुस्लिम रीति-रिवाज़ों को पूरा करने के साथ उसका नाम भी आकाश से बदलकर मुस्लिम नाम 'सलीम' रख दिया जाता है। बचपन से ही जो नाम किसी व्यक्ति को एक पहचान देता है, एक सामाजिक रुतबा देने में सहायक होता है वहीं अगर परिवर्तित कर दिया जाए तो व्यक्ति बुरी

तरह से टूटता व निराश हो जाता है और ऐसे व्यक्ति के दर्द को वाणी देता हुआ लेखक उसके मुख से कहलवाता है, “मेरी आँखों से मोती इस कदर गिरे की मानो बसरा का मोती उसके सामने फीका पड़ गया है। कितना मशहूर है दुनिया में बसरा का मोती, लेकिन कौन जानता है मोतियों के दर्द को!” (बसरा की गलियाँ 14) अकाश की अपनी पहचान ही खो गई प्रतीत नहीं होती बल्कि समूचा वजूद ही उन धार्मिक रीति-रिवाज़ों की आड़ में किए जाने वाले कामों में लुटा हुआ महसूस होता है। उसकी बेचैनी बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से इन शब्दों में अभिव्यक्त हुई है,

> मुझे लग रहा था कि ये रात मेरे लिए कयामत की रात से कम नहीं है। आज एक दुनिया ही लुट गई है। शादी से पहले मेरा नाम आकाश था और शादी के तुरन्त बाद बदल कर सलीम रख दिया गया है। मेरे सामने ही मेरा पासपोर्ट फाड़ कर अग्नि की भेंट चढ़ा दिया गया था। मैं आज के दिन को कैसे भूलूँगा? आज ही मैं एक हिन्दु से मुस्लमान बन गया था। यही नहीं, मेरे अपने मुझसे दूर हो गए थे। शायद जीते जी जिसकी सारी इच्छाएँ दफन हो गई हों, मरने पर उसकी क्या हालत होगी, इसकी कल्पना मात्र से ही मेरी रूह काँप गई। (बसरा की गलियाँ 14)

धार्मिक कट्टरता को समेटे हुए जिन रीति-रिवाजों, परम्पराओं के निर्वाह में बाँध कर आकाश को कैद कर लिया जाता है उन्हीं परम्पराओं को निभाने की मज़बूरी, उन्हीं बंधी-बंधाई मान्यताओं पर चलने की विवशता आकाश को निरन्तर अन्दर से तोड़ती रहती है। इसका आभास स्थल-स्थल पर आकाश के संवादों के माध्यम से होता रहता है। उसकी यही टूटन, आन्तरिक बिखराव उसे प्रेम जैसे पवित्र सम्बन्ध को नफ़रत के सम्बन्धों में बदलने को देर नहीं लगाती।

बुशरा के साथ उसका प्रेम-प्यार न रहकर केवल शारीरिक मिलन तक ही सीमित रह जाता है और यह शारीरिक निकटता भी केवल उस स्थिति में पूर्ण होती है जब आकाश/सलीम नशे में अपनी चेतनावस्था भूल जाता है। बुशरा के साथ उसकी

घृणा भी इसी समय दौरान प्रकट होती है, “मैंने अब तक यही महसूस किया था कि जितनी बार भी हमने शारीरिक सम्बन्ध स्थापित किए, वे नशे की हालत में ही किए थे। शारीरिक सम्बन्ध नफ़रत की दीवार मिटाने में पूरी तरह नाकाम थे।” (बसरा की गलियाँ 59) समाज में व्यापत रूढ़ियाँ प्रेम-प्यार जैसी पवित्र भावना को नफ़रत और घृणा जैसी अमानवीय भावों में बदल देती है। धर्म में नैतिकता की बात करें तो जो सत्य उभरकर सामने आता है वह यह है कि जब भी कोई व्यक्ति अनैतिक कार्य या धर्म-विरुद्ध आचरण करता है तो उसके व्यक्तित्व के हनन के साथ ही पूरा जीवन और भविष्य अन्धकारमय होता जाता है। चँकि प्रस्तुत उपन्यास में मूल संवेदना ही धर्म-परिवर्तन की त्रासदी घटना से जुड़ी हुई है इसी कारण त्रासदी की मार झेल रहे नायक आकाश/ सलीम के जीवन की परत-दर-परत जब हमारे समक्ष उधड़ती है तो उस मानवीय संवेदना का स्वयंमेव अनुभव हमें होता चलता है। धर्म-परिवर्तन यहाँ पर अपनी मूल आस्था से उखड़कर कट्टरतावाद/ स्वार्थवाद का रूप धारण कर लेता है जहाँ पर अपने मूल धर्म से कटे एक व्यक्ति को व्यक्ति न समझकर मात्र स्वार्थता की पूर्ति करने वाली एक वस्तु रूपी ईकाई मान लिया जाता है। इसी सन्दर्भ में शंभुनाथ के यह कथन उल्लेख्य हैं, “धर्म स्थानीय होता है, नैतिकता सार्वभौम होती है क्योंकि यह एक आदमी को दूसरे आदमी के प्रति सम्मान और मंगल की वह दृष्टि है जिसमें कोई भी दूसरा आदमी वस्तु नहीं रह जाता है।” (बसरा की गलियाँ 28) आकाश चाहे पैसे की चमक के कारण अथवा इराकी नागरिकता प्राप्त करने के लिए बुशरा से शादी करता है किन्तु इन सबके बीच ‘धर्म-परिवर्तन’ जैसी विनाशकारी घटना का वह जैसा साक्षात जीवन्त उद्दाहरण बनता है उसके नतीजे में वह डॉक्टरी जैसे जीवन प्रदान करने वाले पेशे से कटकर एक सैनिक बन जाता है। इसके मूल में बुशरा और उसकी माँ के प्रति घृणा व आक्रोश का भाव कार्यरत रहता है। यहाँ धर्म-परिवर्तन के कारण स्वयं को कैद में बँधा होने का आभास आकाश/सलीम को सैनिक बनने में मुक्ति का रास्ता लगने लगता है किन्तु ज्यों-ज्यों वह इराक-ईरान और अमेरिका के आपसी युद्ध में हुए भीषण

रक्तपात और तबाही के मंज़र का प्रत्यक्ष अनुभव करता है, त्यों-त्यों उसके मन में द्वन्द्व का, ऊहापोह, तनाव का दायरा और भी बढ़ता जाता है और इराकी सेना में शामिल होने और फिर अपने बँधन से मुक्ति का रास्ता खोजने के दरम्यान उसे अहसास ही नहीं रहता कि कब वह इराकी सेना के जाल से छूटकर अमेरिकी सेना के बँधन में फँस जाता है। जिस अमेरिकी जनरल की उसने जान बचाई, अपने स्वार्थ को पूरा करने हेतु वही अमेरिकी उसको आठ वर्ष अज्ञातवास में बँधक बनाकर रखते हैं और अकाश/ सलीम की देखभाल केलिए गूंगी बनी मनोचिकित्सक जूलिया को उसकी प्रत्येक हरकत पर निगाह रखने की ड्यूटी सौंप दी जाती है। धीरे-धीरे अकेलेपन में जब उसका मस्तिष्क 'ब्रेन-वॉश' की स्थिति में पहुँच जाता है तब अमेरिकी उच्च सैनिक अधिकारी उसके सामने आकर अमेरिकी फौज में 'जनरल' की पदवी का प्रस्ताव रख देते हैं। ठीक इसी समय आकाश/सलीम को अपनी लाचारी का अनुभव होता है और उसको लगता है कि वह एक अमानुषिक स्वार्थी सत्ता का मोहरा बन चुका है जहाँ पर उसकी रिहाई का कोई रास्ता सामने नहीं है। अमेरिकी सेना के जनरल बनने का प्रस्ताव सुनकर उसकी मनःस्थिति शून्य हो जाती है और तब उसको लगता है,

> ...जनरल ने ये बतें ऐसे बोल दीं, मानो कोई खास बात न हो, लेकिन मेरा दिमाग सुन्न हो गया और सोचने लगा कि ज़िन्दगी के इतने साल जैसे मैंने नो मैन्ज़ लैण्ड पर बिता दिए। यहाँ मेरा कोई अपना नहीं, दिस्त नहीं, दुश्मन नहीं। (बसरा की गलियाँ 101)

मस्तिष्क को बिल्कुल शून्य कर देने वाली इन घड़ियों में आकाश/सलीम ठीक तरह से यह भी नहीं जान पाता कि अब वह जिस सिस्टम का हिस्सा बनने जा रहा है। वह उसको किस प्रकार अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करने वाली है। इन्हीं मुश्किल घड़ियों में आकाश/सलीम सोचता है,

> ...हम कुछ भी सोचते हैं, लेकिन होता वही है जो मँजूर-ए-खुदा होता है। अगर ऐसा न होता तो आज अपने ही इतने रूप देखकर मैं काँप न

> उठता। एक ही आदमी के इतने धर्म, इतने नाम...? (बसरा की गलियाँ 108)

अकाश/ सलीम का ज़िन्दगी का यह मोड़ उसे अपनी आज़ादी को भूलकर समूचे विश्व की आज़ादी-गुलामी की बातों पर सोचने को मज़बूर कर देता है। जब वह राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन और अमेरिकी राष्ट्रपति बुश के राजनीतिक जीवन और उनकी स्वार्थपरक नीतियों पर गहराई से विचार करता है। जब उसे अपनी मुस्लिम बनने के समय की कैद का स्मरण हो जाता है। यहीं उसे महसूस होता है कि जब व्यक्ति अपने मुख्य धर्म से च्युत हो जाता है तब वह कहीं का नहीं रहता। क्योंकि आज के समय में स्थितियाँ इतनी भयावह हो चुकी हैं कि धर्म अपना परम्परागत आदर्शमई स्वरूप खोकर स्वार्थ, कट्टरता, लोलुप मान्यताओं के आवरण में ढलकर किस प्रकार समाज की जड़ों को खोखला कर रहा है और सामाजिक सुरक्षा देने के नाम पर धर्म के तथाकथित ठेकेदार कैसे सामान्य व्यक्ति के साधारण से जीवन को असामान्य बना देते हैं। सद्दाम हुसैन ने भी अपने देश में मुस्लिम कट्टरपंथता के विरोध को इन्हीं कूटचालों के कारण हवा दी और पाश्चात्य आज़ादी बनाम उन्मुक्त/उच्छूंख विचारों को लागू करने के प्रयास लिए। मुस्लिम रीति-रिवाज़ों को पूरी शिद्दत से मानने व निभाने वाले समाज और देश-इराक में 'बुर्का-प्रथा' के प्रति असहमति सद्दाम हुसैन की एक सोची-समझी कूटनीति थी जिसके तहत वह अपनी स्वार्थपरक चालों को अंजाम देना चाहता था और सत्ता में पैर जमाए रखने केलिए जनता का भरोसा जीतना चाहता था।

अनीता देसाई के In custody उपन्यास में एक अध्यापक के बारे में बताया गया है जो कि सभी रीतियों और रिवाजों को मानता हुआ एक बहुत ही साधारण सा अध्यापक है। देवन नाम का यह पात्र अपनी पूरी जान एक साक्षात्कार के लिए लगा देता है किन्तु बाद में उसके हाथ फिर भी कुछ नहीं लगता। देवन एक बहुत ही साधारण दिखाई देने वाला अध्यापक है जिसकी इज्जत उसके विद्यार्थी भी नहीं करते। वह एक नकामयाब अध्यापक है, "who could not command attention, let alone

the regard of his unruly class." (In custody 13) देवन एक पुरानी तरह के दिखने वाले अध्यापक की तरह 'गुरूजी' जैसा देखाई देने वाला रीतियों और रूढ़ियों को माननेवाला अध्यापक के रूप में सामने आता है।

राजनीति भी समाज का अभिन्य अंग है। देवन भी कहीं न कहीं इसी राजनीति का शिकार होता है जब उसके कॉलेज में पता चलता है कि देवन एक उर्दू कवि से साक्षात्कार करना चाहता है और उसी सिलसिले में उसे छुट्टियाँ चाहिए। देवन की हिम्मत नहीं होती कि वह छुट्टी के लिए बोल पाए किन्तु जब हिम्मत जुटाकर वह छुट्टी माँगने के लिए जाता है तो आगे से उसे यह सब सुनना पड़ता है,

> One week? It would be a relief to me if it were one year, bawled Trivedi, and I did not need to see your stupid mug again, I'll have you demoted, Sharma-I'll see to it you don't get your confirmation. I'll get you transferred to your beloved Urdu department; you'll ruin my boys with your Muslim ideas, your Urdu language. I'll complain to the Principal, I'll warn the R.S.S you are a traitor… (In custody 17)

इससे यह पता चलता है कि किस प्रकार एक छोटी सी बात को लेकर समाज में उसको उदेड़ा जाता है और ऐसी छोटी और संक्रमति सोच से समाजिक वातावरण को दूषित बनाते हैं। दूसरी तरफ हम देखते हैं कि देवन दो भाषाओं के बीच फँस जाता है। एक भाषा जो उसकी आम बोलचाल की भाषा है और दूसरी उसकी पसंदीदा उर्दू भाषा। सामाजिक रूढ़ियों के चलते वह खुलकर उर्दू का समर्थन नहीं कर पाता और अपनी उर्दू कवि के साक्षात्कार के बारे में कहता है, "Worries, worries, worries. And where are the readers? Where are the subscriptions? Who reads Urdu anymore?" (In custody 15) देवन अपने आप को उर्दू भाषा का मसीहा मानता है लेकिन उसका ऐसा मानना समाज में उसे हिन्दी भाषा को बदनाम करने वाले से अधिक कुछ नहीं समझा जाता,

> Now I am planning, a social issue on Urdu poetry. Someone has to keep alive the glorious tradition of Urdu literature. If we do not do it, at whatever cost, how will it survive in this era of- that vegetarian monster, Hindi ?...That language of peasants…. The vegetables, it flourishes, while Urdu- the language of the court in days of royalty- now languishes in the back lanes and gutters of no emperors and Nawabs to act as its patrons. Only poor I, in my dingy office, trying to bring out a magazine where it may be kept alive. That is what I am doing, see? (In custody 15)

मुराद का उर्दू भाषा के प्रति एक अलग ही दृष्टिकोण है जो कि नूर कवि के घर कविताओं को दूसरे कवियों को सिखाते वक्त बयान करता है,

> Cowards- babies…You recite verses as if they were nursery rhymes your mother had composed. I tell you, we must get over this rolling of Urdu verses into a little sugar pills for babies to suck. We need the roar of lions, or the boom of cannon, so that we can march upon these Hindi-wallahs and make them run. Let them see the power of Urdu, he thundered. They it is chained and tamed in the dusty yards of those cemeteries that they call universities, but can't we show them that it can still let out a roar or a boom?...Yes, let Urdu issue from any orifice as long as it drives them away. But make its presence felt, he thundered thumping down his glass on his knee so that the liquor flew from it. (In custody 52-53)

दूसरी तरफ भाषा के प्रति तर्कसंगत विचार एक पत्रकार के माध्यम से सामने आते हैं,

> Nur Saahib, I am telling you the time for poverty is over. To feed the Hindi-wallahs with Urdu poetry is like feeding cows

> with- hunks of red meat. Turn to journalism instead, Nur Sahib. Reach out to the people directly. We have a message for them. Tell them in plain speech. Use your powers for the purpose of- attack and vengeance! (In custody 53)

इससे यह पता चलता है कि किस प्रकार अलग-अलग धर्म को मानने वाले लोगों के भाषा के प्रति किस प्रकार के विचार हैं। परन्तु देवन अपने आपको हमेशा ऐसी भाषाई राजनीति को नज़रंदाज कर दूर ही रहता है, "He had always kept away from the political angle of languages. He began to sweat with fear."(In custody 55) जब देवन कवि नूर के घर जाता है वहाँ भी हिन्दी को चाहने वाले होते हैं किन्तु कैसे भाषाएँ राजनीति के बीच से गुजरती है इससे स्पष्ट होता है,

> There was the India camp and the Pakistan camp, the pure-Persian camp and the demotic-Hindustani camp. They quarreled and mocked taunted and lost their tempers, but as if acting assigned roles. There was no evidence of anyone persecuting anyone else or of winning anyone over to his side through argument of persuasion. (In custody 54)

कवि नूर हिन्दी कवि मुराद के समय के कवि हैं। वह देवन को ताना देते हुए कहते हैं,

> ...Teach your students the stories of Prem Chand, the poems of Pant and Nirala. Save, simple Hindi language, saves comfortable ideas of cow worship and caste and the romance of Krishna. (In custody 55)

कवि नूर का मानना है कि उर्दू भाषा उसी दिन मर गई थी जब हमें 1947 में आज़ादी मिली थी। भारतीय सरकार ने तो उर्दू को ज़िन्दा रखने के लिए विश्वविद्यालयों में अलग-अलग स्कूल बनाए किन्तु उसमें इतनी सफलता हासिल नहीं हो पाई। कैसे समाज में राजनीति लोगों को धर्म और भाषा के आधार पर एक दूसरे से अलग कर देती है। लोगों की मानसिकता भी उसी प्रकार चलती है जैसे कि राजनीतिज्ञ चलाना

चाहते हैं। लोगों के दिलों दिमागों को इस कदर बहकाया जाता है कि लोग उस समय कुछ सही सोचने के काबिल ही नहीं रह पाते जैसे-जैसे समाज में वृत्तियाँ चलती हैं उसी प्रकार चलना शुरू कर देते हैं। ऐसा ही भाषाई द्वन्द्व देसाई के Baumgartner's Bombay उपन्यास में भी दिखाई पड़ता है जो कलकत्ता शहर में अभी इन दिनों भी देखने को मिलता है,

> Naturally the area around the mosque was considered the 'Muslim' area, and the rest 'Hindu'. This was not strictly so and there were certainly no boundaries or demarcations….so that pigs were generally kept out of the vicinity of the mosque and cows never slaughtered near a temple. Once a year, during the Mohurram procession of tazias through the city, police sprang up everywhere with batons, sweating with a sense of responsibility and heightened tension, intent on keeping the processions away from the temples and from hordes of homeless cows of from groups of gaily colored citizens who unfortunately often celebrated Holi with packets of powdered colors and buckets of colored water on the same day as that of the ritual mourning. If these clashed, as happened from time to time, knives flashed, batons failed and blood ran. For a while tension was high, the newspapers- both in Hindi and Urdu- were filled with guarded reports and fulsome editorials on India's secularity while overnight news sheets appeared with less guarded reports laced with threats and accusations. (Baumgartner's Bombay 21)

इसी प्रकार हम देखते हैं कि देवन समाज में किस प्रकार सामंजस्य बनाने में लगा रहता है जबकि परिस्थितीं भी उसके विपरीत होती हैं। उपन्यास में कई तरह के लोग, जाति, धर्म अध्यापक तथा दुकानदार सामने आते हैं जो समाज की मनोवृत्तियों के अनुसार

अपने आप को ढालने के प्रयत्न में लगे रहते हैं सिर्फ इसलिए क्योंकि व्यक्ति एक सामाजिक आदमी है। समाज के बिना वह नहीं रह सकता फिर चाहे समाज अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में ही क्यों न हो।

अनीता देसाई के Bye-Bye Black Bird और Baumgartner's Bombay उपन्यासों में हम देखते हैं किस प्रकार समाज और राजनीतिक नैतिक मूल्य व्यक्ति की ज़िन्दगी में मोड़ लाते हैं। Bye-Bye Black Bird उपन्यास में हम देखते हैं कि किस प्रकार व्यक्ति और संस्कृति सामाजिक व्यक्ति की दुनिया को एक दूसरे से छिन्न-भिन्न कर देती है। सारा और अदित्य दोनों अलग-अलग संस्कृतियों के व्यक्ति हैं। सारा अँग्रेजी और अदित्य भारतीय संस्कृति से है। दोनों शादी के बाद किस प्रकार अपने ही समाज से अपने आप को बचाते फिरते हैं क्योंकि दोनों ने अपनी संस्कृति में शादी न कर दूसरी संस्कृति में की होती है। समाज में उन्हें बहुत सारी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। सारा भी कहीं न कहीं एक भारतीय पुरुष से शादी कर अपने आप में ग्लानि भाव रखती है। वह कहती है,

> She was still breathing hard at having so narrowly escaped having to answer personal questions. It would have wrecked her for the whole day to have to discuss Adit with Julia, with Miss Pimm, in this sane, chalk-dusted, work-a-day office. She was willing to listen for hours to Miss Pimm's diagnosis of her aches and pains...But to display her letters from India, to discuss her Indian husband, would have forced her to parade like an impostor, to make claims to a life, an identity that she did not herself feel to be her own, although they would have been more than ready to believe her...She had stammered out her replies, too unhappy even to accuse them of tactlessness or inquisitiveness and, for her pains, had heard Julia sniff, as she left the room...If she's ashamed of having an Indian

> husband, why did she go and marry him? (Bye-Bye Black Bird 36-37)

यहाँ तक कि सारा बाज़ार से समान लेने केलिए भी उस बाज़ार को चुनती है जिसमें उसे किसी इंडियन का सामना न करना पड़े,

> ...She went into the supermarket to wander amongst the stacked shelves in an absent-mindedly happy way for she loved the supermarket, only just remembering to snatch up a bottle of mango chutney and a Lyons blackberry pie in order not to arouse the accountant's suspicion. The supermarket was a soothing place to her. Here she could buy her Patna rice and her pickles without acquiring the distinct personality, these purchases would have marked her with, had she shopped for them in one of those pleasant little shops at the end of Laurel Lane…But inside the sparkling halls of the supermarket where walls of soap and cornflakes hid her from strangers eyes, she could be as eccentric, as individual, as she pleased without being noticed by even a mouse. (Bye-Bye Black Bird 38-39)

एक भारतीय से शादी करने के बाद वह अपने समाज में अपने अस्तित्त्व को ढूँढती है,

> She had become nameless, she had shed her name as she had shed her ancestry and identity, and she sat there, staring, as though she watched them disappear. Or could only someone who knew her, knew of her background and her marriage, imagine this? Would a stranger have seen in her a lost maiden in search of her name that she seemed, with sudden silver falling of the light of glamour, to an unusually subdued and thoughtful Adit? (Bye-Bye Black Bird 31)

हम सब जानते हैं कि एक औरत केलिए शादी करके दूसरे घर में अपने आप की जगह बनाना काफी मुश्किल होता है। किन्तु अगर वह अपनी सभ्यता या संस्कृति के समाज में शादी करती हैं तो उसके लिए थोड़ा आसान हो जाता है क्योंकि वह अपनी ही संस्कृति में होती है। यदि वह शादी किसी और धर्म, संस्कृति और देश में ही करती है तो अपने आप को वहाँ की संस्कृति में समाहित करना बहुत मुश्किल हो जाता है। सारा भी ऐसी ही मुश्किलों का सामना करती है जोकि उसकी सभ्यता से बिल्कुल भिन्न है,

> Who was she- Mrs. Sen who had been married in a red and gold Benares brocade saree one burning, bronzed day in September, or Mrs. Sen, the Head's secretary, who sent out the bills and took in the cheques, kept order in the school and was known for her efficiency? Both these creatures were frauds, each had a large, shadowed elements of charade about it. When she briskly dealt with letters…she felt an impostor, but, equally, she was playing a part when she tapped her fingers to the sitar music in Adit's records...She had so little command over these two charades she played each day, one in the morning at school and one in the evening at home, that she could not ever tell with how much sincerity she played one role or the other. They were roles and when she was not playing them, she was nobody. Her face was only a mask, her body only a costume. Where was Sarah?...she wondered if Sarah had any existence at all, and then she wondered, with great sadness, if she would ever be allowed to step off the stage, leave the theatre and enter the real world- whether English of Indian, she did not care, she wanted only its sincerity, its truth. (Bye-Bye Black Bird 34-35)

सारा की मुश्किल एक आम आदमी की मुश्किल है क्योंकि वह एक असली और बिना दिखावे की ज़िन्दगी जीना चाहती है फिर चाहे वह एक अँग्रेजी सभ्यता या भारतीय सभ्यता की ही क्यों न हो। ऐसा भी नहीं कि सारा भारतीय संस्कृति के अनुसार अपना जीवन नहीं चला पाती। वह अदित्य के लिए अपना रहन-सहन, खाना-पीना सब कुछ बदल देती है। जो उसे पसंद भी नहीं होता वह सब भी कार्य करती है। आदित्य को खुश करने के लिए वह भारतीय खाना तक बनाना सीखती है और पहनावा भी वैसा ही पहनती है। किन्तु आदित्य ऐसी कोई भी कोशिश करता हुआ नज़र नहीं आता। सारा फिर सोचती है,

> His whole personality seemed to her to have cracked apart into an unbearable number of disjointed pieces, rattling together noisily and disharmoniously. (Bye-Bye Black Bird 200)

जब 1965 में इंडिया और पाकिस्तान का युद्ध लगता है तो आदित्य चाहता है कि वह इंग्लैंड छोड़कर अपने देश भारत वापस आ जाए। अनीता देसाई ने एक भारतीय नारी की तरह सारा के सामजिक व्यक्तित्व को उभारा। परिणामस्वरूप सारा अपना देश छोड़कर भारत में आने केलिए मान जाती है और वह भारतीय नारी की तरह यह भी जानती है कि किस प्रकार अपने पति को सम्भालना है,

> She could not tell what effect the smallest refusal or contradiction might have on him...Rather she would sacrifice anything, anything at all, in order to maintain, however superficially, a semblance of order and discipline in her house, in her relationship with him. His whole personality seemed to her to have cracked apart...If she allowed this chaos to reflect upon their marriage, she knew its fragments would not remain jangling together but would scatter, drift and crumble. (Bye-Bye Black Bird 200)

इससे पता चलता है कि सारा सामाजिक तौर पर ज्यादा खुश नहीं है किन्तु फिर भी वह हर कोशिश करती है कि सामंज्सय को बनाए रखना चाहिए जो कि एक सामाजिक प्राणी के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि वह अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कैसे अपनी मनोवृतियों को समाज और अपने व्यक्तित्व के अनुसार ढालता है।

सामाजिक जन-रीतियाँ व रूढ़ियाँ

लेखकों के उपन्यासों में समाज में जो जन-रीतियाँ व रूढ़ियाँ पाई जाती है उनके प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। अज्ञेय के समय पाई जाने वाली रूढ़ियों और जन-रीतियों को इस प्रकार देखा जा सकता है। राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा देने वाली शिक्षा की सोद्देश्यता समाप्त हो रही है। नायक शेखर, नवयुग का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए इन सबको समाप्त करना चाहता है और यह भी वह चाहता है कि एक राष्ट्र, एक नागरिक और एक कानून हो। शेखर का दलितों की मंडली में रह जाना, उनके साथ अपनत्व का अनुभव करना यही प्रमाणित करता है। वहाँ के अछूत-पंचम-किसी कुलीन ब्राह्मण के पास दायरे के भीतर नहीं आ सकते-कुछ गज दूर रहना होता है, ब्राह्मणों के लिए अलग सड़कें हैं जिन पर पंचम नहीं चल सकते-कुछ गज दूर रहना होता है, ब्राह्मणों के लिए अलग सड़कें है जिन पर पंचम नहीं चल सकते, क्योंकि ऊँची जातियों के लिए असुरक्षित होते हैं, ब्राह्मणों के पड़ोस में, अछूत, भूमि नहीं ले सकते और कभी ब्राह्मणों और पंचम का सामना हो ही जाय तो पंचम को अपना पंचमत्व घोषित करना पड़ता है कि अनजाने में उस की छाया ब्राह्मणों पर पड़ गई है। यदि उसने ऐसा नहीं किया तो उसे पत्थरों से इसलिए मार दिया था कि वह उस सड़क पर चल रहे थे जो ब्राह्मणों के लिए सुरक्षित थी। शिक्षा क्षेत्र पर ही इस प्रकार का तनाव है, शेखर इस के विरुद्ध विद्रोह करता है और अपनी इच्छा से अछूतों के होस्टल में रहने लगता है जहाँ परमानंद का अनुभव करता है। अपने अछूत साथियों को सम्बन्धित करते हुए वह कहता है,

> जिन लोगों के साथ रहना और खाना मैंने स्वयं चुना है, ये सभी अछूत हैं, आदर्शनीय हैं, लेकिन मैं आप से कहता हूँ, इनमें मैंने मित्र पाये हैं, भाई पाये हैं। कोई उन से पूछता नहीं है, देखता नहीं है, उन के पास नहीं जाता है, इसलिए उनके दिल सच्चे हैं, ताजे हैं और आग से भरे हैं। उन लोगों से कोई बात नहीं करता। इसलिए उनमें अनुभूति और भी तीखी है। आप ही वे लोग है आप ही मेरे संगी और स्नेही हैं, आप ही मेरा कार्यक्षेत्र है और आप ही मेरी शक्ति। (शेखर एक जीवनी भाग एक 215)

शेखर के इन शब्दों में उस समाज में प्रचलित ऊँच-नीच की प्रखर भेद-भावना मुखरित हो रही है। विवाह समाज की अत्याधिक महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। यह एक ऐसी संस्था है जो कि नारी एवं पुरुष के लिंग सम्बन्धों को परिभाषित करती है। हांबल के अनुसार, "विवाह सामाजिक नियमों का एक पुंज है जो कि विवाहित युग्म के पारस्परिक, उन के रक्त सम्बन्धियों के, उनके बच्चों के तथा समाज के साथ सम्बन्धों को नियंत्रित तथा परिभाषित करता है।" (Man in the primitive world 105) इसी विचार को स्पष्ट करते हुए वेस्टर मार्क ने कहा है कि,

> विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है जो प्रथा अथवा कानून द्वारा स्वीकृत होता है, जिसमें संगठन में आनेवाले दोनों पथों तथा उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का समावेश होता है। (The history of Human marriage 25)

भारतीय संस्कृति और समाज की एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है- विवाह व्यवस्था, जिसका सम्बन्ध तीसरे पुरुषार्थ काम से है और जिसकी अंतिम परिणति अपने जैसे प्राणियों की सृष्टि करना और इस सृष्टिक्रम को आगे बढ़ाना है। यद्यपि यह सामाजिक प्रथा है, फिर भी व्यक्ति-जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना ही नहीं और श्रेष्ठतम उपलब्धि भी है। व्यक्ति,

परिवार, समाज तथा राष्ट्रीय जीवन की अस्मिता को बनाये रखने तथा उसे प्रकाश में लानेवाला महत्त्वपूर्ण सामाजिक अनुष्ठान 'विवाह' है। भावी पीढ़ियों के लिए दृष्टि और दिशा प्रदान करनेवाला तथा उनकी वरीयता को प्रमाणित करने वाला अनुष्ठान भी वैवाहिक अनुष्ठान ही है। नारी-पुरुष सम्बन्ध, जो मानव सम्बन्धों में प्रमुख स्थान रखते हैं, मानव जीवन को स्वस्थ, सुखमय तथा सार्थक बनाते हैं। नारी-पुरुष के शारीरिक मिलन तक ही नहीं, भाव-प्राप्ति द्वारा आत्मिक मिलन की प्राप्ति है।

विभिन्न समाजों में विवाह की विभिन्न प्रथाएँ प्रचलित हैं। यद्यपि प्रगति की गति के साथ इन प्रथाओं का भी महत्त्व घटता-बढ़ता जा रहा है, तथापि वे भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के सामाजिक, धार्मिक और नैतिक नियमों तथा परिस्थितियों के अनुसार आदिकाल से प्रचलित हैं। जीवन का यह महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान आधुनिक समाज में उपहास तथा उपेक्षा का विषय बनकर नव दंपतियों के लिए अभिषाप बन जाता है। यहाँ पर भी माँ-बाप का एकाधिकार चलता है। बच्चों की इच्छा का सम्मान नहीं हो रहा है। नतीजा यह निकलता है कि नवयुवक और युवति मन चाहे खो जाते हैं, अनचाहे पा जाते हैं इससे जीवन विडंबनाओं से ग्रस्त हो जाता है। जीवन में स्वर्ण महल की कल्पना हवा महल में परिवर्तित हो जाती है और समाप्त होती है। प्रेम की जगह वासना, समर्पण की जगह छिपाव, आत्मिक आनन्द की जगह ऐन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति के कारण विवाह की सोद्देश्यता समाप्त सी हो जाती है। जाति-वर्ग-साम्प्रदाय तथा दहेज भी इस महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान को दूषित करने वाले तत्व हैं। विवाह से सम्बन्धित मनचाहे-अनचाहे विजातीय विवाह माँ-बाप के आधिपत्य से आत्म-संघर्ष के शिकार बन जाते रहे हैं। उपन्यास में राघवन का यह प्रसंग यहाँ उल्लेखनीय है,

> कहना आसान है। माँ-बाप की इच्छा के खिलाफ मैं कैसे जाऊँ। उन्होंने मुझे पाला पोसा, बड़ा किया, पढ़ाया, क्या उनके प्रति मेरा कोई ऋण नहीं है ? मैं इस बुढापे में उन्हें चोट नहीं पहुँचा सकता, तुम इसे कायरता समझो। मैं नहीं समझता। सहृदयहीन, मैं नहीं हूँ, न होना चाहता हूँ। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 208)

राघवन के ये शब्द वस्तुतः समाज के अधिकांश युवा पीढ़ी के विचारों को वाणी देते हैं। यह राघवन का ही आत्म संघर्ष नहीं, समस्त आधुनिक युवा-पीढ़ी का आत्म संघर्ष है। अभिभावकों के आधिपत्य के कारण ही उच्च वर्ग की शशि भी मनचाहे विवाह की जगह, अनिच्छा से ही अनचाहे विवाह के लिए तैयार हो जाती है। लेकिन कुछ ही दिनों में वह टूट गयी। यह टूटन स्वयं शशि के शब्दों में, "अपने को मिटा देने में मैंने कंजूसी नहीं की- खुले हाथ से दिया-होम कर दिया और देख लिया कि सब जल गया है- धूलि हो गयी है। यह नहीं सोचा कि धोखा खाया। मैंने स्पष्ट देखा था कि यही होगा।" (शेखर : एक जीवनी भाग दो 166)

नैतिक आदर्शवाद, जाति-पाति, दहेज, अनचाहे विवाह, स्वस्थ जीवन-दर्शन के बाधक तत्व बनकर सामने आते हैं, इसलिए युवा पीढ़ी कुंठित बन रही है और इन सब के विरुद्ध कृद्ध होकर विद्रोही हो उठते हैं। यही वैचारिक क्रांति है। विद्रोही-सा स्वर शशि के शब्दों में मुखरित है,

> आदर्शों का अभिमान आसान है, विवाह का हिन्दु आदर्श, गृहस्थ धर्म, सतीत्व का हिन्दु आदर्श-किन्तु अभिमान की काई के नीचे आदर्शों का पानी क्या बहता है कि बन्ध कर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म उदय मुखी होता है, किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, सख्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं रही, और नारी केवल पुरुष के उपयोग का साधन रह गयी है, नारी-सामग्री, जिसे वह जब चाहे जैसा चाहे, जहाँ चाहे, अपनी तुष्टि की आग में होम कर दे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि नारी कभी दुहाई दे तो उत्तर स्पष्ट है कि 'और शादी किसलिए की जाती है। यह आदर्श नहीं, आदर्शों की समाधि है, देह नहीं, सदियों की सूखी त्वचा में निर्जीव हड्डियों का ढाँचा है...। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 205)

स्वस्थ समाज की अज्ञेय कल्पना करते हैं। मूल्यों की कसौटी पर वे सामाजिक सम्बन्धों को पुष्ट बनाना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में विवाह एक ऐसी संस्था है जो व्यक्ति को पारिवारिक जीवन प्रदत्त करता है और सामाजिक संस्था को संस्कारों की भित्ति पर मजबूत बनाता है। शशि शेखर की रिश्ते से बहन लगती है। उस की मौसी विद्यावति की लड़की है, लेकिन शेखर 'बहिन' शब्द से जलता है। उनकी दृष्टि में नारी और पुरुष के सम्बन्ध का मतलब यौन ही है, सिवा इसके और कुछ नहीं। वह शशि को इसी दृष्टि से देखता है। यद्यपि वह उसके लिए बहन है। वह अंदर ही अंदर उस के प्रति आकर्षित हो जाता है और शेखर के प्रति शशि की भी यही धारणा है। यह मौन यौन क्रांति ही है जो प्रकट रूप धारण नहीं करती। जब शेखर जेल में रहता है तब शशि का विवाह रामेश्वर से हो जाता है। शशि अनचाहे ही बड़ों के दबाव से इस विवाह के लिए मान जाती है, मना नहीं कर सकती। वह मन से चाहती थी शेखर को, लेकिन शेखर जेल में था। शेखर के जेल से छूटने की खबर सुनते ही शशि शेखर के पास भाग आती है। मानो इस के युग-युग के स्वप्न साकार होने जा रहे हैं। वह रात भर शेखर की संगति में रहती है। शेखर के प्रति उसकी आत्मीयता और बढ़ जाती है। शशि के इस व्यवहार से रामेश्वर कृद्ध हो जाता है और उसको दंडित भी करता है। शशि अपने पति को सदा के लिए छोड़ देती है और अंतिम दिन तथा क्षण तक शेखर के पास ही रहती है। वह समाज की परवाह बिल्कुल नहीं करती। मनचाहे विवाह के बदले अनचाहे विवाह के जो दुष्परिणाम होते हैं उनका प्रत्यक्ष उदाहरण है शशि का जीवन। यहाँ विवाह व्यवस्था, तलाक तथा सामाजिक भय का लुप्त हो जाना इस बात का प्रणाम है कि मुहूर्त, मंत्र तथा वैवाहिक अनुष्ठान का कोई महत्त्व नहीं है। ये सब रूढ़ियाँ हैं। अगर उनका महत्त्व होता शशि का भाग्य चमक जाता। अस्तित्त्वादी दर्शन का मूल मंत्र-जीवन को सुख तथा तृप्ति देनेवाला एक क्षण ही शेष जीवन से महत्त्वपूर्ण होता है। जीवन को सुख तथा तृप्ति देनेवाला क्षण आपको मिल गया तो समझो आप का जीवन सार्थक हो गया है।

डॉ. शिवनारायण ने शशि और शेखर के सम्बन्ध में जो निष्कर्ष निकाला वह कुछ हद तक संगत ही प्रतीत होता है। उसका प्रत्येक क्षण प्रेम की संभीरतम अनुभूतियों

का क्षण है। शशि का जीवनदीप अपनी अंतिम बूंद तक प्रकाश की अंतिम अदभुत आभा बिखेरता हुआ मधुर-मधुर जलता रहा। वैवाहिक जीवन की असफलता से शशि न केवल कुढ़ती है, जलती है और न मरती है, बल्कि उस से शक्ति ग्रहण करती है अधिक निखर उठती है। शेखर के जीवन को दिशा और दृष्टि प्रदान करती है। शेखर को सुयोग्य व्यक्ति बनाने में पूर्णतः सहयोग देती है, स्वयं शेखर के शब्दों में शशि के इसी रूप को देख सकते है,

> सबसे पहले तुम शशि। इसलिए नहीं कि तुम जीवन में सब पहले आईं या कि तुम सब से ताजी स्मृति हो। इसलिए मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है-ठीक वैसे ही जैसे तलवार की धार का होना सान की पूर्वकल्पना करता है। तुम वह सान रही हो, जिस पर मेरा जीवन बराबर चढ़ाया जाकर तेज होता रहा है, जिस पर मँज-मँजकर मैं कुछ बना हूँ जो संसार के आगे खड़ा होने मे लज्जित नहीं है- लज्जित होने का कोई कारण नहीं जानता। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 20)

शशि का जीवन आत्मोसर्ग का ज्वलंत उदाहरण है। शेखर पूर्ण व्यक्ति बने, नारीत्व के साथ व्यक्त होनेवाली शशि के आत्मोसर्ग की भावना निम्न पंक्तियों में देख सकते हैं,

> तुम पूछते हो तो कहती हूँ- लो सुनो। नारी हमेशा से अपने को मिटाती आई है। ज्ञान सब उसमें संचित है, जैसे धरती में चेतना संचित है। पर बीज अंकुरित होता है, तो धरती को फोड़कर, धरती अपने आप नहीं फूलती-फलती। मेरी भूल हो सकती है, पर मैं इसे अपमान नहीं समझती कि सम्पूर्णता की ओर पुरुष की प्रगति में नारी माध्यम है...और वही एक माध्यम है। धरती-धरती ही है, पर वह भी समान सृष्टा है, क्या हुआ अगर उसके लिए सृजन, पुलक और उन्माद नहीं, क्लेश और वेदना है। मैं अपने को मिटा नहीं रही-जिस शेखर को मैं देखती हूँ, उसके बनाने में मेरा बराबर का साझा होगा, इसलिए लेन-

> देन का कोई सवाल नहीं है, और तुम्हारा यह झिझकना और कृतज्ञता जताना ही अपमान है। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 201)

इसी प्रकार शशि जलती है, मरती है और टूटती है। यह सब शेखर के लिए और शेखर को पूर्णत्व प्रदान करने के लिए। इसी में ही शशि अपनी मुक्ति, रक्ति और जीवन की सार्थकता मानती है। शशि जहाँ शेखर की मौसेरी बहन है, शेखर से उम्र में छोटी है। सरस्वती वहाँ शेखर की सगी बहन, उम्र में शेखर से पाँच वर्ष बड़ी। जब शेखर को परिवारवालों की सहानुभूति नहीं मिलती है और वे उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे और उसकी जिज्ञासा को तृप्त नहीं कर पाते, तब सरस्वती ही उपेक्षित शेखर के प्रति सहानुभूति दिखाती थी, उसकी शंका का समाधान करती थी और शेखर की बाल सुलभ चेष्टाओं से स्वयं तृप्त हो जाती थी और शेखर की जिज्ञासा को भी तृप्त करती थी। यद्यपि सरस्वती उस की बहन लगती है फिर भी शेखर अंदर ही अंदर उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। दोनों के सम्बन्धों को इन शब्दों में देख सकते हैं,

> दोनों सैर कर रहे थे। बजरे पर बैठी सरस्वती के गले में फूलों की माला डॉले और उसने धीरे से कोमल हाथों से बहन के कपोलों को अत्यंत कृतज्ञता भाव से स्पर्श कर दिया और बोला, 'कितनी अच्छी लगती हो तुम। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 69)

दोनों के रागात्मक सम्बन्ध इतने दृढ़ हो गये कि अब सरस्वती शेखर के लिए 'सरस' बन गयी। उपन्यासकार आधुनिक समाज में इन सबको मान्य मानते हैं। सरस्वती का विवाह हो जाता है, वह पतिगृह जाती है, फिर भी शेखर उस को 'सरस' कहकर ही संतोष-लाभ करता है। शारदा शेखर: एक जीवनी का एक और नारी पात्र है। वह मद्रासी परिवार की है जो आधुनिक कहे जाने वाले विदेशी वातावरण में पलती है। शेखर के लिए यही पहली किशोरी है। शेखर के प्रति वह काम भावना से उत्तेजित होकर अपने को समर्पित कर देती है, लेकिन वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ने में वह विफल हो जाती है।

शेखर शारदा की वीणावादिनी कला के प्रति अधिक आकर्षित हो जाता है तथा तभी इसे उसके मन में प्रेम का बीज अंकुरित होने लगता है। शारदा के प्रति उसके प्रतिबद्ध प्रेम तथा समर्पण भावना को इन पंक्तियों में देख सकते हैं, "...और वह एक बड़ी-सी सिसकी लेकर अपने अथाह आँसुओं को पीकर कहता है, शारदा ! मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ।" (शेखर: एक जीवनी भाग एक 156) वैसे तो शारदा भी शेखर से इसी कारण प्यार करती है और शेखर की आत्महत्या की बात सुनकर चीख उठती है और कहती है, "वचन दो कि अपने जीवन से ऐसा खिलवाड़ नहीं करोगे।" (शेखर: एक जीवनी भाग एक 157) इस प्रकार स्पष्ट है कि शेखर की प्रेमिकाओं में शारदा भी एक है तथा उसके जीवन में कुछ मधुर स्मृतियाँ छोड़ जाती है। इस प्रकार शारदा शेखर के जीवन में पानी के बुलबले के समान आती है और अपनी स्मृति छोड़कर जाती है। प्रेम के स्पर्श से कोई भी कवि, कलाकार और साहित्यकार बनता है और प्रेम की विफलता श्रेष्ठ साहित्यकार तथा कलाकार को जन्म देती है और शेखर के सन्दर्भ में भी वही हुआ।

'शेखर: एक जीवनी' एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, किन्तु इसमें व्यक्ति के अंतरंग का प्रकाशन विभिन्न सामाजिक स्थितियों, दबावों और समस्याओं के नेपथ्य में प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक स्थितियों की जटिलता का भी अंकन किया गया है। पारिवारिक जीवन में मूल्यों की विरासत में सम्प्राप्ति, बच्चों के व्यक्तित्व-विकास का महत्त्व, समाज की स्वस्थ संरचना में शिक्षा व्यवस्था का योगदान आदि को स्पष्ट किया गया है। उपन्यासकार अज्ञेय ने जाति-भेद और वर्ग-भेद का जोरदार खंडन किया है। आर्थिक एवं सामाजिक असमानताओं को मिटाने के पक्ष में अज्ञेय ने प्रासंगिक विचार व्यक्त किए हैं। भारतीय सामाजिक जीवन में, पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होने के कारण, मूल्यों के विघटन को अपने पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार अज्ञेय ने चित्रण किया है और इस सामाजिक विडंबना के प्रति उन्होंने गहरी चिन्ता प्रकट की है। विवाह-प्रथा सम्बन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य धारणाओं की समीक्षा अज्ञेय ने की है और स्वस्थ समाज की सरंचना में परिवार की दृढ़ता को उन्होंने अनिवार्य माना है। उनकी यह स्पष्ट मान्यता है कि केवल भारतीय समाज में प्रचलित विवाह-प्रथा द्वारा ही

परिवार को मजबूत किया जा सकता है। नारी-पुरुष सम्बन्धों के प्रति उपन्यासकार अज्ञेय के विचार परिवेश संगत हैं। विभिन्न पात्रों की आकांक्षाओं और कुंठाओं को दृष्टि में रखकर उपन्यासकार ने इन सम्बन्धों की यथार्थ परिकल्पना की है।

धर्म और राजनीति

भारत में धर्म का सर्वोच्च स्थान है। भारत के हर एक नागरिक अपने-अपने धर्म के प्रति सजग है। भारतीय समाज में धर्म-अधर्म एवं पाप-पुण्य ने भी विश्व भर के लोगों के नैतिक जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। भारतीय समाज में धर्म-पालन के सन्दर्भ में यहाँ सदैव उदारता का व्यवहार होता रहता है। भारतीय के सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों ने सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, दया, क्षमता, नम्रता, इन्द्रिय-दमन, मधुर स्वभाव आदि का पालन करते हुए अपने-अपने विश्वास के अनुसार जीवन यापन करने को 'धर्म' माना है। भारतीय समाज में धर्म एवं पुण्य कार्य उसे माना जाता है जिस में विश्व-बंधुत्व की प्रबल भावना हो तथा जो 'वसुदेव कुटुम्बकम' की उदार नीति के प्रेरणास्त्रोत हों। धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य जैसी भावनाओं के आधार पर ही मनुष्य अपने नैतिक जीवन की सार्थकता एवं निरर्थकता का विश्लेषण करता रहता है। नैतिकता और सामाजिकता पर अपना मत व्यक्त करते हुए समाजशानारी सी.ए एलवुड कहते हैं कि,

> समाजशास्त्र का कार्य वैज्ञानिक नीतिशास्त्र को अधार प्रदान करना है और दूसरी ओर नीतिशास्त्र का कार्य उन नैतिक मान्यताओं को ग्रहण करना है जो मानव समाज का वैज्ञानिक ज्ञान प्रस्तुत करती हैं और उन्हें विकसित करती हैं, उन की आलोचना करती हैं तथा उनमें समन्वय स्थापित करती हैं। विज्ञानों पर आधारित नीतिशास्त्र का ज्ञान विशेष उपयोगी होगा और समाजशास्त्र पर आधारित ज्ञान अन्य किसी भी ज्ञान की अपेक्षा अधिक उपयोगी होगा। (फणीश्वनाथ रेणु का कथा साहित्य: समाजशानारी विश्लेषण 40)

धर्म का स्वरूप हिन्दी साहित्य की हर विधा और रचनाओं में प्राप्त होता है। अतः भारतीय साहित्यकार चाहे कितनी ही नास्तिक हो, धर्म का स्वरूप और प्रचलन की रीतियाँ किसी न किसी रूप में उस की रचनाओं में भी देखने को मिल जाती हैं। प्रकृति की भिन्नताओं तथा विभिन्न घटनाओं के रहस्य को जानने के लिए मनुष्य के मन में 'धर्म' का जन्म हुआ। मनुष्य की समझ की समझ से परे वस्तुओं में ईश्वरीय गुणों की उपस्थिति का आभास हो गया। इसलिए ही अंधविश्वासों का जन्म हुआ। चूँकि नैसर्गिक प्रकोपों के समक्ष मनुष्य की स्थिति असहाय थी। मनुष्य की आंतरिक अक्षमताओं की स्वीकृति तथा उसके प्रति श्रद्धा की अभिव्यंजना ही धर्म कहलाने लगा। मानव की धार्मिक चेतना, शिक्षा, विचारों के आदान-प्रदान एवं चिंतन मनन के आधार पर निरंतर परिवर्तित होती रहती है। वस्तुतः धर्म मनुष्य के जीवन मूल्यों का समुच्चय होता है। विभिन्न विद्वानों ने धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार,

> धर्म वह अनुशानसन है, जो अंतरात्मा को स्पर्श करता है। हमें बुराई और कुत्सितता से संघर्ष करने में सहायता देता है। काम, क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है, नैतिक बल को उनमुक्त करता है, संसार को बचाने तथा महान कार्य करने की प्रेरणा एवं साहस प्रदान करता है। (धर्म और समाज 438)

बाल गंगाधर तिलक के शब्दों में, "धर्म शब्द का अर्थ व्यवहारिक, सामाजिक और नैतिक समझना चाहिए।" (गीतारहस्य 212) धर्म या दैवी प्रकोप से भयभीत मनुष्य कुछ अनैतिक कार्यों से सदैव ही दूर रहता था और सामाजिक मर्यादा प्रायः अक्षुण्ण बनी रही है। धर्मिक पर्व, त्योहार, अनुष्ठान आदि समाज में ऐकता स्थापित करते हैं। अतः धर्म शाँतिपूर्ण तत्वों का समर्थन कर समाज में परस्पर सहिष्णुता एवं सदभावना का संदेश देता है। मनुष्य धर्म से ही अपनी समस्याओं का समाधान खोजता है। धार्मिक विश्वासों के आधार पर ही 'सत्यमेव जयते' का नारा लगाया गया है। अतः धर्म मानव मन को नैतिक शक्ति प्रदान करता है। धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति, चित्रकारी,

मूर्तिकला, वस्तुकला आदि कलाओं के माध्यम से भी हुई है तथा उसका पोषण मंदिरों में ही हुआ है। समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं के पोषक तत्वों के रूप में धर्म को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। लेकिन धर्म व्यक्ति को पारलौकिक शक्तियों से परिचित कराकर मनुष्य के विकास की गति को बन्द कर देता है। अतः धर्म और मनुष्य का वस्तुतः अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मनुष्य धर्म के नाम पर अपनी प्रगति अथवा विकास को नहीं रोक सकता। धार्मिक सत्य एवं वैज्ञानिक सत्य के बीच आज विभाजक रेखा खींची गयी है। इस सन्दर्भ में कार्लमार्क्स का निम्न कथन द्रष्टव्य है,

> धर्म के कारण ही समाज में शोषण और अत्याचार बढ़ता है। शोषित अपने शोषकों का विरोध तभी कर सकते हैं जब कि धर्म का प्रचार कम हो। जिस देश में धर्म की प्रधानता अधिक है वहाँ निर्धनता तथा सामाजिक कुरीतियों की भरमार है। (भारतीय सामजिक संस्थाएँ 15)

धर्म और समाज के सम्बन्धों में जब परिवर्तन होते हैं तभी समाज विकास की ओर अग्रसर होता है। थॉमस रीड ने धर्म को मानव विचारों और क्रियाओं को दिशा देने वाली शक्ति के रूप में परिभाषित किया है,

> धर्म संस्कृति का मध्यवर्ती एवं मूल तत्व है। वह मानव विचार, भाव और क्रिया को दिशा प्रदान करता है, मानव आदर्शों, मूल्यों और प्रेरणाओं को स्थिर रखता है। इस में कहीं भी अविश्वास मिथ्या नहीं, सर्वत्र विश्वास, आस्था और सत्य है। सभी को एक-दूसरे पर अटूट विश्वास है और इस अटूट विश्वास पर ही धर्म का विशाल भवन स्थित है। (दि सोशियालॉजी ऑफ रिलिजन 166)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि धर्म मनुष्य को आध्यात्मिक तथ्यों से अवगत करवाता है। वह मानवता को विकास की ओर अग्रसर करता है। धर्म का वास्तविक अर्थ कर्तव्य का पालन है। लेकिन धर्म को उच्च वर्ग ने हमेशा ही शोषण

का अस्त्र बनाया है। प्राचीन शासकों ने सामाजिक मूल्यों को धार्मिक मूल्यों के साथ जोड़ दिया था जिस से जनता पर शासन करता रहा, धार्मिक रूढ़ियों का लबादा ओढ़कर शोषण करता रहा। आज स्थिति यह है कि धर्म राजनीति से जुड़ गया है। धर्म का उद्देश्य है मनुष्य को जीवन-विकास के सारे अवसर प्राप्त हो। मानव एक सामाजिक प्राणी है। धर्म और समाज एक दूसरे के पूरक हैं, तथा एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। धर्म समाज की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इस सन्दर्भ में श्यामचरण दुबे का निम्न कथन द्रष्टव्य है,

> धार्मिक विश्वास और श्रद्धा ही समूह में सुरक्षा और सहयोग की भावना को जन्म देते हैं। समाज की रचनात्मक अभिव्यक्तियों, विशेषकर उस के साहित्य और कला, सामाजिक गतिविधि और क्रिया कलाप आदि पर धार्मिक विश्वासों की प्रत्यक्ष या परोक्ष छाप अवश्य रहती है। (मानव और संस्कृति 145)

परिवेश से जानना चाहिए कि ईश्वर ही सब कुछ करता है, अतः इन का यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि महँगाई भी ईश्वर ने ही की है। नव शिशु का जन्म होता है तो यह भी ईश्वर की ही इच्छा का परिमाण है। धर्म और दर्शन भारतीय जीवन के प्रमुख आधार हैं, इसलिए यहाँ पारिवारिक जीवन से लेकर राष्ट्रीय जीवन तक धर्म ही प्राधान्य है। अपने पारिवारिक परिवेश के कारण बच्चे सहज ही धार्मिक संस्कारों से संपन्न हो जाते हैं और जहाँ उन की बाल सुलभ कल्पना की अथवा बोध की पहुँच नहीं होती, वही 'ईश्वर' आ जाता है।

शेखर जैसे असाधारण बालक को छोड़कर, ऐसे वातावरण में पले हुए बच्चों को धर्म के प्रति अंधविश्वासी हो जाना स्वाभाविक ही है। ये ही बच्चे बड़े होकर इस अंधविश्वास की कठोर श्रृंखला में जकड़ जाते हैं। शेखर के पिता भी ऐसे हैं। उन का भवानी पर अटूट विश्वास है, इसलिए वे उसकी पूजा करने के लिए सपरिवार खीर

लेकर भवानी के मंदिर जाते हैं। वहाँ रात को सुनाई जानेवाली कहानियों में हर प्रकार से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध किए जाने के बावजूद उस की मन की शंका नहीं मिटती। चाँदनी के अवर्णनीय सौंदर्य को देखकर वह इस निश्चय पर पहुँचता है कि जो ईश्वर भूख और लड़ाई की सृष्टि करता है, वह ऐसे सौंदर्य का निर्माण नहीं कर सकता। उसका मन ईश्वर के प्रति इतना शंकालु हो चुका है कि वह पिता के बुलाने पर भी भवानी के मंदिर में पूजा करने नहीं जाता। कारण पूछने पर वह बड़े साहस से कह जाता है कि, "मैं ईश्वर को नहीं मानता। मै प्रार्थना भी नहीं मानता। भवानी झूठी है। ईश्वर झूठा है ! ईश्वर नहीं है !"(शेखर : एक जीवनी भाग एक 77) यह कहने के लिए पिता से पिटता है पर इस पिटने में भी उसे एक 'प्रज्वलित आनन्द' मिलता है। इस वाक्य को कह सकने की सामर्थ्य, अभिमान और आत्मसम्मान की लहर से शेखर को अभूतपूर्व प्रसन्नता होती है। अब शेखर ईश्वर को अपने बराबर के प्रतिद्वंद्वी से अधिक नहीं समझता। जर्मन और अँग्रेजों की लड़ाई में असंख्यक वीर वीरगति को प्राप्त हुए। तब शेखर अपने मामा के भी युद्ध में वीरगति को प्राप्त समाचार को जानता है, मृत्यु और ईश्वर के प्रति उसकी जिज्ञासाएँ दिनों-दिन अदम्य बनती गई।

एक घटना से ईश्वर पर शेखर का विश्वास उठ जाता है। समाज में अनेक ऐसे अंधविश्वासी भी हैं जो इस अज्ञानता के कारण अकाल में ही अपनी इहलीला समाप्त कर लेते हैं, ऐसे अज्ञानियों का प्रतिनिधि वह पुजारी है, जो साँप के काटने की चिन्ता न कर के भी अपनी आराध्य भवानी के मंदिर में जा कर पहले अपनी पूजा समाप्त करता है। तब उस के पूरे शरीर में विष व्याप्त हो जाता है, उसे 'जय देवी माता।' बोलते हुए अपने प्राणों से ही हाथ धोना पड़ता है। लेकिन उसे देवी बचा नहीं पाती। शेखर का मत है इन अंधविश्वासों के कारण ही समाज में अनेक बुराईयाँ पनप रही हैं, व्यक्ति अपनी शक्ति को भूलकर बिल्कुल असहाय, विवश और निरुपाय बन रह गया है। वह सोचता है कि जिस ईश्वर के नाम पर इतना सब कुछ घटित हो रहा है, वह है भी या नहीं और कहता है,

> ईश्वर है कि नहीं ! लेकिन जिस ईश्वर के होने-न-होने को हम समझ सकते हैं, जिस को निर्गुण, निराकार, अपरिमेय सब कुछ कह कर भी जिस के बारे में हमारा मस्तिष्क इतनी क्षमता रखता है कि उसके होने को अपनी मुट्ठी में कर सकें, किसी अर्थ से कह सकें, कि वह है, उस ईश्वर के होने-न-होने से क्या ? ईश्वर यदि है तो वही है जिसके बारे में यह नहीं कह सकें कि वह है जो हमारे विश्वास के वृत्त से भी बाहर हो...। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 77)

ईश्वर और देवी- देवताओं के अस्तित्त्व के प्रति बालक शेखर की अनास्था उस की विद्रोह- चेतना का ज्वलंत प्रमाण है। क्रांतिकारी नास्तिक होते हैं या आस्तिक, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। पर वे भाग्यवादी या कर्मफलवादी नहीं होते, यह निश्चित है। वे ईश्वर के नाम पर अन्याय को चुपचाप सह लेना भी पसंद नहीं करते। शेखर चूँकि जन्मना विद्रोही है। इसलिए वह ईश्वर के प्रति भी विद्रोह करता है। ईश्वर लड़ाई भेजता है और वहीं ईश्वर सब कुछ अच्छा करता है, वही बच्चा भेजता है, जैसी परस्पर विरोधी, असंगत बातें शेखर को आश्वस्त नहीं कर पाती और धीरे-धीरे वह ईश्वर के अस्तित्त्व के प्रति शंकालु होता जाता है। वह पूछना चाहता है,

> क्या युद्ध अच्छा हुआ है ? भूख अच्छी हुई है ? मामा नहीं आये वह अच्छा हुआ है ? वह जो घोड़ा मर गया अच्छा हुआ है ? इतने सारे लोग बीमार पड़े, अच्छा हुआ ? मरे, अच्छा हुआ है ? सब कुछ ईश्वर करता है जिसमें उसे आपत्ति नहीं, वह सब कुछ अच्छा करता है, यह झूठ, उस पर अत्याचार है, इसे वह किसी तरह नहीं सह सकता कि...। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 74)

प्रस्तुत उपन्यास में अंधी धार्मिकता पर करारी चोट की गई है, क्योंकि यह प्रवृत्ति समाज और व्यक्ति के लिए अत्याधिक हानिकारक है। अजय शर्मा के उपन्यास 'बसरा

की गलियां' में नायक के जीवन पर राजनैतिक परिस्थितियाँ गहरा प्रभाव डालती हैं। उपन्यास के आरम्भ में ही नायक कर्फ्यू के कारण गलियों से होता हुआ अपने मित्र नरेश के घर पहुँचता है। जब नायक भारत से इराक पहुँचता है तो वहाँ पहुँचने पर वह देखता है कि इराक पर कई कम्पनियाँ केवल अपनी चमक-दमक दिखा रही हैं परन्तु जब ये अपना असली रूप दिखाएँगी तो न जाने कितनी बर्बादी होगी। इसकी कल्पना मात्र से ही उसकी रूह काँप उठती है। वह सोचता है कि एक कम्पनी की मार हिन्दुस्तान आज तक भुकत रहा है तो इराक पर तो प्रभुत्व के कारण कई देशों का हस्ताक्षेप भी है और साथ ही इसकी अपनी कई राजनैतिक स्तर की मुश्किलें भी हैं। इराक पर ईरान, कुवैत और अमेरिका आदि देशों का प्रभाव भी है। जब तक इराक अमेरिका को तेल इत्यादि देता रहा है तब तक उनके सम्बन्ध सही रहे। परन्तु जब उसके द्वारा उन्हें तेल देना बंद कर दिया गया तो इसका इराक पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। बड़ा मुल्क छोटे-छोटे देशों को अपनी मर्जी से चलाने की कोशिश करता है। धीरे-धीरे बागडोर उसके हाथ में आ जाती है तो उस पर हावी होते जाते हैं। यहीं नहीं करोड़ों डालरों का कर्ज भी उन्हें दे देते हैं ताकि वह मुल्क सारी ज़िन्दगी इसी दलदल में धंसा रहे। जब उन्हें लगता है कि छोटा देश बागी होने लगा है तो उस पर हमला करने से नहीं चूकता। यही स्थिति विश्व की है। कहीं तेल का खेल है, तो कहीं किसी और चीज़ का, सद्दाम के बारे में कई अमेरिकी फौजी बात करते हैं कि सद्दाम का गुप्त रूप से बड़ी-बड़ी कम्पनियों के सिलसिले में अमेरिका आना-जाना लगा ही रहता था, शायद इसीलिए उन्हें लगता हैकि विकसित देश यह नहीं चाहते कि विकासशील देश उनके सामने सिर उठाने की कोशिश करें।

आतंकवाद का राजनीति से बहुत गहरा सम्बन्ध है क्योंकि आज की राजनीति में सत्ताधारी ही अत्याचार करते हैं। तलवार की नोंक पर शासन चलाते हैं। निर्बल को समाप्त कर बलवान गद्दी पर बैठाया जाता है। शासनतन्त्र में आपाधापी मची हुई है। स्वार्थ लोलुप नेता कुर्सी के लिए कुछ भी कर सकते हैं। गरीब जनता इनके अत्याचारों का शिकार होती है। ये रंग सियार से सभ्यता का झूठा आवरण ओढ़े अपने घृणित कार्य

को पूरा करने में लगे हुए हैं। उपन्यास में इसका चित्रण सद्दाम हुसैन और बुश के माध्यम से किया गया है। जो जनता को डरा धमकाकर अपना कार्य सिद्ध करने में लगे हुए हैं। सद्दाम हुसैन के द्वारा लोगों को यह भी कहा गया है कि यदि वह उनकी बात नहीं मानेंगे तो उन्हें मौत की सज़ा सुनाई जाएगी। इस कारण लोगों को जबरदस्ती जंग के मैदान में भेजा जा रहा है और दूसरी तरफ अमेरिका का राष्ट्रपति एक तरफ तो इराक पर बार-बार आक्रमण कर रहा है और दूसरी तरफ लोगों को झूठा आश्वासन दे रहा है कि वह ऐसा करके उन्हें तानाशाही शासक से मुक्त करा देगा। इराक, ईरान, कुवैत और अमेरिका में इस आतंकवाद के कारण वातावरण अत्याधिक भय उत्पन्न करने वाला बना हुआ है।

धर्म के साथ राजनीति की साँठ-गाँठ धर्म की रक्षा या सद्भावना और शांति की स्थापना के लिए नहीं है। स्वार्थ के लिए धर्म का प्रयोग किया जा रहा है। हर वक्त ऐसा प्रतीत होता है कि अभी कोई इधर का या उधर का नेता किसी अदृश्य कोने में चुपचाप आग लगा देगा और शांत वातावरण एक बार फिर से भभक उठेगा। जब एक अंजान आदमी के रूप में राजनीति इराक में देखती है कि हिन्दु और मुसलमानों की एकता बढ़ती जा रही है तो उसे डर लगता है कि कहीं ये यहाँ पर अपना राज्य न स्थापित कर लें। इसलिए वह हिन्दुओं के खाने में गाय का माँस मिलवा देता है और इसका दोष मुसलमानों पर लगवा देता है। जिसके कारण इराक में भी हिन्दु और मुसलमानों में बँटवारा उसी प्रकार शुरू हो जाता है जिस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में हुआ। राजनीति के कारण धर्म विकृत हो चुका है। धर्म का विकृत रूप न केवल ईरान, इराक, कुवैत इत्यादि कुछ देशों में है बल्कि पूरे विश्व में यही हाल है।

आधुनिक राजनीति का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है आजकल की राजनीति राजनीतिज्ञों के निजी स्वार्थ से आप्लावित है। नेतागण अपनी कुर्सी को बचाए रखना चाहते हैं। उन्हें जनत से किसी प्रकार का कुछ लेना-देना नहीं है। अपनी कुर्सी को बचाए रखने के लिए वे कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। इसका यथार्थ चित्रण सद्दाम हुसैन के माध्यम से किया गया है। जो अपने स्वार्थ की खातिर सारे देश

को युद्ध में झोंक रहा है। वह अपने लम्बे-चौड़े भाषाणों द्वारा इराकी जनता को देश की रक्षा के लिए शहीद होने को कहता है। इस सम्बन्ध में अबू मजीद सलीम से कहता है,

> इराक दोहरी जंग झेल रहा है। एक बाहर की जंग है, दूसरी उसके भीतर सुलग रही है। वैसे तो सद्दाम हुसैन अपने लम्बे-चौड़े भाषणों में अक्सर कहते सुने जाते हैं कि दुश्मन अपने इरादों में कभी कामयाब नहीं हो सकता इसलिए डरो मत। इतिहास आपके साथ है और न्याय की जीत होगी। हम अपने मादरे वतन से प्यार करते हैं और मुल्क की हिफाजत के लिए अपनी जान तक देने को तैयार हैं। हर इराकी की ज़िम्मेदारी है कि वह अपने देश और आदर्शों की रक्षा करे। (बसरा की गलियाँ 35)

लेकिन सच्चाई ठील इसके विपरीत है। उसे जनता की जान से किसी प्रकार का कुछ लेना-देना नहीं है वह अपनी जान बचाने के लिए जनता का प्रयोग कर रहा है। उसके ही कारण आज इराक में आदमियों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है जिसके कारण आज लड़कियाँ विवाह के नाम से डरती हैं क्योंकि उन्हें डर है कि न जाने कब उसके पति को शहीद होने के लिए भेज दिया जाए और अगर कोई सद्दाम हुसैन की बात नहीं मानता तो उसके हाथ-पैर कटा दिये जाते हैं। वास्तव में वह स्वयं की रक्षा के लिए भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है। बम-प्रूफ महलों में रहता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि नेता लोगों के द्वारा कुर्सी प्राप्त कर लेने के बाद जनता से किसी प्रकार का कुछ लेना-देना नहीं होता यद्यपि वह चुने जाने से पहले कई वायदे करते हैं। परन्तु वे केवल कोरे वायदे होते हैं। एक बार कुर्सी प्राप्त कर लेने के बाद वह अपने स्वार्थ तक सीमित हो जाते हैं। इसका स्पष्ट चित्रण उपन्यास में व्यापक रूप में पाया जाता है।

फूट डालो और राज्य करो की नीति हमारे संसार में प्राचीनकाल से चली आ रही है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा भारत पर शासन इसी नीति के अन्तर्गत किया गया। यह अब भी ज्यों की त्यों विद्यमान है। इराक के नेता सद्दाम हुसैन और अमेरिका

के राष्ट्रपति जार्ज बुश के द्वारा इसे अपनाया गया। अमेरिका के राष्ट्रप्ति जार्ज के द्वारा जनता की सहानुभूति हासिल करने के लिए इस नीति को अपनाया गया। उसके द्वारा जनता को तसल्ली देने का प्रयत्न किया गया कि हम मानते हैं कि इराकी जनता मानवीय स्वतंत्रता की हकदार है और यह भी शब्दों में कहा गया कि हमारी लड़ाई इराकी जनता से नहीं है। हम तो उन्हें सद्दाम हुसैन के अत्याचारों से मुक्ति दिलाना चाहते हैं। राष्ट्रपति बुश ने तो इराकी जनता के नाम एक पैगाम के रूप में यह कहा था कि इराकी जनता की आज़ादी का दिन निकट है। आखिर में लिखा था कि हम इराक और जनता पर कारवाई करने केलिए मज़बूर हैं और सद्दाम के खिलाफ युद्ध में पूरी सेना को झोंक देगा और अंत में जब अमेरिका के द्वारा इराक पर कब्जा कर दिया गया और थोड़े-बहुत लोग पकड़ने वाले रह गए तो उसने फिर से लोगों से अपील की थी,

> हमारा मकसद लोगों को तानाशाह शासक के हाथों से मुक्त करवाना था, वे हमने करवा दिया। अब हम लोगों से अपील करते हैं कि जल्द से जल्द बाकी ताश के पत्तों को पकड़वाने में हमारी मदद करें। पकड़वाने वाले को भारी इनाम दिया जाएँगा। किसी को किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है। सद्दाम का केवल बिखरा हुआ अहम था, उससे उसे आत्म मोह हो गया था।...और वह हर सपने को सच होते देखना चाहता था नतीजा चाहे कुछ भी हो। उसी का नतीजा है कि उसने अपने दामाद को गोलियाँ मारकर सदा के लिए सुला दिया था और बेटियों को सदा केलिए दबा दिया था। जो शासक अपनों के लिए इतना क्रूर हो सकता है उसके लिए दूसरों की जान तो कीड़ियों के समान भी नहीं है। जनता को सद्दाम के खिलाफ भड़काने के लिए पैंफलैट में खाड़ी युद्ध में अपने ही सैनिकों को मरवा देने का ज़िक्र भी किया गया। उसके जुल्मों की लम्बी सूची तैयार करते हुए लिखा गया कि 1980 का जो हाल हुआ, उसे भुलाया नहीं जा सकता, लेकिन 1988 में लाख कुर्दों को

> मारने का आदेश किसी शर्मनाक घटना से कम नहीं है और चालीसा कुर्द नगरों पर गैस छोड़ना किसी घिनौने पाप से कम नहीं है। (बसरा की गलियाँ 176)

ऐसा करके अमेरिकी राज्य एक तरफ तो जनता की सहानुभूति हासिल करना चाहता है और दूसरी तरफ यह भी चाहता है कि सद्दाम हुसैन के जो लोग रह गये हैं जनता उन्हें पकड़वाने में हमारी मदद करे। यह नीति पूरे विश्व में पाई जाती है। आज विश्व जिन समस्याओं से झूझ रहा है उनकी सशक्त अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है। इस उपन्यास में अर्थ भी एक प्रमुख समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है। आजकल मनुष्य के लिए प्रतिष्ठा का द्योतक भी अर्थ है। व्यक्ति अर्थ के लिए मान्य-अमान्य, नैतिक-अनैतिक सभी प्रकार के कार्य करने केलिए तैयार हो जाता है। इसका यथार्थ चित्रण आकाश के माध्यम से किया गया है। वह यद्यपि इस बात को भली प्रकार से जानता था कि वहाँ पर हर वक्त युद्ध की स्थिति बनी रहती है परन्तु फिर भी वह इराक जाता है पैसे की चकाचौंध में अपने आस-पास के वातावरण की तरफ भी ध्यान नहीं देता। वह इराक के वातावरण का वर्णन करते हुए बताता है,

> हर वक्त गोलियाँ चलने की आवाज़ आती। रात को शेलिग होती रहती। कई बार ऐसा लगता, आसमान धुएँ की चादर से काला हो रहा है लेकिन धीरे-धीरे आसमान अपने रंग में आ जाता लेकिन काला होने और अपने रंग में आने के बीच जो समय निकलता वो ऐसा लगता जैसे हम ज़िन्दगी और मौत के भँवर में फँसे हुए थे।...और अंत में हम मुक्त हो गए।...हम लोग कई बार मार्कीट जाते तो वहाँ भी शेलिग शुरू हो जाती। हम लोग कहीं ठहर जाते। शेलिग रुकने के बाद ही वापिस कैंप में आते और लोगों को उसके बारे में हँस-हँसकर बताते। हाल दूसरे लोगों का भी यही था। ऐसा लगता था सब लोग इसके आदी हो गए हैं और दीनार की चमक के नीचे शेलिग की आवाज़ दबकर रह गई है, जो

> लोगों को सुनाई तो देती है, लेकिन वे सुनना नहीं चाहते। (बसरा की गलियाँ 33-34)

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लोग अपनी जान को खतरे में डालकर भी पैसा कमाना चाहते हैं। इसी आर्थिक प्रधानता के कारण आज मानव मानसिक संकीर्णता, स्वार्थपरता, परस्पर वैर, शत्रुता, क्रोध, कलह-क्लेश आदि का बुरी तरह शिकार होकर रह गया है। यहाँ तक कि जीवन मृत्यु के कारण भी आज अर्थ को माना जाता है। इसी अर्थ के कारण ईरान-इराक और मएरिका-इराक का युद्ध शुरू हुआ। प्रत्येक देश अपने से छोटे देश पर अधिकार करना चाहता है। पैसे के ही कारण अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा इराक के लोगों को उनके शासक के खिलाफ भड़काया जाता है ताकि वह वहाँ के तेल पर कब्जा कर सके। पैसे के लिए आकाश जीवन भर की दासता मोल ले लेता है। यहाँ तक उसे अपना नाम तक परिवर्तित करना पड़ता है और खतने जैसी दर्दनाक रस्म से भी गुज़रना पड़ता है। आज लोगों के द्वारा यह धारणा भी अपना ली गई है कि आज यदि पैसा है तो सब कुछ है। पैसा से असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है। वर्तमान युग में अर्थोपार्जन के लिए भ्रष्टाचार को अपनाया जाता है जिससे मनुष्य के जीवन में घुटन, खिन्नता, टूटन, विक्षोभ, आकुलता इत्यादि के दर्शन होते हैं। इसी अर्थ के कारण आज सभी सम्बन्ध बिखरते जा रहे हैं। परस्पर सम्बन्धों में विघटन हो रहा है। वस्तुतः आज के भौतिकवादी समाज में अर्थ के प्रति अतिरिक्त मोह होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। दूसरी तरफ विदेशी चीज़ों के प्रभाव के कारण हमारे देश का अधिकतर पैसा दूसरे तरफ विदेशी चीज़ों के प्रभाव के कारण हमारे देश का अधिकतर पैसा दूसरे देश में जा रहा है और लोगों का उनके प्रति आकर्षण भी बढ़ता जा रहा है।

हिन्दु से मुस्लिम बना आकाश फिर अमेरिकी फौज द्वारा इस्तेमाल के रूप में आने पर क्रिश्चियन बना। आकाश उस समय अपने जीवन की कड़वी सचाई से रू-ब-रू होता है जब एक बार अमेरिकी जनरल बना वह फिर से अमेरिकी हमले केलिए बसरा जाता है और वहाँ उसका मन बुशरा को मिलने को होता है। यही इच्छा उसको उसे

बुशरा के घर ले जाती है किन्तु बुशरा जो कि उसे मरा हुआ समझ बैठी थी जब उसको देखती है तब खुश होने के स्थान पर उसकी बातें सुनकर उदास हो जाती है। आकाश/सलीम/स्मिथ वहाँ बुशरा की माँ से मिलकर अपने अतीत में पहुँच जाता है और मुस्लिम बनकर जीने की कैद का स्मरण आते ही वह तिलमिला उठता है,

> अब आप मुझे यहाँ कैदी नहीं बना सकते। मैं अमेरिकी फौजी हूँ और यहाँ तुम लोगों को तुम्हारे राजा से मुक्ति दिलाने आया हूँ। मैं तो अपनी गुलामी से करीब दस साल पहले ही आज़ाद हो गया था। (बसरा की गलियाँ 156)

आकाश/सलीम/स्मिथ की ऐसी हृदय को जलाने वाली बातें सुनकर बुशरा बिफर उठती है और कहती है,

> ...तुममें और सद्दाम में ज़्यादा फर्क नहीं है। बस फर्क तो केवल इतना है कि उसकी बातें मीडिया ने पूरी दुनिया में फैला दी हैं और तुम जैसे सद्दाम तो हर गली में आवारा कुत्तों की तरह किसी शिकार केलिए मारे-मारे फिर रहे हैं...तुम आज़ादी चाहते थे न, जाओ आज तुम्हें मैने आज़ाद कर दिया।...और याद रखना फिर कभी दारू पीकर इस बिस्तर पर नहीं बैठना। अगर तुम यहाँ आकर बैठोगे तो मुझे लगेगा कि कोई बेसहारा गुलाम यहाँ बैठा है, जो मेरी वजह से गुमाली की ज़ंजीरों में बँधा है। (बसरा की गलियाँ 162)

यहाँ पर बुशरा की ऐसी बातों को सुनकर आकाश खुद को पहली बार उसका अपराधी समझता है,

> मैंने उसकी माँ की तरफ देखा और मुझे लगा कि जिस पर मेरी निगाहें हमेशा शोलों से भरी रहती थीं, आज कुछ झुकी थीं। मैंने जल्दी से पूरे

> घर में नज़र दौड़ाई, उसकी माँ की तरफ देखा और बुशरा की तरफ देखे बिना ही घर से बाहर आ गया। (बसरा की गलियाँ 163)

धर्म-परिवर्तन की त्रासदी झेलते हुए आकाश पता नहीं क्या से क्या बन जाता है और स्वार्थ की शतरंज पर मोहरा बनने का अहसास जब उसे होता है तब चैन पाने हेतु वह वापिस भारत आने का निर्णय करता है और अपनी फ़ौजी साथी एलाइजा की मदद से अपनी मातृ-भूमि भारत लौट आता है। यहाँ आकर भी बीते जीवन की दःखद स्मृत्तियाँ उसे कटोचती हैं और उसे लगता है कि शायद भगवान की शरण में उसे शांति मिलेगी किन्तु अध्यात्म की शरण और अपना देश भी उसे चैन प्रदान नहीं कर पाते। उसकी बेचैनी इन शब्दों में व्यक्त होती है,

> मैं अपने ही देश में बेगानों की तरह घुसा हूँ। क्योंकि मेरा नाम बदल गया है और पहचान भी बदल गई है। मेरी आँखों के सामने नन्हें मुन्ने बच्चे घूमने लगे जिन्हें सीथे बचपन से उठाकर बार्डर पर खड़ा कर दिया गया था। उन्हें मालूम नहीं कि जवानी क्या होती है। (बसरा की गलियाँ 121)

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि उपन्यास में राजनीति का विश्ववियापीकरण किया गया है जो समस्याएँ ईरान, इराक, कुवै और अमेरिका की रानजीति में हैं, वही पूरे विश्व में ज्यों की त्यों पाई जाती हैं। इसमें सद्दाम हुसैन और अमेरिका के राष्ट्रपति बुश के माध्यम से राजनीतिज्ञों की वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है और बताया गया है कि आजकल नेतागण स्वार्थी हैं। वे अपने स्वार्थ के लिए जनता का प्रयोग करते हैं। उन्हें आम जनता से किसी प्रकार का कुछ लेना-देना नहीं होता। उन्हीं के ही कारण समाज में आतंकवाद और भ्रष्टाचार का बोलबाला होता है। वे अपनी जान बचाने के लिए जनता का प्रयोग करते हैं और अगर कोई उनकी आज्ञा का पालन नहीं करता तो उसे मौत की सज़ा भी सुना दी जाती है। वे अपने फायदे के लिए जनता में फूट डालते हैं। उन्हें डर होता है कि अगर जनता में एकत्व की भावना उत्पन्न होगी तो

उनका राज करना कठिन हो जाएगा। दूसरी तरफ अगर जनता सिर उठाने की कोशिश करती भी है तो उन्हें राजनीतिज्ञों के द्वारा अपने स्वार्थ केलिए कुचल दिया जाता है। इसका यथार्थ चित्रण सद्दाम हुसैन और जार्ज बुश के माध्यम से किया गया है कि किस प्रकार अपने स्वार्थ केलिए वे जनता का प्रयोग करते हैं। लेखक आकाश के माध्यम से धार्मिक कट्टरता से बँधे समाज का अन्त क्या होता है, इस ज्वलन्त विचार को बेहद गम्भीरता से हमारे सामने रखा है क्योंकि यह तनाव आज पूरे विश्व को अपना ग्रास बनाता प्रतीत हो रहा है। धार्मिक कट्टरता की आड़ में व्यक्ति को सुरक्षा देने के बहाने राजनीति द्वारा किस प्रकार तथा स्वार्थी उपभोक्ता बनाकर इस्तेमाल किया जाता है तथा उसका मानसिक, शारीरिक व सामाजिक शोषण किया जाता है।

देसाई के Baumgartner's Bombay उपन्यास में समाज की एक ओर मार्मिक झलक दिखाई देती है। जिसमें बॉम्गार्टनर नाम का पात्र इस सामाजिक त्रासदी को झेलता है। वह एक जर्मन का विस्थापित नागरिक है। जब हिटलर की राजनीतिक पार्टी ने अपना शासन शुरू किया तो उसने जियूष नामक धर्म को मानने वाले लोगों को जर्मन से निकाल दिया और उनकी सम्पत्ति को जपत कर लिया। बॉम्गार्टनर के परिवार के साथ भी यही हुआ था जिसे अपना देश छोड़कर अँग्रेजी हकूमत वाले भारत में आना पड़ा। वह दो तरह के सामाजिक अत्याचार को झेलता है। एक तो अपने ही देश में उनके साथ बहुत बुरा सलूक हुआ। दूसरा जो देश उसने अपनी मर्जी से चुना वहाँ पर भी अपनी पहचान के लिए उसको कई तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ा। वह भारत के शहर कलकत्ता में आता है और वहाँ वह शरणार्थियों की तरह घूमता हुआ वैश्याओं के बाज़ार में चला जाता है। जहाँ वह भी उसका शोषण ही करती है,

> Going out for a packet of cigarettes from a stall he had noticed at the corner, late at night when the shops where shut, he was hailed by two women who stood by a high wall that stank of urine and garbage. They wore white frocks, like nursed, and jewellery of glass, and tin. When they smile at

> him, waving 'Hoo-hoo, Tommy, he saw that their teeth were stained red...they grabbed him by an arm each, crying, 'Less have drink, Tommy, come awn...they smelt of Eastern flowers-jasmine, or lotus, as well as perspiration, cheap cigarettes, alcohol and the stuff they chewed with their strong, flashing teeth, spitting frequently to rid their mouths of its crimson juice. (Baumgartner's Bombay 92)

बॉम्गार्टनर के लम्बे समय तक शरणार्थी कैंप और जेल में रहने से उसके सामाजिक व्यक्तित्व में बहुत बदलाव आ जाता है और वैसा व्यक्तित्व उसे समाज में दिखाने के लिए बाध्य होना पड़ता है क्योंकि अँग्रेजी शासन वाले भारत में उसके ऊपर आरोप लगाया जाता है कि वह उनका दुश्मन है। अँग्रेजी सिपाही उसके साथ बहुत बुरा व्यवहार करते है। वह समझाता भी है कि वह एक शरणार्थी की तरह भारत में पनाह लेने आया है और उससे पासपोर्ट छीन लिया जाता है,

> What am I to do then?' The man bawled when Baumgartner again protested at being labeled a German and hostile. Got a German passport, says you were born there- then what am I supposed to take you for, a blooming Indian? The papers were flung at him, and he retreated, baffled, wondering what magic word he might find that would release him from what was a monstrous mistake, or madness." (Baumgartner's Bombay 106)

जब वह शरणार्थी कैंप में होता है तो वहाँ उसके साथी नाज़ी उससे नाज़ियों के लिए गाना गाने के लिए कहते हैं। जिसमें उसके दर्द का बयान देखा जा सकता है,

> …the song of graves and funerals, of death on battlefields, of ending and defeats…'Ich hat' ein Kamerad, Einen bessern find'st due night….'…'The men in the audience gave a collective shiver.'…'Baumgartner stood, under the weight of

> their defeat, burdened by their defeat, finding it gross, grotesque, suffocating. He wanted to 'Stop!' He wanted to tell them it was their defeat, not his, that their country might be destroyed but this meant a victory, terribly late, far too late, but at last the victory. Of course he said nothing, he stood helplessly only aware how crushed and wretched a representative he was of victory. Couldn't even victory appear in colors other than that of defeat? No Defeat was heaped on him, whether he deserved it or not. (Baumgartner's Bombay 135)

बॉम्गार्टनर के ऊपर बहुत ही बुरा सामाजिक प्रभाव पड़ता है लेकिन इससे भी बत्तर अभी उसके साथ होना होता है। जब दूसरा विश्व युद्ध होता है और भारत को आज़ादी मिलती है। शांति प्रिय बॉम्गार्टनर को अपनी ज़िन्दगी में बहुत ही भयंकर अशांति का सामना करना पड़ता है। विश्व युद्ध खत्म होने के बाद बॉम्गार्टनर जब कलकत्ता शहर में वापस आता है तो उसको थोड़ी सी शांति की ज़िन्दगी मिलती है,

> Baumgartner felt himself overtaken by yet another war of yet another people. Done with the global war, only to be plunged into a religious war. Endless war, Eternal war. Twenty thousand people, the newspapers informed him, were killed in three days if violence in Calcutta. Muslims killed Hindu, Hindus, Muslims. Baumgartner could not fathom it- to him they were Indian seen in a mass and, individually, Sushil the Marxist, Habibullah the trader. (Baumgartner's Bombay 180)

बॉम्गार्टनर को जियूष होने पर उसके अपने ही घर और देश से बेघर कर दिया जाता है। इसी का सामाजिक संताप वह सारी ज़िन्दगी इस समाज में रहकर झेलता है। जब वह अपनी मर्ज़ी से भारत को अपने देश के तौर पर चुनता है तो भारत में भी उसके रंग के कारण एक भारतीय नागरिक होने का सुख कभी नहीं मिल पाता। उसका बहुत ही

अच्छा और खास दोस्त चुन्नीलाल जब बीमार होता है वह उसको अस्पताल लेकर जाता है किन्तु उसको बचा नहीं पाता। उसकी अंतिम क्रिया में चुन्नीलाल के रिश्तेदार उसे ही दोषी मानते हैं,

> Baumgartner joined the mourners at the cremation, standing at the edge of the crowd, all of whom shark away from him, horrified by the presence of a foreigner, a firangi, at such an intensely private rite. Hearing the babbling chant of the odours of burnt flesh and charred wood under the noontime sun, Baumgartner too wished he had not come, and shuffled away. (Baumgartner's Bombay 205-206)

बॉम्गार्टनर चुन्नीलाल के परिवार से कुछ नहीं चाहता सिर्फ एक चीज़ के इलावा। वह चाहता है कि चुन्नीलाल जो उसका बहुत ही प्यारा मित्र था, उसका परिवार बस उसके और चुन्नीलाल के सामजिक भाईचारे के रिश्ते को अपनाकर वहीं प्रेम और इज्जत दें जो मित्रता में मिलती है। किन्तु यह समाज उसे वह भी न दे सका। वह सोचता है जर्मन समाज की तरह भारतीय समाज भी उसे कभी अपना नहीं पाएगा। भारत में पचास वर्ष रहने के बाद भी वह एक भारतीय नागरिक की इज्जत नहीं कमा पाता। ऐसी ज़िन्दगी को वह पहले ही शरणार्थी कैंप में देखकर आया होता है और वहीं प्रभाव उसके ऊपर रहता है और अपनी आज़ादी के बारे में सोचता है,

> He wondered if the long internment had not incapacitated him, made him unfit for the outer world. And what would they find outside? Germany destroyed- no possibility of returning, so that he would have to accept India as his permanent residence. He wondered at his ability to survive in it, reduced as he was to such an abject state of helplessness, and the knowledge besides of being alone…Outside, he would be that- a man without a family or a country. (Baumgartner's Bombay 132-133)

बॉम्गार्टनर की कहानी आज की सामाजिक परिस्थितियों के बहुत ही नज़दीक है क्योंकि आज भी राजनीतिक शक्ति दिखाने केलिए, राजनीतिज्ञों द्वारा, धर्म की शक्ति दिखाने केलिए धर्म के ठेकेदारों के द्वारा, फौज की शक्ति दर्शाने केलिए युद्ध होते हैं, परन्तु उसमें पीसता आम आदमी है। जिसे कई सारी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। बॉम्गार्टनर पहले जर्मन में धार्मिक कटरत्ता को झेलता है फिर वह भारतीय लोगों द्वारा दी गई सामजिक यातना को झेलता है। वह यह समझने में असमर्थ है कि क्यों भारतीय लोग उसे भारतीय नागरिक नहीं मानना चाहते,

> He had lived in this land for fifty years- or if not fifty then so nearly as to make no difference- and it no longer seemed fantastic and exotic, it was more utterly familiar now than any other landscape on earth. Yet in the eyes of the people he was still strange and unfamiliar to them, and all said Firangi, foreigner. For the Indian sun had not been good to his skin, it had not tanned and roasted him to the color of a native….His hair would not turn dark, it stood out around the bald centre like a white ruff, stained somewhat yellow. Even if he had used hair-dye and bootpolish, what could he have done about his eyes? It was not that they were blue-far from it, his mother, holding him on her knee…had called them ‘dark eyes, dunkele Augen, but Indians did not seem to think them so. Their faces in malice…Accepting but not accepted, that was the story of his life, the one thread that ran through it all. In Germany he had been dark- his darkness had marked him Jew, der Jude. In India he was fair-and that marked him the firangi. In both lands, the unacceptable. Perhaps even where his cats were concerned, he was that-man, not feline,not theirs. He nodded thoughtfully, the cats, they always knew. (Baumgartner’s Bombay 19-20)

हम देखते हैं कि बॉम्गार्टनर तो भारतीय सभ्यता, संस्कृति और समाज को अपना बना लेता है किन्तु भारतीय लोग उसे अपना नहीं बना पाते। सामाज में व्याप्त कई कुरीतियों और असभ्यक चीज़ों का उसे सामना करना पड़ता है।

सामाजीकरण की समस्याएँ

बच्चों के व्यक्तित्व तथा चरित्र-निर्माण में शिक्षा का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वर्ग यथा श्रेणियों में विभक्त भारतीय समाज में सब के लिए एक जैसी शिक्षा व्यवस्था नहीं है। ग्रामीण तथा निर्धन बच्चों के लिए एक प्रकार की शिक्षा प्रणाली है, जबकि उच्च वर्ग की शिक्षा व्यवस्था उच्च स्तर की है। इस पार्थक्य को स्वयं अज्ञेय के शब्दों में यूँ देख सकते हैं,

> लोहे के कड़े बनते हैं तो लोहा भट्टी में पिघलकर एकदम साँचे में ढाल दिया जाता है। किन्तु सोने के कड़े बनाने के लिए पहले उसे नर्म किया जाता है फिर उस का तार बनाया जाता है, फिर काम किया जाता है अंत में पालिश दिया जाता है, तब कहीं वह तैयार होता है...ऐसी ही है निर्धन और धनिक बालकों की शिक्षा...।" (शेखर: एक जीवनी भाग एक 203)

शिक्षा प्रणाली में बच्चों को दण्डित और सजा देने की पद्धति व्यक्तित्व निर्माण में बाधक सिद्ध होती है और बच्चों को कुंठाग्रस्त बनाती है। इसलिए आधुनिक शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थियों को सज़ा देना वर्जित है। पश्चिम तथा पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली से प्रभावित अज्ञेय इसी का समर्थन करते हैं। दण्ड तथा सजा से बच्चे बनते कम, बिगड़ते अधिक हैं। यह दण्ड और सजा का कुपरिणाम ही है, जहाँ बच्चे मानव के स्थान पर दानव, शिष्टाचारी के स्थान पर भ्रष्टाचारी, सभ्य के स्थान पर असभ्य, शिष्ट के स्थान पर अशिष्ट बनते जा रहे हैं। नतीजा यह भी निकता है कि बच्चे, खासकर उच्च वर्ग के बच्चों के लिए पियक्कड़, व्यभिचार करना, तड़क-भड़क से रहना, दूसरों को तंग करना आदि

फैशन बन गये, जो चरित्र-हीनता के संकेत हैं। उपन्यास के भूपेन्द्र, नरेन्द्र और मोती आधुनिक शिक्षा प्रणाली के शिकार बने हुए हैं। उच्च तथा निम्नवर्ग के लिए अलग-अलग शिक्षा प्रणालियों के कारण समाज में ऊँच-नीच का भेद, वर्ग-भेद, लिंग भेद, प्रताड़ना आदि बढ़ जाते हैं, परिणामस्वरूप समाज में समता, ममता, सामाजिक सदभाव और अपनत्व की भावना लुप्त हो रही हैं।

जिस युग में अज्ञेय के उपन्यास लिखे जाने लगे, उस युग की नारी की स्थिति में कोई खास अंतर नहीं दिखता। नारी स्वतंत्र नहीं है, पुरुष के अधीन रहने में ही और पुरुषवादी अहंचेतना से परिचालित समाज के आदर्शों का पालन करने में ही वह अपने जीवन को सार्थक मानती है। इसलिए नायक शेखर नारी मुक्ति-आंदोलन की आवश्यकता पर बल देता है। पुरुषों के समान नारी को भी समान अवसर तथा अधिकार दिलाने के वे पक्षधर हैं। "एन्टी गोन्म क्लब" का प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि पुरुषों के बराबर स्त्रियों को भी सब प्रकार के अवसर तथा अधिकार मिल जाने चाहिए। इसी सिलसिले में पुरुष प्रधान समाज की बुराईयों पर कड़ा प्रहार करता है। नारी-अधिकारों के लिए लड़ता है तथा नारी-मुक्ति आंदोलन की भूमिका बनाता है। इसी सिलसिले में शेखर पतिव्रता धर्म तथा सती प्रथा के विरुद्ध आवाज़ बुलंद करता है,

> नरक की यातनाएँ भोगती हुई लड़कियाँ लम्बी-लम्बी, सुनने में खूब बढ़िया स्पीचें दे कर बताती हैं कि वे पतिव्रता के लिए मर रही हैं क्योंकि पतिव्रत ही उनकी सबसे बड़ी संपत्ति है, सब से बड़ा धर्म है, जिसके लिए सैकड़ों मर गयीं, सैकड़ों सती हो गयी या जौहर करके भस्म हो गयी, सैकड़ों हाथियों के पैरों तले रौंदी गयी...पुरुषादर्शों के लिए पुरुषों द्वारा तैयार की गयी मरीचिका। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 166)

शशि अपने पति रामेश्वर से अलग हो कर यह भी कभी नहीं भूलती कि वह विवाहिता है। उसे किसी की पत्नी होने का विश्वास निरंतर रहता है, वह शेखर के द्वारा चूमने पर प्रतिरोध करती है। वह शेखर से स्पष्ट कहती है,

> मैं विवाहिता हूँ। अपना आप मैंने स्वेच्छा से दिया है; अपने का, इह का संकल्प कर दिया है-आहुति दे दी दिया है। जो दे दिया है, मेरा नहीं है, उसकी ओर से मैं कुछ नहीं कह सकती; न कुछ अस्वीकार ही कर सकती हूँ, न प्रतिवाद कर सकती हूँ, और-न कुछ दे सकती हूँ। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 171)

शारदा मद्रासी परिवार की पुत्री होने पर भी आधुनिक कहे जाने वाले विदेशी वातावरण में पलती है यही पहली किशोरी है जिसके प्रति शेखर काम-भावना से उत्तेजित होकर अपना समर्पण करता है, अंत में अपने समर्पण में विफल हो जाता है। प्रेम की विफलता से शेखर गंभीर चिंतक और कवि बन गया। उसकी साहित्यिक यात्र में शारदा द्वारा अस्वीकृत प्रेम का विशेष योगदान है। अज्ञेय के उपन्यासों में नारियों की ऐसी श्रेणी मिलती है जो सब प्रकार के बंधनों से मुक्त स्वेच्छाचारी है, ग्लानिजनक, आत्मा रोग्रस्त थी। वहीं दूसरी ओर मणिका इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। मणिका एक शक्ति का विकृत और भ्रष्ट रूप था, जो ग्लानिजनक था, पर तिरस्कार्य नहीं- उसकी उपेक्षा नहीं होती थी। मणिका उस श्रेणी की आत्म रोग्रस्त थी, किन्तु आत्म, और वह रोग भी अकेला नहीं था, वह आधुनिक आत्मा का रूझान ही था....वह अपने जीवन की सीमाओं को भली प्रकार जानती है, परन्तु उनकी सीमाओं में बंधे रहने की उस की वह विवशता है जिस से वह चाहते हुए भी फूट नहीं पाती है। अपनी इसी विवशता का संकेत देती हुई वह शेखर से कहती है, "मेरे यहाँ आने वाले लोगों में वृद्धि होती है, पर चरित्र नहीं, इसके लिए मुझे भी दुख है। हमारे दाँत तो बड़े-बड़े हैं, पर आते नहीं-कौर बहुत बड़ा लेते हैं, पर पचा नहीं सके।" (शेखर: एक जीवनी भाग दो 15)

अब शेखर और सरस्वती का घनिष्ठ सम्बन्ध देखने में आता है। सरस्वती शेखर की बड़ी बहन है। सरस्वती में बहनत्व और मातृत्व का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। एक दिन कश्मीर में सरस्वती शेखर की 'सरस'...बनी। शादी के दिन शेखर पत्र लिखते वक्त भी 'सरस' ही बनी रही, बहिन का रूप कभी उभार नहीं पाया। परिवार के द्वारा उपेक्षित

शेखर और उस की जिज्ञासा का समाधान और सहानुभूति सरस्वती के पास मिलती थी।

अजय शर्मा ने 'बसरा की गलियाँ' उपन्यास में नई ज़मीन खोजी है। भारतीय भाषाओं में विश्व की अद्यतन समस्या और विश्व में व्याप्त पारिवारिक विघटन, सम्बन्धों में बिखराव, भीड़ में भी अजनबीपन और अलगाववाद की समस्या, साम्प्रदायिकता, नारी सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डाला है कि किस प्रकार स्त्रियाँ पाऊडों में बिक रही हैं। इस उपन्यास में नागरिक, समाज, देश द्वारा सामाजिक व राजनीतिक स्तर पर लड़ी जा रही जंग के रूबरू करवाता है, "जब आदमी गुलाम होता है तो वह प्यार की बातें नहीं आज़ादी की बातें सोचता है।" (बसरा की गलियाँ 60)

दूसरी तरफ युद्ध की भयावहता भी पाठकों की मानसिकता को कटोचती है, "युद्ध में वंश बदल जाते हैं। मुझे लगता है कि मैं इराक में रहता हूँ तो इराकी हूँ, लेकिन मेरा बाप कहाँ का था, पता नहीं।...चेहरे को गौर से निहारता हूँ तो लगता है कि मेरा चेहरा किसी एशियन से मिलता है।" (बसरा की गलियाँ 91) इसके साथ-साथ साम्प्रदायिकता का भी चित्रण किया गया है कि किस प्रकार धर्म परिवर्तन के कारण एक व्यक्ति का जीवन बद-से-बदत्तर हो जाता है। वह जीते हुए भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उसके जीने की इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। दूसरी तरफ बुशरा, एलाइजा, जूलिया आदि नारी पात्रों के माध्यम से विश्व के अलग-अलग भू-भागों पर रह रही औरतों की मनोदशा का चित्रण भी मिलता है। युद्ध की विभीषिका झेलते कई देशों में पुरुषों की निरंतर कम होती आबादी व विधवाओं की समाज में दयनीय स्थिति पर तीखा व्यंग्य करता है। युद्ध के अन्तर्गत उत्पन्न विनाश का भी चित्रण किया गया है कि किस प्रकार युद्ध के प्रभाव के कारण मनुष्य के भीतर से मानवता का नाश हो जाता है। वह एक दूसरे की जान के दुश्मन हो जाते हैं। युद्ध से उत्पन्न होने वाली गैसों का आम जनता पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है इसका यथार्थ चित्रण बुशरा के माध्यम से किया गया है जब वह आकाश को अपने दूसरे बेटे के बारे में बताती है कि,

> एक बात और बताना चाहती हूँ कि तुम्हारे जाने के बाद एक और बेटे का जन्म हुआ था लेकिन कुछ ही दिनों बाद वह चल बसा...डॉक्टरों ने कहा था कि लड़ाई की गैसों का प्रभाव है। उसे जन्मजात ही कोई इन्फेक्शन हो गई थी। एक बीमारी का नाम बता रहे थे, शायद मैनिजाइटस करके कुछ था। मैं तो कहती हूँ अच्छा हुआ चल बसा। कम से कम उसे बीमारी का मुख देखना तो नहीं पड़ा। जो बच्चे उसकी उम्र के बचे हैं, उनमें से अधिकत्तर किसी-न-किसी बीमारी का शिकार हैं। किसी को सिखता नहीं तो किसी को सुनाई नहीं देता। कुछेक तो ऐसे भी हैं, जो मानसिक रूप से बीमार हैं। (बसरा की गलियाँ 159)

इसी प्रकार अकाश एक स्थान पर खाड़ी युद्ध की चर्चा करते हुए उसके परिणाम पर प्रकाश डालता है, "खाड़ी युद्ध के बाद जो खबर आई उसमें साफ लिखा था कि जहरीली गैसों से जो बच्चे पैदा हो रहे हैं वे किसी न किसी रूप से विकलांग हैं।" (बसरा की गलियाँ 169) इससे स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध के अन्तर्गत प्रयोग किए जाने वाले बम्मों का मानव जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। आधुनिक जीवन में मानव जीवन विभिन्न प्रकार की जटिताओं और संघर्षों के चलते इतना असहनीय और बेझिल हो गया है। जिसका चित्रण आकाश के माध्यम से किया गया है कि किस प्रकार उसे विवाह के अवसर पर चारों तरफ इतने लोग होने पर भी उनमें अजनबीपन दिखाई देता है। उसे अपने भाई-बन्धु याद आते हैं। उसे ऐसा लगता है कि चारों तरफ इतनी भीड़ होने पर इसमें उसके सगे-सम्बन्धी नहीं हैं। जिनसे वह विशेष रूप से जुड़ा हुआ है, जिनके साथ वह अपने सुख-दुःख बाँट सकता है। इसका एक उद्दाहरण इस प्रकार है,

> मुझे तो खुश होना चाहिए था कि विभिन्न देशों के लोग मेरी शादी में शरीक हो रहे थे, लेकिन मैं फिर भी उदास था। इसका कारण सिर्फ इतना था कि बेशुमार लोग शामिल हो रहे थे लेकिन मेरे परिवार का एक भी सदस्य शामिल नहीं। शामिल होने की बात तो बहुत दूर की है

> उनको खबर तक नहीं कि मेरी शादी हो रही है। शादी में न कोई खुशी और न कोई बचपन का दोस्त, न रिश्तेदार। मैं बहुत उदास था। रोना भी चाहता था लेकिन रो नहीं सका। खून के आँसू पीकर रह गया था। जब हिन्दुस्तान में था तो दोस्तों के साथ प्रोग्राम बनाया करता था कि शादि में फलां-फलां कार में बैठकर जाएँगे...उसको इस तरफ से सजाएँगे कि देखने वाले दाँतों से उगली दबा लें। मगर आज जब शादी होने जा रही है बेगाने देश में केवल वे लोग ही शामिल थे, जिनके साथ मेरा कुछ ही वर्षों का सम्बन्ध था। हालांकि हम लोग सारी बातें आपस में सांझी कर लेते थे। इसके बावजूद हम लोगों के बीच एक सीमा थी, जिसे हम कभी पार नहीं करते थे। (बसरा की गलियाँ 14)

अजनबीपन की यह समस्या न केवल भारत में पाई जाती है अपितु पूरे विश्व में व्यापक रूप में विद्यमान है। इसी कारण व्यक्ति स्वयं को अकेला महसूस करता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसका इस संसार में कोई नहीं है। इसी कारण उसे दूसरों के दुःख-दर्द से कुछ लेना देना नहीं होता। उसे दूसरों दुःख पहुँचाने में खुशी प्राप्त होती है। इसका चित्रण आकाश के माध्यम से किया गया गया है। जब बुशरा की माँ उसे गाड़ी का इन्तज़ार करते हुए देखती है तो कहती है, “बेटा, बैठ जाओ जब गाड़ी आ जाएगी, चले जाना। तुम्हारे घड़ी देखने से गाड़ी जल्दी तो आ नहीं जाएगी।” (बसरा की गलियाँ 37) परन्तु आकाश के द्वारा उसकी बात को अनसुना कर दिया जाता है और वह जान-बूझकर इधर-उधर ठहलने लगता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानवीयता के भाव नष्ट हो जाने के कारण मानव को भीड़ में भी अजनबीपन का अहसास होता है। उसे ऐसा लगता है कि उसके चारों तरफ कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिससे वह अपना दुःख बाँट सके, अपने मन को बात कह सके। इस प्रकार भीड़ के रहते हुए भी मनुष्य अकेला है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः समाज मनोविज्ञान मानव विज्ञान की एक अतिमहत्त्वपूर्ण शाखा है। यह व्यक्ति के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है। समाज मनोविज्ञान का इतिहास स्पष्ट करता है कि इसका विकसित यानी वैज्ञानिक रूप उन्नीसवीं और बीसवीं शती में सामने आया है। समाज मनोविज्ञान, सामान्य मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र से अविच्छिन्न रूप से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त समाज मनोविज्ञान मानवशास्त्र, प्राणिशास्त्र, शरीरशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा असामान्य मनोविज्ञान से भी सम्बद्ध है। समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र अत्यंत व्यापक और विस्तृत है। यह विज्ञान व्यक्ति के हर व्यवहारों की सांगोपांग व्याख्या प्रस्तुत करता है। समाजीकरण से सम्बन्ध सभी समस्याओं का निरूपण समाज मनोविज्ञान के अन्तर्गत आता है। व्यक्ति के सामाजीकरण में परिवार और समाज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक अन्तक्रिया ही मानवीय सम्बन्धों का मूलाधार है। सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया का आधार उसकी अभिवृत्तियाँ है। समाज मनोविज्ञान के मानदण्ड जिनके आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व को कसौटियों पर कसा जाता है उनमें परिवार और व्यवहार, समूह अनुभव और व्यवहार, संचार-जनमत-प्रचार, पूर्वधारणा, परम्परा-जनरीतियाँ-प्रथा, कानून, व्यक्ति और संस्कृति, सामाजिक परिवर्तन आदि सामाजिक मानकों के द्वार समाज में व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित किया जाता है। समाज परिवर्तन द्वारा व्यक्ति व्यवहार में बदलाव कैसे होता है। इन सभी सवालों का जवाब समाज मनोविज्ञान ही दे सकता है और इन्हीं मानकों के आधार पर इस शोध प्रबन्ध में लेखकों के उपन्यासों में समाज मनोविज्ञान के जिन बिन्दुओं को विश्लेषित किया गया है वह इस प्रकार सामने आते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि मानव के पारस्परिक सम्बन्धों का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाला विज्ञान ही समाज मनोविज्ञान है। यह मनुष्य के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा अन्य दर्शनों का विश्लेषण और विवेचन करता है। यह

स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए एक ओर अवरोधक तत्वों का विरोध करता है तो दूसरी ओर स्वस्थ, शोषणहीन और समकालीन समाज के लिए आवश्यक जीवंत तथ्यों का अन्वेषण भी करता है। समाज मनोविज्ञान वर्तमान काल की देन है, फिर भी कोई संदेह नहीं कि इसकी जड़ें पुरातन काल से ही विद्यमान रही हैं। प्लेटो और अरस्तु उन पाश्चात्य विचारकों में से प्रमुख एवं प्रथम हैं, जिन्होंने मानव की सामाजिक प्रकृति पर प्रकाश डाला है। किन्तु समाज मनोविज्ञान का विकास 19वीं शताब्दी के अंत एवं 20वीं शताब्दी के आरम्भ में स्टीन्थल, टारडे, बाल्डबिन, रॉस तथा मैक्डूगल से होता है। मैक्डूगल द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टु सोशल साइकॉलोजी' द्वारा समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक नये युग का प्रारम्भ होता है। वर्तमान समय में समाज मनोविज्ञान का विकास प्रयोगात्मक दिशा में हो रहा है। समाज मनोविज्ञान का विषय व्यक्ति तथा समाज का अध्ययन है। ये दोनों परिवर्तनशील है। इसी आधार पर समाज मनोविज्ञान की प्रवृत्तियों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। समाज मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए अनेक नूतन विधियों का उपयोग भी कर रहे हैं। समाज मनोविज्ञान किसी परम्परा का विरोध नहीं करता परम्परा के रूढ़ तथा निर्जीव तत्वों का मात्र विरोध करता है और उसी अनुपात में नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए उपयुक्त जीवंत एवं गतिशील तत्वों का अन्वेषण और खोज भी। समाज मनोविज्ञान सभी सामाजिक विज्ञानों की कुंजी है। इसलिए समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन को पूर्णतः प्रदान करने के लिए सभी सामाजिक विज्ञानों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है, क्योंकि सम्बन्धित समाज का युग बोध प्रकाश में आ सके। सामाजिक सम्बन्ध समाज में सुख-शांति की स्थापना करते हैं। मनुष्य अपने इन सम्बन्धों के ही आधार पर समाज की मर्यादा का पालन करता है। सामाजिक सम्बन्ध मनुष्य की प्रतिष्ठा एवं ख्याति में भी सहायक होते हैं। आज व्यापक धरातल पर समाज मनोविज्ञान का चिंतन-मनन हो रहा है। नई से नई, जटिलतर समस्याओं का समाधान समाज मनोविज्ञान की उन्नति का परिचायक है। समाज मनोविज्ञान परिवर्तित परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण कर समाज मनोवैज्ञानियों के लिए नए मार्ग प्रशस्त कर रहा है। समाज परिवर्तनशील है। मानव

जीवन समाज से पूर्णतः आबद्ध है। सामाजिक व्यवस्था के नियमों एवं आदर्शों को ध्यान में रखकर ही मनुष्य को अपना नियंत्रित एवं अनुशासित जीवन व्यतीत करना पड़ता है। समाज मनोविज्ञान के इन्हीं बिन्दुओं को आधार बनाकर इस शोध प्रबन्ध में लेखकों की कृतियों में देखा जा रहा है कि किस प्रकार लेखकों की लेखनी को समाज मनोविज्ञान ने प्रभावित किया है और किस हद तक कृत्तियों में समाहित हो पाया है। उपन्यासकार अपने समाज से हटकर या कटकर नहीं चल सकता। वह युग जीवन को अपने उपन्यासों में प्रतिबिंबित करता है। इसलिए युग जीवन को साथ लेकर चलता है। इस अध्याय में अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा-साहित्य में समाज मनोविज्ञान के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया गया है।

अध्याय छह

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में अभिव्यंजना पक्ष/ लेखन शैली का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

साहित्य में अभिव्यंजना पक्ष या लेखन शैली का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य को रचने वाले हर सहयोगी लेखक की अपनी-अपनी अभिव्यंजना शैली होती है। जिसकारण वह साहित्य के इतिहास में अपनी एक अलग छाप छोड़ने में कामयाब होता है। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इसी के साथ तीनों लेखकों की अभिव्यंजना शैली को इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक लेखक की लेखनी का अपना एक मनोवैज्ञानिक ढंग होता है। जिसके आधार पर उसके मानसिक स्तर और समाजिक स्तर और शब्दों के चयन का अनुभव लगाया जा सकता है। इन्हीं विचारों के बारे में जानने और लेखकों की एक दूसरे से भिन्नता और समानता का उनके अभिव्यंजना पक्ष के ही सही ढंग से लगाया जाता है।

शिल्प-विधि का स्वरूप और महत्त्व

कथ्य और शिल्प अन्योन्याश्रित हैं। दोनों के सुंदर समन्वय से श्रेष्ठ कृति निर्मित होती है। जहाँ कथ्य का सम्बन्ध विषयवस्तु से है, वहाँ शिल्प का रूपाकार से है। कथ्य, कृति की आत्मा है तो शिल्प उस का शरीर। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर की और शरीर के बिना आत्मा की कल्पना नहीं कर सकते, उसी प्रकार कथ्य से शिल्प को अलग करके श्रेष्ठ कृति की आशा नहीं कर सकते। शिल्प शब्द का अर्थ है,

> कारीगरी और विधि का अभिप्राय है प्रणाली। किसी भी रचना को प्रस्तुत करने की कारीगरी प्रणाली ही शिल्प विधि है। किसी वस्तु के

> निर्माण की जो-जो विधियाँ या प्रक्रियाएँ होती हैं, उनके समुच्चय को ही शिल्प विधि के नाम से पुकारा जाता है। (कथाशिल्पि देवेशठाकुर 53)

संक्षेप में कृति की रचना पद्धति को ही शिल्प विधि कहा जा सकता है। जैनेन्द्र कुमार के मतानुसार,

> रचना पद्धति का अपना कोई निश्चित, रूढ़ अथवा परम्परागत रूप नहीं होता। यह एक गतिशील प्रक्रिया है, जो समय की माँग और लेखक की रुचि के अनुसार परिवर्तित होती है। साहित्य की आत्मा भले ही चिरंतन रहे, उस का रूप समयानुसार बदलता रहता है। (साहित्य का श्रेय और प्रेय 368)

शिल्प का मुख्य प्रयोजन रचना की बाह्य आकृति का निर्माण करना है। साहित्यिक कृति का रूप-निर्माण, रूप-रचना, रचना-विधान या रूप विधायक तत्वों के आधार पर संयोजन ही शिल्प का आशय है। युग सत्य की सार्थक अभिव्यक्ति के लिए लेखक शिल्प सम्बन्धी नए-नए प्रयोग करता रहता है। अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में उपन्यास विधा अधिक लचीली होती है। इसलिए युगीन माँग के अनुरूप उपन्यासकार को शिल्पगत नए-नए प्रयोग करने ही पड़ते हैं क्योंकि आज का युग ही शिल्प प्रधान युग है और शिल्प का युग है। वह समय बीत गया, जब शिल्प केवल साधन था, जिसके द्वारा अनुभूत सत्य को गठित करके अपने हित में ढाल दिया जाता था। अब तो शिल्प ही प्रधान है। शिल्प के महत्त्व के प्रतिपादन में डॉ. शाँतिस्वरूप गुप्त के मानदण्ड को लेकर ही आधुनिक उपन्यासकार चलते हैं,

> शिल्प ही वह माध्यम है जिससे उपन्यासकार अपने विषय का अनुसंधान और विकास करता है, उसे मूर्त रूप देता है, अर्थबोध कराता है और अंततोगत्वा उस का मूल्यांकन करता है। शिल्प के माध्यम से ही वह अनुभवों का सम्यल कलात्मक अभिव्यक्ति देने में समर्थ होता है। (उपन्यास: स्वरूप, संरचना तथा शिल्प 117)

यह सर्वस्वीकृत सत्य है कि आलोच्य उपन्यास अज्ञेय आधुनिक गद्य साहित्य के सर्वाधिक, सशक्त तथा संवेदनशील स्रष्टा हैं। जहाँ वह काव्य के क्षेत्र में युग-रुचि के अनुरूप नए-नए प्रयोग करके प्रयोगवाद के प्रवर्तक कहलाएँ, वहाँ कथा साहित्य में भी यह प्रयोगधर्मिता खूबी के साथ प्रकाश में आती है। यह प्रयोगधर्मिता ही इनके साहित्य में शीर्षस्थ स्थान प्रदान करती है। जहाँ ये अपने उपन्यासों में आधुनिकता की चुनौती को सही अर्थों में साहस के साथ स्वीकार करते हैं वहाँ अपनी आधुनिक संवेदनाओं को युगानुरूप रचनात्मक संप्रेषणियत प्रदान करते हैं तथा आधुनिक परिप्रेक्ष्य में राहों के ये अन्वेषी नये-नये मूल्यों का अन्वेषण कर उन्हें नये आयाम प्रदान करते हैं। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई मूलतः मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार हैं, इसलिए उनके शिल्प-विधान में व्यक्ति के बाह्य एवं आंतरिक जीवन को सूक्ष्म दृष्टि से परखने की क्षमता विद्यमान है। मनोवैज्ञानिक अंश को प्रभावपूर्ण ढंग से स्पष्ट करने में शिल्प-विधान अत्यंत सहयोगी प्रमाणित हुआ है। इसलिए इनके पात्र अपने में व्यस्त और उलझे हुए मानसिक संसार में भटकते हुए मिलते हैं। इनके सभी आलोच्य उपन्यासों में उलझी हुई आंतरिक दुनिया का प्रकाशन हुआ है। अज्ञेय एक समर्थ रचनाकार हैं- जब हिन्दी गद्य साहित्य खासकर उपन्यास विधा शिल्प की दृष्टि से पिछड़ गयी, तब इन्होंने उसे नये-नये प्रयोग तथा नव शिल्प सम्पदा से सजाया। अज्ञेय की औपन्यासिक कला एक सुशिक्षित, सुव्यवस्थित एवं सुगठित साहित्यकार की कला है जो युग रुचि को तृप्त करने में एकदम सफल है। वहीं अनीता देसाई ने जब अँग्रेजी साहित्य में अपना कदम रखा उनके विचार उस समय के प्रमुख मनोवैज्ञानिक लेखकों डी.एच.लॉरेंस, वर्जीनियाँ वूल्फ, हेनरी जेम्स, चेकोव, होपकिन्स इत्यादि से प्रभावित हुए। देसाई अपनी रचनाओं के बारे में बताती हुई खुद कहती हैं कि,

> I start writing without having very much of a 'plot' in my mind or on paper- only a very hazy idea of what the pattern of the book is to be. But it seems to work itself out as I go along, quite naturally and inevitably. I prefer the word 'Pattern' to

> 'Plot' as it sounds more naturally- and even better, if I dare use it, is Hopkins' word 'inscape'- while 'plot' sounds arbitrary, heavy-headed and artificial- all that I wish to avoid. One should have a pattern and then fit each piece in keeping with the others and so forming a balanced whole. (A critical study of the Novels of Anita Desai 101)

यहाँ लेखिका यह बताना चाहती हैं कि एक लेखक को पात्रों और घटनाओं की कमी नहीं होती क्योंकि इनके न होते हुए भी एक अच्छा लेखक अपनी बातों और अपनी परिस्थितियों को ही अच्छी अभिव्यक्ति के माध्यम से पाठकों के सामने रखता है। यही अभिव्यक्ति ही लेखक को एक अच्छा और सबसे अलग लेखक बनाती है। आगे देसाई अपने पात्रों के बारे में बताती हुई कहती है कि,

> In countless, small ways scenes and settings certainly belong to my life. Many of the minor characters and incidents are also based on real life. But the major characters and the major events are either entirely imaginary or an amalgamation of several characters and happenings. One can use the raw material of life only very selectively. It is common among writers to pick out something from real life and develop their situations around that while there are others who start from some real experience, which continuously grows in their imaginations. You use it as a base but don't confine yourself to it. (A critical study of the Novels of Anita Desai 102)

अज्ञेय और अजय शर्मा की तरह ही अनीता देसाई भी कहती है कि उनके उपन्यासों की घटनाएँ और परिस्थितियाँ कहीं न कहीं उनकी अपनी निजी ज़िन्दगी और उनके आस-पास के वातावरण से ही निर्मित होती हैं। यह हर लेखक की कृति का अभिन्य अंग रहता है क्योंकि लेखक समाज का अंग है और उसकी समाज को अपनी कृतियों के माध्यम से अभिव्यक्ति देने की कोशिश करता है। यही अभिव्यक्ति ही एक लेखक को

दूसरे लेखक से अनुकूल और प्रतिकूल बनाती है। नीरू चक्रवर्ती अपनी शोध 'Quest for self-fulfillment in the Novels of Anita Desai' में बताती हैं कि,

> Combined with the introspective, interiorized style flavored by Anita Desai to project her characters dilemmas it becomes an effective means of exploring the depths of the unconscious which have a strong influence on the conscious behavior of characters. (Quest for self-fulfillment in the Novels of Anita Desai 4)

देसाई के उपन्यासों के सभी पात्र मानसिक द्वन्द्व के शिकार हैं और देसाई अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से ही अपने पात्रों का गठन करती हैं। देसाई अपने एक साक्षातकार में अपने उपन्यासों के बारे में बताती हुई कहतीं हैं कि,

> Most things are so very ethereal...They pass and they change so very quickly. To make a report on some general events is not of so much importance. There are other elements which remain basic to our lives. I mean the human condition itself. It is only superficially affected by the day-to-day changes. We continue to live in the same way as we have in the past centuries….with the same tragedies and the same comedies. And that is why it interests me. (A critical study of the Novels of Anita Desai 102)

देसाई अपने उपन्यासों के माध्यम से यह कहने का प्रयास कर रही हैं कि एक लेखक समाज में रहते हुए बहुत सारी चीज़ों को देखता है और सहता है जैसे कि एक आम आदमी। यही घटनाएँ सदियों से चली आ रही हैं जो कहीं न कहीं आज भी विद्यमान हैं और ऐसी ही कई घटनाएँ लेखक की लेखनी का हिस्सा बनती है और मनोवैज्ञानिक रूप लेकर बाहर आती हैं। John Colmar अपनी Approaches to the Novels में अँग्रेजी उपन्यासों की तकनीक और शैली के बारे में बताते हुए कहते हैं कि,

> ...should have the formal qualities common to all good works of art, unity, pattern, harmony. But it must also seem probable in the sense that other fiction need not, it must give an illusion of life as it is or has been lived in the actual world. To achieve both these objects at the same time is hard. Read life, as we know it, is not distinguished by unity, pattern and harmony. On the contrary, it is a heterogeneous, disorderly, indeterminate affair full of loose ends and false starts and irrelevant details. How is the novelist to reconcile these two claims, how keep the delicate balance between the demands of life and art? This is his central. Special problem as a craftsman. (Approaches to the Novels 5)

जोन कोलमर अपनी पुस्तक में यह बताने का प्रयास कर रहे हैं कि एक अँग्रेजी के उपन्यासकार होने के नाते क्या शैली और तकनीक का प्रयोग करना चाहिए और कैसे। क्योंकि लेखक एक काल्पनिक दुनिया को जीते हुए असलीयत की दुनिया के बारे में लिखता है और इन दोनों को आपस में जोड़ना ही मनोवैज्ञानिक तकनीक है कि किस प्रकार लेखक अपने विचारों को अभिव्यक्ति देता है। Walter Allen अपनी The English Novel पुस्तक में कहते हैं,

> …Every novel is an extended metaphor of the author's view of life……every novelist...gives us in his novels his own personal idiosyncratic vision of the world." (The English Novel 17)

वॉलटर एलेन लेखक को समाज का आईना मानते हुए कहते हैं कि एक लेखक अपनी ज़िन्दगी की परिस्थितियों और घटनाओं को अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त करता है।

अज्ञेय की तरह देसाई और अजय शर्मा पात्रों के चरित्र-चित्रण पर ध्यान न देकर उनकी मानसिक स्थिति पर अधिक बल देते हैं। अजय शर्मा पेशे से डॉक्टर हैं शायद यही कारण है कि वे मानव मन की कचोट, पीड़ा, छटपटाहट एवं आक्रोश इत्यादि भावों को मनोविज्ञान के सन्दर्भ में सूक्ष्मता से पकड़ सके हैं। इनकी यही सूक्ष्म दृष्टि ही पाठक को संवेदना के तारों से इस प्रकार जोड़ती है कि अनन्त समय तक पाठक इससे बाहर आ ही नहीं पाता। लेखकों के अभिव्यंजना पक्ष पर इस अध्याय में चर्चा की जाएगी कि किस प्रकार तीनों लेखक अपनी मनःस्थिति के अनुसार पात्रों और घटनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।

देशकाल एवं वातावरण

लेखकों के उपन्यासों में कथा क्षीण और गौण दोनों प्रकार की है। उसमें प्रमुखता व्यक्ति-चरित्र के विश्लेषण के उद्घाटन की है। व्यक्ति पर वातावरण या उसके परिवेश का बेहद प्रभाव पड़ता है। डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र के अनुसार,

> वातावरण पात्रों का संसार है। वहीं रह कर वे अपने क्रिया-कलापों का परिचय देते हैं। उपन्यासकारों के उपन्यासों में पात्रों के कथोपकथन तथा क्रिया-कलापों को छोड़कर विशेष सामग्री देशकाल या वातावरण से सम्बन्ध रखती है। देशकाल के अंतर्गत कथा के सभी बाह्य उपकरण, उसकी योजना में सहायता करनेवाले पात्रों के आचार-विचार, राजनीति तथा रहन-सहन, प्रकृति और परिस्थिति में आ जाते हैं। इस प्रकार वातावरण की दृष्टि से मुख्यतः दो तत्व होते हैं उसमें रहनेवाले मनुष्य तथा मनुष्येतर जगत। (अज्ञेय का उपन्यास साहित्य 36)

लेखकों के पात्रों के व्यक्तित्व और चरित्र-विश्लेषण तथा उसके मूल्यांकन के लिए देशकाल और वातावरण पर विचार करना आवश्यक है। अज्ञेय के शेखर: एक जीवनी (1941) उपन्यास व्यक्ति केंद्रित होने पर भी इस उपन्यास में देशकाल वातावरण तत्व

का सफल प्रयोग मिलता है। यह स्वतंत्रता पूर्व लिखित व प्रकाशित उपन्यास है। उन दिनों में संघर्ष का तूफान जोरों पर था। हर जगह अशांति का वातावरण बना हुआ था। ऐसे संघर्षपूर्ण अशांत वातावरण में 'शेखर: एक जीवनी' का लेखन और प्रकाशन हुआ। डॉ. त्रिभुवन सिंह के शब्दों में, "शेखर की जीवनी सरिता का पाट इतना चौड़ा है कि जिस के अन्दर देशकाल सम्बन्धी, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक समस्याएँ सिमट कर आ गई है।" (अज्ञेय की गद्य शैली 113) शेखर: एक जीवनी में व्यस्त अनुभव स्वयं उपन्यासकार अज्ञेय के संघर्षरत अनुभवों के 'शेड्स' के रूप में विन्यस्थ हो सके हैं और कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि उपन्यास में व्यक्त अनुभव शेखर के न होकर, स्वयं अज्ञेय के हैं। अज्ञेय के शब्दों में,

> नि:संदेह का प्रतिबिंब भी है। इतना और ऐसा निजी वह नहीं है कि उसके दावे को यह एक आदमी की निजी बात कहकर उड़ा सकें, मेरा आग्रह है कि उसमें मेरा समाज और युग बोलता है कि वह मेरे और शेखर के युग का प्रतीक है... (शेखर: एक जीवनी भाग एक की भूमिका 10)

स्पष्ट है कि उपन्यास में वैयक्तिक चेतना के साथ ही साथ सामाजिक परिवेश को भी रेखांकित किया गया है। इनके अलावा इस उपन्यास में कभी-कभी स्थानीय वातावरण, सामजिक कथास्थिति और प्रकृति का भी सुंदर वर्णन हुआ है। इस का मूल उद्देश्य है कि शेखर के व्यक्तित्व को प्रकृति ने किस रूप में प्रभावित किया है। इसके लिए कश्मीर की रात्रि की प्रस्तुति और शेखर के भावुक मन की अभिव्यंजना यों हुई है,

> बाहर खुली चाँदनी छिटकी थी, इतना उज्जवल किरण निरम्र आकाश में भी तारा एक आध ही दीखता था। झील चमक रही थी। रंगों का वह खेल केवल एक खेत, का खेल देखकर शेखर स्तब्ध रह गया। झिलमिलाती हुई झील पर धूँधले श्यामल पहाड़ और देर पर कुहरे सी

> मधुर स्निग्ध ज्योतिर्मय, हिमश्रेणी...उस विस्तीर्ण, अत्यंत रात में इस दृश्य को देखते हुए बोध की लहरें-सी उसके शरीर में दौड़ने लगी, मानो वह इस जीवन से स्वप्न के उदबुद्ध होकर किसी उँची यथार्थता के लोक में चला जा रहा है...उसे रोमांच हो आया। उसने आँख मूँद ली, मानो आँखों पर ही वह इस दृश्य को बनाये रख सकता है, खुली आँखों के आगे वह छिन्न हो जाएगा...। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 87)

उपरोक्त विवेचनों स्पष्ट है कि 'शेखर: एक जीवनी' उपन्यास में देशकाल और वातावरण के चित्रण का सफल प्रयास हुआ है। अज्ञेय का दूसरा उपन्यास 'नदी के द्वीप' संवेदना, भावना, अनुभूति और संवेदना की बुनावट निर्मित है। काल की दृष्टि से यह स्वातंत्रयोत्तर युग (1951) की रचना है। स्वातंत्रयोत्तर युग की मनोवृत्तियों अथवा परिवेशों का इस में कोई स्पष्ट चित्र नहीं उपलब्ध हो पाता। उपन्यास में अज्ञेय ने वातावरण का सृजन पात्रों की मनः स्थिति के अनुसार ही किया है। मादकता से युक्त वातावरण के निर्माण के लिए अज्ञेय ने प्रकृति का वर्णन इस प्रकार किया है,

> हटात एक निश्चलता के बाँध ने उसे जगाया। बारिश थम गयी थी। उसने खड़े होकर अँगड़ाई ली। स्निग्ध अलसाये शरीर की अँगड़ाई सुखद और स्फूर्तिदायक होती है, पर ठिठुरे शरीर की अँगड़ाई मानो और भी जड़ बना देती है, वह बाहर के मंडप में गया, बादलों की चादर अब भी समान रूप से आकाश में फैली थी, पर अब उसमें एक फीकापन था। भोर होने वाला है...भुवन ने फिर घड़ी देखी...छः बजने को थे। (नदी के द्वीप 227)

इसके अतिरिक्त भुवन जापान की उसी ऐतिहासिक विजय के प्रति संकेत करता हुआ पत्र में आगे लिखता है,

> तब गर्व करना उचित था, क्योंकि एक दबी हुई जाति ने सिर उठाया था और उसमें दूसरी उत्पीड़क जातियों के लिए आशा का संकेत था। पर अब? जापान भी एक उत्पीड़क शक्ति है...कितना घातक हो सकता है यह सब। परदेशी गुलामी से स्वदेशी अत्याचार अच्छा है। यह एक पात है, यह मानी जा सकती है, पर क्या एशियाई नाम जापान, यूरोप की अपेक्षा भारत के अधिक निकट ले जाता है...। जाति की भावना गलत है, श्रेष्ठत्व की भावना होना और भी गलत है, हिट्लर आर्तत्व का दम्भ ही नहीं, मानवता के साथ विश्वासघात है, पर अपनाने और संघर्ष की बात कहनी तो मानना होगा कि यूरोप ही हमारे अधिक निकट है...पर एशियाई आम लेकर जापानी साम्राज्य-सत्ता का अनुमोदन करना या उसके प्रसार को उदासीन भाव से देखना खण्ड के नाम पर सम्पूर्ण को डूबा देना है, अँग्रेजी कहावत के अनुसार अपने मुँह से लड़कर अपनी नाक काट लेना, मानवता के साथ उतना ही बड़ा विश्वासघात करना है जितना उन्हें किया था, जो मुसोलिनी द्वारा अबीसीनिया या हिटलर द्वारा चेकोस्लोवेकिया के ग्रास के प्रति उदासीन थे...। (नदी के द्वीप 121)

अतः विवेच्य उपन्यास में देशकाल वातारवण का प्रयोग पारम्परिक रूप से न होकर आधुनिकता की अभिव्यक्ति के नवीन रूपों में हुआ है। परन्तु देशकाल चित्रण इसमें अधूरा ही रह गया है, क्योंकि उपन्यासकार का सारा ध्यान अपने पात्रों के व्यक्तित्व और चरित्र को विश्लेषण करने में लगा रहता है। अज्ञेय का तीसरा उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' (1961) की घटना विदेशी है, पात्र और वातावरण भी विदेशी है। यह उपन्यास किसी विशेष देशकाल और वातावरण की सीमा को स्वीकार नहीं करता, क्योंकि उपन्यासकार का अभिष्ट इस उपन्यास में चिंतन-दर्शन का संप्रेषण करना है। अज्ञेय के द्वारा अप्ने इस उपन्यास में मृत्यु की भयावह स्थिति एवं प्रकृति का चित्रण यों देख सकते हैं,

> एक अन्त हीन परिवर्तन धूँधली रोशनी, जो न दिन की है, न रात की है, न संध्या के किसी क्षण की है, एक अपार्थिव रोशनी, जो कि शायद रोशनी भी नहीं है, इतना ही कि उसे अन्धकार नहीं कहा जा सकता है। हमेशा सुनती आई हूँ कि कब्र में बड़ा अंधेरा होता है, लेकिन यहाँ उसकी भी असम्पूर्णता और विविधता है। शायद यही वास्तव में मृत्यु होती है, जिसमें कुछ भी होता नहीं, सब कुछ होते-होते रह जाता है। (अपने-अपने अजनबी 15)

इस प्रकार स्थल परिवेश की दृष्टि से अपने-अपने अजनबी हिन्दी का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। अजय शर्मा के उपन्यासों में अगर देशकाल वातावरण की बात करें तो यहीं देखा जाएगा कि अज्ञेय की तरह उनके भी उपन्यासों में उनका समाज बोलता है। अजय शर्मा अपने उपन्यासों के बारे में बताते हुए कहते है,

> मैं कोशिश करता हूँ कि सृष्टि की कुछ ऐसी चीज़ों के बारे में लिखा जाए जो हमारे जीवन में अहम भूमिका निभाती हैं और हम उन्हें सदा के लिए पकड़ नहीं पाते। इस बात का अहसास मेरी कृतियों के नाम से ही हो जाता है। हमारा ब्रह्मांड पाँच तत्त्वों से बना है-पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं अकाश यानी कि पंचभौतिक है। इसी तरह हमारा शरीर भी पंचभौतिक है जिसमें आत्मा का प्रवेश होते ही वह चेतन अवस्था में आ जाता है। पाँच महाभूतों के गुण हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध। इसलिए मैंने अपने उपन्यासों में पंच महाभूत को तरजीह दी है। ऐसे ही देश एवं काल भी मेरे उपन्यासों का हिस्सा बने हैं। मैं कह सकता हूँ कि 'अकाश का सच' में अकाश सीधे रूप से आया है जिसका गुण शब्द है। ऐसा माना भी गया है कि शब्द जो एक बार जुबान से निकला तो वह कहीं-न-कहीं विद्यमान रहता है। 'खुली हुई खिड़की' में आयु विद्यमान है क्योंकि खिड़की सिंबल के तौर पर आई है जिससे वायु अन्दर आ-जा

> सकती है। ऐसे ही 'शहर पर लगी आँखें' में शहर पृथ्वी है और आँखें तेज यानी कि गंध एवं रूप एक साथ आ गए है। 'चेहरा और परछाई' में भी ऐसे ही है कि परछाई एक ऐसी चीज है जिसे पकड़ा नहीं जा सकता। 'काल-कथा' में जो सीधे रूप से काल ही जुड़ा हुआ है। अभी मेरे उपन्यासों में जल महाभूत पर लिखना बाकी है। यह सारी चीजें ऐसी हैं जिन्हें पकड़ा नहीं जा सकता। ये सारी बातें ऐसी हैं जिनके बारे में केवल कयास ही लगाए जा सकते हैं और फिक्शन राइटिंग भी ऐसी ही चीज है जिसमें एक पूरा-का-पूरा संसार ही बसाना होता है और उस संसार के पात्र कभी आपको सच्चे लगते हैं तो कभी झूठे। (शहर पर लगी आँखें भूमिका 3)

लेखक ने अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से यह बताना चाहा है कि चाहे कोई भी लेखक अपनी लेखनी में देश एवं काल की बात करे या न करे वह अपने आप ही कृति का एक भाग बन जाती है क्योंकि कोई भी लेखक अपनी समय-सीमा से परे जाकर कोई रचना नहीं रच सकता। 'नौं दिशाएँ' उपन्यास में आज के समय में नौकरी पेशा पतनी और पत्नी के बीच ज्यादा ईगो आड़े आती है और कैसे दोनों एक दूसरे से कट जाते हैं उसका वर्णन मिलता है। ऐसी ही एक घटना को लेखक प्रकृति के माध्यम से बयान करते हैं,

> बादल हर पल अपना रंग बदल रहे हैं। बिजली की गर्जन के बाद अंधेरी चादर को रजनी नज़रें गढ़ाकर देखती रही, लेकिन उसे कुछ भी नज़र नहीं आ रहा है। देखते ही देखते वे दिशाएँ किसी काल कोठरी में तब्दील हो गई और उसे लगा वहाँ अँधेरा ही अँधेरा है और उस अँधेरे में उसे कुछ जानवरों की आँखें नज़र आ रही हैं, जो इतनी तेज़ी से उसे घूर रही हैं, जैसे वे उसे खा जाएंगी। अचानक उसके मूँह से एक चीख निकली और गंदी गाली भी। उसे लगा कि वह चीख भी टकराकर उसी के कानों तक आ गई है और उसने अपने दोनों हाथ दोनों कानों पर रख लिए। उसने एक निगाह फिर से अपने घर की तरफ मारी, लेकिन वह अँधेरे में

> नज़र नहीं आ रहा था, लेकिन उस तरफ देखते ही उसकी रूह काँप गई। फिर उसे अचानक लगा उसके घर के बाहर उसके भाई की अर्थी पड़ी है और उस पर सफेद चादर लिपटी हुई है। देखते ही देखते चादर पर लहूकी बूँदें पता नहीं कहाँ से पड़नी शुरू हो गई और वह पूरी चादर लहू से सन गई। उसे समझ नहीं लग रहा था कि लहू कहाँ से टपक रहा है। बिजली फिर चमकी। उसकी रौशनी में उसे लगा कि उसकी माँ पीपल के वृक्ष पर बैठी है और वह वृक्ष घर से गली में आ गया है। उसके शरीर से लहू टपक रहा है जिससे पूरी की पूरी चादर लहू में भीग रही है। उस दृश्य को देखकर वह घबरा गई। (नौं दिशाएँ 111)

'भगवा' उपन्यास में लेखक अपने आस-पास जो नहर का पानी जीवन जीने के लिए उपयोगी होना चाहिए उसकी हालत का बयौरा देते हुए लिखते हैं,

> गंदी-सी नहर देखकर तो सचमुच मन खराब हो जाता है। खैर, ऊँचे-नीचे रास्ते से जाता हुआ स्कूटर हिचकोले खा रहा था। गंदी कीचड़ से सनी हुई नहर। जगह-जगह हड्डियाँ एवं माँस के टुकड़े पड़े थे। उस रास्ते में कई जगह पर बगुले और कौए दोनों इकट्ठे बैठे अक्सर मिल जाते हैं और आज भी वैसा ही हुआ। अब तो ऐसा लगता है कि दोनों की पहचान करनी ही मुश्किल हो गई है। कभी कौआ सफेद चादर में लिपटा हुआ लगता है और कभी बगुला कालिमा लिए लगता है। उसे देखकर भी अक्सर यह आभास होता है कि अपना लिबास बदलकर कौओं के बीच बैठ गया है। हर तरफ मुर्गी के बिखरे हुए पंख, झुंडों में जा रहे अवारा कुत्ते, मछली खाकर फेंका गया गंद इस नहर की शान को बद से बदतर कर देते हैं। शाम को आओ तो यहाँ से गुजरना मुश्किल हो जाता है। हर तरफ दुकानें सज जाती हैं। कहीं मछली तली जाती है तो कहीं मुर्गे को तला जा रहा होता है। सारी नहर के किनारे पर पता नहीं मसाला और हल्दी लेकर कितने लोग छोटी-छोटी दुकानें सजाकर

> बैठ जाते हैं। छोटे-छोटे तालाब बने हैं जिनमें मछलियाँ पड़ी होती हैं। कुछ साल पहले दो-तीन दुकानें थीं लेकिन अब देखते ही देखते यहाँ पर अच्छा-खासा मछली बाज़ार लग गया था। (भगवा 22)

लेखक ने यहाँ एक स्वच्छता की मसाल नहर का आज के समय में हालत का वर्णन किया है। डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी 'काल-कथा' उपन्यास के बारे में अपने एक लेख में कहते है,

> काल-कथा काल सापेक्ष है। समय अंतराल चाहे बड़ा है, परन्तु उसकी रेखाएं दिनों, घंटों और क्षणों से जुड़ी हुई हैं। हिन्दी उपन्यास में ऐसी काल चेतना का अभाव है। प्रारम्भ से लेकर अंत तक उपन्यासकार इस चेतना पर चिंतन भी करता है और दार्शनिक अनुभवों के माध्यम से तथ्य को विलक्षणता भी प्रदान करता है। (डॉ. अजय शर्मा का कथा-संसार 10)

हरमहेन्द्र सिंह ने यहाँ लेखक की अभिव्यंजना शैली की सराहना की है कि किस प्रकार लेखक ने अपने उपन्यास 'काल-कथा में अपने विचारों की लड़ी में किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं छोड़ी। आगे लेखक अपने वज़ीर चंद पात्र के माध्यम से वातावरण का बयौरा देते हुए लिखते हैं,

> जो कमरा कुछ दिन पहले अस्त-व्यस्त लगता था, आज वह सुगंध से महक रहा था। हालांकि, तेज सुगंध डॉक्टर के नथुनों को चीर गई, लेकिन कमरे का रंग-रोगन दोबारा हुआ था और कमरा गुलाबी रंग से चमक रहा था। कबूतर के पिंजरे पर लाल रंग किया हुआ था और छत पर रंग-बिरंगी चिड़ियों का पिंजरा भी विभिन्न रंगों से सजा हुआ था। फर्श पर कालीन बिछा हुआ था। ट्यूब की रोशनी से कमरा प्रकाशमय था। उसके टेबल पर एक तेबल लैंप पड़ा था, जो बंद था। (काल-कथा 65)

लेखक यहाँ वज़ीरचंद के कमरे के वातावरण को बयान कर रहे हैं कि किस प्रकार वज़ीरचंद अपनी ज़िन्दगी के पिछले दिनों रोमांच से भरकर जीने की इच्छा जगाता है। 'शहर पर लगी आँखें' उपन्यास में लेखक ने प्रकृति का दृश्य बयान करते हुए कहते हैं,

> जब मैंने सांस अन्दर को खींचकर बाहर छोड़ा, तो मुझे ऐसा लगा कि मेरी सांसों की आवाज़ पूरे वातावरण में फैल गई है। एक खुशबूदार हवा के झोंके ने मेरे शरीर को आनंदित कर दिया था। धीरे-धीरे मुझे लगने लगा कि पहाड़ों पर उगे वृक्ष भी मेरे साथ सांसें ले रहे हैं। मुझे उनके सांस लेने की आवाज़ सुनने लगी। मैं प्राणायाम में मगन हो गया, लेकिन पता नहीं क्यों, ऐसा लागने लगा कि पहाड़ मुझसे बातें कर रहे हैं। मैं आँखें खोलकर देखना चाहता था, लेकिन ऐसा कर नहीं पाया और धीरे-धीरे मैं भी उनसे बातें करने लगा। मैंने उस छोटे-से पहाड़ से पूछा, 'तुम्हें दर्द नहीं होता, जब लोग तुम पर लगे हुए वृक्षों को काटते हैं और तुम्हारे सामने ही तुम्हारी दुनिया उजाड़ देते हैं?' मेरी बात सुनकर पहाड़ बोला, 'सच्ची बात तो यह है कि मैं उन लोगों को देखकर तो खुश होता हूँ, जो चलकर मेरे पास आते हैं और कुदरत के नज़ारों को देखते हैं और सुंदरता की तारीफ करते हैं। जो लोग मुझे नष्ट करने की कोशिश करते हैं, उनको देखकर मेरा मन दुखी होता है। उनको देखकर मेरा मन इसलिए नहीं दुखी होता कि वे लोग मुझे बर्बाद कर रहे हैं, बल्कि इसलिए दुखी होता है कि वे लोग अपने आपको बर्बाद करने पर तुले हुए हैं। यह वृक्ष ही तो मेरे अंग हैं। रही बात मेरे अंगों को काटने की तो कुदरत ने मेरे अन्दर वे गुण भर दिए हैं, जो इंसान में नहीं हैं। आप मेरी शाखाएँ काट भी लो, तो फिर से लौट आएगी। यहीं नहीं, अगर मुझे आप धड़ से भी अलग कर दो, तो कभी न कभी फिर से फलने-फूलने लगूँगा। मेरा हृदय कुदरत ने बहुत विशाल बनाया है। (शहर पर लगी आँखें 94)

अनीता देसाई अपने उपन्यास 'क्रॉय द पीकॉक' में माया के मन में भगवान शिव की बनी हुई तस्वीर को दर्शाती हैं,

> The bronze Shiva, dancing just a shade outside the ring of lamplight... fixed. and yet there was nothing bronze or immobile in this pose of eternal creative movement... graceful foot upon the squirming body of evil, and the raised leg...raised into a symbol of liberation…the wise, remote face…my rag-picking memory had retained...and annihilation to supreme aliveness. Calling by the beat of the drum all persons engrossed in worldly affairs, the kind-heated. One who destroys all fear of the meek and gives them reassurance, and points by his hand to his upraised lotus foot as the refuge of salvation and also carries the fire and who dances in the Universe, let that Lord of the Dance protect us...the sonorous Sanskrit syllables rang richly in my mind…" (Cry, the Peacock 204)

माया के मन में बनी भगवान शिव तांडव की मूर्त को देसाई ने बहुत ही अच्छे ढंग से धित्रित किया है। देसाई माया के अंतःमन के द्वन्द्व को एक पूल की कली के साथ जोड़कर दर्शाते हुए कहती है,

> In a damp, white handkerchief, gathered into a nest, lay a heap of white jasmine buds that the gardener had plucked from the dawn fresh hedges that morning, for me to thread into garlands for my hair and wrists, and which, for some reason, I had forgotten. There they lay, almost palpitating with living breath, open, white, virginal. I plunged my face into them and kissed them with a wild longing to pierce through that unimpeachable immaculate chastity of witness,

> to the very soul of their maddening fragrance. What dreams they conjured in swirls of scent, what passions, what scenes of love and farewell….I tore myself away from them, having bruised them with my kisses, and trembling, flung them against the mirror, at that fleeting image to which they belonged, and backed out of the room which was now terrorized by the vast, purple shadows of a dreadful night. (Cry, the Peacock 107)

लेखिका यहाँ माया पात्र के कौमार्य की तुलना एक कली से करती हुई दर्शाती है कि किस प्रकार माया भावनात्मक और वैवाहिक जीवन में महसूस करती है। जिस प्रकार अज्ञेय को एक मनोवैज्ञानिक लेखक के तौर पर माना जाता है वैसे ही अनीता देसाई के पहले ही उपन्यास से उनको मनोवैज्ञानिक लेखिका के रूप में जाना गया। आर. एस. शर्मा अनीता देसाई के पहले उपन्यास 'क्राय द पीकॉक' के बारे में कहते हैं,

> Cry the Peacock, Anita Desai's first novel is also perhaps the first step in the direction of psychological fiction in Indian writing in English. Initially the novel shocks us with its neurotic and near morbid obsession with death, but on a closer study, we admire the writer's skill in capturing the psychic states of a woman haunted by an awareness of death. (A critical study of the novels of Anita Desai 24)

आर. एस शर्मा अनीता देसाई की मनोवैज्ञानिक शैली का वर्णन करते हुए कहते हैं कि देसाई ने अँग्रेजी साहित्य में अपना पहला कदम ही एक मनोवैज्ञानिक लेखिका के तौर पर रखा। उस समय हिन्दी साहित्य में भी मनोवैज्ञानिक साहित्य ने अपनी छाप छोड़ दी थी जब देसाई का अँग्रेजी साहित्य में पहला उपन्यास एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास के तौर पर सामने आया। वहीं देसाई का दूसरा उपन्यास वायस्स इन द सिटी' भी एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास ही कहा जा सकता है क्योंकि यहाँ एक शहर कलकता को एक

प्रतीक के रूप में दर्शाया गया है। ए. वी कृष्ण राउ देसाई के उपन्यास के बारे में अपने विचार देते हुए कहते हैं,

> Thus although one may be tempted to consider Nirode as the hero of the Novel, the city of Calcutta is indeed the invisible protagonist of the novel. Calcutta, conceived as a force of creation, preservation and destruction is ultimately identified as a symbol for the goddess Kali. (A critical study of the novels of Anita Desai 175)

देसाई उपन्यास के शुरू में कलकता शहर का वर्णन में दर्शाते हुए कहती हैं कि,

> ...the drain was choked with sodden remnants of partings and farewells. Beating his way out of the swarming apathy of Howarh, Nirode strode down the bridge, dodging the traffic that made the bridge roar and rattle beneath his feet like a tunnel of bones and steel. Trams crashed murderously past him handcarts rolled recklessly, maniacally by. Nirode thrust them all away with arms that never moved, thrust all the thunder away, thinking his thoughts in such vivid, short-lived streaks of lightning as those that made the tramlines spark and quiver…dark pandemonium… (Cry, the Peacock 7)

देसाई ने अपने उपन्यासों में प्रतीकों का प्रयोग किया है और प्रकृति को भी बखूबी ढंग से दर्शाया है। कलकता शहर के बारे में अमला पात्र के माध्यम से बताते हुए कहती है,

> She sat down abruptly on the marble stairs that led to it – a flight of them, cracked and held together only by its lining of damp moss. On two posts that flanked the steps stood blind, dispirited marble goddesses- the Greek idol copied and recopied till the last drop of immaculate blood had been

> sucked out of it – holding what looked like ugly metal cages for Birds of Paradise long flown from them. Actually they were meant to shelter lamps that lit the stairs on gala evenings, but Amla could not remember and nor, for that matter, could her aunt, when last such an evening had enlivened this dank, unbreathing garden when the unmown grass housed singing swarms of mosquitoes, and spider webs alone multiplied and reproduced amidst the leaves of plantains and mango trees that had years ago surrendered the desires to propagate and fructify. Only a few grotesquely crooked temple trees were starred with bridal flowers and, at the edges of the grass, a row of tubercoss closed thick white petals about their secret scent. The half-heated lights of neighbouring houses looked down upon this pocket of decrepitude and darkness and were not bright enough to illumine it. (A critical study of the novels of Anita Desai 148)

देसाई के 'इन कस्टडी' उपन्यास में उर्दू कवि नूर और माया पात्र की तुलना करते हुए देखा जा सकता है,

> He had a vision of Nur's bier, white, heaped with flowers, rose and marigold, bright blazing flowers on the white sheet. He saw the women in the family weeping and wailing around it. He heard the funeral music play. He saw the shroud, the grave –open. When Nur was laid in it, would this connection break, this relation end? No, never – the bills would come to him, he would have to pay for the funeral, support the widows, and raise his son… (A critical study of the novels of Anita Desai 204)

कथोपकथन

संवाद या कथोपकथन उपन्यास का प्रमुख शिल्पगत तत्व है। संवादों के माध्यम से ही उपन्यास के पात्रों का चारित्रिक विकास आधारित होता है। अज्ञेय के तीन उपन्यासों में संवाद का निरूपण इसी दृष्टि से किया गया है। डॉ. श्यामसुंदर दास के अनुसार, "इस तत्व के द्वारा पाठक उपन्यास के पात्रों से परिचित होते हैं और दृश्य काव्य की सजीवता एवं वास्तविकता का हम बहुत अनुभव करते है।" (साहित्यलोक 205) अज्ञेय आधुनिक जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं, कुंठाओं, ग्रन्थियों, टूटन, घूटन, अकेलापन, बेगानापन, बेबसी तथा जड़ता को हू-ब-हू प्रकाश में लाने के लिए साथ प्रयोग करते हैं। इनके उपन्यासों में पात्रों की मनोसमाजिक विशेषताओं के प्रस्तुतीकरण के लिए यह कथोपकथन शैली अधिक उपयुक्त तथा संगत प्रतीत होती है। क्योंकि इसके द्वारा पात्रों के चेतन, अचेतन तथा अवचेतन में सुप्त मनोविकारों को तथा ग्रंथियों को प्रकाश में लाया जा सकता है, जिस से पात्रों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव है। सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व वाले व्यक्तियों का समूह ही स्वस्थ समाज कहलाता है। इस प्रकार स्वस्थ सामाजिक संरचना के लिए भी यह कथोपकथन शैली अधिक उपादेय सिद्ध होती है। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई तीनों लेखकों के उपन्यासों में कथोपकथन लम्बे कम, छोटे अधिक हैं। चूँकि इनके उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पात्रों की परिकल्पना हुई है।

दीर्घ कथोपकथन

व्यष्टि को समष्टि की ओर तथा व्यक्तिवाद को सामूहिकता की ओर ले जाने के लिए अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में कहीं संक्षिप्त कथोपकथन का आश्रय लेते हैं तो कहीं लम्बे-लम्बे संवादों का। जहाँ 'शेखर: एक जीवनी' में वैचारिकता नहीं है, केवल वर्णनात्मकता है अथवा मनोवैज्ञानिकता है, वहाँ सुबोधता और सजीवता के कारण

साधारण पाठकों के लिए भी रोचक है। जैसे बालक शेखर की जितनी मनोवैज्ञानिक या प्रतिक्रियावादी घटनाएँ हैं, वे सभी रोचक हैं,

> शेखर ने सरस्वती से पूछा, 'मरते कैसे है ?', 'मर जाते हैं, और क्या ?', 'मरकर क्या होता है ?', 'पागल ! जान नहीं रहती, चल फिर बोल नहीं सकते, तब ले जाकर जला देते हैं।', 'डूबने से ऐसे ही मर जाते है ?', 'हाँ', 'क्यों मरते है ?', 'साँस बन्द हो जाती है, तब जान निकल जाती है।' शेखर थोड़ी देर इस बात को सोचता रहा। फिर एकाएक उसने पूछा, 'जान क्या होती है ?', 'होती है, बस !', 'उसने फिर आग्रह किया, 'क्या होती है ?', 'मुझे नहीं मालूम, पिताजी से पूछो !', 'थोड़ी देर बाद शेखर ने फिर पूछा, जान आती कहाँ से है ?', 'ईश्वर से।' 'जाती कहाँ है ?' 'ईश्वर के पास।' 'ईश्वर ले लेता है ?' 'हाँ' शेखर ने सन्देह के स्वर में कहा...हँ। थोड़ी देर बाद उसने फिर पूछा, 'इतनी सन जानें ईश्वर के पास गयी होंगी ?', 'हाँ', 'जर्मनों की भी ?', 'हाँ', 'सब कुछ ईश्वर करता है ?', 'हाँ', 'तब लड़ाई भी ईश्वर ने करायी होगी ?', 'हाँ', 'तब' कहकर शेखर रुक गया। उसे याद आया, उसने अखबार में ही पढ़ा था कि जर्मन लोग बड़े क्रूर होते हैं, कैदियों को पीटते हैं, भूखा मारते हैं, औरतों को कोड़े लगाते हैं, सड़कों पर घसीटते हैं इत्यादि। क्या यह सब भी ईश्वर के करने से ही होता है ? (शेखर : एक जीवनी भाग एक 69-70)

इनके लम्बे कथोपकथन में बालमनोविज्ञान की झांकी ही मिलती है। जहाँ बालक शेखर की जीवन-मृत्यु तथा जगत के बारे में जानने की प्रबल आकांक्षा अथवा जिज्ञासा का परिचय मिलता है। देसाई के उपन्यास 'क्लियर लाईट ऑफ द डे' में भी ऐसे संवाद दृष्टव्य होते हैं जिसमें पात्रों की मानसिकता पता चलती है। देसाई ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है किन्तु कहीं कहीं दीर्घ संवादों का भी सहारा लिया गया है। बिम अपनी बहन तारा के द्वारा कही बात और बड़े भाई का घर छोड़कर जाने के बाद न मिलने आना। बिम की छटपटाहट को बयान करता है,

> Yes, I do know', Bim replied loudly. 'He is invited to weddings, engagements parties, anniversaries- they spread out carpets and cushions for him to recline on, like a pasha- and he recites his poems.'...I can imagine the scene- all those perfumed verses about wine, the empty goblet, the flame, and ash...she laughed derisively. 'You haven't read any of it in years- how do you know?'
>
> 'I know Raja. I know his poems.'
>
> 'Why can't it have changed?' Grown better?'
>
> 'How can it-when he lives in that style? Living in his father-in-law's house, making money on his father-in-law's property, fathering one baby after another-'
>
> 'Five, And they're quite grown up now- the girls are anyway.'
>
> 'You've never even seen him, Bim!'...'I couldn't bear to- I can imagine it all- after four daughters, much lamented, at last the little boy, the little prince arrives. What a dumpling he must be, what a rice ball – with all the feeding that goes on in that house, Benazir cooking and tasting and eating all day, and in between meals little snacks arriving to help them on their way. Imagine what he must look like, and Raja! Imagine eating so much! (Clear light of the Day 219)

देसाई के दूसरे उपन्यासों में भी कई जगह दीर्घ संवाद देखे जा सकते हैं जो पात्रों की मनःस्थिति को व्यक्त करते हैं। अजय शर्मा के उपन्यासों में भी दोनों ही तरह के संवादों को देखा जा सकता है किन्तु दीर्घ संवादों और वर्णनात्मक शैली का प्रयोग होने के कारण लेखक अजय शर्मा के संवाद ज्यादातर दीर्घ ही पाए गये हैं। अजय शर्मा के

'काल-कथा' उपन्यास में पंजाब के आतंकवाद महौल से पीड़ित बीजी पात्र जब डॉक्टर पात्र को अपने हालातों का बयौरा देते हुए कहती है,

> पंजाब सरकार ने दंगा पीड़ितों के कई परिवारों को नौकरी दी। कईयों को बिजनेस के लिए कर्ज भी दिया। कुछ लोग तो वापस भी चले गए। डीसी खुद आता था सही बात पता करने के लिए...जो भी हो, हर शहर का अपना मिजाज होता है। उसका रास्ता पैरों का नापा हुआ होता है। रात के अंधेरे में भी पता होता है कि कहाँ पर गड्ढ़ा है और कहाँ से बचकर निकलना है। जिस शहर की आगोश में जवानी बीती हो और शहर ने आपको पाल-पोसकर बड़ा किया हो, उसको कैसे भुलाया जा सकता है? मुझे तो आज भी लगता है कि जब मैं चलती हूँ तो मेरे साथ कानपूर चल रहा है। वहीं बच्चों का जन्म हुआ और वहीं पर दम भी तोड़ना चाहती थी। शायद किस्मत को यह मंजूर न था। लगता है कि शरीर यहाँ है और आत्मा कानपूर की गलियों में भटक रही है। उस शहर ने मुझे सबकुछ दिया और फिर छीन लिया। पति वाहेगुरू को प्यारे हो गए, लेकिन फिर भी न जाने क्यों जालंधर बेगाना-बेगाना लगता है। एक आदमी की गलती की सज़ा पुश्तें भुगतती हैं। उसके बाद निशान नहीं मिटते, गाहे-बगाहे रिसने लगते हैं। (काल-कथा 105)

'शहर पर लगीं आखें' उपन्यास में एक शेख पात्र के माध्यम से लेखक उसके देश की न दिखाई देने वाली गुलामी के बारे में बताते हुए कहता है,

> देखने में तो लगता है कि हम लोग बहुत सुखी हैं और हमें कोई दुख नहीं। अगर तुम गौर से देखो तो यहाँ की सूई भी खरीदो, तो उसमें अमेरिका नज़र आता है। अमेरिका जानता है कि तेल पर कब्जा करके ही वह अपनी शक्ति को संचालित कर सकता है, क्योंकि उसे हर काम के लिए तेल चाहिए। अगर समुद्र में जाना है, तो तेल। अगर आकाश में

> उड़ना है, तो तेल। अगर अंतरिक्ष में जाना है, तो तेल।...और तेल उसे गल्फ में ही नज़र आता है। पहले वह लताड़ता है। अभी हम लोग पुचकारने वाली स्थिति में हैं। (शहर पर लगी आँखें 27) ऐसे और भी कई संवाद लेखक अजय शर्मा के उपन्यासों में देखे जा सकते हैं।

सूक्ष्म या संक्षिप्त कथोपकथन

पात्रों के कथन-उपकथन जहाँ तक सम्भव हो, संक्षिप्त ही होने चाहिए। कारण यह है कि अपने साधारण जीवन में वार्तालाप में हम छोटी-छोटी बातें ही कहते हैं उसी प्रकार पात्रों का भी वहीं वार्तालाप हमें अधिक रुचिकर भी लगता है। 'नदी के द्वीप' उपन्यास में अनेक स्थलों पर ऐसी संवाद-योजना मिलती है, "रेखा ने कहा, रुक क्यों गये ?', 'कुछ नहीं, यों ही', 'कहिये न ?', 'नहीं।', रेखा ने कहा, 'आप तारों के बारे में कुछ कहने जा रहे थे।' भुवन ने सकपकाकर स्विकार कर लिया। 'तो फिर रुक क्यों गए ?" (नदी के द्वीप 145) इसी प्रकार रेखा और भुवन का निम्नांकित वार्तालाप भी उनके संक्षित्प कथन-उपकथनों की दृष्टि से सराहनीय है,

> ओः आर्किड। तब यह विदा है।' ऐसा कोई सम्बन्ध भुवन ने नहीं देखा था। पर बोला, 'रेखा, आज तो मुझे जाना होगा न।', 'सो- मैं जानती थी' भुवन उसके पास सीढ़ी पर बैठ गया। 'रेखा! तुमने मुझे क्षमा कर दिया?' रेखा का हाथ टटोलता हुआ बदन, 'भुवन के हाथ पर आकर शिथिल रुक गया। 'किस बात के लिए भुवन?', 'सब कुछ! तुम जानती तो हो।', 'तुम्हारे क्षमा माँगने की तो कोई बात नहीं दीखती भुवन, मैं ही...। (नदी के द्वीप 169)

दीर्घ संवादों के माध्यम से अज्ञेय ने स्थितियों की संश्लिष्टता और पात्रों की व्यक्तित्व-चेतना को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। पात्रों की चरित्र-योजना में

मनोवैज्ञानिक अंश को स्पष्ट करने में दीर्घ सूक्ष्म अत्यंत आवश्यक प्रतीत होते हैं। देसाई के उपन्यास 'द ज़िगजेग वे' में भी ऐसे संवाद देखे जा सकते हैं,

> You remember that mouse mask we gave you to wear, Eric'...'The Mickey Mouse mask from the cereal box-'... When you wanted to be Batman-'….And you set off brave as lion, with a pillowcase for candy, and when you got to the first house and saw all the pumpkins lined up with candles in them-'...On a dark and windy night. (The ZigZag way 18)

देसाई के फ़ास्टिंग फ़ीस्टिंग' उपन्यास में भी संक्षिप्त संवाद देखे जा सकते हैं जब उपन्यास शुरू होता है,

> …Yes, yes, yes- there must be sweet- must be sweets too. Tell cook. Tell cook at once...Uma! Uma!... Uma must tell cook-...E, Uma!...Why are you shouting?...Go and tell cook'...Tea, Shawl- Shawl? Shawl?...Yes, the shawl Muma bought...Muma bought?... (Fasting Feasting 4)

'जर्नी टू इथाका' उपन्यास में सौफी और मेटियो के वार्तालाप में भी कई संक्षिप्त संवादों को देखा जा सकता है,

> …I want to know why are we here...I told you- to find India, to understand India, and the mystery that is at the heart of India…..I have found it. At its heart is a dead child. A dead child, Matteo! ...Don't shout, Sophie, I can hear, he hisses. And why is it dead child? ...because at the end of that journey is a dead child…she repeated. (Journey to Ithaca 65)

अजय शर्मा के 'कागद कलम न लिखणहार' उपन्यास में इस तरह के संवादों को देखा जा सकता है,

> ...हेलो !...पता नहीं...क्यों...?...तुम उपन्यास लिखने लगे हो?...फिर?...लिखने लगा हूँ...अच्छा... ! ...मान गए?...छुपाकर रखते..।'...क्यों...छीन लेंगे...'...कौन?...जो नहीं लिखते और बांझ हो गए हैं।'...फिर तो सारा शहर ही मुझे खा जाएगा।... नहीं... क्यों?...लोग ब्रह्महत्या से डरते हैं।...मगर मैं तो फंस गया...।...फिर अब...? (कागद कलम न लिखण्हार 17)

उपन्यास में आगे भी कई स्थान में सूक्षम संवादों को लेखक ने पात्रों की मानसिक दशा को बयान करते हुए बखूबी चित्रित किया है। 'काल-कथा' उपन्यास में लेखक ने ऐसे संवादों का सहारा लिया है,

> ...तुम से तो बात करना ही फिजूल है...तुम फ्लास्फिकल बातें लेकर बैठ जाते हो।...हाँ, मैं जानता हूँ कि मैं मूर्ख हूँ।...मैंने तो ऐसा कुछ नहीं कहा।...कुछ बाते कहने की नहीं समझने की होती हैं।...आप ख्वामख्वाह बात का बतंगड़ बना रहे हैं।...हाँ मेरी आदत जो है।...ठीक है, तुम्हारे खाने का मूड नहीं है, तो मत खाओ... (काल-कथा 131)

'शहर पर लगी आँखें' उपन्यास में लेखक ने कई स्थानों पर ऐसे संक्षिप्त संवादों का प्रयोग किया है,

> ...वह कैसे?...मैं समझा नहीं आपकी बात।...मैं समझाता हूँ।...अगर अमेरिका चाहे तो हमारा मुल्क अंधेरे में डूब जाए।...वह कैसे?...हमारे मुल्क में बिज्ली का सिस्टम इंगलिश नहीं, बल्कि अमेरिकन है।...लेकिन दोनों में अंतर क्या है?...बहुत बड़ा अंतर है। (शहर पर लगी आँखें 29)

उपन्यास 'नौ दिशाएँ' में लेखक ने ऐसे संवादों को रजनी उसके पति और उसकी माँ के माध्यम से व्यक्त किए हैं। यहाँ रजनी की माँ अपनी बेटी और दामाद के बीच चल रहे विवाद और उनको अलग करवाने के बारे डॉक्टर पात्र से कहती है कि,

> ...क्या वे लोग अब सुखी हैं?...सुखी-दुखी की बात नहीं है। लेकिन इस तरह के फालतू पंगों से तो राहत मिल ही गई न।...इसका मतलब है कि आपने फैसला कर ही लिया है कि दोनों को अलग करवाकर ही दम लेंगी।...बिल्कुल।...अगर संजीव न माना तो?...अरे मानेगा कैसे नहीं, हमने योजना बनाई है उसमें ऐसा जकड़ जाएंगे कि स्थिति शह और मात की होगी। उसके बिना उन्हें मुक्ति ही नहीं मिलेगी।...इसका मतलब है शतरंज खेलना भी जानती हैं आप?...आप जानने की बात करते हैं, मैंने तो अपने घरवाले को आज तक कोई बाजी जीतने नहीं दी।... (नौ दिशाएँ 67)

आत्मकथात्मक उपन्यास होने के कारण 'शेखर: एक जीवनी' में पात्रों के आत्मविश्लेषण की गुंजायिश ही अधिक है और इसके मुताबिक आत्म संभाषण की शैली प्रयुक्त हुई है,

> आत्मकथा लिखना एक प्रकार का दम्भ है- उसमें यह अहंकार है कि मेरे जीवन में कुछ ऐसा है जो कथनीय है, देय है, रक्षणीय है, स्मरणीय है...हो सकता है कि ऐसा हो किन्तु व्यक्ति स्वयं यह दावा करने वाला कौन होता है? भूसी स्वयं नहीं कहती कि यह देखो, मेरी कोख में प्राणद अन्न है- यह अन्न दूसरे की देह में बल बनकर बोलता है...किन्तु क्या मैं ऐसे ही आत्मकथा लिख रहा हूँ? क्या यह आत्म-प्रकाशन है? क्या अब भी मेरा मर्म नहीं कहता कि 'जो मेरा है, जो सारभूत है, जिसमें मैं सिक्त और अभिषिक्त हूँ, उसे छिपा लो। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 204)

'अपने-अपने अजनबी की संवाद योजना में आत्म-संभाषण भी शामिल है जिसे उपन्यासकार के संवाद सौष्ठव का सफल प्रयोग कहा जा सकता है,

> मैं अगर ईश्वर को नहीं मान सकती तो नहीं मान सकती, और अगर ईश्वर मृत्यु का ही दूसरा नाम है तो मैं उसे क्यों मानूँ? मैं मृत्यु को नहीं मानती, नहीं मान सकती, नहीं मानना चाहती! मृत्यु एक झूठ है, क्योंकि वह जीवन का खण्डन है और मैं जीती हूँ और जानती हूँ कि मैं जीती हूँ। कभी ऐसा होगा कि जीती न रहूँगी- लेकिन जब नहीं रहूँगी तब यह जानने वाला भी कौन रहेगा कि मैं जीवित हूँ कि मैं मर चुकी हूँ? मौत उनकी की ही हो सकती है, जिनका होना और न होना दोनों ही हम जान सकते हैं या मानते हैं। लेकिन अपनी मृत्यु का क्या मतलब है? वह केवल दूसरे को देखकर लगाया हुआ एक अनुमान है कि दूसरे के साथ ऐसा हुआ इसलिए हमारे साथ भी होगा। (अपने-अपने अजनबी 41)

'नदी के द्वीप' उपन्यास में पात्रों की मनःस्थिति के पूर्णतया परिवेश के अनुकूल है। इस दृष्टि से गौरा और भुवन का निम्नांकित वार्तालाप दृष्टव्य है,

> गौरा तुमने नौकरी जो कर ली तो क्या जीवन का मार्ग अंतिम रूप से चुन लिया? माता-पिता की क्या राय है?'...'भुवन दा, मुझसे तो आप पूछते हैं पर नौकरी तो आप भी करते हैं, आपने क्या सोचा है यह सब? या सोच चुके है?'...गौरा आज देखता हूँ तुम मुझसे छोटी अब नहीं हो और अब से बराबर-बराबर बात करूँगा यों पहले भी बिल्कुल छोटी तो नहीं मानता था।'...'माफी चाहती हूँ, भुवन दा-आप सदैव बड़े हैं।'...नहीं। पर मेरे लिए एक को चुन लेना आवश्यक नहीं है। इस मामले में पुरुष दिग्भ्राँत भी रहे तो चल सकता है। नारी को बिल्कुल सुलझे ढंग से सोचना पड़ता है –निर्भय होकर।'...'अच्छा जरूरी न सही,

> आपने सोचा तो होगा?'...'ठीक सोचा नहीं-सोचना तो एक वैज्ञानिक क्रमगत क्रिया है पर हाँ यो ही कुछ धारणाएँ तो हैं।'...'क्या?'...'यही कि उसके विरुद्ध मैंने कोई प्रतिज्ञा तो नहीं की। राह चलते कोई उपर्युक्त साथी मिला तो...'...'लेकिन इस देश में भी होते हैं। खोज तो दूसरे करते हैं। विज्ञान के विद्यार्थी का तो सारा जीवन ही खोज है।'...'ओ हो! तब जब कुछ मिल जाएगा तो भौचक से देखते रह जायेंगे। सब कुछ कास्मिक रश्मियों की तरह थोड़े ही यंत्र से नाम लिया जाता है।'...'खासकर नारी-यही न? पर यह क्यों मान लेती हो कि मैं ही खोजूँगा वह भी तो खोजेगी बल्कि वही खोज लेगी। स्त्रियों की बुद्धि तो अचूक होती है न ऐसे मामलों में? मैं यंत्र केवल इतना जान लूँगा कि खोज पूरी हो गई। (नदी के द्वीप 154)

कहना न होगा कि सन्दर्भगत संवाद भुवन और गौरा की मनः स्थिति के पूर्णतया अनुकूल है। भुवन ने कभी गौरा से विवाह करने के विषय में नहीं सोचा। उसके उत्तरों में इस तथ्य की गंध तक नहीं मिलती, इसके विपरीत गौरा इस दिशा में संकल्प-सा कर चुकी है, अतः उसके कथनों में यह तथ्य झलकता है कि वह भुवन के मुख से यह सुनने को ललायित है कि वह गौरा के रूप में अपनी खोज पूरी कर चुका है। देसाई के 'द क्लियर लाइट ऑफ द डे' उपन्यास में बिम के संवादों को आत्मकथात्मक संवादों के रूप में देखा जा सकता है। जब उसका भाई उसे अकेले छोड़कर एक अलग दुनिया में रहने के लिए चला जाता है और घर को सम्भालने की पूरी जिम्मेदारी बिम पर आन पड़ती है,

> This is what I mean, Bim was almost shouting, waving a letter in her face. It's all very well for Raja to write sentimental letters and say how he cares, and how he will never, and how he will ever- but who is to deal with Sharma? He writes a letter upon letter to say we must attend an

> important meeting, he wants to discuss- then who is to go down to Chandni Chowk and do it? Where is Raja then? Then Raja isn't there- ever, never. (Clear Light of Day 235)

'फायर ऑन द मांउन्टेन' उपन्यास में नंदा और इला दास के संवाद आत्मकथात्मकता दर्शाते हैं,

> Oh, I do feel ashamed of myself, shrieked Ila Das. 'Ooh, I do, when I think how much better off I am than the poor, poor people around me. Why, you wouldn't believe the things I see, Nanda. It isn't just that I have this little bit of security, this tiny bit of status… (Fire on the Mountain 139)

भावात्मक कथोपकथन

भावना और संवेदना की गहनता-सघनता को व्यक्त करने के लिए भी इस कथोपकथन शैली की सहायता ली गयी है। शेखर और शशि का संवाद इसका प्रमाण है,

> शशि दर्द होता है?...'बताओ, शशि, क्यों, क्या होता है? क्या होता है...'...'सुख, शेखर, सुख।" इसी प्रकार एक और भी उदाहरण द्रष्टव्य है, "तुमने क्या निश्चय किया, शेखर ?'...'मुझे आवश्यकता नहीं पड़ी। तुम फिर आ गई- तुम मेरे जीवन में चली आई-मैं नहीं जानता था कि किसके लिये लड़ूँ, पर तुम मेरे पास थी, तुम्हारे लिए मैं लड़ने लगा या उद्योग करने लगा लड़ने का। शशि, मैं निरंतर संघर्ष करता आया हूँ- तुमसे भी लड़ता आया हूँ, पर अब स्वीकार करता हूँ कि मैंने तुम्हें प्यार किया है। लड़ने में अपना श्रेष्ठतम मैं देता आया हूँ क्योंकि मैंने तुम्हारे लिये दिया है। बीच में शंका हुई थी कि यह आदर्श घटिया है, फिर दूर हो गई, क्योंकि तुम किसी कोरे आदर्श से कम नहीं थी।...किन्तु मेरे भीतर एक भूख जागी और उससे फिर एक नया संदेह...शशि, क्या मैंने

> पाप किया है?'...'शेखर, मैंने सदा तुम्हें प्यार किया। पाप मैंने कभी नहीं किया। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 244)

इसी प्रकार 'नदी के द्वीप' जो प्रेममूलक तथा प्रतीकात्मक उपन्यास है। उसके कथोपकथन भी उपन्यास की मूल चेतना प्रेममूलक तथा काम के सम्बन्धित ही अधिक है,

> पगली, चाँदनी बहुत है, खब पीन सकोगी। चलो, जमी जा रही हो ठंड से-ऐसे तो तुम्ही चाँदनी हो जाओगी।...और मुड़ तो गये, वह भी जानते हो कि किधर जाना है?'...भुवन ने भोलेपन से कहा, 'न, तुम लेका रही हो, मैं जा रहा हूँ। दैट ईज ऑल आई नो एण्ड नीड टु नो।'...जिसके उत्तर में रेखा कहती है, 'और तुम भुवन तुम? तुम भी लेकिन जमकर नहीं, द्रवित होकर। (नदी के द्वीप 31)

इन उपन्यासों में दैनिक जीवन की विभिन्न सामयिक समस्याओं से युक्त संवाद भी मिलते हैं। इनमें एक प्रकार का संतुलन बौद्धिकता तथा भावों की अनुकूलता लक्षित होती है। भुवन ने कहा,

> आप काफी सफर करती है?...'हाँ!...अधिक सफर ही करती हूँ इधर के बहुत काम वेटिंग रूम में जो मेरे अपरिचित होंगे। जब मुसाफिर नहीं होती, तो मेहमान होती हूँ और दोनों में कौन अधिक उखड़ा है यह कभी तय नहीं कर पाई। (नदी के द्वीप 34)

प्रतापगढ़ स्टेशन पर भुवन तथा रेखा का संवाद भी उत्कृष्ट शैली का प्रमाण है, "रेखा जी आप से भेंट करके मुझे प्रसन्नता हुई। मेरा लखनऊ का प्रवास बड़ा सुखद रहा।" (नदी के द्वीप 34) कथोपकथन की दृष्टि से 'अपने-अपने अजनबी' भिन्न प्रकार का उपन्यास है। जिसके दोनों पात्र योके और सेल्मा शरीरिक कम, मानसिक अधिक हैं। इसलिए इनके कथोपकथनों में भी बौद्धिकता अधिक है, भाषिक कम। शब्द तथा

शाब्दिक प्रयोग की अपेक्षा अर्थगांभीर्य अधिक मिलता है। उपन्यासकार की रुचि के अनुरूप इस संवाद, मनोवैज्ञानिकता, दार्शनिकता, बौद्धिकता और तार्किकता को लिये हुए हैं। सेल्मा और योके का यह संवाद इसकी पुष्टि करता है, "बुढ़िया ने पूछा- योके तुम्हारा ध्यान हमेशा मृत्यु की ओर क्यों रहता है?"...मैंने रुखाई से कहा, "क्योंकि वही एकमात्र सच्चाई है और हम सबको मरना है।" (अपने-अपने अजनबी 31) इस प्रकार ये संवाद अधिक सूक्षम आआर वाले हैं लेकिन इनमें अर्थ तथा आशय की व्यापकता है,

> उसे (सेल्मा को) देखते-देखते मेरा मन होता है कि जोर से चीखूँ कि जलती हुई लकड़ी उठाकर उसकी कलाइयों पर दे मारुँ जिससे उसका आग को असीसने का दुस्साहस करने वाला हाथ नीचे गिर जाय, एकाएक जिससे सदा के लिए उसके हृदय की गति बंद हो जाएँ। (अपने-अपने अजनबी 31)

बौद्धिकता की वजह से कहीं अहंग्रस्त संवाद मिलते हैं। जहाँ का अहं यह स्वीकार नहीं करता है कि दूसरों का सहयोग लूँ। योके सेल्मा से पूछती है, "मैंने कहा, मैं उठाकर ले चलूँ ?'...वह नहीं हो सकेगा। तुम से नहीं, मुझसे ही नहीं हो सकेगा।" (अपने-अपने अजनबी 49) सेल्मा एक तो वृद्धा है फिर कैम्सर की व्याधि से पीड़ित है परन्तु फिर भी उसमें इतना साहस, इतना संकल्प और अहं है कि ऐसी दयनीय स्थिति में भी किसी का सहारा नहीं चाहती। अज्ञेय के उपन्यासों में एकपक्षीय संवादों की भी नई प्रणाली अपनाई गई है, जिसमें एक ही पात्र जो बातें कहता चित्रित किया गया है। उसमें दूसरे पात्र के प्रश्न या कथन का स्वतः अनुभव हो जाता है। जैसे 'नदी के द्वीप' में मलय से लौटे हेमेन्द्र द्वारा अपनी पत्नि रेखा सम्बन्धी पूछताछ के अवलोकनीय संवाद है और एकपक्षीय संवाद का ज्वलंत प्रमाण है,

> रेखा? मुस्कराहट (रहस्य)...जाने दीजिए किसी नारी की बुराई नहीं करनी चाहिए।' चेहरे पर दर्द का भाव। लेकिन आजकल की औरतें भी-

> कुछ पूछिए मत। हिन्दोस्तान को यूरोप बना दिया है बल्कि यूरोप में भी ऐसा न होता होगा।'...कैसे कहें कहने की बात भी हो?...पर आज उसके हितैषी मालूम होता है'...'वह तो अपने यारों को लेकर पहाड़ों की सैर करती है। कभी इसको, कभी उसको, नौकरी तो सिर्फ बहाना है, कभी किसी के साथ रहती है, कभी किसी के। (नदी के द्वीप 114)

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'नदी के द्वीप' की संवाद-योजना में उपन्यासकार ने एकपक्षीय-संवादों का आश्रय लिया है जो बड़ी अवसरानुकूल एवं स्वभाविक है। अंत में यही कहा जा सकता है कि अज्ञेय की कथोपकथन शैली, जो विविध शैलोयों का सुंदर सम्मिश्रण है, अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता का प्रबल प्रमाण है। इस प्रयोगधर्मिता की सफलता के मूल में उपन्यासकार अज्ञेय की सर्जनात्मक भाषा अधिक सक्रिय है।

शिल्पगत प्रयोग: प्रयुक्त विविध शैलियाँ

अज्ञेय ने केवल तीन उपन्यास लिखे 'शेखर: एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी'। यद्यपि ये उपन्यास संख्या में तीन ही हैं लेकिन स्थान ग्रहण में मूर्धन्य प्रतिष्ठित हुए। इन्होंने उपन्यास साहित्य थोड़ा ही दिया, किन्तु जो दिया वह नया और विशिष्ट है। तीनों उपन्यास विधेय और विधि दोनों में स्वतंत्र व्यक्तित्व संपन्न नये प्रयोग हैं। अज्ञेय के उपन्यासों में शिल्पगत प्रयोग एकदम वैविध्य को लेकर चलते हैं। अज्ञेय एक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार होने के कारण शिल्पगत प्रयोग भी मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही हुए। पात्र और घटनाओं के स्वरूप, गति एवं प्रवाह के अनुसार अज्ञेय के उपन्यासों के रूप विधान की विविध शैलियाँ प्रकाश में आती हैं। प्रवृत्ति-प्रदर्शन के लिए अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यासों में प्रयुक्त विविध शैलियों का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है।

आत्मकथात्मक शैली

एक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई ने विभिन्न पात्रों की मनः स्थितियों का सक्षम ढंग से प्रकाशन करने हेतु आत्मकथात्मक शैली का सटीक प्रयोग किया है। पात्रों की मनोदशाओं, अकाँक्षाओं और उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं को स्पष्ट करने में शैली का यह रूप उपयुक्त प्रमाणित होता है। आत्मकथात्मक शैली अज्ञेय की प्रिय और विशिष्ट शैली है। इसके सहारे पात्रों के अंतरलोक के सम्पूर्ण तथ्यों को प्रकाश में लाया जा सकता है क्योंकि व्यक्ति के द्वारा कही गयी अपनी कथा आपबीती से युक्त तथा प्रभावोत्मादक होती है। इसी कारण अज्ञेय ने व्यक्ति की मानसिक रुग्मताओं को प्रकाश में लाने के लिए इस शैली का प्रयोग किया। 'शेखर : एक जीवनी' की शुरूआत ही आत्मकथात्मक शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है,

> फाँसी! जिस जीवन को उत्पन्न करने में हमारे संसार की सारी शक्तियाँ, हमारे विकास, हमारे विज्ञान, हमारी सभ्यता द्वारा निर्मित सारी क्षमताएँ या औज़ार असमर्थ हैं, उसी जीवन को छीन लेने में, उसी का विनाश करने में, ऐसी भोली हृदयहीनता-फाँसी!...फाँसी, क्यों? अपराधी को दण्ड देने के लिए। पर इससे क्या वह सुधर जायगा? इससे क्या उसके अपराधों का मार्जन हो जाएँगा? जो अमिट रेखा उसके हाथों खिंची है वह क्या उसके साथ मिट जाएँगी? फाँसी, दूसरों को शिक्षा देने के लिए पर कैसी शिक्षा है कि जीवन के प्रति आदर-भाव सिखाने के लिए उसी की घोर हृदयहीन उपेक्षा का प्रदर्शन किया जाए! और, इससे भी कभी कोई सीखा है, "मुझे तो फाँसी की कल्पना सदा मुग्ध ही करती रही है। उसमें साँप की आँखों-सा एक अत्यंत तुषारमय, किन्तु अमोघ सम्मोहन होता है...'एक सम्मोहन, एक निमन्त्रण, जो कि प्रतिहिंसा के इस यंत्र को भी कवितामय बना देता है जो कि उस पर

> बलिदान होते हुए अभागे या अतिशय भाग्यशाली!- को जीवन की एक सिद्धि दे देता है और उसके असमय अवसान को भी सम्पूर्ण कर देता है...फाँसी !...यौन के ज्वार में समुद्र-शोषण। सूर्योदय पर रजनी के उलझे हुए और घनी छायाओं से भरे कुंतल। शारदीय नभ की छटा पर एक भीमकाय काला बरसाती बादल ! इस विरोध में, इस अचानक खण्डन में निहित अपूर्व भैरव कविता ही में इसकी सिद्धि है...। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 3)

आत्मकथात्मक शैली के द्वारा पात्रों की अंतर्द्वन्द्व को स्पष्ट किया गया है। कथा को विशेष गति देने और कथा के विकास के पात्रों को जोड़ने में इस शैली की ही भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। इस शैली का प्रयोग करके अज्ञेय ने विभिन्न पात्रों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट किया है। अजय शर्मा के उपन्यासों में भी यह शैली कई जगह देखी जा सकती है। उन्होंने लगभग अपने सभी उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली का विवरण दिया है। एक आधुनिक लेखक होने के नाते उनके हर उपन्यास में ऐसा ही अनुभव होता है कि जैसे वह आप बीती ही पात्रों के माध्यम से सुना रहे हों। वह अपने 'भगवा' उपन्यास में कहते हैं,

> ...बापू की बीमारी भी आम शूगर एवं ब्लड प्रैशर की बीमारियों जैसी ही थी। दवा लेते जाओ और जीते जाओ। एक साल बीत गया था, बापू की तबीयत वैसी ही चल रही थी। एक साल के बाद मुझे पता नहीं क्यों अपने आप पर ग्लानी होने लगी थी। मुझे खुद पर गुस्सा आने लगा था और मैं खुद से कई सवाल करने लगा था। एक सवाल उसमें सबसे अहम था कि मैं किस चीज़ का इंतज़ार कर रहा था। फिर मैं खुद ही बुदबुदा उठता, क्या मैं अपने बापू की मौत का इंतज़ार कर रहा था? वह मरे और मैं बांबे चला जाऊं। यह सोचकर मेरी रूह कांप उठती। मुझे याद है उन दिनों एंटी डिप्रैसेंट गोली लेने की आदत पड़ गई थी जो आज तक भी नहीं छूटी। इस बीच मैंने एक अस्पताल में नौकरी करनी शुरू कर

> दी। एक दिन मुझे ऐसा लगा जैसे सारे के सारे ग्रह मेरी कुंडली से हिलकर अलग-अलग घरों में चले गए हैं क्योंकि एक दिन शाम को जब मैं अस्पताल से लौटा तो माँ ने कहा था, 'बेटा, तुम्हारे बापू का कोई भरोसा नहीं, कम से कम उनकी खुशी का तो ख्याल कर।...माँ ख्याल तो रखता हूँ।...बेटा मेरा मतलब है शादी कर ले, कम से कम बूढ़ी आँखें कुछ तो देख सकें। (भगवा 21)

लेखक अजय शर्मा का हर उपन्यास ही लगभग आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। यहाँ वह अपने तजुर्बों और परिस्थितियों के बारे में लिखते हैं। उपन्यास पड़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपनी ही कथा सुना रहे हों। अनीता देसाई भी अपने कई उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग करती हैं। कई सारे साक्षात्कारों में उन्होंने इस बात को माना है कि उनके उपन्यासों में उनके अपने तजुर्बे और आस-पास की परिस्थितियों का विवरण किया है एक साक्षात्कार में वह खुद कहती हैं कि,

> Most things are so very ethereal...They pass and they change so very quickly. To make a report on some general events is not of so much importance. There are other elements which remain basic to our lives. I mean the human condition itself. It is only superficially affected by the day-to-day changes. We continue to live in the same way as we have in the past centuries…with the same tragedies and the same comedies. And that is why it interests me. (In an interview with Yashodhara Dalmia 29)

देसाई के 'बाम्गाडनर बाम्बे' उपन्यास में भी इस शैली को देखा जा सकता है। जब कांती लाल की मौत के बाद उसके बच्चों को पहचाने से ही इनकार कर दिया जाता है,

> Those boys I know them when they were little. If they were sick, I made them porridge. At night I sat holding ice to their

> foreheads…Not even a thermometer they had in the house till I went and got one. If they wanted to dress smart, I went and chose their clothes. (Baumgartners's Bombay 77) देसाई आगे बताती हुई कहती हैं, "In Calcutta, I was not even there to hold his hand. His family was already fighting over the property-no one even to hold his hand, there in the hospital. Dogs die like that, in the street. (Baumgartners's Bombay 73)

अज्ञेय के उपन्यासों की शैलीगत विशेषताओं में प्रत्यावलोकन शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन में इस शैली का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है। इस शैली के द्वारा पात्रों के चरित्रिक विकास-क्रम को आसानी से समझा जा सकता है। आत्मकथात्मक शैली से प्रारम्भ होनेवाला 'शेखर: एक जीवनी' का दूसरा सोपान प्रत्यावलोकन की शैली है, जिस पर पूरे उपन्यास का भवन खड़ा मिलता है। विद्रोही व्यक्तित्व के कारण शेखर को फाँसी की सज़ा दी जाती है। उपन्यास के आरम्भ में ही वह अपनी जीवन-यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पहुँचकर अपने जीवन का प्रत्यावलिकन करता है और समूचे अतीत को फिर से जी लेना चाहता है। उसका सारा अतीत वर्तमान होकर आँखों के सामने नाचने लगता है। शेखर में कहीं-कहीं दोहरे प्रत्यावलोकन के स्थल भी हैं और कहीं-कहीं पूर्ण प्रत्यावलिकन तथा कहीं लघु प्रत्यावलोकन भी। इसी क्रम में वह अतीत के जीवन में घटित घटनाओं का स्मृत्यावलोकन कर रहा है क्योंकि शेखर के पास अतीत की स्मृतियाँ भी कम नहीं हैं। शेखर के जीवन का यह प्रत्यावलोकन परिस्थितिजन्य होने के कारण सहज एवं स्वभाविक है, कृत्रिम नहीं है,

> मैं अपने जीवन का प्रत्यावलोकन कर रहा हूँ। अपने अतीत जीवन को फिर से जी रहा हूँ। मैं जो सदा आगे ही देखता रहा, अपनी जीवन-यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पहुँचकर पीछे देख रहा हूँ कि मैं कहाँ से चलकर किधर-किधर भूल-भटक कर कैसे-कैसे विचित्र अनुभव प्राप्त करके यहाँ

> तक आया हूँ और तब दिखता है कि मेरी भटकन में भी एक प्रेरणा थी, जिसमें अंतिम विजय का अँकुर था, मेरे अनुभव-वैचित्र्य में भी एक विशेष रस की उपभोगेच्छा थी, जो मेरा निर्देश कर रही थी और जीवन-यात्रा के पथ में जो पहाड़, तराइयाँ, नदी-नाले, झाड़-झंखाड, आँधी-पानी आये उन सब में मेरे और केवल मेरे सम्बन्ध में एक ऐक्य था, जिसका ध्येय था किसी विशेष काल में, विशेष परिस्थिति में, विशेष स्थान पर, विशेष साधनों और उपायों से मेरे जीवन का विशेष रूप से समापन, जिससे उसे अपनी सिद्धि, अपनी सफलता और अपनी सम्पूर्णता प्राप्त हो जाए...'अब मैं अधूरा हूँ पर मुझसे कुछ भी न्यूनता नहीं है, अपूर्ण हूँ, पर मेरी सम्पूर्णता के लिए कुछ भी जोड़ने को स्थान नहीं है, सिवाय इस प्रत्यावलोकन के, शायद जीवन-पथ के अंतिम पड़ाव का पाथेय ही यही है क्योंकि मुझे इससे और इस मात्र से तृप्ति मिलती है। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 3-4)

प्रत्यावलोकन शैली के माध्यम से पात्रों की मानसिकता, उनकी आकाँक्षाओं और उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं को प्रभाविष्णु ढंग से व्यक्त किया गया है।

मनोवैज्ञानिक शैली

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई मूलतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के लिए कथ्य और शिल्प में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण आवश्यक नहीं, बल्कि अनिवार्य शर्त बन जाता है। सिद्धांत तथा कथ्य सम्बन्धी अध्यायों में इसका विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। यहाँ प्रवृत्ति-प्रदर्शन के लिए मात्र एकाध बात कहनी पड़ती है। 'शेखर: एक जीवनी में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के द्वारा मानव मन की आंतरिक चेतना अभिव्यक्ति पाती है। अंतर्विवाद युक्ति बिना पात्र का ऐसा अनकहा-अनसुना भाषण है जिसमें वह अपने अचेतन के निकटतम विचारों को व्यक्त करता है,

> उसने मानो, अपने को जगाने के लिए अपने मन को झकझोर कर कहा, 'शेखर जागो, समझो, तुम कहाँ हो। यह है वेश्याओं का मोहल्ला, यहाँ शरीर बिकते हैं, यहाँ तृप्ति बिकती है, यहाँ सुख बिकता है।'...शेखर ने बढ़ते हुए रोष से बार-बार दोहराना आरम्भ किया...'वैश्या, वैश्या, प्रस्टीट्यूट रंडी समझे। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 22)

मनोविश्लेषण में स्वप्नों का विशेष महत्त्व होता है। स्वप्न विश्लेषण, स्वप्न-संधनन तथा स्वप्न विस्थापन सम्बन्धी उदाहरण भी काफी मिलते हैं,

> रात को शेखर ने एक स्वप्न देखा एक विस्तीर्ण मारुथल। दोपहर की कड़कड़ाती हुई धूप। शेखर एक ऊँट पर स्वार उस मारुथल को चीरता हुआ भाग रहा है, भागा जा रहा है...सवेरे की पिछली रात से वह भाग जा रहा है। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 89)

फिर शेखर ने स्वप्नों में देखा कि शारदा तपेदिक से अक्रांत होकर मर रही है, वह उसके पास गया और शारदा उस से कह रही है, "तुम मुझे भूल गये न, नहीं तो मैं न मरती...और उस के बड़े बड़े गर्म आँसू टप-टप शेखर के हाथ में झर रहे थे।" (शेखर: एक जीवनी भाग एक 90) यहाँ उपन्यासकार ने शिल्प के माध्यम से व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन को प्रस्तुत किया। उपन्यासों में आद्यंत पात्रों की यहाँ मानसिक चेतना और संघर्ष मिलता है जहाँ पात्र यौन उद्वेलन से ग्रस्त दिखाई देते हैं। मनोविश्लेषणात्मक शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए डॉ. धनराज मानधने ने जो निष्कर्ष निकाला वह अज्ञेय के सम्बन्ध में ठीक बैठता है,

> इस शैली के अंतर्गत कथानक का सूत्र मिलता है, पात्रों की विविध मनःस्थितियों के द्वारा निर्देशित होता है। इसके द्वारा उपन्यासकार पात्रों की अन्तर्वृत्तियों को विशेष रूप से प्रस्तुत कर सकता है।...इस शैली की लोकप्रियता का एक और कारण यह भी है कि रचनात्मक तथा

> क्रियाशीलता की दृष्टि से यह अन्य शैलियों की अपेक्षा अधिक सुष्ठु है। इसने एक विशेष प्रकार की व्यंजकता तथा नवीनता हिन्दी उपन्यासों के शिल्प रूपों को प्रदान की है। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 136)

> शेखर के व्यक्तित्त्व के मनोवैज्ञानिक पक्ष को प्रकाश में लाने में सहायक यह उदाहरण है, धीरे-धीरे एक डर-सा लगने वाला...क्या मैं हार रहा हूँ? क्या जेल का जीवन मुझे तोड़ रहा है? क्या मैं कायर हूँ? जिसे किसी भीतरी घाव में कंकड़ चुभे, ऐसे ही यह संशय उसके भीतर चुभता था...नहीं तो मैं क्यों ऐसे बेबस होकर रोया? जो समर्थ है, जो वीर है, वे रोते हैं? ऐसे कोठरी में अकेले बन्द पड़कर भेड की तरह मिमियाते हैं। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 61)

उपन्यासों के प्रमुख पात्रों की मनः स्थितियों पर प्रकाश डालने के लिए अज्ञेय के मनोवैज्ञानिक शैली को अपनाया है। अजय शर्मा के उपन्यासों में स्वप्न मनोविश्लेणात्मक शैली तो कहीं कहीं दिखाई पड़ती है परन्तु फ्लैशबेक शैली जो इसी के अंतरगत आती है देखी जा सकती है। 'भगवा' उपन्यास में लेखक डॉक्टर पात्र के माध्यम से कहता है,

> ...कभी-कभार बापू कुछ रिश्तेदारों का नाम जरूर लेता था। ये वही नाम थे जिन्हें सुनकर माँ कभी आग-बबूला हो जाया करती थी लेकिन जब से बापू ने खाट पकड़ी है सुनती रहती और बापू के चेहरे पर टकटकी लगाकर देखती रहती। हालांकि पूरी ज़िन्दगी उन रिश्तेदारों से शिकायत रही और किसी न किसी बात को लेकर झगड़ा होना तो मामूली बात थी। ...मुझे आज भी याद है...जब मैं भी छोटा था।...मेरा भाई अभय मुझसे भी करीब नौ-दस साल छोटा था। उन दिनों बुआ हमारे घर आई थी। तब मेरे लिए यह समझ पाना मुश्किल था कि बुआ हमारे घर क्यों आई थी और लंबी अवधि हमारे घर क्यों रही थी?...आज सोचता हूँ तो लगता है कि शायद माँ का शिला कटवाने के

> लिए आई होगी। मुझे आज भी याद है कि जब वह घर से गई तो काफी नाराज़ थी। हालांकि नाराजगी का कारण भी समझ में नहीं आया था लेकिन इतनी अक्ल तो आ गई थी कि समझने लगा था कि नाराज़गी किसे कहते थे। उस समय बुआ चली गई थी फिर कई साल मैंने बुआ की शक्ल नहीं देखी... (भगवा 26)

अजय शर्मा के लगभग सभी उपन्यासों में देखते हैं कि लेखक फ्लैशबेक शैली का प्रयोग किया है क्योंकि लेखक ने कई ही जगहों पर 'मेरी तंद्रा भंग हुई', 'खैर आगे' इन शब्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार उपन्यासों में मनुष्य के अवचेतन मन में चल रहे संघर्ष के कारण उत्पन्न स्थितियों का ही उदघाटन होता है। भले ही इस प्रकार के उपन्यासों का कोई निश्चित रूप न मिला हो। एकाध को छोड़कर हिन्दी में इस प्रकार के उपन्यास नहीं के बराबर हैं। 'शेखर: एक जीवनी' इस का अपवाद कहा जा सकता है क्योंकि यह उपन्यास 'जॉ क्रिस्ताफे से बहुत कुछ साम्य रखता है। जॉ क्रिस्ताफे और शेखर के चरित्र सेक्स, भय और अहं रूपी रसायन से ही निर्मित हुए हैं। शेखर की तरह बाह्य एवं आंतरिक परिस्थितियों की चपेट से घिरा हुआ है। वह भी सामाजिक रूढिगत बंधनों को काटकर फेंक देना चाहता है और उन की जगह पर कुछ नया कर दिखाना चाहता है। इस प्रकार उसके जीवन में भी इन परिस्थितियों के कारण एक अभूतपूर्व परिवर्तन आ जाता है। अज्ञेय के समय तो ऐसा कहा जा सकता था किन्तु अगर आज के समय में देखा जाए तो आज का लेखक मनोवैज्ञानिक शैली में ही लिखता है। जैसे एक आम आदमी बात करते-करते पुरानी बातों का बयौरा देने बैठ जाता है। बिल्कुल वैसे ही आज का लेखक भी लिखते-लिखते अपने पात्रों के माध्यम से अपने तजुर्बों को लिखता है और फ्लैशबेक जैसी शैली का प्रयोग करता है। अज्ञेय और अनीता देसाई तो मनोवैज्ञानिक लेखक कहे ही जा चुके हैं लेकिन अजय शर्मा की भी कोई कृति ऐसी नहीं जिसमें फ्रायड, एडलर और युंग के मनोविश्लेषण को न देखा जा सके। अगर किसी लेखक को मनोवैज्ञानिक शैली का न भी कहा जाए परन्तु वह लिखता इसी शैली के

अनुसार है क्योंकि अगर लेखक के मन मस्तिष में कोई कहानी, कोई कथा है तभी तो वह लिखने में सक्षम हो पाता है। इसलिए आज का हर लेखक चाहे वह कोई भी रचना करता है, एक मनोविश्लेषणात्मक शैली का सहारा लेकर ही रचना को आगे बढ़ाता है।

विवरणात्मक शैली

उपन्यासकार अकसर कथा के विकासक्रम की गति को बढ़ाने के लिए विवरण शैली का प्रयोग करता है। द्विवेदी तथा प्रेमचंद युगीन उपन्यासकारों की शैली अक्सर विवरण शैली ही रही। जब से युगानुरूप अभिव्यंजना की नवीन पद्धतियाँ प्रकाश में आने लगी, तो विवरण शैली पिछड़ गयी। क्षीण रूप से ही सही, वह वर्षा में जुगुनुओं की भाँति कभी-कभी अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने लगी है। अब भी विवरण शैली के उपन्यास कम मात्रा में ही सही, लिखे जाने लगे हैं। अज्ञेय ने भी 'शेखर: एक जीवनी' में एकाध जगह इस शैली का प्रयोग किया,

> उसके खेल के साथियों में एक लड़की थी-जिसका अनाम कोई नहीं जानता था- सब उसे फूल कहकर सम्बोधन करते थे। वह उसके पड़ोस में रहनेवाली एक विधवा की लड़की थी। फूला उसके सब खेलों में शामिल होती थी और खेल-ही-खेल में वे दोनों एक-दूसरे के घर में भी प्रवेश कर आते थे। उसमें बालकोचित पूर्ण स्वच्छंदता थी, किन्तु एक दिन उसे घर से आज्ञा मिली कि यदि वह पड़ोस वाले घर में चला भी जाएँ तो वहाँ कुछ खाए-पिये नहीं, कुछ भी ग्रहण न करे क्योंकि वे छोटी जात के हैं। उसने पूछा कि क्या और लोग भी उनके साथ नहीं खाते? तो उत्तर मिला, 'नहीं, अच्छी जात का कोई नहीं जाता। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 60)

> टूटी हुई दिवारों से घिरा हुआ एक छोटा-सा आँगन। उसके एक कोने में छोटा-सा बेरी का वृक्ष जिसकी छाया में एक टूटा-सा अंधा कुँआ। कुँए के

> पास पुराने ढंग की छोटी-छोटी ईटों का एक ढेर, कुछ पीले-पीले उड़कर आए हुए, पीपल के पत्ते आँगन में दाई और दीवार के बाहर एक पीपल जिसमें नीचे एक गाय बंधी है, उससे कुछ दूर एक छोटे-से मंदिर का छत्र और सिरिस के पेड़ की कुछ फुनगियों की झांकी और यह सब दोपहर की प्रशांत नीरवता में। (शेखर:एक जीवनी भाग एक 60)

'शेखर:एक जीवनी' के दूसरे भाग में विवरण शैली का अधिक प्रयोग मिलता है जहाँ उपन्यासकार कथाअक को आगे बढ़ाने के लिए इस शैली की सहायता लेता है। अजय शर्मा के लगभग सभी उपन्यासों में विवरण शैली का प्रयोग किया गया है। 'भगवा' उपन्यास में शुरू से ही दिखाई पड़ता है,

> मैं अपनी आदत के अनुसार सुबह उठकर अखाड़े जाने के लिए तैयार था। टी-शर्ट पहनते-पहनते मैंने अलमारी के बड़े आईने के सामने खड़े होकर अपने शरीर पर नज़र डाली। मुझसे फिर रहा नहीं गया, मैंने टी-शर्ट आधी ही पहनी थी कि तुरन्त उसे उतार दिया और चेस्ट को फुलाया तथा बाएं हाथ से दाएं हाथ की कलाई को कसकर पकड़ा और बाजू को अकड़ा दिया। अब आईने में शोल्डर ज्वाइंट के नीचे ट्राइसेप, बाइसेप मसल्स के कट्स अलग-अलग नज़र आने लगे थे। वैसे हम लोग देसी भाषा में ट्राइसेप मसल्स के कट्स को 'मच्छी' भी कहते हैं। यह आम कहा जाता है जब मच्छी दिखनी शुरू हो जाए तो समझो बॉडी बननी शुरू हो गई। खैर मैंने टी-शर्ट पहनी और सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आ गया।... (भगवा 17)

'नौ दिशाएं' उपन्यास में जब रजनी अपने दफतर से घर आती है यहाँ उसके घर विवरण करते हुए लेखक लिखते हैं,

> ड्यूटी से लौटी तो उसने देखा कि जेठानी सास की टांगे दबा रही थी। वह अपना पर्स अलमारी में रखकर सीधा किचन में घुस गई। उसका मन पता नहीं क्यों आज अरहर की दाल खाने को कर रहा था। उसने गैस के चूल्हे के एक तरफ अरहर की दाल रख दी और इमली निकालकर खट्टी-मीठी चटनी बनाने लगी। ये दोनों ही चीज़ें उसकी सास को बहुत पसंद थीं। वह घर से जब चली थी, तो उसने सोच लिया था कि एक बार सारी ईगो बाहर निकाल कर ज़ीरो होकर उस घर में प्रवेश करेगी।...सोचते-सोचते सीटी की आवाज़ आई तो उसने तड़के का सामान जो पहले से ही कटा पड़ा था उठाया और एक फ्राईपेन में डालकर उसे छोंककर दाल में मिला दिया। उसकी सुगंध से सारा घर महक उठा। उसके बाद उसने चावल पतीले में चढ़ा दिए। चावल बनते ही उसने चावलों से पिछ (मांड) निकालकर किसी बर्तन में डाल दी। असल में सास जब भी मंदिर जाती तो इसी से वह अपनी मलमल की साड़ी को मंडती है।... (नौं दिशाएँ 25)

'शहर पर लगी आँखें' उपन्यास में लेखक मौत की सचाई का विवरण चाचा पात्र की मौत का डॉक्टर पात्र के माध्यम से करते हुए कहते हैं,

> आज शहर की एलीट क्लास श्मशान घाट में खड़ी थी। चाचा की चिता को अग्नि दे दी गई थी। गुब्बारों के साथ चाचा के जनाजे को सजाया गया था। फुल्लियाँ, बताशे, मूंगफली एवं सौगी इत्यादि का प्रसाद बाँटा गया था। फूल-चुगने के बाद घर वालों ने उसकी थैली एक हुक पर टांग दी थी। मुझे तो उनके घर में कोई नहीं जानता था। मैंने आगे होकर उस थैली को हाथ लगा दिया। उस थैली को हाथ लगाते ही मुझे लगा जैसे थैली से आवाज़ आई हो, 'पार ब्रह्म परमेशवर' थैली को हाथ लगाने से मुझे लगा जैसे रोज की तरह, मैंने चाचा को हरिद्वार के गेट तक छोड़

> दिया है और गंगा में अब वह खुद ही चला जाएगा। (शहर पर लगी आँखें 125)

देसाई के 'जर्नी टू इथाका' उपन्यास में मैटियो के माध्यम से इसका वर्णन करती हुई कहती हैं,

> Matteo was seated cross-legged on the bare floor of a room he had rented, the door closed and the shutters lowered. He had done with the travels, the crowds, the pilgrims, the talk, the drink, the smoke, the adventures. He had had them, too, had travelled and searched them out with others, but neither seen nor experienced what others did. Bathing in a wide river along with other pilgrims on a flight of steps leading down from a temple on the sandbank, he had noticed them standing and pointing at an object swirling in the muddy water, shouting excitedly to each other, 'Baba-ji! Baba-ji!' Matteo to climb out of the water and stood on the steps, shading his eyes with his hand against the glare, trying to see what the others saw..."(Journey to Ithaca 73)

'फायर ऑन द मांउन्टेन' उपन्यास में भी विवरण शैली कई स्थान पर दिखाई पड़ती है,

> In the room next to the kitchen, still smaller but somewhat brightened by the myriad magazine and calendar pictures struck to the smoky walls, Ram Lal lay on his string cot, his limbs flung out to its four corners, his cap on his nose, lifting and falling with the low growls and sudden snorts that came and went beneath it. (Fire on the Mountain 47)

'फॉस्टिंग फीस्टिंग' के शुरू में ही दृश्य विवरण से देसाई उपन्यास को शुरू करती हैं,

> On the veranda overlooking the garden, the drive and the gate, they sit together on the creaking sofa-swing, suspended from its iron frame, dangling their legs so that the slippers on their feet hang loose. Before them, a low round table is covered with a faded cloth, embroidered in the centre with flowers. Behind them, a pedestal fan blows warm air at the backs of their heads and necks. The cane mats, which hang from the arches of the veranda to keep out the sun and dust, are rolled up now. Pigeons sit upon the rolls, conversing tenderly, picking at ticks, fluttering. Pigeon droppings splatter the stone tiles below and feathers float torpidly through the air. (Fasting Feasting 3)

'फॉस्टिंग फीस्टिंग' उपन्यास में उमा के घर में जब उसके भाई का जन्म होता है तब का दृश्य देसाई विवरण करती हुई कहती हैं कि,

> It was that time of day when the cook had closed up his kitchen and gone off to his quarters behind the guava trees to stretch out on his string bed and sleep till teatime, Muma and the baby were both silent in the dark, shuttered bedroom, and the girls left to themselves under the revolving fan, on the stripped-down beds of the room they shared, for the time being, with Muma's elderly cousin who still around to help. The elderly cousin was beyond the need for sleep- she thought it an indulgence of the young-and coaxed the girls into playing a game of cards. They sat cross-legged on the bed, slapping down the cards in a desultory way, now and then letting out an exclamation of disgust or triumph and leaning forward to gather up their gains. (Fasting Feasting 24)

पत्रात्मक शैली

अज्ञेय के उपन्यासों में प्रयुक्त और एक विशिष्ट शैली है-पत्रात्मक शैली। यह आत्मकथात्मक शैली का निकटतम रूप ही है। इस प्रकार की शैली में सम्पूर्ण वस्तुविधान, घटना-व्यापार और चरित्र-चित्रण के विकास क्रम को पात्रों की मनः स्थिति को सही ढंग से समझने में सहायता मिलती है। वैसे तो अज्ञेय मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के लिए पत्रात्मक शैली का प्रयोग अपरिहार्य हो जाता है। 'शेखर : एक जीवनी' में घटना व्यपार पात्रों की मनः स्थिति तथा चारित्रिक विशेषताएँ पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत की गयी। शशि की शादी का प्रसंग, मौसी विद्यावति तथा पिता का शेखर के पास आना, मौसी का शेखर को किताबें भेजना आदि स्थलों पर इस प्रकार की शैली का प्रयोग मिलता है,

> शेखर को एक पत्र मिला।...फिर वह भूखी आँखों से पत्र निगलने लगा...'शशि का विवाह हो रहा था। वर का चुनाव हो गया था, आषाढ़ में तिथि भी नियत हो गयी थी और शशि नहीं चाहती थी विवाह...अब शेखर बाहर होता तो वह उसकी सहायता माँगती बातचीत को स्थगित करने में, पर वह जेल में है...। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 65)

अब की बार शशि का पत्र छोटा था। शेखर से सहमत थी कि जीवन में हर एक को अपना मार्ग स्वयं खोजना होता है,

> तुम ने लिखा है निर्णय मेरा है, पर उसका आदर करना तुम्हारा कर्तव्य है, तुम ने लिखा है कि एक निश्चय में मुहे तुमहारा आंतरिक आशीर्वाद...मैंने माँ से कह दिया है कि मुझे इस मामले में किसी तरह की कोई दिलचस्पी नहीं है, उन की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 74)

'शेखर: एक जीवनी' जो पत्रात्मक शैली का नमूना है, उस में पत्रात्मक शैली के विविश रूप मिलते हैं। 'नदी के द्वीप' में प्रयुक्त पत्रात्मक शैली का पहला रूप वह है जहाँ एक पात्र दूसरे पात्र को पत्र लिखता है। लेकिन पत्र को सीधे उसके नाम पर न भेज कर उससे सम्बन्धित व्यक्ति के नाम पर भेज दिया जाता है। फिर वह व्यक्ति अपने पत्र के साथ उस पत्र को सही पात्र के पास भेजवाने की व्यवस्था करता है। जैसे भुवन और रेखा के पत्र को लिया जा सकता है। रेखा भुवन को पत्र लिखती है लेकिन भेजती चन्द्रमाध्व के पते पर। चन्द्रमाध्व उस पत्र के साथ और एक पत्र को लिखकर भुवन के नाम पर भेजवाता है। इस उपन्यास में प्रयुक्त पत्रात्मक शैली का दूसरा रूप है। उपन्यास के सभी पात्र आपस में पत्र व्यवहार करते रहते हैं। पत्रात्मक शैली का तीसरा रूप वह होता है जहाँ पात्र तो पत्र लिखता है लेकिन भेजता नहीं, स्वयं उसे नष्ट कर देता है। इस उपन्यास में पत्रात्मक शैली की अंतिम परिणति इसी में होती है तथा भुवन गौरा को पत्र लिखता है लेकिन भेजता नहीं। अंत में उसे फाड़ डालता है और सोचता है कि गौरा को अपने कुशल समाचार का और पत्र लिख देगा। वह पत्र में गौरा को क्या लिखेगा? गौरा से क्या पूछेगा? लिखने की इसी लाचारी की स्थिति में उपन्यास समाप्त होता है। 'नदी के द्वीप' में पत्रात्मकता शैली के विकसित रूप को यों देख सकते हैं। रेखा गर्भवती है, उसे अपने पहले पति हेमेन्द्र का पत्र मिलता है साथ में चन्द्रमाध्व का पत्र भी संलगन है। वे रेखा को कब मिले? पत्रों का क्या सारांश है? कुछ भी मालूम नहीं। रेखा डॉक्टर के पास जाकर गर्भपात करा लेती है। भुवन के पूछने पर रेखा इन दोनों पत्रों का प्रस्ताव लाती है। भुवन पत्रों को पढ़ता नहीं। अपनी भावी संतान के प्रति भुवन और रेखा के जो स्वप्न थे, वे सब टूट गये। यह उन पत्रों की प्रतिक्रिया का परिणाम ही है, जहाँ रेखा कहती है, "तुम्हारा सिर मुझे, यह नहीं चाहती थी- किसी के आगे नहीं और उस राक्षस के आगे।" (नदी के द्वीप 224) इससे यह ज्ञात होता है कि यह सब हेमेन्द्र के पत्र की प्रतिक्रिया ही है जहाँ भुवन को अपमानित किया गया। उपन्यास में कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहाँ पत्र और पात्र प्रत्यक्षतः सामने नहीं आते लेकिन उनके प्रभाव से घटनाएँ घटित होती हैं और उपन्यास के कथा विकास को प्राप्त है। समग्रतः यही कहा

जा सकता है कि पत्रात्मक शैली के द्वारा पात्रों का उत्थान-पतन, घात-प्रतिघात, उत्कर्ष-अपकर्ष, अंततः उनकी मानसिक स्थिति को सही ढंग से समझा का सकता है। अभिव्यंजना की यह नयी पद्धति उपन्यासकार की प्रयोगधर्मिता का प्रमाण है। देसाई के 'फॉस्टिंग फीस्टिंग' उपन्यास के शुरू में पत्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है,

> But you told me to do up the parcel so it's ready when Justice Dutt's son comes to take it. I'm trying it up now. Yes, yes, yes make up the parcel- must be ready, must be ready when Justice Dutt's son comes. What are we sending Arun? What are we sending him? ...Tea. Shawl...Yes, must be sweets. Then come back and take dictation. Take down a letter for Arun. Justice Dutt's son can take it with him. When is he leaving for America? ...Now you want me to write a letter? When I am busy packing a parcel for Arun? ...Oh, oh, oh, parcel for Arun. Yes, yes, make up the parcel. Must be ready. Ready for Justice Dutt's son. (Fasting Feasting 4)

अजय शर्मा के उपन्यासों में पत्रात्मकता तो शायद ही कहीं दिखाई दे किन्तु एक संपादक होने के नाते लेखक के हर उपन्यास में अखबार से जुड़ी कोई न कोई बात जरूर आ ही जाती है। 'अकाश का सच' उपन्यास तो पूर्णतः ही पत्रकारिता पर अधारित है। लगभग सभी उपन्यासों में लेखक ने अपनी लेखनी और तजुर्बों को दिखाया है। 'शहर पर लगी आँखें' उपन्यास में पात्र अकाश के माध्यम से कहते हैं,

> शाम को मैं प्रेस क्लब में पहुँच गया था। वहाँ पर जाकर देखा तो पत्रकारों की भीड़ जमा थी। अचानक मेरी निगाह अपने साहित्यिक दोस्त जसपाल सिंह पर पड़ी। नज़रें मिलते ही वह मेरे पास आ गया और कहने लगा, 'यह कॉन्फ्रेंस उन्हीं की संस्था करवा रही है। इंग्लैंड से दो दोस्त आए हुए हैं, जो सारा खर्चा उठाएंगे। बाद में मुझसे मिलकर

> जाना। मैं आपको उनसे मिलवाऊंगा।' कहकर वह अपने काम में व्यस्त हो गया। (अकाश का सच 139)

लेखक का 'कागद कलम न लिखणहार' उपन्यास भी पत्रकारिता से प्रभावित ही उपन्यास है जिसमें ऐसा लगता है कि लेखक ने अपने पत्रकारिता के तजुर्बे को ही उतारा हो। इसी में बताते हुए लेखक कहते हैं,

> ...कुछ नहीं सर, मुझे इस बात की भनक पहले ही थी। क्योंकि तुर्रम खान ने पूरे शहर में यह प्रचार कर दिया था कि मैंने संस्थान के खिलाफ उपन्यास लिखा है। उड़ती-उड़ती यह खबर मेरे कानों में पड़ गई थी। और मैं भी इस काम के लिए तैयार था। मैंने अपनी जेब से इस्तीफा निकाला और उसके टेबल पर रखकर उसके केबिन से बाहर निकल आया और अब आपके सामने बैठा हूँ।...कोई बात नहीं यह तो ज़िन्दगी का एक हिस्सा है। सच की कीमत चुकानी ही पड़ती है। लेखक वही है जो हमेशा इसकी कीमत चुकाता रहता है। वैसे भी वाणी में लिखा है 'करे करावे आपे आप, मानस के कछु नांहि हाथ'... (कागद कलम न लिखणहार 22)

इस उपन्यास में आगे लगभग 'अकाश का सच' उपन्यास की तरह पत्रकारिता ही दिखाई पड़ती है। यहाँ लेखक ने अकाश पात्र के माध्यम से एक नए लेखक और एक सिस्टम के खिलाफ लिखे हुए शब्दों का मोल चुकाता हुआ दिखाया है।

दृश्य-विधान तथा कथा-काल विपर्यय शैली

दृश्य विधान शैली में कथानक के मार्मिक प्रसंगों को दृश्य के रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है और उपन्यासकार की दृष्टि भावाभिव्यंजना पर केन्द्रित रहती है। यह दृश्यविधान शैली अज्ञेय के उपन्यासों की एक विशिष्ट प्रकार की शैली है जिसके द्वारा पात्र और चरित्र चित्रण का अंतर बाह्य स्वरूप प्रकाश में आता है। शेखर एक जीवनी उपन्यास में जैसे,

> मोतियों की माला टूट गयी हो और बिखरे मोतियों को फिर बेतरतीब लड़ी में पिरो दिया जाए, उसकी तरह मेरी स्मृतियों की तरकीब उलझ-सी गयी है। इसी दृश्य के साथ मुझे दीखता है एक और दृश्य जिसमें पात्र भी वहीं है, उपकरण भी वहीं है, पर जिसकी आंतरिक प्रेरणा बिल्कुल विभिन्न है। वह दृश्य की दृष्टि से बिल्कुल साथ है, किन्तु मेरे जीवन के प्रवाह में ऐसा जान पड़ता है कि उस का इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं और यदि कोई है भी तो यही कि ये दोनों दृश्य दो अत्यंत विभिन्न भावनाओं के समकालीन विकास के चिह्न है। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 10)

दृश्यविधान का और एक उदाहरण वहाँ स्पष्ट होता है जब शेखर के मन मस्तिष्क में बचपन की घटनाएँ चित्रपट की भाँति बदलती रहती हैं,

> ये सब जन्म के समय की बातें, स्वयं उसके अपने मस्तिष्क के अनुलेख तो शायद नहीं नहीं किन्तु यह नहीं कह सकता कि ये उसने कहाँ से पाये, कैसे पाये, पाये भी या नहीं क्योंकि ये शायद असंख्य विभिन्न मौकों पर विभिन्न असम्बद्ध वाक्यों को सुनकर, टूटी-फूटी मुद्राओं को देखकर, टूटे-फूटे अव्यक्त विचारों को किसी प्रगाढ़ अंतः शक्ति से भाँप कर एकत्रित किए हुए मनश्चित्रों का पुँज है...कभी-कभी वह स्वयं सोचता है, तब उसे इसका कोई समुचित उत्तर नहीं मिलता। ये सब चित्र सुनी हुई बातों का फल है, या उसकी अपनी स्मृति के या उसने सोचते-सोचते ही आत्म-सम्मोहन की शक्ति से अपने को विश्वास दिला दिया है कि उसने ये दृश्य देखे, ये अनुभव प्राप्त किए?...यह प्रश्न अब भी प्रश्न ही है और प्रश्न ही रहेगा। पर वे चित्र और वे दृश्य उसके लिए वास्तविक हैं, वह उनका सब भी अनुभव कर सकता है। (शेखर: एक जीवनी भाग एक 35)

जहाँ दृश्यविधान शैली में दृश्यों और घटनाओं की भरमार ही भरमार होती है वहाँ कालविपर्यय शैली में उन दृश्यों तथा घटनाओं का कोई कालक्रम स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई पड़ता। एक दृश्य का दूसरे दृश्य से, एक घटना का दूसरी घटना से कोई ताल-मेल नहीं बैठता। इस प्रकार की शैली में महत्त्वपूर्ण दृश्य और घटनाएँ चमकते रहते हैं तथा दुर्बल कमजोर और महत्त्वहीन होती हैं। वे पिछड़ जाते हैं,

> किन्तु मैं देखता हूँ कि तीव्रतम अनुभूति की ये घटनाएँ न तो स्मृतिपट पर मिटती हैं और न पत्थर पर लिखे हुए इतिहास की तरह नित्य और अचल हैं। देखता हूँ कि कुछ दृश्य हैं जो बिजली की कौंध की तरह जगमग है, कुछ और हैं जो बुझ गए हैं और घटना के अनुक्रम का धागा तोड़ गए हैं, तोड़ हई नहीं, उलझा भी गए हैं, जिसमें मैं उन ज्वलंत घटनाओं को भी ठीक कालक्रम से नहीं कह सकता कि क्या पहले हुआ, क्या पीछे हुआ, इतना ही कह सकता हूँ कि यह सब अवश्य हुआ और इसमें यह ध्वनित नहीं है कि केवल इतना ही हुआ था कि इस क्रम से हुआ। (शेखर: एक जीवनी भाग दो 183)

इस प्रकार अज्ञेय के उपन्यासों में प्रयुक्त दृश्यविधान तथा कालविपर्यय शैली आधुनिक जीवन की विसंगति-विद्रूपता तथा विडम्बना का परिणाम है, जहाँ मनुष्य जीने की कोशिश मात्र करता है लेकिन जीता नहीं। जीने के लिए दृढ़ विचार, दृढ़ चित्त और दृढ़ इच्छाशक्ति की जरूरत है। जो आधुनिक जीवन में कम या नहीं के बराबर है या यों कहिए ये सब लुप्त हो गये। अजय शर्मा के 'भगवा' उपन्यास में दृश्यविधान का वर्णन वहाँ दिखाई पड़ता है जब अकाश पात्र के माता-पिता की मृत्यु होती है,

> ...मेरी नज़र पेशाब की लटकती हुई थैली पर पड़ी। मैंने एक निगाह ग्लूकोज की तरफ भी फेंकी। मुझे लगा कि ग्लूकोज चलते-चलते बंद हो गया है। मैंने जल्दी से बापू का हाथ अपने हाथ में पकड़ा और नब्ज़ टटोलने लगा। परेशानी में कभी मुझे लगता कि नब्ज़ चल रही है और

> कभी लगता कि नब्ज़ बंद हो चुकी है। नब्ज़ टटोलने के लिए मैं बड़ी तेज़ी से अपनी अँगुलियाँ बापू की कलाई पर चला रहा था और बापू के चेहरे को बड़े गौर से देख रहा था। मुझे लगा कि बापू के होंठ धीरे से हिले हैं और उनके मुँह से ओम निकला। पता नहीं क्यों मुझे लगा कि मैं बापू की कही हुई बात समझ गया हूँ और जल्दी से बोलना शुरू कर देता हूँ...'ओम भू र्भुव स्वः...तत सवि तुर वरे नि यं...भर गो दे व स्य धी म हि...धि यो यो नः प्रचो..द यात'...धीरे-धीरे मुझे लगा कि बापू का शरीर ठंडा हो गया है। नब्ज़ जो कुछ समय पहले ही बड़ी हल्की-सी चल रही महसूस हो रही थी, अचानक रुक गई थी। मैंने बापू के चेहरे की तरफ देखा तो चेहरा एकदम शाँत था और आँखें खुली हुई थीं लेकिन आज भू मेरी हिम्मत नहीं हुई कि मैं अपने बापू की आँखों में आँखें डालकर देख सकूँ। बापू की कलाई मेरे हाथ से छूट गई और मैंने अपने हाथ से बापू की आँखों की पुतलियों को बंद कर दिया और उस खाट से जल्दी से उठा और बापू को वहीं पड़ी भगवा चादर से ढंक दिया। ढंकते-ढंकते मैंने माँ की तरफ देखा और मेरी आँखों से आँसुओं का सैलाब निकल पड़ा और मैं माँ के गले से लग गया। जैसे ही मैं माँ के गले लगा तो माँ और पत्नी की चीत्कार ने पूरे वातावरण को चीर दिया था। (भगवा 67)

उपन्यास के अंत में लेखक ने अकाश पात्र की माता की मृत्यु के दृश्य को दर्शाते हुए लिखते हैं,

> ...एक दिन अचानक माँ घर के बाहर रेंगते हुए आ पहुँची थी। माँ तो जैसे हड्डियों का पिंजर ही बन चुकी थी। मैंने माँ को अंदर ले जाकर बिस्तर पर लिटा दिया। उमस वाली गर्मी से बुरा हाल था। माँ को लगातार पसीना आ रहा था। मैंने जल्दी से ए.सी आन कर दिया। पत्नी

और बच्चे भी जग गए थे और माँ के आसपास बैठ गए थे। इस बीच मैंने छोटे बेटे को उसके चाचा-चाची को बुलाने के लिए भेज दिया था। छोटे की पत्नी जल्दी से आ गई थी और हैरान थी। उसने बताया कि अक्सर तो गेट बंद ही रहता है। असल में यह सैर करने गए तो गेट खुला रह गया होगा। इस बीच माँ को शायद कुछ राहत मिली थी क्योंकि माँ ने आँखें खोली थीं। माँ ने आँखें खोलीं तो वह मेरी तरफ ही देख रही थी। पता नहीं यह सच था या मात्र मेरा वहम। मुझे तो यह भी अग रहा था कि माँ की आँखों में आज भी कुछ है जो मुझे कुछ कहना चाहती थी लेकिन वह कह नहीं पाई। मुझे पता नहीं क्यों ऐसा लग रहा था कि बापू के जाने के बाद माँ कभी हमारे घर में आकर नहीं सोई थी। कई बार बच्चों ने बहुत कहा लेकिन माँ फिर भी नहीं मानी थी। पता नहीं मुझे क्यों लगने लगा कि जिस बात को माँ सारी ज़िन्दगी नहीं कर पाई और शायद जिसे करने के लिए उसके अंदर न जाने कितनी ही लड़ाइयाँ चलती रही हों, लेकिन आज शायद हर लड़ाई का अंत हो गया हो। आज शायद वह हर रोग से मुक्त हो गई हो। वह भले ही मानसिक हो या शारीरिक। शायद इसलिए तो वह बीमार होते हुए भी सब कुछ लाँघ आई थी और यहाँ पहुँच गई थी। मुझे ऐसा लग रहा था कि माँ रोग मुक्त हो गई है। ऐसा लगता था कि उसके अवचेतन में एक बात हमेशा घर किए रही, शायद उसकी आँखों में दीवार को तोड़ने के ही प्रश्न तैरते हों लेकिन कभी तोड़ने की हिम्मत नहीं कर पाई। पता नहीं वह कौन-सी बात थी जो उसे ऐसा करने पर रोकती रही। अभी मैंसोच ही रहा था कि माँ ने धीरे से कहा 'ओम' ओम कहते माँ की गर्दन एक तरफ लुढ़क गई। लेकिन माँ का हाथ हल्का-सा हवा में लहराया और मुझे लगा कि माँ मुझे आशीर्वाद देना चाहती हो और कहना चाहती हो कि आते का मुँह देखूँ जाते की पीठ। खैर, मैंने माँ की नब्ज़ देखी तो मैं

> समझ गया कि माँ अब नहीं रही लेकिन फिर भी मुझे यकीन नहीं आ रहा था...। (भगवा 135)

किसी वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट करने, किसी विसंगति का खंडन करने, मूल्यों की प्रतिष्ठा का आग्रह करने, युगीन माँग के अनुरूप अपनी रचनाओं द्वारा लोगों में चेतना जागृत करने अथवा किसी समस्या के समाधान को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से अभिप्रेरित होकर प्रत्येक रचनाकार साहित्य का सृजन करता है। अज्ञेय के उपन्यास सोद्देश्यपूर्ण हैं। अज्ञेय के प्रथम उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी' का उद्देश्य व्यक्ति स्वतंत्रय की खोज करना है। अज्ञेय का कथन है कि, "शेखर की खोज अन्ततोगत्वा स्वातंत्र्य की खोज है।" (आत्मनेपद 66) सामाजिक स्थितियों की यथार्थता को स्वीकार करने तथा सामाजिक दबाव के नेपथ्य में व्यक्ति की स्वतंत्रता की खोज करने के उद्देशय को लेकर इस उपन्यास की रचन की गयी है।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई एक उपन्यासकार के रूप में

प्रेमचंद के बाद हिन्दी उपन्यास को नई दिशा देने वाले लेखकों में अज्ञेय का नाम काफी प्रसिद्ध है। उनके कृतित्व का मूल्यांकन उतना ही विवादास्पद है। उनके तीनों उपन्यासों ने साहित्यिक वातावरण को बदल दिया। यद्यपि अज्ञेय ने कविता को ही अधिक प्रयुक्त माना है। परन्तु लेखक के रूप में उनको मान्यता अपने प्रथम उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' 1940 से ही प्राप्त हुई, जिनके प्रकाशित होने पर नेमीचन्द्र जैन के शब्दों में कि एक सर्वथा नवीन साहित्यिक स्तर की उपलब्धि का भाव समान भाव से हिन्दी के पाठक और समालोचक को हुआ था, और समूचा साहित्यिक वातावरण नए आन्दोलन से संपादित हो उठा था।

'शेखर: एक जीवनी' मूल संवेदना से ही जुड़ा हुआ है। 'नदी के द्वीप' में भी अज्ञेय ने एक विशेष लेखक क्षमता का परिचय किया, लेकिन वहीं 'अपने अपने अजनबी' सर्वथा नई कृति के रूप में सामने आया। तीनों उपन्यासों की कटु आलोचनाएँ

हुई है। 'शेखर: एक जीवनी' एक लम्बे समय तक चर्चित एवं विवादास्पद उपन्यास रहा है। अज्ञेय शेखर के माध्यम से हिन्दी उपन्यास जगत में प्रवेश करते है। 'शेखर: एक जीवनी हिन्दी कथा साहित्य में अनेक नई सम्भावनाओं को लेकर आया। उसका महत्व सम्भावनाओं के रूप में ही अधिक है। अज्ञेय मूलतः प्रयोगवादी साहित्यकार है, उन्होंने अपनी समस्त रचनाओं में नए प्रयोग किए हैं। 'शेखर: एक जीवनी' का कथानक प्रेमचंद कालीन उपन्यास से बिल्कुल भिन्न है। उपन्यास का कथानक सुनियोजित नहीं है, वरन विभिन्न दिशा गतियों का विश्लेषण है। जो उपन्यास की कथा को कथानक का रूप प्रदान करता है। इस उपन्यास के कथानक को शेखर के बाल्यकाल से प्रारम्भ करके उसके जीवन पर्यन्त के कतिपय प्रमुख एवं आकर्षक चित्रों द्वारा सुसज्जित किया गया है। शेखर के शैशवकालीन चित्रण में अनेक घटनाओं को अज्ञेय ने अपने जीवन से चुना है। वस्तुतः शेखर: एक जीवनी एक प्राणवान क्रान्तिकारी की अपनी जीवन यात्रा के अंतिम पड़ाव की स्थिती फाँसी की घटना में अपने विगत जीवन का प्रत्यावलोकन है।

अज्ञेय की औपन्यासिक प्रतिभा का ज्वलंत प्रतीक 'शेखर: एक जीवनी' के प्रथम भाग का प्रकाशन सन 1940 में तथा द्वितीय भाग का प्रकाशन सन 1944 में हुआ था। 'शेखर: एक जीवनी' उपन्यास में शेखर नामक व्यक्ति के बौद्धिक मानसिक संघर्ष की कहानी है, जिसके पीछे राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि है यह उपन्यास चरित्र प्रधान उपन्यास है। इसमें शेखर के पिता को छोड़कर सम्पूर्ण उपन्यास में नारी पात्र ही अधिक है। नारी पात्रों मे कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी है, जो शेखर के चरित्र के विकास में निर्णायक भी बनती है। बचपन की अनेक छोटी-मोटी जिज्ञासाएँ बड़े होकर विद्रोह का कारण बनती है। 'शेखर: एक जीवनी' के द्वितीय भाग की कथा युवान शेखर की कथा है, जिसमें उसका क्रान्तिकारी एवं विद्रोही रूप मुखरित हुआ है। शेखर को जेल जाना पड़ता है और अनेक महान व्यक्तियों से उसकी मुलाकात होती है। शशि का रामेश्वर के साथ विवाह और बाद में शशि शेखर के जीवन पर संदेह की स्थिति में रामेश्वर द्वारा शशि का परित्याग कर देने पर उसका शेखर के साथ रहना आदि कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ है। 'शेखर : एक जीवनी' का कथानक शेखर का आत्म-विश्लेषण ही है। इसके

कथानक की भौतिकता तथा महत्व 'शिशु' एवं बाल मानस की सूक्ष्म तरंगों, कौतुहल, जिज्ञासाओं, सहज प्रवृतियों और माँ-बाप, शिक्षक आदि के अमनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहार से उत्पन्न विकारों के सूक्ष्म विश्लेषणों के कारण है। 'शेखर: जीवनी' का कथानक स्मृति-प्रधान होने के कारण बिखरी हुई स्थिति में है।

अज्ञेय का द्वितीय उपन्यास 'नदी के द्वीप' मूलतः चार संवेदनाओं का रूप है। उसमें कथात्मक एकता के लिए विभिन्न पात्रों के पारस्परिक पत्र-व्यवहार द्वारा तथा अंतरालो को आश्र लिया गया है। उपन्यास में अज्ञेय का दृष्टिकोण व्यक्ति और समाज, संघर्षो से हटकर नैतिक समस्याओं तथा प्रेमकथाओं तक सीमित हो गया है। 'नदी के द्वीप' एक प्रेम प्रधान उपन्यास है। आंतरिक संगठन की पूर्ण प्राप्ति कलात्मक साधनों द्वारा प्रयास मात्र है। 'नदी के द्वीप' सन 1951 में प्रकाशित हुआ था। कथा का प्रारम्भ रेखा को लेकर होता है। 'शेखर: एक जीवनी' के कथानक का बिखराव 'नदी के द्वीप' में आकर सुगठित हो गया। इस उपन्यास का अभिव्यंजन पक्ष अत्यन्त प्रबल है। इसमें 'शेखर: एक जीवनी' जैसा जीवन दर्शन नहीं मिलता, लेकिन शिल्प की प्रौढ़ता से इसे हिन्दी उपन्यासों में अद्वितिय भी माना गया है। डॉक्टर भुवन के कुछ प्रणय प्रसंगों के अनुसार इस उपन्यास के कथानक का विकास पात्रों के चरित्र विकास पर आधारित नहीं है। इस उपन्यास के सभी पात्र पूर्ण विकसित है। अतः इसका कथानक विस्तृत केनवास पर अंकित किए जाने वाले मानव-जीवन का एक सीमित ढंग से डिटेल है। इसके कथानक के कुछ दोष भी है, विभिन्न अंतरालो के कारण सम्पूर्ण उपन्यास अनेक कहानियों का संग्रह प्रतीत होता है। अतः 'नदी के द्वीप' उपन्यास भी अज्ञेय का महत्वपूर्ण उपन्यास माना गया है। यह अज्ञेय का तीसरा एवं अंतिम उपन्यास है। इसमें आधुनिक उपन्यासों की विशेषता कथानक की परिसीमितता का निर्वाह कुशलता से हुआ है। अज्ञेय के इस उपन्यास में भी वैयक्तिकता, विशिष्टता, प्रायोगिक भव्यता का उद्घाटन हुआ है। यह प्रतीकात्मक तथा अज्ञेय का प्रथम दुखांत उपन्यास है। 'अपने अपने अजनबी' अज्ञेय का प्रथम आधुनिकतावादी उपन्यास है। 'अपने अपने अजनबी' के माध्यम से अज्ञेय की नई रचना पद्धति का प्रारम्भ होता है। इस उपन्यास में पूर्व और

पश्चिम की मृत्यु सम्बंधी मान्यताओं का खंडन-मंडन हुआ है। 'अपने अपने अजनबी' अज्ञेय का अंतिम उपन्यास है, जिसका प्रकाशन सन 1961 में हुआ था। अज्ञेय के इस उपन्यास में प्रेमचंदोत्तर युगीन उपन्यासों के कथानक की परिसीमित्ता का सफल दिग्दर्शन हुआ है। इस उपन्यास का कथानक संक्षिप्त होते हुए भी गहन व्यापकता से युक्त है। मृत्यु के इस तृतीय उपन्यास की कथा अत्यंत संक्षिप्त है। इसका कथानक तीन खण्डों में विभक्त है- योके और सेल्मा, सेल्मा और योके। तीनों खण्डों में दो स्त्रियों की अंतर्द्वद्धात्मक स्थिति का चित्रण है। वृद्धा सेल्मा और तरुणी योके हिमाच्छादित पर्वत की अधित्यका में बने एक काठ घर में दो महीने की लम्बी अवधि के लिए बंद हो जाती है। योके तरुणी है और सेल्मा वृद्ध होने के साथ-साथ केंसर से पीड़ित महिला है ये दोनों न चाहते हुए भी एक साथ समय व्यतीत करने के लिए बाध्य है। उपन्यास के दूसरे खण्ड में सेल्मा के पुर्व जीवन के जीवनांत का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। योके और सेल्मा के अतिरिक्त इस उपन्यास में यान एकोलोक, पाल फिटोग्राफर और जगन्नाथ आदि कुछ गौण पात्र भी है। यह उपन्यास दुखांत होकर भी जीवन के प्रेम की भावना को व्यक्त करने वाला उपन्यास है। 'अपने अपने अजनबी' का कथानक पर्याप्त क्षीण है। औए कथा क्षीणता का कारण उपन्यास की चरित्र-प्रधानता, विचार बहलता तथा वातावरण परिसीमा एवं घटनाओं की सीमितता है। उपन्यासकार का लक्ष्य घटनाओं के चमत्कार से पाठकों को आकृष्ट करना ही नहीं, बल्कि पात्रों के चरित्र से पाठकों को प्रभावित करना है। उपन्यास का पहला खण्ड मृत्यु से सम्बन्धित विचार होने के कारण नीरस है। किन्तु दूसरे खण्ड की कथा नाटकीय एवं रोचक है। इस खण्ड की कथा को पहले और दूसरे खण्ड की कथा से जोड़ने वाली कोई कड़ी नहीं है और पाठको को स्वयं बीच की कड़ी का पता लगाना पड़ता है। योके की मृत्यु को छोड़कर मार्मिक स्थलों का अभाव है।

डॉ. अजय शर्मा उपन्यासकार के रूप में

हिन्दी साहित्य में डॉ. शर्मा ने अपना पहला कदम 'चेहरा और परछाईं' उपन्यास के रूप में रखा जो कि एक प्रसिद्ध उपन्यास माना जाता है। यह लेखक की

मानसिकता और कुछ करने की चाह को उजागर करता हुआ एक भावी उपन्यास है। इसकी कथा के माध्यम से लेखक उन माँ-बाप को भी सम्बोधित करते हैं जो अपने बच्चों को अपनी इच्छा से नही बल्कि जबदस्ती से डॉक्टर या इंजीनियर बनाना चाहते है। इसी जबरदस्ती के कारण न बच्चा अपना मन रख पाता है और न ही माँ-बाप का। इसी मानसिक उतेजना के कारण वह घर छोड़कर मुम्बई चला जाता है। माँ-बाप के मरने उपरांत एक दिखावा मात्र करने के लिए चला आता है। लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से यह भी दिखाया है कि व्यक्ति अपने करियर से ज्यादा किसी रिश्ते-नाते,संस्कृति सभ्यता माँ-बाप किसी को महत्व नहीं देता। 'खुली हुई खिड़की' एक प्राणवायु है। जीवन की कशमकश में बने रहने के लिए सामाजिक माहौल को दर्शाता यह उपन्यास डॉ. शर्मा ने बड़े ही मार्मिक और सजीदगी से संवारा है। उपन्यास के केन्द्र में एक नारी है, जिसका पति शादी की पन्द्रहवीं वर्षगाँठ के बाद अपनी नौका को अकेले चलाने के लिए छोड़ जाता है। वैसे तो यह परिवार भरा-पूरा है, लेकिन एक-एक करके जब ज़िन्दगी की सच्चाईयाँ उसके सामने प्रक्ट होती है, तब वह स्वयं को अकेला पाती है। जसलीन और चिन्टु उसके दो अबोद बच्चे अवश्य ही उसके एकांत के सहभागी हैं, लेकिन इन बच्चों के भविष्य को संवारने की ज़िम्मेदारी भी तो उसी की है। यही से शुरू होती है जीवन के खिलाफा उस नारी की समर-गाथा। वास्तव में यह उपन्यास एक औरत की अथक समर-गाथा ही तो है जिसमें एक औरत की विभीषिका और अस्मिता एक साथ एक प्रामाणिक अनुभव की तरह दर्ज हुई हैं।

'आकाश का सच' उपन्यास पत्रकारिता जगत के यथार्थ की तस्वीर को पेश करता है। यह हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र की वह उलझन भरी कहानी है, जिसमें हिन्दी अखबार सहकारी हिन्दी-पंजाबी, हिन्दी-गुजराती, हिन्दी-मराठी क्षेत्रों में कदम रख रहें है और हिन्दी को संकीर्ण प्रांतीय तथा संकुचित खोल से बाहर निकालने के लिए अर्थात उपभोक्ता संस्कृति में हिन्दी साहित्य समाचार के बहाने अपने अखबार की बिक्री बढ़ा रहा है। उपन्यास का नायक डॉक्टर पुरी अपनी डॉक्टरी छोड़ पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश करता है और अखबार के दफ्तर के धुरे पर ही समाज में युवा पीढ़ी के आदर्श

और अधः पतन के बीच गहरे आत्म संघर्षों को छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से उठाता है। एक अन्य पात्र साहित्यकार प्रीतम सिंह ढिल्लों ने जिस तरह बताया है कि कैसे साहसी और आदर्शवादी पत्रकार मालिकों की अंगुलियों की कठपुतली बनकर रह गये। यह आज की पत्रकारिता को ध्यान में लेकर लिखा गया उपन्यास है।

'बसरा की गलियां' उपन्यास पहले लिखे गए उपन्यासों से भिन्नता रखता है। एक भारतीय डॉक्टर है जो देखादेखी रोजगार के सिलसिले में इराक जा पहुँचता है। वहाँ कम्पनी में कार्य करती कुलीग बुशरा की तरफ आकर्षित होता है। न चाहते हुए जबरदस्ती बुशरा से निकाह करवाना पड़ता है, इस्लाम धर्म कबूल कर, नाम बदल कर। फिर परिस्थितियां उसे अमेरिकन फौज में पहुंचा देती हैं। वहाँ ट्रांस्लेटर रहकर, घुटन भरे महौल से तंग आकर आज़ादी हासिल करता है। पुनः बुशरा के पास पहुंचता है, लेकिन वह उसे ठुकरा देती है। अन्ततः वह भारत वापिस लौट आता है और आत्मिक शांति हेतु हरिद्वार पहुंच जाता है। जहां वह मुस्लिम और क्रिश्चिन चोला उतार फैंकता है। इस यात्रा के दौरान डॉक्टर पात्र को जबरदस्ती खतना करके मुसलमान बनाने, इराकी संस्कृति, साम्प्रदायिकता एवं राजनीतिक वातावरण का चित्रण, युद्ध की भयावहता, अमरीका की बदला नीति, दादागिरी के ढंग से तेल पर कब्जा, विरोधी स्वर उठाने वाले पर मनमाने ढंग से हमला कर नेस्तनाबूद कर देना, अमरीकी फौज का व्यवहार, कार्यशैली, रणनीति, इराकियों के मनों में अँग्रेजों के खिलाफ भरी नफरत, आदि का चित्रण बहुत ही सधे हुए मार्मिक ढंग से हुआ है। 'काल कथा' जैसे शरीर में रक्त प्रवाह सहज होते हुए भी कलात्मक होता है, उसी प्रकार उपन्यास की स्थूल काया के नीचे प्रवाहित होने वाली विचार-विपथियां भी कलात्मक आस्वाद के कारण ही पाठक को बांधे रखती हैं। 'काल कथा' उपन्यास भी इसी दिशा में एक रोचक प्रयास है। भूत, वर्तमान और भविष्य में झूलते-फंसते मात्र जीवन के अर्थ को खोलने का प्रयत्न करते हैं। उपन्यास के अंतिम पृष्ठों में डॉ. आकाश इन अर्थों को और अधिक खोल देता है, जिससे यह भ्रम उत्पन्न होता है कि शयद वज़ीर चन्द, उसकी पत्नी एवं सुनीता अपने चित्राकण के माध्यम से यही बात पूरी तरह से कहने में सक्ष्म नहीं रहे हैं, जबकि

वस्तुतः उपन्यास में पसरी रहस्यात्मकता, पात्रों की संकेतात्मक टिप्पणियां एवं व्यंग्य अनकहे को भी कहे हुए का रूप प्रदान करते है।

'शहर पर लगी आँखें' इक्कीसवीं शताब्दी के पहले दशक में लिखा गया यह उपन्यास पूरे दशक की उथल-पुथल को साकार करता है। यहां कहने भर को पंजाब है पर यदि इसे राजस्थान के सन्दर्भ में जोड़कर पढ़ा जाएँ तो भी यह उतना ही प्रभावशाली सिद्ध होगा क्योंकि लेखक ने जिन मानवीय सरोकारों को उठाया है वे सरोकार किसी एक जगह के आदमी के न होकर पूरी तरह विवचेतस है। 'नौ दिशाएं' उपन्यास डॉ शर्मा का एक ऐसा उपन्यास है जो मनोविज्ञान से सम्बधिंत होने के साथ-साथ यथार्थ को भी व्यक्त करता है। आज के समय में किस प्रकार अर्थ को लेकर पारिवारिक विखण्डन हो रहे हैं। अजय शर्मा ने उसको बड़े ही कलात्मक ढंग से अपने उपन्यास में व्यक्त किया है। इसी कारण कोई भी विद्वान उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता है। 'नौ दिशाएं' उपन्यास नारी-पुरुष के संबंधो पर आधारित एक ऐसा उपन्यास है जो मानव को यह शिक्षा देता है कि नारी और पुरुष एक ही सिक्के के दो पहलू है। दोनों का साथ में ही अस्तित्व है। अकेले व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं है।

'भगवा' उपन्यास पिछले कई सालों से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, जातीय समस्या एवं हिन्दुत्व का साहित्यिक समाज शास्त्र पेश करता है। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि की विरासत में समकालीनता और राजनीतिक हलचल एवं ज्वलंत समस्या के स्वाल खड़े हैं। इसमें मानवीय सम्बन्धों की उष्मा एवं गरिमा के साथ यथार्थ-रिश्तों में पड़ती दरारें भी दर्ज है। कहानी की शुरूआत अखाड़े से होती है। दूसरी ओर बीमार पिता। अंत अंदर तक झकझौर देता है। माँ का अंतिम साँस बड़े बेटे के घर लेना। लेखन के शिखर तक पहुंचकर भी लेखक वेचैन है, यहीं शुभ लक्षण लेखक को ऐसी कृतियाँ लिखने के मनोबल और साहस प्रदान करती हैं।

अनीता देसाई एक उपन्यासकार के रूप में

अनीता देसाई को भारतीय अँग्रेजी साहित्य में सबसे प्रतिष्ठित उपन्यासकारों में से एक माना जाता है। वह भारतीय समक्ष लेखन में अन्य समकालीन महिला लेखकों से उनकी धारणा और उसकी अनोखी शैली के सन्दर्भ में अँग्रेजी में अलग है। अनीता देसाई भारत में एक बहुत गम्भीर, कुशल और होनहार उपन्यासकार के रूप में उभरी हैं। आंतरिक-भावनात्मक दुनिया से एक अनजान रानी के रूप में, वह अपने बेहद संवेदनशील कथानकों के फैंटामाजोरिया, अवचेतन, विकृत रूप से ट्रांसक्रिप्शन करती है। देसाई ने मूल रूप से शैली और दृष्टिकोण के क्षेत्रों में उचित समायोजन और अनुकूलन के साथ अपने विषयों को पेश करने का प्रयास किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि देसाई एक महान उल्लेखनीय और आश्चर्यजनक प्रभावशाली लेखिका है। उनकी तकनीक एक उपन्यास के चरित्र या कहानी को ऊपर उठाने के लिए जीवन, रक्त और आत्मा प्रदान करती है। वह जीवन की खोज करने और दृश्यमान दुनिया की गहराई को उजागर करने में रुचि रखती है।

अनीता देसाई के उपन्यासों में विषय और तकनीक का पूर्वगामी अध्ययन हमें कुछ विशेषताओं से आकर्षित करने में मदद करता है। अनीता देसाई के उपन्यासों में विषय और तकनीक के पहलूओं को अलग नहीं किया गया है। वे संरचना और बनावट के कई स्तरों पर अंतर-सम्बन्धित हैं अपने विषय को व्यक्त करने के लिए, उपन्यासकार घटना के सम्बन्धमें विवेकपूर्ण ढंग से चरित्र, स्थिति, संवाद और अन्य तत्व का उपयोग करता है। उनकी तकनीक ने उन्हें भारतीय अँग्रेजी उपन्यासकारों के बीच एक विशिष्ट स्थान दिया। भाषा उनकी कथा शैली का मुख्य तत्व है। भाषा और संवाद का उपयोग उनके कलात्मक रूप से गढ़े हुए उपन्यासों में से एक है। देसाई ने विभिन्न उपन्यासों में विषयों की मांगों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न कथा रणनीतियों को अपनाया है। अनीता देसाई ने अपने सभी उपन्यासों में वर्तमान के साथ व्यक्तिगत सम्बन्धों का

मूल्यांकन करने के लिए फलैश-बैक को एक विधि के रूप में उपयोग करती है। इस प्रकार नोस्टलागिया उनके उपन्यासों में एक कथा तकनीक बन जाती है। पीछे की तरफ यात्रा स्वयं के ज्ञान का एक माध्यम है और कठोर वास्तविकता का सामना करने के लिए एक तंत्र है। उनके कथानक वयस्क जीवन में पड़े किसी विशेष चरण से है, जो कि वे अपने वर्तमान के लिए अपने वर्तमान से सम्बन्धित करने की कोशिश करते हैं।

उनका पहला उपन्यास 'क्रय पीकॉक' (Cry the Peacock 1963) कल्पना के साथ एक काव्य उपन्यास है। उनके विवरण काव्य हैं अपने उपन्यास के प्रकाशन के बाद से पिछले कई वर्षों में देसाई के जीवन की दृष्टि भी एक उल्लेखनीय परिवर्तन से गुज़र चुकी है। क्रय, पीकॉक एक उपन्यास है, जिसका विषय नायिका के मनोविज्ञान पर ध्यान देने के साथ असंगत शादी के रूप में वर्णित किया जा सकता है। चूंकि मुख्य रूप से यह एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो माया के मानसिक क्रिया-कलापों की जांच करता है। ये कथा कालानुक्रमिक रूप से सीधे नहीं है। माया के दिमाग में अतीत और वर्तमान के बीच एक निरंतर और आज़ादी आंदोलन है। इस उपन्यास में वह अजीब जानवरों की कल्पना का उपयोग करके कुछ ऐसा करती है जो उसके मन में परेशान स्थिति को जन्म देता है। इस तरह की कल्पना को मोर की राजसी छवि के विपरीत देखा गया है जो उपन्यास का प्रतीक है। क्रय, पीकॉक हाइपरसेंसिटिव युवा नायिका माया का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है, जो कि बचपन की भविष्यवाणी से प्रेरणा लेता है, जिसमें उसके बुजुर्ग अलग पति को मारता है। अनीता देसाई का दूसरा उपन्यास 'वाइसिस इन द सिटी' (Voices in the city 1965) एक दिलचस्प उपन्यास है और शीर्षक ही तकनीक का एक उदाहरण है। कुछ आलोचकों ने इसकी तुलना डिकन के लंदन और हार्डी की एगडन-हीथ के साथ की है। इस उपन्यास में देसाई की कथा तकनीक का एक उल्लेखनीय विशेषता कलकत्ता शहर का उपयोग है। कलकत्ता एक दमनकारी शहर के रूप में चित्रित किया गया है। यह न केवल कार्रवाई के लिए

पृष्ठभूमि का रूप लेता है बल्कि उपन्यास में एक चरित्र बन जाता है, जो सभी प्रमुख पात्रों पर एक शक्तिशाली प्रभाव डालता है। देसाई ने अपने इस उपन्यास में कम से कम बीस बार कलकत्ता का वर्णन करता है।

अनीता देसाई के अन्य उपन्यासों में प्रतीकवाद और कल्पना का महत्वपूर्ण कथा तकनीक के रूप में उपयोग किया गया है। शहर को शक्तिशाली प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है कलकत्ता शहर की निर्माण, संरक्षण और विनाश के बल के रूप में कल्पना की गई है, अंततः मौत और विनाश की देवी माँ काली के प्रतीक रूप में पहचान की गई है। शहर को बहुत विस्तार से वर्णित किया गया है। शहर को एक राक्षस शहर के रूप में वर्णित किया गया है: .... कि यह राक्षस शहर जो सामान्य स्वस्थ, लाल-खून वाला जीवन नहीं जीता बल्कि जो कि भूमिगत, निचला, गुढ़ और मृत्यु से सुगंधित जादूमयी शहर ने उसकी बहन और भाई दोनों को उससे विमुख कर दिया। अनीता देसाई का तीसरा उपन्यास 'बाय-बाय ब्लैकबर्ड' (Bye bye blackbird 1971) इंग्लैंड में प्रवासियों के विषय से सम्बन्धित है। यह उनकी समायोजन की कठिनाइयों को प्रस्तुत करता है और उनके खंडित मानस-मन की पड़ताल करता है। देसाई ने आदित्य और सारा की शादी की स्थिति के बारे में जानकारी देने के लिए फ़्लैश बैक तकनीक का इस्तेमाल किया। उपन्यास को तीन भागों में विभाजित किया गया है 'डिस्कवरी एंड रिकॉग्निशन' और 'डिपार्टमेंट' के रूप में दूसरा और तीसरे हिस्से का शीर्षक क्रमशः क्रमशः है। इससे देसाई ने अपने विषयों को व्यक्त करने और व्यवस्थित और प्रभावी रूप से अपने विचारों को अंजाम देने में मदद की है। सारा और आदित्य दोनों की सच्चाई दो सिज़ोफ्रेनिक विमानों में मौजूद है, दो सांस्कृतिक परम्पराओं के दो विरोधाभासी विमान हैं और अंत केवल अदित्य के भारत लौटने के फैसले के साथ ही होता है। अनीता देसाई के अगला उपन्यास Where shall we go in this summer?

(1975) संरचनात्मक रूप से वर्जीनिया वूल्फ टू द लाइटहाउस (1927) के समान है। दोनों धारणा, स्मृति और सपने के तीन चरणों के माध्यम से नायक की चेतना के प्रवाह का पता लगाते हैं। नायिका सीता की चेतना इस ढांचे के भीतर विचारों, अस्वीकृति और जीवन की शर्तों की स्वीकृति के माध्यम से विकसित होती है। वह खुद के लिए एक नया जीवन देती है और इस दुनिया में नए जीवन को जन्म देने के लिए उत्सुक है। ऐसा कहा जाता है कि उसे स्वीकार करने के लिए कुछ हद तक अपने व्यक्तित्व को छोड़ देना पड़ता है। फंतासी, फ़्लैश बैक और प्रतीकों का इस्तेमाल करने के अलावा, अनीता देसाई इस उपन्यास में एक कथा तकनीक के रूप में कविता का उपयोग किया है।

देसाई के अगले उपन्यास 'फायर ऑन द माउंटेन' (Fire on the mountain 1977) है जिसमें वह प्रतीकात्मकता का उपयोग करती है। वह कहानी का वर्णन करते हुए फ्लैश बैक तकनीक का उपयोग भी करती है। उपन्यास के केन्द्र में नंद कौल चरित्र है जो कल्पना की दुनिया में रहती है। यह उपन्यास उपन्यासकार की मूलभूत तकनीक को मॉन्टेज के रूप में दर्शाता है यह वास्तव में खोज की एक प्रक्रिया के रूप में एक सूक्ष्म तकनीक है, एक दृष्टि प्रोजेक्ट करने का एक तरीका है। वास्तव में यह एक शिल्प है जो कल्पना की कला के घटक जैसे- लय, भविष्यवाणी, व्यक्तिगत और सामाजिक वास्तविकता का चित्रण और कल्पना की दूरदर्शी गुणवत्ता से अलग नहीं हो सकते। यह एक विशिष्ट उपन्यास है क्योंकि यह कई पैटर्नों का मोज़ेक है देसाई के किसी भी अन्य उपन्यास में मानव और प्राकृतिक, अतीत और वर्तमान, व्यक्ति और सामाजिक, आंतरिक और बाहरी, क्षणिक और अनन्त, के इस मोज़ेक को इस तरह के महान शक्ति और श्लोक के साथ चित्रित किया गया है। इस प्रकार तकनीक एक मानवीय चेतना की विपरीत स्थिति के माध्यम से खोज की एक विधि बन जाती है जो एक उदासीन सामाजिक वास्तविकता के खिलाफ होती है। यहां भी देसाई दो विषम पात्रों को एक

साथ पेश करने की तकनीक का इस्तेमाल करती है ताकि प्रत्येक को दूसरे शब्दों में परिभाषित किया जा सके। यह अनीता देसाई का एकमात्र उपन्यास है जिसमें प्रकृति प्रतीकात्मकता और कल्पना के स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अनीता देसाई के उपन्यास Clear Light of Day 1980 परिवारिक कथा है। अनीता देसाई ने उपन्यास में कविता का उपयोग किया है लेकिन क्या अधिक महत्वपूर्ण है कि वह एमिली डिकिंसन और टीएसएस द्वारा दो कविताओं की रेखाएं उद्धृत करती है। उपन्यास के लिए एलीग्स के रूप में एलियट तकनीकों के दृष्टिकोण से इस उपन्यास के बारे में सबसे महत्वपूर्ण बात कविता का प्रभावी उपयोग है। उपन्यास चार भागों में विभाजित है। इनमें से प्रत्येक प्रमुख पात्रों के जीवन में विशिष्ट अवधियों के साथ होता है।

अनीता देसाई के सातवें उपन्यास इन कस्टडी (In custody 1984) में दिल्ली के उपनगर मीरपुर में एक निजी कॉलेज के एक अस्थायी व्याख्याता, देवन शर्मा की कहानी को बताती है। उपन्यास की कथा डीवेन और नूर आदि पात्रों से जटिलता से जुड़ी हुई है। उपन्यास की केंद्रीय घटना साक्षात्कार है और अन्य सभी कार्यों से सम्बन्धित हैं। यह सच है कि मुख्य पात्र देवेन है लेकिन अनीता देसाई की काल्पनिक तकनीक इस उपन्यास में एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। उपन्यास का शीर्षक भी कथा तकनीक का एक महत्वपूर्ण पहलू है। यह इस उपन्यास के संदेश पर प्रकाश डालता है: किसी को हिरासत में लेने के लिए, किसी को स्वयं को दूसरे की हिरासत में आत्मसमर्पण करना पड़ता है।

'बॉमगार्टनर बॉम्बे' (Baumgartner's Bombay 1988) प्रवासित व्यक्तियों की आधुनिक घटनाओं से सम्बन्धित है। ह्यूगो बौमगार्टनर, एक सरल ईमानदार जर्मन यहूदी है, जिसे हिटलर के जर्मनी में हिंसक विरोधी सेमिटरी भावनाओं के उत्थान के बाद अपने देश से भागने के लिए मजबूर किया जाता है। फ़्लैश बैक की तकनीक पहली

बार बॉमगार्टनर की मौत से पहले की अवधि पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रयोग की जाती है और परिस्थितियों और रिश्तों को स्थापित करती है जो बायोग्रास्टर और लोटेट को जीवन में देर से प्रभावित करती है। देसाई ने बहुत ही आकर्षक रूप से नई पहचान को रेखांकित किया है कि बॉमगार्टनर भारत में देर से जीवन में ग्रहण करता है। अतीत का उपयोग इस उपन्यास में एक महत्वपूर्ण कथा तकनीक है। इस प्रकार, इस उपन्यास में देसाई को रोजगार देने वाली तकनीक अलगाव और अलगाव के विषयों को पेश करने के लिए एक आदर्श वाहन है।

अनीता देसाई का नौवां उपन्यास 'जर्नी टू इथाका' (Journey to Ithaca 1995) देसाई कैनन से एक से अधिक तरीकों से प्रस्थान का प्रतीक है। यहां पहली बार देसाई एक ऐसे विषय के साथ काम करती है जिसे आध्यात्मिक कहा जा सकता है। देसाई के इस उपन्यास में मुख्य रूप से तीसरे व्यक्ति का वर्णन है। सर्वज्ञाना बयान धीरे-धीरे हमारे सामने कई यात्राओं की कहानी सामने आती हैं। देसाई अतीत की रोशनी और मात्तो, सोफी और मातृत्व के दिमाग को उजागर करने के लिए उल्लेखनीय कौशल के साथ फ्लैश-बैक तकनीक का उपयोग करती है। देसाई ने बहादुर ढंग से उपन्यास के पैटर्न में यात्रा की आकृति का इस्तेमाल किया। तीन नायकों की आध्यात्मिक ओडिसीज़ एक-दूसरे के समानांतर चलती हैं, एक दूसरे को अपने पथ को उजागर करने के लिए और उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण जंक्शनों पर ब्यान करती हैं। इस प्रकार, इस उपन्यास में देसाई की कथा तकनीक जीवन की जटिल दृष्टि पेश करने के लिए एक आदर्श उपकरण साबित हुई है।

देसाई के उपन्यास 'फॉस्टिंग, फीस्टिंग' (Fasting, Feasting 1999) ने दो विपरीत संस्कृतियों में पारिवारिक जीवन की जांच की और दो अलग-अलग दुनिया- भारतीय और अमेरिकी को आकर्षित किया। उपयुक्त उपन्यास दो भागों में विभाजित है। देसाई ने इस उपन्यास में बाइबल से उद्धरण चिह्नों का इस्तेमाल किया है, हिंदू

भक्ति गीतों में, अक्सर स्थानीय रंगों को अपने कथा में उधार देने के लिए अमेरिकी अक्सर बारंबारता है।

इसके विपरीत देसाई की तकनीक के माध्यम से दो संसारों की छवियां बनती हैं, हर तरह के अलग-अलग मेलानी जो समृद्ध भोजन में डूबे हुए हैं, वह स्पष्ट रूप से उमा के लिए एक पत्नी होने का इरादा है, जो शायद किसी भी व्यंजन को खाने के लिए नहीं मिलते। जबकि मेलानी 'पर्वों', 'उपवास' उमा परम्पराओं और दायित्वों से जूझ रही है लेकिन मेलानी एक पक्षी के रूप में स्वतंत्र है। उपवास, भक्षण विसंगतियों का ध्यानपूर्वक संतुलित उपन्यास है: भोजन के बीच भारतीय परिवार के जीवन और अमेरिकी परिवार के जीवन के बीच साथ ही साथ पूर्व और पश्चिम के बीच एक व्यापक अर्थ में कमी और अधिकता के बीच महत्वाकांक्षा की कमी (उमा और मेलानी के लिए) और बहुत ज्यादा महत्वाकांक्षा (अरुण और रॉड के लिए) के बीच।

'जिग्जेग वे' (The Zigzag way 2004) अनीता देसाई का नवीनतम उपन्यास, बीसवीं सदी मेक्सिको की कहानी है। क्रांति और व्यक्तिगत आपदा की अशांति के माध्यम से मैक्सिकन भारतीयों के शोषण और उनके संदिग्ध बचावकर्मियों जैसे- दुर्भाग्यवश डोना वेरा, एक खनन बहन की विधवा और एरिक की अपनी दादी, एक छोटी कोर्निश लड़की जिसका कब्र एक ढाल कब्रिस्तान में स्थित है। यह उपन्यास मैक्सिको में स्थापित किया गया है, न कि एक भारतीय चरित्र की दृष्टि से। अनीता देसाई ने पूर्व में बाय-बाय, ब्लैकबर्ड में लिखा था कि भारतीयों को इंग्लैंड की वास्तविकता का सामना करना पड़ रहा है जो उन्हें नहीं चाहते थे। उसने जर्नी टू इथाका में ज्ञान की तलाश में भारत आने वाले विदेशियों को देखा और निश्चित रूप से बॉमगार्टनर के बॉम्बे में एक जर्मन यहूदी के अद्भुत अलगाव का सामना करना पड़ा।

अनीता देसाई के उनके विभिन्न उपन्यासों में काल्पनिक तकनीक के उपरोक्त सर्वेक्षण से पता चलता है कि वह कहानी की मांगों के अनुसार विभिन्न काल्पनिक तकनीक का इस्तेमाल करती हैं। तकनीक के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण क्या है नवाचार या नवीनता नहीं है, लेकिन यह तकनीक प्रभावी रूप से अर्थ को संदेश देने और कहानी को प्रभावी ढंग से बताती है।

निष्कर्ष

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास साहित्य में अभिव्यंजना पक्ष को इस अध्याय में देखा गया है। जिसमें यह देखा गया है कि लेखकों ने किस प्रकार अपनी कृतियों में मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं को उजागर किया है। क्योंकि किसी मनोवैज्ञानिक शोध में कला पक्ष को नहीं देखा जाता किन्तु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मनोवैज्ञानिक होने के साथ-साथ एक तुलनात्मक अध्ययन भी है। इसलिए यहाँ लेखकों के देशकाल वातावरण, कथोपकथन शैलियाँ और शिल्पगत प्रयोगों का मनोवैज्ञानिक आधार को देखा गया है कि लेखकों ने अपनी मानसिकता से किस प्रकार के शब्दों और विचारों का चयन किया है। जिससे लेखकों और उनके समाजिक वातावरण और मनोविज्ञान को देखा जा सके। नारी की विषम स्थिति और अदम्य काम भावना का अंकन करना, संपादकों और प्रकाशकों द्वारा लेखक के शोषण की निंदा करना, पुलिस की दमन-नीति एवं अत्याचारों का खंडन करना, अछूत भावना का तीव्र विरोध करना, क्रांतिकारियों की देशभक्ति को उजागर करना, धार्मिक पाखण्ड एवं वितंडवाद के परिणामों को स्पष्ट करना, छात्रों में व्याप्त अनैतिकता एवं फैशनपरस्ती का चित्रण इस उपन्यासों के अन्य उद्देश्य हैं। 'नदी के द्वीप' उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है मानवीय सम्बन्धों की विस्तृत व्याख्या करना और द्वीप के प्रतीकों के माध्यम से नियति की कठोरता तथा मानव की निर्बलता का चित्रण करना। दुःख की धारा में बहते हुए सुख के द्वीप का सहारा अवश्य लिया जा सकता है। मानव जीवन की विवशता, सफलता तथा असहायता का चित्रण इसमें किया गया है। मानसिक कुंठा और मनोवैज्ञानिक

विकृत्तियों का चित्रण किया गया है। रूढ़ियों व परम्पराओं का विरोध किया गया है। पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति, व्यक्ति में राष्ट्रीय चेतना, व्यक्ति स्वातंत्र्य की खोज, अदम्य काम भावना आदि के नेपथ्य में व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। व्यक्ति और समाज को एक-दूसरे के पूरक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। निष्कर्षतः यह स्पष्ट हो जाता है कि अज्ञेय के उपन्यासों में बाह्य वातावरण की अपेक्षा पात्रों के आंतरिक भावजगत का निरुपण किया गया है। वर्तमान सभ्यता के अनुसार कॉफीहाऊस, होस्टल, सिनेमाघर इत्यादि का सहज एवं स्वभाविक चित्रण किया गया है। 'नदी के द्वीप' उपन्यास को लेखक ने विश्वयुद्ध की विस्फोटक परिस्थितियों का काल जानकर चुना है। अपने-अपने अजनबी में यह तत्व और भी कम हो गया है। वहाँ देश एक 'काठघर में सीमित हो गया है। इस प्रकार अज्ञेय के तीनों उपन्यासों में देशकाल एवं वातावरण तत्व का पूर्णतः निर्वाह किया गया है। अज्ञेय के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक धरातल पर युगीन स्थितियों की जटिलता के मानव-जीवन पर व्यापक प्रभाव को चित्रित करने में देशकाल एवं वातावरण अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ है।

इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है कि दुःख में पड़कर ही व्यक्ति निखरता है। अतः दुःख से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि वह जिस दुःख को भोग चुका है उस दुख से दूसरों को मुक्त रखे। रेखा के द्वारा यह शब्द एक आलोक स्तम्भ है 'दुख उसी की आत्मा को शुद्ध करता है, जो उसे दूसरों के स्थान पर दुःखी होने में है।' अज्ञेय ने इस उपन्यस के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि मृत्यु अपने को अजनबी बना देती है और अजनबी को अपना। इस उपन्यास में मृत्यु की विशद व्याख्या, विचार-गोष्ठी है। इस उपन्यास का उद्देश्य मृत्यु की भयावहता, भारतीय तथा पाश्चात्य परम्पराओं में अंतर, दो पीढ़ियों की मान्यताओं तथा मूल्यों के अंतर को स्पष्ट करना है। नवीन रचना शैली के साथ मनोवैज्ञानिक तकनीक का दिग्दर्शन करना इस रचना का उद्देश्य है तथा अज्ञेय ने इसमें पश्चिमी अस्तित्त्ववाद को मृत्यु सापेक्ष एक नया प्रतीकार्थ दिया है। अज्ञेय का उद्देश्य अपने उपन्यासों में जड़ीभूत और निष्क्रिय परम्परा को नकार कर, मानव मूल्यों की खोज और उनकी स्थापना करना है। इसमें उन्हें सफलता भी काफी हद तक प्राप्त

हुई है। अजय शर्मा और अनीता देसाई ने अपने उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक तरीकों से पात्रों की सृजना की है। उनके हर उपन्यास में पात्रों की मानसिकता, वातावरण, सामाज और परिवारिक प्रभावों को व्यक्त करते हुए ब्यान किया है। देसाई क्योंकि अपने पात्रों की मानसिक दशा को अच्छे से पढ़कर बखूबी ढंग से चित्रित किया है। उपन्यासों में उन्होंने एक भावनात्मक, आत्मक और बचपने से रहित बचपन को दर्शाया है। लेखक अपनी लेखनी के कौशल के माध्यम से उपन्यास को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत अध्याय में लेखकों के शैलीगत प्रयोगों को मनोवैज्ञानिक आधार पर देखा गया है कि लेखकों उपन्यास साहित्य रचित करने की मानसिकता को बयान किया जा सके। उनके शब्द चयन, भाषा चयन, वातावरण के पड़ते प्रभावों के कारण लेखकों की क्या मानसिकता रही। इनका अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

अध्याय सात

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के साहित्य में मनोविज्ञान: तुलनात्मक अध्ययन

मनोविज्ञान वह शैक्षिक व अनुप्रयोगात्मक विद्या है जो मनुष्य और पशु आदि के मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों तथा व्यक्त व अव्यक्त दोनों प्रकार के व्यवहारों का एक क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन करती है। मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षणीय व्यवहार का अध्ययन करता है तथा प्राणी के भीतर के मानसिक एवं दैहिक प्रक्रियाओं जैसे चिंतन, भाव आदि तथा वातावरण की घटनाओं के साथ उनका सम्बन्ध जोड़कर अध्ययन करता है। इस परिप्रेक्ष्य में मनोविज्ञान को व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान कहा गया है। व्यवहार में मानव व्यवहार तथा पशु व्यवहार दोनों ही सम्मिलित होते हैं। मानसिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत संवेदना (sensation), अवधान (attention), प्रत्यक्षण (perception), सीखना, स्मृति, चिंतन आदि आते हैं। यदि तुलनात्मक मनोविज्ञान की बात की जाए तो तुलनात्मक का विश्वकोश के अनुसार अर्थ है किसी दो या दो से अधिक व्यक्तियों या चीज़ों के चरित्र या गुणों की जांच करना, उनके समानताएँ या मतभेदों की खोज करना। वहीं दूसरी ओर मनोविज्ञान का अर्थ कल्पना की वह गुणवत्ता जो विचारों को एक विसंगत या शानदार मोड़ देता है। अब तुलनात्मक मनोविज्ञान के बारे में देखा जाए तो यही सामने आता है कि प्राणियों के व्यवहार, गुणों समानताएँ और या मतभेदों की खोज करना। तुलनात्मक मनोविज्ञान जीवन के रूपों के अभिनय, सोचने और महसूस करने के तरीके के पीछे के तर्क को समझने का एक प्रयास है। यह अध्ययन का एक क्षेत्र भी है जो आलोचनात्मक तुलनात्मक पद्धति और इसके नैतिक दृष्टिकोण दोनों के उपयोग से मुक्त नहीं है। तुलनात्मक मनोविज्ञान को जानवरों के व्यवहारों और मानसिक जीवन को समझने के प्रयास के रूप में प्रभाषित किया गया है। जिसमें विभिन्न प्रकार के जानवरों की समानता और अंतर की तुलना की जाती है, लेकिन यह मानता है कि समानताओं

और मतभेदों के पीछे एक इतिहास है इन जीवन रूपों का मानसिक जीवन और व्यवहार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक और नई प्रजातियों के निर्माण के माध्यम से कैसे विकसित हुआ है? यही अध्ययन तुलनात्मक मनोविज्ञान के विषय में देखा जाता है। किन्तु जब दर्शन या साहित्य के पक्ष से देखा जाए तो व्यक्ति व्यवहार में लगातार आने वाले बदलावों, समानताओं और असमानताओं का अध्ययन किया जाएगा। जिसे आगे चलकर तुलनात्मक साहित्य का नाम दिया गया। जिसमें दो या दो से अधिक लेखक या भाषाओं के मध्य किया जाने वाला शोध तुलनात्मक साहित्य कहलाया। यदि तुलनात्मक मनोविज्ञान को साहित्य में देखा जाएगा तो यही देखा जाएगा कि दो या दो से अधिक लेखकों की कृतियों, भाषाओं, वातावरण, समय और स्थितियों के अनुसार उनकी कृतियों और पात्रों को रचने में समानताएँ, भेदों के पीछे क्या मानसिकता रही होगी।

आधुनिक तकनीकी साधन व्यक्ति को एक दूसरे के अधिक निकट ले आए हैं। एक दूसरे के बीच सम्पर्क स्थापित करने वाले साहित्य को भी एक साधन माना जाता है। हिन्दी, अंग्रेज़ी अन्य भाषाओं को माध्यम बनाकर साहित्य के अध्ययन को आजकल सुगम बनाया गया है। मनुष्य में साहित्य के प्रति रही जिज्ञासा ने उसमें तुलनात्मक दृष्टिकोण को सचेत किया है। वह साहित्य के प्रति चिंतन और मनन करते हुए समीक्षापरक सिद्धांत को प्रतिपादित करने लगा। साहित्य के सृजनात्मक पक्ष को तुलनात्मक गतिविधियों ने सुदृढ़ किया है। अन्य साहित्य की विविधता और व्यापकता से सम्बन्धित अध्ययन करने पर तुलनात्मक साहित्य की सृष्टि के लिए अन्य भाषाओं को सीखने के प्रति भी मनुष्य सचेत हो गया। चूँकि भाषा को जाने बिना साहित्यिक आदान-प्रदान सम्भव नहीं हो सकता। तुलनात्मक साहित्य के माध्यम से ही भाषा की समृद्धि और साहित्य का प्रचार-प्रसार राष्ट्र और अंतराष्ट्रीय स्तर पर होता है। साहित्य 'मानव हृदय' की भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति को दूर दराज के लोगों तक पहुँचाने का कार्य साहित्य करता है। तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को लेकर विश्वनाथ अय्यर का मानना है कि,

> इससे हमारी ज्ञानवृद्धि होती है, रसास्वाद भी बढ़ता है। इसी तरह एक ही विषय पर केन्द्रित चार समकालीन रचनाकारों का व्यक्तिगत अंतर, उनके विचारों के अंतर आदि पर हमारा ध्यान जाता है। यह एक प्रकार से तुलनात्मक अध्ययन ही है। (तुलनात्मक साहित्य 14)

किसी एक ही देश के विभिन्न लेखकों के साहित्य की तुलना करने से काफी साम्यता दिखाई देती है। जब दो विभिन्न देश के साहित्य की तुलना करते हैं तो असमानताएँ अधिक दिखाई देती हैं। इसका कारण सांस्कृतिक भिन्नता ही माना जाता है। भूमंडलीकरण के प्रस्तुत सन्दर्भ में, पूरे संसार में अधिक निकटता आ गयी है। आधुनिक तकनीकी ने विभिन्न साहित्य को जाँचने परखने के मार्ग को अधिक सुगम बनाया है। व्यवहारिक और मानवीय मूल्यों की दृष्टि से हर एक भाषा के साहित्य के विचार समान होते हैं। दो साहित्यिक कृतियों के अध्ययन को आधार मानकर कृति की श्रेष्ठता या अश्रेष्ठता को प्रमाणिक करना ही तुलनात्मक अध्ययन है। तुलनात्मक अध्ययन के सन्दर्भ में जे. एस. खरे अपने विचार प्रस्तुत करते हैं कि,

> Comparative literature is a branch of literary history. It is the study of International spiritual relations of rapports de fait between Baron and Pushkin, Goethe and Carlyle, Walter Scott and Alfred de Vigney and between the works the inspirations and even the lives of writers belonging to different literatures. (अनुवाद के विविध आयाम 119)

फ्रेंच सम्प्रदाय के अग्रज 'फ्रनांड बाल्डेन स्पर्जर' ने तुलनात्मक साहित्य के मात्र विषय संग्रह को तुलनात्मक साहित्य का अंग माना है। तुलनात्मक साहित्य से विश्वसाहित्य का निर्माण होता है। तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन मुख्य रूप से फ्रांस, जर्मनी, अमरीका, इंग्लैंड, इटली, डेनमार्क, बेल्जियम, रूस, जापान आदि देशों में काफी हो रहा है। आजकल इस साहित्य को स्वतंत्र अस्तित्व भी मिल रहा है। रेने वेलेक हेन्री, एच.रेमाक, हेन्री ग्रिफर्ड, अलरीय वेइस्टीन, गयाई ऑलडिन, ऑलफ्रेड ओवन आदि

मनीषियों ने इस साहित्यिक धारा को अपना योगदान दिया है। भारतीय सन्दर्भ में बात करें भाषायी सम्पर्क साधन जैसे-जैसे आधुनिक रुख पकड़ता गया वैसे ही भारतीय साहित्यों के बीच सम्बन्ध स्थापित हुआ। जाँचने, परखने की उत्सुकता ने तुलनात्मक साहित्य को गति दी। विश्वनाथ अय्यर के अनुसार,

> भारतीय साहित्य क्षितिज में फारसी के प्रवेश के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओं पर उसका प्रभाव अधिक स्पष्ट होने लगा। फारसी का प्रभाव सिंधी, पंजाबी और बंगला में धीरे-धीरे संक्रांत हो गया। यह फारसी रचनाओं के अनुवाद और रूपांतरण के रूप में था। नई विषय-वस्तु व शैली को भी उन्होंने अपनाया।...सन 1784 में कलकत्ता की ऐशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के अपने विख्यात उद्घाटन भाषण में सर विलियम जोन्स ने ग्रीक व लेटिन की समानता का उल्लेख किया। (तुलनात्मक साहित्य 46)

उसके बाद बंकिम चंद्र ने 'कुमार सम्भव' को 'पैराडाइज लॉस्ट' कृति से तुलना की। रविन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे अकादमी तौर पर अध्ययन की दृष्टि से समर्थन किया था। भारत में अंग्रेज़ी के प्रभाव से शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ। अंग्रेज़ी माध्यम ने तुलनात्मक साहित्य को प्रेरणा दी। बीसवीं सदी में सरोजिनी नायडू, डॉ. राधाकृष्णन, सर्वश्री सुनीतिकुमार चटर्जी, नगेन्द्र आदि चिंतकों ने इस साहित्य के अध्ययन में अपना योगदान दिया। सन 1974 में दिल्ली में आधुनिक भारतीय भाषाओं के विभाग में Comparative Indian Literature के नाम से भारतीय साहित्य में पाठयक्रम शुरू किया गया।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि तुलनात्मक मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर व्यक्ति को अपने जीवन में झांकने से प्राप्त होता है। व्यक्ति अपने जीवन में जन्म से लेकर मृत्युपर्यान्त विभिन्न प्रकार के अनुभवों से गुजरते हैं, एवं जिनमें घटनाओं को समझना, चुनौतियों से निपटना, सम्बन्धों का विकास, रोग आदि

सम्मिलित होते हैं। इन अनुभवों के प्रकाश में व्यक्ति अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण पड़ावों में निर्णय लेते हैं। हमारे ये निर्णय कभी सही साबित होते हैं कभी गलत। कुछ परिस्थितियों में व्यक्ति को स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि वह सही निर्णय कर रहे हैं वहीं कुछ परिस्थितियों में वह अस्पष्ट होता है। इन निर्णयों का सही एवं गलत होना उसे प्राप्त सूचनाओं की समझ एवं उनकी विश्लेषण कर पाने की क्षमता पर निर्भर करता है। इसके साथ ही व्यक्ति की भाव दशा एवं पूर्व अनुभव भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सही निर्णय व्यक्ति को सही परिणाम प्रदान करते हैं एवं व्यक्ति की लक्ष्य की प्राप्ति होती है। सही निर्णय व्यक्ति के जीवन बेहतर बनाते हैं। ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न उठता है कि यह निर्णय लेने की प्रक्रिया किस प्रकार घटित होती है? कौन से कारक इसमें बाधक होते हैं? एवं कौन से कारक इसमें सहायक होते है? यदि इन प्रश्नों का समुचित उत्तर प्राप्त हो सके तो व्यक्ति निर्णय करने की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। सार रूप में यदि कहें तो व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में अपनी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा संचालित होते हैं जिनके बारे में व्यक्ति को निश्चित रूप से जानना चाहिए। मनोविज्ञान और तुलनात्मक मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि इसमें समानताओं और भेदों के कारणों का पता लगाया जा सके।

प्रस्तुत शोध में मनोविज्ञान के साथ-साथ तुलनात्मक मनोविज्ञान को दो भाषाओं के लेखकों और उनकी कृतियों में पात्रों की मनोवैज्ञानिकों के द्वारा दिए गये सिद्धांतों के अनुसार समानताओं और भिन्नताओं की तुलना की गई है। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई ने किन-किन मनोवैज्ञानिकों से प्रभावित होकर अपनी कृतियों में पात्रों का सृजन किया है। प्रस्तुत अध्याय में तीनों लेखकों की कृतियों पर किन-किन मनोवैज्ञानियों का प्रभाव रहा और किससे प्रेरित होकर उन्होंने अपने पात्रों का सृजन किया, इसी मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं के अधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। सबसे पहले हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक लेखक सच्चिदानंद हीरानंद वात्सय्यान अज्ञेय की बात करें, अज्ञेय को हिन्दी साहित्य में एक मनोवैज्ञानिक लेखक होने की ख्याति प्राप्त है क्योंकि इनकी रचनाओं पर फ्रायड, एडलर और युंग का प्रभाव

इत्याधिक देखा जा सकता है। जैसा कि प्रस्तुत शोध के पहले अध्याय में मनोवैज्ञानिक धारा के साथ-साथ कई मनोवैज्ञानियों के सिद्धांतों की व्याख्या की जा चुकी है। उसी व्याख्या के आधार पर देखा जाए तो फ्रायड ने व्यक्तित्व, लिबिडो, कल्पना, स्वपन और विस्थापन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया है। उसके बाद एडलर का आत्म-सम्मान और हीनता के सिद्धांत को और युंग के वैयक्तिक चेतना, समस्त चेतना, अतर्मुखी व बहिर्मुखी व्यक्तित्व के सिद्धांत के आधार पर प्रस्तुत शोध के लेखकों की कृतियों को भी देखा गया। फ्रायड, एडलर और युंग के पश्चात आने वाले मनोविश्लेषणवादियों के सिद्धांतों के अनुसार भी देखा गया है। किन्तु अज्ञेय के उपन्यासों की अगर बात करें तो यही देखा गया है कि अज्ञेय पर फ्रायड, एडलर और युंग तीनों का ही प्रभाव देखा जा सकता है। फ्रायड को विश्वास था कि मनुष्य अपनी इच्छाओं, यौन-कामनाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में नाकाम रहने पर होने वाली तकलीफ़ के एहसास को दबाता है। इस प्रक्रिया में उसके भीतर अपूर्ण कामनाओं के प्रति अपराध-बोध पैदा हो जाता है जिससे कुंठा, अकेलापन, आत्मालोचना और एक सीमा के बाद आत्म-हीनता और आत्म-घृणा की अनुभूतियाँ जन्म लेती हैं। यह तमाम कार्य-व्यापार अवचेतन के भीतर चलता है। यह अवचेतन हमेशा दबा हुआ नहीं रहता और सपनों के रूप में या घटनाओं के प्रति अनायास या तर्कसंगत न लगने वाली अनुक्रियाओं (जैसे तेज़ रफ़तार से कार चलाना या किसी परिजन पर ग़ुस्सा करने लगना) के रूप में सामने आता है। फ्रायड मानस मन को तीन भागों (इड यानी कामतत्व, ईगो यानी अहं और सुपर-ईगो यानी पराअहं) में बाँट कर देखते हैं। उन्होंने अहं को यथार्थमूलक और आत्ममोह को जन्म देने वाले दो रूपों में बाँटा है। यथार्थमूलक अहं की मध्यस्थता सुख की तरफ़ धकेलने वाले कामतत्व और यथार्थ के समीकरण को विनियमित करती है। इसी के प्रभाव में अपनी कामनाएँ पूरी करने के साथ-साथ व्यक्ति सामाजिक अपेक्षाओं पर भी ख़रा उतरने की कोशिश करता है। पराअहं की हैसियत मानस में माता-पिता सरीखी है और वह कामतत्व और अहं पर अपना हुक्म चलाता है। यही पराअहं बालक को अपने पिता का

प्राधिकार स्वीकार करने की तरफ़ ले जाता है। इसके प्रभाव में पुत्र द्वारा माँ को प्राप्त करने की कामना का दमन किया जाता है ताकि इस प्रक्रिया में वह पिता की ही तरह अधिकार सम्पन्न हो सके। पितृसत्ता इस सिलसिले से ही पुनरुत्पादित होती है। फ्रायड की व्याख्या के मुताबिक जीवन और जगत के साथ विविध सम्बन्धों में जुड़ने के लिए पुत्र और माँ के बीच का काल्पनिक सूत्र भंग करना जरूरी है और यह भूमिका पिता के हिस्से में आती है। पिता के हस्तक्षेप के तहत पुत्र को माँ के प्रति अपनी यौन-कामना त्यागनी पड़ती है। वह देखता है कि पिता के पास शिश्न है जो माँ के पास नहीं है। उसे डर लगता है कि अगर उसने पिता के प्राधिकार का उल्लंघन किया तो उसे भी माँ की ही तरह ही बधिया होना पड़ सकता है। बधियाकरण की दुश्चिंता (कैस्ट्रेशन एंग्ज़ाइटी) के तहत मातृमनोग्रंथि नामक संकट का जन्म होता है जो फ्रायड का एक और महत्त्वपूर्ण सूत्रीकरण है। मातृमनोग्रंथि का संकट बेटे को माँ का परित्याग करने की तरफ़ ले जाता है। माँ के प्रति अपनी अनकही सेक्सुअल चाहत के इस नकार को फ्रायड ने आदिम आत्म-दमन की संज्ञा दी है। आत्म-दमन के इसी प्रसंग से व्यक्ति के मानस में अवचेतन की बुनियाद पड़ती है। इसके इलावा आधुनिक समय के मनोवैज्ञानिकों जैसे पैवलव जिन्होंने शरीरशास्त्र में प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके बाद वॉटसन जिन्होंने चेतन अवस्था को 'व्यवहार का विज्ञान' नाम दिया। इसके पश्चात विलियम मैकडुगल का नाम भी महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने 'जीवित वस्तुओं के व्यवहार से विधायक विज्ञान' को मनोविज्ञान कहा। इनके बाद कोफका, कोहलर और वदोईमट और गौस्टाल्ट इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने मनोविश्लेषणवाद की धारा को जारी रखा। अरुण कुमार सिंह, अमरनाथ राय, रामजी श्रीवास्तव, मुहम्मद सुलेमान इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने भी समय-समय पर अपने विचारों से मनोविज्ञान की इस धारा को आगे बढ़ाने में अपना योगदान दिया। इन सबको पढ़ने के बाद कहीं न कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि जो फ्रायड, एडलर और युंग ने सिद्धांतों को प्रतिपादित किया यह सभी मनोवैज्ञानिक उन्हीं सिद्धांतों को आगे लेकर आये हैं क्योंकि मूल सिद्धांत इन तीनों द्वारा जो प्रतिपादित किये गये हैं वहीं सिद्धांतों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया जा रहा

है। लेखकों के उपन्यासों और अनुधिक लेखकों की कृतियों पर भी इन्हीं तीन मनोवैज्ञानिकों का ही प्रभाव सामने आता है क्योंकि मनोवैज्ञानिक धारा फ्रायड के द्वारा ही पहचान में लाई गयी थी जिसे उसके शिष्यों ने आगे बढ़ाया। यदि हम साहित्य लेखन में मनोवैज्ञानिक विचारधारा को देखें तो फ्रायड, एडलर और युंग ही सर्वश्रेष्ठ नाम सामने आते हैं जिनसे प्रभावित होकर लेखकों ने अपने पात्रों की रचनाएँ की। अज्ञेय के उपन्यासों के सम्बन्ध में डॉ. शान्ति भारद्वाज के शब्दों में,

> उनके उपन्यास में वैयक्तिकता का चित्रण अधिक है। वे सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को उसके वास्तविक रूप में चित्रित करने की अपेक्षा एक व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उसके सामाजिक जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म छानबीन करना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं इस विशिष्ट व्यक्तिमानस के आन्तरिक संघर्ष को जीवन की सामान्य गतिविधियों से अलग रखा गया है, क्योंकि अज्ञेय की दृष्टि में व्यक्ति मानव स्वयं एक परिस्थिति बन गया है, और सब घटनाएँ वही घटने लगी हैं। (अज्ञेय का उपन्यास साहित्य 278)

प्रस्तुत अध्याय में अज्ञेय, अजय शर्मा अनीता देसाई के उपन्यासों का फ्रायड, एडलर और युंग के प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' पर फ्रायड के प्रेम और काम का सिद्धांत जबकी 'अपने-अपने अजनबी' में कुंठा को देखा जा सकता है। शेखर खण्डरों में इस अवस्था को पहली बार महसूस करता है,

> धीरे-धीरे उस पर एक सम्मोहन सा छा गया एक मूर्छा सी, उसे लगा उसके पास, उसके पास ही नहीं, उसके शरीर के भीतर उसके सब ओर कुछ आया है, कुछ, जिसका वह वर्णन नहीं कर सकता, लेकिन जो बहुत सुंदर है, बहुत भव्य, बहुत विशाल, बहुत पवित्र, इतना पवित्र कि शेखर को लगा, वह उसके स्पर्श के योग्य नहीं, वह मैला है मल में आवृत है...।

> उसी सम्मोहन में उसने एक-एक करके अपने सब कपड़े उतार डाले, नीचे फेंक दिये और आँखें मूंदकर खड़ा हो गया, बिल्कुल नंगा, आकाश के सामने और उस पवित्र के, उस पवित्र से परिपूर्ण, उसके स्पर्श से रोमांचित...वह क्या था? ईश्वर? प्रकृति? सौंदर्य? शैतान? दबी वासना? (शेखर: एक जीवनी भाग एक 103)

> वह ज़िन्दगी का तमाशाई नहीं है, वह खिलाड़ी है, नायक है, वह ज़िन्दगी को अँगूर के गुच्छे की तरह तोड़कर उस का रस निचोड़ लेगा, लता को झंझोड़ डालेगा, कुँज में आग लगा देगा, वह आराम से नहीं बैठेगा। (नदी के द्वीप 53)

> ...कह दो सारी हरामी दुनिया से कह दो, अन्त में मैं हारी नहीं- अन्त में मैंने जो कहा सो किया-मरज़ी से किया। चुनकर किया। मैं- मरियम-ईसा की माँ-ईश्वर की माँ मरियम-जिसको जर्मनों ने वेश्या बनाया...हाँ, मेरा नाम मरियम। ईसा की माँ का नाम मरियम। चुनी हुई माँ। जो कभी मर नहीं सकती-जर्मनों की वेश्या। उससे पहले मेरा नाम योके था। वह मैंने नहीं चुना, पर अच्छा नाम है। लेकिन योके मर गई। मरियम कभी नहीं मरती। (अपने-अपने अजनबी 70)

अजय शर्मा के 'चेहरा और परछाईं' उपन्यास में फ्रायड का काम सिद्धांत न होकर कुंठित सिद्धांत दिखाई पड़ता है। जिसमें नायक और उसके साथी विस्थापन की पीड़ा से कुंठित महसूस करते हैं। इसी सन्दर्भ में विपिन पात्र कहता है,

> कई बार मन में आया कि ग्वालियर वापस लौट जाऊँ लेकिन यह सोच कर मेरी रूह काँप जाया करती है कि कौन सा मुँह लेकर...वहाँ जाऊँ...कैसे जाऊँ। अब तो कभी-कभी मुकेश के गाने के बोल, 'जीना यहाँ मरना यहाँ, इसके स्वा जाना कहां...।' याद आते हैं। (चेहरा और परछाई 38)

'बसरा की गलियाँ' उपन्यास में अकाश पात्र अपने देश से बाहर जाकर शादी कराने पर कुंठित महसूस करता हुआ कहता है,

> ...मेरे अपने मुझसे सदा के लिए दूर हो गए थे। शायद जीते जी उनको कभी न मिल पाऊं, मरने पर भी नहीं। क्योंकि जीते जी जिसकी सारी इच्छाएं दफन हो गई हों, मरने पर उसकी क्या हालत होगी, इसकी कल्पना मात्र से ही मेरी रूह कांप गई। (बसरा की गलियाँ 14)

अजय शर्मा 'बसरा की गलियाँ' उपन्यास में फ्रायड के काम के सिद्धांत से भी प्रभावित दिखाई पड़ते है। जब गुलनार नाम के पात्र का ज़िक्र आता है।

> ...सब किसी-न-किसी के साथ हो लिए। मुझे एक बुरके वाली भा गई। वह औरत मुझे एक मकान में ले गई। कुछ ही क्षणों के बाद मैंने पाया कि औरत के शरीर का ऊपर का आधा हिस्सा कपड़ों में लिपटा हुआ था और नीचे का हिस्सा बिना कपड़ों के था। मैंने अपने हाथों के इशारे व चेहरे के हाव-भाव से उसे पूरी तरह से निर्वस्त्र होने का इशारा किया। उसने तुरंत न में सिर हिला दिया और इशारे में यह भी समझा दिया कि वस्त्र में लिपटे किसी अंग से छेड़खानी भी नहीं करनी। मैं मूकदर्शक बना सारा नज़ारा देख रहा था। उस रात मैं बीस दीनार की बलि चढ़ा आया था। (बसरा की गलियाँ 50)

'खुली हुई खिड़की' उपन्यास में अमिता पात्र अपने पति की मृत्यु के पश्चात अकेलापन और कुंठित महसूस करती हुई एक विधवा और तलाकशुदा औरत की स्थिति के बारे में बताती हुई कहती है,

> किसी भी तलाकशुदा औरत को देखने के बाद जो पहला भाव मर्द के मन में पैदा होता है, वह दम्भ है। दम्भ में भी स्वार्थ। उसी में मछली फँसाने के लिएकाँटा फेंकता है। अगर मछली उसमें फँस गई तो ठीक है, अगर नहीं फँसी तो स्वार्थ को ठेस पहुँचते देर नहीं लगती। अगर स्वार्थ

> को ठेस पहुँच जाए, तो उसे घृणा में बदलते पल भी नहीं लगता। एक तलाकशुदा नारी के प्रति कटुता घुलनी शुरू हो जाती है जो धीरे-धीरे ज़हर बनने लगती है। उसी ज़हर में पलती है तलाकशुदा औरत की ज़िन्दगी। (खुली हुई खिड़की 121)

'काल-कथा' उपन्यास में फ्रायड के विस्थापन और काम के सिद्धांत को देखा जा सकता है। विस्थापन भी दो पतिस्थितियों के कारण होता है। जब व्यक्ति अपनी मानसिकता कमज़ोर होने की वजह से परिस्थितियों से भागता है, दूसरा जब बिगड़ती हुई समाजिक परिस्थितियों के कारण विस्थापन होता है। अजय शर्मा के उपन्यास 'काल-कथा' में 1984 पंजाब की समाजिक परिस्थितियों के कारण जो लोगों को मानसिक और समाजिक मुश्किलों का सामना करना पड़ा था, उसे बयान करता है।

> काले सूरज का साया पंजाब ने बहुत सालों तक झेला। अगर उन काले दिनों का साया पंजाब पर न पड़ता, तो हरित क्रांति के बाद आने वाली योजनाओं ने आज असली जामा पहन लिया होता....कुछ लोगों ने अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिए पंजाब की युवा पीढ़ी को गुमराह करके उसे गर्म भट्ठी में झोंक दिया, जिसकी तपिश का दंश पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलेगा। (काल-कथा 117)

> ...वजीर चंद ने कुंडी चढ़ा दी, तो उसकी पत्नी उसे हैरानी से देखने लगी। देखते ही देखते वज़ीर चंद जबरदस्ती करने लगा। शायद वज़ीर चंद को पता ही नहीं था कि इतने सालों से जिस कुएं की तरफ उसने ध्यान नहीं दिया था, वह तो अब तक सूख चुका होगा। इसी चक्कर में उसने अपने सारे कपड़े उतार दिए, लेकिन सूखे हुए कुएं में पानी ही नहीं था, तो निकलता कैसे? इस बीच काम वज़ीर चंद के दिमाग पर चढ़कर बोलने लगा। छीना-झपटी में उसकी पत्नी के शरीर को उसके नाखूनों का दर्द भी सहना पड़ा। वह हांफ रहा था, लेकिन उसमें इतना

> जोश नहीं था कि वह उसके साथ कोई जबरदस्ती कर सके। वह बिजली की गति से उठा और बाथरूम की तरफ बढ़ गया। कुछ ही पलों के बाद निढाल वज़ीर चंद पत्नी की गोद में आकर लेट गया। (काल-कथा 141)

'अकाश का सच' उपन्यास में फ्रायड का कुंठा का सिद्धांत ही दिखाई पड़ता है। जब एक पत्रकार अपने सम्पादक के द्वारा किए गए भेदभाव को महसूस करता हुआ कहता है,

> ...पक्षपात की प्रतिमूर्ति हैं। अपनों को रेवड़ियों की तरह पद व पैसे बाँटे, छुट्टियाँ देने में भी कोई संकीर्णता नहीं। दूसरों का सलाम तक भी गवारा नहीं। उनका कोई रिश्तेदार हो या फिर एक नंबर का चाटुकार बिना सूचना दिए ही घर जाकर छुट्टी बढ़वा ले, तो कोई बात नहीं। परन्तु यदि कोई दूसरा सूचना देकर भी छुट्टी बढ़वा ले, तो उस पर गाज गिरनी तय है। उसे सार्वजनिक रूप से अपमानित किया जाता है। अब मेरी ही तरफ देखो, मैं अपनी बहन की... (अकाश का सच 51)

> होशियार-होशियूर कोई नहीं। बस उसने बॉस को खुश करने के लिए कई तरह के समझौते कर लिए हैं, जो मैं नहीं कर सकी। बस धीरे-धीरे मुझे साइड पर कर दिया गया और उसे प्रमोट कर दिया गया। (शहर पर लगी आँखें 10)

> इन सालों में हर कुत्ते-बिल्ले की सैलरी बढ़ गई लेकिन मेरी नहीं। आप ही बताइए कि क्या मैं इतना गया-गुजरा हूँ कि मेरे जूनियर मुझसे हर लिहाज में आगे कर दिए गए हैं। मैं उस पूर्यवँशी को अपना दोस्त समझता था लेकिन सर, उसने मेरी पीठ पर ही खँजर घोंपा है। कोई बात नहीं सर, जिस दिन वह मेरे उपन्यास का पात्र बनेगा, उसे फिर भागने को रास्ता नहीं मिलेगा। (कागद कलम ना लिखणहार 111)

'नौं दिशाएँ' उपन्यास में फ्रायड के काम और कुंठा के सिद्धांत को रजनी पात्र का भाई फ्रायड के इडिपस कॉम्पलेक्स को यहाँ भाई बहन के रिश्ते के द्वारा दर्शाता है और पति संजीव का कुंठित व्यवहार देखा जा सकता है,

> ...रजनी ने खाने की थाली मेज़ पर रखी तो उसके भाई ने उसका हाथ पकड़ लिया। जैसे ही उसने हाथ पकड़ा, वह घबरा गई। उसने जल्दी से अपना हाथ छुड़वाला चाहा, लेकिन इसी चक्कर में उसके दूसरे हाथ में पकड़ी हुई थाली नीचे गिर गई। उसने बड़ी नफ़रत से भाई की तरफ देखा। वह धीरे-धीरे अपनी जगह से उठा और उसे पकड़ने की कोशिश करता हुआ बोला, 'बस एक बार...फिर सारी ज़िन्दगी आराम है। उस स्साले को तो मैं बताऊँगा, जो मुझे नपुंसक कहता है। स्साला मादर...खुद नपुंसक है और बात करता है। तुम बहनों के फैसले करवाते-करवाते ही मेरी ज़िन्दगी गुज़र गई। अपनी शादी के बारे में सोचने का मौका ही नहीं मिला... (नौं दिशाएँ 107)

> ...लोग तो बेकार में ही कहते हैं कि मरने के बाद आदमी स्वर्ग एवं नर्क का भागी बनता है। उसे लगा जिन ग्रह-नक्षत्रों की बातें हम लोग करते हैं, वे कहीं दूर आसमां में नहीं होते, वे आपके इर्द-गिर्द ही मंडरा रहे होते हैं, लेकिन आपको पता नहीं चलता। वही कभी राहू तो कभी केतू बनकर आपकी ज़िन्दगी में चुपके से प्रवेश करते हैं और आपको पता भी नहीं चलता। अगर तो रिश्ते मजबूती से चल रहे हैं, तो यहीं पर स्वर्ग है। अगर वे किसी भी वजह से दिशाहीन हो गए हैं या फिर गलत दिशा की ओर मुड़ गए हैं, तो समझो इसी ज़िन्दगी में आप नर्क के भागीदार हैं। आज उसे लगा कि शादी वाले दिन रजनी नाम का गंदा ग्रह उसकी कुंडली में प्रवेश कर गया था, जो कुंडली मारकर बैठा है और उसे गाहे-बगाहे तंग करने पर तुला हुआ है। (नौं दिशाएँ 58)

अनीता देसाई के उपन्यासों पर फ्रायड, एडलर और युंग तीनों का प्रभाव देखा जा सकता है। परन्तु भिन्नता सिर्फ इतनी दिखाई पड़ती है कि अनीता देसाई के उपन्यासों में नारी के सन्दर्भ में तीनों का प्रभाव दिखाई पड़ता है जबकि अज्ञेय में कुछेक नारी और ज्यादातर पुरुष पात्रों पर प्रभाव दिखाई पड़ता है। अगर अजय शर्मा की बात करें तो उन्होंने नारी पात्रों प्रभाव को बहुत ही कम दिखाया है। अज्ञेय और अजय शर्मा के केन्द्र में पुरुष पात्र ही रहे हैं जबकि अनीता देखाई के एक-दो उपन्यासों को छोड़कर बाकी सब में नारी पात्र ही केन्द्र में दिखाई पड़ती हैं। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि लेखकों ने नारी पात्रों की मनोवैज्ञानिकता दर्शाने में कोई कमी छोड़ी हो और देसाई ने पुरुष पात्रों के मनोविज्ञान सिर्जन ठीक ढंग से न किया हो। देसाई के उपन्यास 'क्रॉय द पीकॉक','वॉयस्स इन द सिटी','क्लियर लाइट ऑफ डे','फॉयर ऑन द माउटेन','इन कस्टडी' में फ्रायड का अकेलेपन और कुंठा का सिद्धांत दिखाई पड़ता है। वॉयस्स इन द सिटी' उपन्यास में मनीषा पात्र जो शादी के बाद बिल्कुल अपने-आपको बदला हुआ पाती है और कुंठित अनुभव करती हुई कहती कि,

> My duties of serving fresh chapattis to the uncles as they eat, of listening to my mother-in-law as she tells me the remarkably many ways of cooking fish, of being Jiban's wife. (voices in the city 111)

'क्रॉय द पीकॉक' उपन्यास में माया पात्र भी मनीषा की तरह ही कुंठित अनुभव करती है क्योंकि उसका पति गौतम उसकी तरफ ध्यान नहीं देता और इससे वह ससुराल में कुंठित-सा अनुभव करती हुई कहती है कि,

> I tried to explain this to Gautama, stammering with anxiety for now, when his companionship was a necessity. I required his closest understanding. How was I to gain it? We did not even agree on which points, in what grounds this closeness of mind was necessary. 'Yes, yes', he said, already thinking of something else, having shrugged my words off as

> superfluous, trivial and there was no way I could make him believe that this, night filled with these several scents, their effects on me, on us, were all important, the very core of the night, of our moods tonight. (Cry, the Peacock 19-20)

'क्लियर लाइट ऑफ डे' उपन्यास में फ्रायड का अकेलेपन का सिद्धांत दिखाई पड़ता है। किन्तु यहाँ पति-पत्नी जैसा अकेलापन न होकर पारिवारिक अकेलापन दिखाई पड़ता है कि किस प्रकार अपने-अपने स्वार्थ के लिए भाई बहन एक दूसरे से अलग होते हैं। बिम नाम की पात्र अपने भाई द्वारा उन्हें अकेला छोड़कर जाने के बाद अपने अपंग भाई बाबा को कहती है कि,

> So now there are just you and I left, Baba…Does the house seem empty to you? Everyone's gone, except you and I. they won't come back. We'll be alone now. But we don't have to worry about anyone now- Tara or Raja or Mira Masi. We needn't worry now that they're all gone. We're just by ourselves and there's nothing no need to be afraid. It's as if we were children again- sitting on the veranda, waiting for father and mother, when it's growing dark and it's bedtime. Really, it'll be just the way it was when we were children. (Clear Light of Day 154)

'इन कस्टडी' उपन्यास में कवि नूर फ्रायड द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत कुंठित (कुंठा) अनुभव करता है क्योंकि उसकी दूसरी पत्नी ने शादी के बाद उसका सब कुछ छीन लिया। जिस वजह से वह कुंठित अनुभव करता हुआ कहता है कि,

> That is what she really wanted, you see. This house- my house- was the right setting for it. The right setting-unlike her own house which was a house for dancers, you see- although she was quite famous, you know, for her singing. She was one of the top- the top- when I saw her…but she was not

> content with that, she wanted my house, my audience, my friends. She raided my house, stole my jewels-those are what she wears now as she sits before an audience, showing them off as her own. They are not her own, they are mine! And she sent my secretary away too. (In Custody 92)

'वेयर शैल वी गो इन दिस सम्मर' उपन्यास में सीता पात्र कुंठित अनुभव करती है क्योंकि वह समझती है कि शादी के बाद औरत को सिर्फ बच्चों को ही जन्म देना है। इसी वजह से अपनी जिम्मेदारियों से भागना शुरू कर देती है। इसी वजह से कुंठित भी अनुभव करती है।

> She had escaped from duties and responsibilities, from order and routine, from life and city, to the unlovable island. She had refused to give birth to a child in a world not fit to receive the child. She had the imagination to offer it an alternative, a life unlived, a life bewitched. She had cried out her great 'NO' but now the time had come for her epitaph to be written *Che free per viltate it gran rifiute*. (Where Shall We go in this summer? 139)

'बाय-बाय ब्लैक बर्ड' उपन्यास में आदित्य विदेश में शादी करके कुंठित-सा अनुभव करता है क्योंकि उसको लगता है कि विदेशी औरतों पर अगर अपना हुक्म चलाना हो तो उनके ऊपर समय-समय पर चिल्लाते रहना चाहिए ताकि वह अपना प्रभुत्व न स्थापित कर पाए। इसी पर अपने मित्र से बात करता हुआ कहता है कि,

> These English wives are quite manageable really, you know. Not as fierce as they look-very quiet and hard working as long as you treat them right and roar at them regularly once or twice a week. (Bye-Bye, Blackbird 39)

बॉम्गार्टनर्स बॉम्बे' उपन्यास में बॉम्गार्टनर जब एक शर्णार्थी के रूप में बॉम्बे आता है कुंठित महसूस करता हुआ शहर के बीचों बीच घूमता फिरता हुआ वैश्याओं की गली में पहुँच जाता है जहाँ उसे उत्तेजित किया जाता है।

> Going out for a packet of cigarettes from a stall he had noticed at the corner, late at night when the shops where shut, he was hailed by two women who stood by a high wall that stank of urine and garbage. They wore white frocks, like nursed, and jewellery of glass, and tin. When they smile at him, waving 'Hoo-hoo, Tommy, he saw that their teeth were stained red…..they grabbed him by an arm each, crying, 'Less have drink, Tommy, come awn….they smelt of Eastern flowers-jasmine, or lotus, as well as perspiration, cheap cigarettes, alcohol and the stuff they chewed with their strong, flashing teeth, spitting frequently to rid their mouths of its crimson juice. (Baumgartner's Bombay 92)

> What am I to do then?' The man bawled when Baumgartner again protested at being labeled a German and hostile. Got a German passport, says you were born there- then what am I supposed to take you for, a blooming Indian? The papers were flung at him, and he retreated, baffled, wondering what magic word he might find that would release him from what was a monstrous mistake, or madness. (Baumgartner's Bombay 106)

'फॉस्टिंग फीस्टिंग' उपन्यास में उमा पात्र कुंठित अनुभव करती है क्योंकि उसके माता-पिता उसकी देखभाल यहाँ तक की पढ़ाई भी इस वजह से छुड़वा देते हैं क्योंकि वह लड़की है और अपने छोटे भाई अरुन की देखभाल ज्यादा जरूरी मुद्दा है क्योंकि वह एक लड़का है।

> ...The baby could be left to his elder sister…you know we can't leave the baby to the servant. He needs proper attention. When Uma pointed out that ayah had looked after her and Aruna as babies, Mama's expression made it clear it was quite a different matter now, and repeated threateningly: Proper attention. (Fasting, Feasting 30)

मनोवैज्ञानिक एडलर के विषय में बात करें तो उनके द्वारा स्थापित हीनता और आत्म-सम्मान के सिद्धांत को लेखकों के उपन्यासों में देखा जा सकता है। किन्तु तीनों लेखकों में देखा जाए तो एडलर के हीनता सिद्धांत पात्रों के मध्य अधिक देखा जा सकता है। 'शेखर: एक जीवनी' उपन्यास में आत्म-सम्मान और हीनता के सिद्धांत को देखा जा सकता है। शेखर के भाई ने जब पुलिस में भर्ती होने के लिए अपने कॉलेज में अपने माता-पिता का गलत नाम दे दिया और इसी बात से नाराज़ उसके माता-पिता आपस में बात करते हैं जिससे शेखर पर भी संदेह किया जाता है,

> ...माँ फिर बोली, 'और सच पूछो तो'- उनका स्वर एकाएक धीमा पड़ गया, 'सच पूछो तो मैं इसका भी विश्वास नहीं करती।' इसका? शेखर ने कुछ देखा नहीं, लेकिन वहाँ बैठे भी उसकी कल्पना को वह पूरा दृश्य देखते देर नहीं लगी, वह सम्भ्रान्त-सा, ठहर गया-सा भाव, वह शेखर की ओर उठा हुआ अँगूठा- 'इसका!' (शेखर: एक जीवनी भाग एक 29)

'नदी के द्वीप' में उपन्यास में रेखा पात्र में एडलर के आत्म सम्मान सिद्धांत की झलक दिखाई देती है जब वह प्रेम में भुवन को अपना सबकुछ न्यौशावर कर देती है किन्तु बदले में उससे कोई अपेक्षा नहीं रखती,

> ...न, मैं कुछ माँगूँगी नहीं। तुम्हारे जीवन की बाधा नहीं बनूँगी, भुवन, उलझन भी नहीं बनूँगी। सुन्दर से डरो मत-कभी मत डरना-न डर कर ही सुन्दर से सुन्दरतर की ओर बढ़ते हैं। (नदी के द्वीप 54)

> ...मैंने चुन लिया। मैंने स्वतन्त्रता को चुन लिया...मैं बहुत खुश हूँ। मैंने कभी कुछ नहीं सुना। जब से मुझे याद है, कभी कुछ चुनने का मौका मिला मुझे नहीं मिला। लेकिन अब मैंने चुन लिया। जो चाहा वही चुन लिया। मैं खुश हूँ। (अपने-अपने अजनबी 47)

अजय शर्मा के उपन्यास 'चेहरा और परछाई' में एडलर का हीनता का सिद्धांत विपिन पात्र के माध्यम से दिखाई पड़ता है। जब वह मायानगरी मुम्बई में अपना घर-बाहर छोड़कर घरवालों का विरोध करके नाम कमाने आया था किन्तु कुछ न बन सकने के कारण हीन भावना लिए घर वापस भी नहीं जा सकता और कहता है,

> ...कई साल हो गए इस मायानगरी में आए हुए लेकिन अभी तक वहीं खड़े हैं, जहाँ से चले थे। जब मैंने घर में सबका विरोध करके ग्वालियर छोड़ा था तो सबने मुझे रोकने की कोशिश की थी। छुटकी ने तो राखी का वास्ता भी दिया था। लेकिन मेरा फैसला अटल था और दावे पक्के कि मैं जल्द ही कुछ-न-कुछ मुकाम हासिल करके वापस लौटूँगा, लेकिन इन सालों में वह सारे दावे ताश के पत्तों की तरह बिखर गए। मुझे लगता है कि भूख के साथ लड़ते-लड़ते सारी ज़िन्दगी निकल जाएगी। घर से निकला था तो सपने बहुत हसीन थे। यहाँ आकर रोटी के एक-एक निवाले की खातिर लड़ना पड़ा। (चेहरा और परछाई 37)

> …मेरे चारों तरफ गहरा समुद्र है। लगता है कि मुझे किसी सहारे की जरूरत है, कोई मुझे किनारे लगा दे। लेकिन दूर-दूर तक कोई किनारा नज़र नहीं आ रहा और लगता है कि समुद्र से कोई मगरमच्छ निकलकर मेरी तरफ बढ़ रहा है और मुझे निगल जाना चाहता है। (खुली हुई खिड़की 96)

'बसरा की गलियाँ' और 'शहर पर लगी आँखें' उपन्यास में एडलर के हीनता सिद्धांत बुशरा पात्र के द्वारा देखा जा सकता है जब वह अपने पति के द्वारा शादी के बाद प्रेम से अपनाई नहीं जाती। उसका मानना है कि पति का धर्म बदलवाकर शादी करने का जो उसने अपराध किया है वह उसी की सज़ा भुगत रही है, इसी सन्दर्भ में वह कहती है कि,

> ...हर आदमी की अपनी-अपनी सज़ा है और वह उसे भुगतता है। अल्लाह की मर्जी देखो, जब तुम मेरे कुछ नहीं थे, तब तुम मेरे सब कुछ थे। अब जब सब कुछ मेरा है तो मेरा कुछ भी नहीं है। मैं कितनी अकेली हूँ, तुम नहीं समझ सकते! तुम्हारा प्यार मेरे शरीर में दंश बनकर चुभकर लेटी रहूँ और कयामत की घड़ी में घड़ी में जब मुझसे कुछ माँगने के लिए कहा जाएगा तो मैं सिर्फ यही कहूँगी कि इस तरह की सज़ा किसी और औरत को न नसीब हो। (बसरा की गलियाँ 41)
>
> असल में यह डिप्रेशन नहीं है डॉक्टर साहब! यह रेस में पिछड़ जाने का सदमा है। जिस पोस्ट की मैं हकदार थी, वह किसी और को मिल गई है। इतने सालों से मैं अच्छा काम कर रही थी और हमेशा सोचती थी कि किसी न किसी दिन उस सीट की दावेदारी मेरी होगी लेकिन...लेकिन वह हाथ से कहीं दूर निकल गई है। (शहर पर लगी आँखें 10)

'काल-कथा' उपन्यास में एडलर का आत्म-सम्मान का सिद्धांत वजीर चंद की पत्नी के माध्यम सामने आता है। जब उसका पति अपनी कामेछा को अपने काबू में न रखकर उससे जबरदस्ती करता है और पूरी ज़िन्दगी दूसरी औरतों के चक्कर में घूमता रहता है। एक डॉक्टर के माध्यम से दवाईयाँ लेकर बुढ़ापे में अपनी पत्नी के साथ जबरदस्ती करता है। तभी उसकी पत्नी अपनी पूरी ज़िन्दगी में बिताई हुई घुटन और अपने आत्म-सम्मान को कैसे बचाए रखा कि एक पत्नी के लिए पति का प्रेम और घर क्या महत्त्व रखता है, उसके बारे में बताती हुई कहती है कि,

> औरत छोटी-छोटी खुशियों में खुशी तलाशती है और मर्द बड़ी से बड़ी खुशी प्राप्त करने के बाद भी और... ...और से कभी बाहर नहीं निकल पाता। पता नहीं मर्द अपनी बीवी के साथ बिताए हुए क्षणों को कैसे भूल जाता है। औरत की कमज़ोरी है या महानता, कहना मुश्किल है। पति का बुरा-भला सुनने के बाद भी औरत हमेशा घर को जोड़ने की कोशिश करती है, जबकि मर्द कदम-कदम पर अपने अभिमान को आड़े ले आता है। (काल-कथा 150)

'अकाश का सच' में मीरा पात्र के माध्यम से हीनता का सिद्धांत दिखाई पड़ता है जब मीरा की माँ एक बिहारी से प्रेम करने पर मीरा को कहती है कि वह उसके साथ मीरा की शादी इसलिए नहीं होने देगी क्योंकि वह लड़का बिहार से है। 'नौं दिशाएँ' उपन्यास में एडलर के हीनता के सिद्धांत को देखा जा सकता है। जब संजीव अपनी पत्नी रजनी के साथ रोज़ के झगड़े से तंग हो जाता है, अपने आप में हीन भावना अनुभव करता हुआ कहता है कि,

> ...हाँ मेरी माँ इस शादी से राजी नहीं है। एक दिन मैं जब यहाँ आई, तो उसने मुझे आते देख लिया था। जब घर पहुँची तो उसने सारी बात मुझसे पूछी तो मैंने बता भी दिया और कहा वह मुझसे शादी करना चाहता है। मेरी बात सुनकर माँ ने तुरन्त कहा था, 'कुछ भी हो जाए, एक भइये से शादी कभी नहीं हो सकती...। (अकाश का सच 73)

> ...यार सच पूछो तो अब रोज की किट-किट से मैं तंग आ चुका हूँ। अब तो मैं खुद ही चाहता हूँ कि वह चली ही जाए तो ठीक है। कभी सोचता था कि गाड़ी किसी भी तरह चलती रहे तो ठीक है, लेकिन अब लगता है एक ही धुरी पर गाड़ी का पहिया घूमेगा, तो हम दोनों ही सूखी नहीं रह पाएंगे। (नौं दिशाएँ 49)

> उसको बॉस तो इसलिए बनाया है कि कम्पनी को एक वफ़ादार कुत्ते की जरूरत थी न कि इसमें कोई काबिलियत थी। वैसे भी कम्पनी को बड़ी पोस्टों पर काबिल आदमियों की नहीं बल्कि एक वफ़ादार कुत्ते की जरूरत होती है। पता नहीं कम्पनी कैसे भूल जाती है कि जिसकी फितरत में ही लोगों को काटना लिखा हो वह कम्पनी को कैसे छोड़ेगा? लेकिन काटते-काटते कुत्ते इतने मगरूर हो जाते हैं कि वे यह भूल जाते हैं कि जिस दिन उनसे ज्यादा वफ़ादार मिल गया तो कम्पनी इनको भी साइड करने में देर नहीं करेगी। (कागद कलम न लिखणहार 76)

'वॉयस्स इन द सिटी' उपन्यास में सरला और जीत पात्र के माध्यम से एडलर के हीनता के सिद्धांत को देखा ज सकता है। दोनों अपनी शादी से नखुश हैं। एक-दूसरे को समझने में असमर्थ वह यह मानते हैं कि शादी सिर्फ शारीरिक सम्बन्धों तक ही सीमित होती है।

> Marriage, bodies, touch and torture…He shuddered and, walking swiftly, was afraid of the dark of Calcutta. All that was Jit's and Sarla's, he decided, and indeed, all that had to do with marriage, was destructive, negative, decadent. (Voices in the City 35)

'क्रॉय द पीकॉक' उपन्यास में माया पात्र अपने पति द्वारा उपेक्षित व्यवहार को न सहते हुए एडलर के हीनता सिद्धांत को अनुभव करती है।

> The need to love and be loved is crucial for healthy personality development and functioning. Human beings appear to be so constructed that they need and strive to achieve warm, loving relationships with others. The longing for intimacy with others remains with us throughout our lives and separation from or loss of loved ones usually presents a difficult adjustment problem. (Cry, the Peacock 73)

'क्लियर लाइट ऑफ डे' उपन्यास में तारा अपनी बहन बिम को अपने स्कूल के तजुर्बे के बारे में बताती है कि वह अपनी गलितियों के कारण किस प्रकार वहाँ अपने विद्यार्थियों के सामने हीन भावना महसूस करती है।

> How my students would laugh at me, I'm always trying to teach them, train them to be different from what we were at their age-to be a new kind of woman from you or me- and if they knew how badly handicapped I still am, how I myself haven't been able to manage on my own-they'd laugh, wouldn't they? They'd despise me. (Clear Light of Day 237)

'फॉयर ऑन द माउटेन' उपन्यास में नंदा कौल पात्र जो अपनी पूरी ज़िन्दगी अपने पति और घर परिवार पर न्यौछावर कर देती है किन्तु उसको समझने वाला न तो उसका पति है और न ही उसके अपने बच्चे। इसीकारण वह हीन भावना महसूस करती हुई कहती है,

> And her children-the children were all alien to her nature. She neither understood nor loved them. She did not live here alone by choice- she lived here alone because that was what she was forced to do, reduce to doing. (Fire on the Mountain 145)

'इन कस्टडी' उपन्यास में कवि नूर की दूसरी पत्नी जब उससे उसका सब कुछ छीनकर महफिलों को सजाती है और खुद केन्द्र बनकर कवि नूर को एक कोने में बैठने पर मज़बूर कर देती है तो कवि हीन भावना महसूस करता हुआ कहता है कि,

> ….a power and pointed creature in black and silver, coquetting beneath a shining veil which she held in place over her forehead while she turned her face from side to side, flashing smiles at her audience and making the ring on her nose glint with delight. She sat cross-legged and comfortable

> on the rug, her red-painted toes waggling with pleasure at the scene of which she was the undeniable centre. (In Custody 79)

'बॉय-बॉय ब्लैक बर्ड' उपन्यास में एक विदेशी से शादी करने के बाद अपने देश, मित्रों और रिश्तेदारों के सामने हीन भावना महसूस करते हुए वह अपने कार्य स्थल में और बाज़ार जाने में भी गरेज करती है।

> ... She went into the supermarket to wander amongst the stacked shelves in an absent-mindedly happy way for she loved the supermarket, only just remembering to snatch up a bottle of mango chutney and a Lyons blackberry pie in order not to arouse the accountant's suspicion. The supermarket was a soothing place to her. Here she could buy her Patna rice and her pickles without acquiring the distinct personality, these purchases would have marked her with, had she shopped for them in one of those pleasant little shops at the end of Laurel Lane… But inside the sparkling halls of the supermarket where walls of soap and cornflakes hid her from strangers eyes, she could be as eccentric, as individual, as she pleased without being noticed by even a mouse. (Bye-Bye Black Bird 38-39)

बॉम्गार्टनर्स बॉम्बे' उपन्यास में बॉम्गार्टनर जब एक शर्णार्थी के रूप में भारत के शहर बॉम्बे आता है किन्तु पचास साल इस मुल्क में रहने के बाद उसको वो इज्जत और सम्मान प्राप्त नहीं हो पाता जो एक भारतीय नागरिक को होता है इसीकारण वह हीन और कूंठित भावना का शिकार होता है।

> He had lived in this land for fifty years- or if not fifty then so nearly as to make no difference and it no longer seemed fantastic and exotic, it was more utterly familiar now than any

> other landscape on earth. Yet in the eyes of the people he was still strange and unfamiliar to them, and all said Firangi, foreigner. For the Indian sun had not been good to his skin, it had not tanned and roasted him to the color of a native...His hair would not turn dark, it stood out around the bald centre like a white ruff, stained somewhat yellow. Even if he had used hair-dye and bootpolish, what could he have done about his eyes? It was not that they were blue-far from it, his mother, holding him on her knee…had called them 'dark eyes, dunkele Augen, but Indians did not seem to think them so. Their faces in malice… Accepting but not accepted, that was the story of his life, the one thread that ran through it all. In Germany he had been dark- his darkness had marked him Jew, der Jude. In India he was fair-and that marked him the firangi. In both lands, the unacceptable. Perhaps even where his cats were concerned, he was that-man, not feline, not theirs. He nodded thoughtfully, the cats, they always knew. (Baumgartner's Bombay 19-20)

'फॉस्टिंग फीस्टिंग' उपन्यास में उमा पात्र अपने माता-पिता के व्यवहार से हीन और कुंठित अनुभव करती है क्योंकि वह दो बहनें होने के नाते माता-पिता अपने तीसरे बच्चे जो लड़का है। उसके आने पर अपने आपको गौरानुभूत करते है।

> …he would ask the questions about his son's rearing and care, she would supply the answers: all her duties and responsibilities neatly accounted for like so many laundered sheets back from the wash. More than ever now, she was Papa's helpmeet, his consort. He had not only made her the mother of his son. What honour, what status. Mama's chin lifted a little into the air, she looked around her to make sure

> everyone saw and noticed. She might have been wearing a medal. (Fasting, Feasting 31)

मनोवैज्ञानिक युंग के वैयक्तिक चेतना, समस्त चेतना, अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व के सिद्धांत को अलोच्य उपन्यासों में देखा जा सकता है। 'शेखर: एक जीवनी' का शेखर पात्र जो ईश्वरीय सत्ता को नहीं मानता और अपनी बहन सरस्वती से क्षण की चेतना के बारे में बात करता हुआ चेतन्य हो उठता है और कहता है,

> ...कितने मूर्ख हैं हम। क्षण में ही जो युग-युग बीत जाते हैं और युगों तक जो क्षण वैसा ही बना रहता है, उसको अनुभव से मापने की समर्थ्य क्या घड़ियों में है?...दोनों चुप हैं। निश्चल हैं, जीवन खड़ा है और खड़े होने में ही कितनी तीव्र गति से भागा जा रहा है, न आगे न पीछे, किन्तु एक नाम-हीन अपरिमेय दिशा में...रात इतनी अतिशय सुन्दर है कि शेखर उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं सोच सकता। उसकी इस अवर्णनीय सुन्दरता ने, विशेषणहीन रात्रिता ने, यह प्रमाणित कर दिया है कि ईश्वर नहीं है, क्योंकि भूख और लड़ाई बनाने वाला कौन-सा ऐसा ईश्वर हो सकता है जो इतनी सुन्दरता बना सके? और यदि वह ईश्वर ने नहीं बनाई तो बाकी संसार ही क्यों उसकी कृति है?...(शेखर: एक जीवनी भाग एक 92)

अन्तर्मुखी शेखर के साहित्य के सम्बन्धी विचार जब वह अकेला बैठ लिखने का प्रयत्न करता है जब शशि उसके साहित्यकार बनने के बारे में जानती है और अपनी प्रतिक्रिया देती है। उसे वह बहुत ही गहन मन से सोचता है कि साहित्य अपनी भावनाओं को दिखाने का साधन मात्र ही होता है जिससे व्यक्ति विशेष को सुख की अनुभूति होती है।

> ...हाँ, साधन तो है, पर साधन किस चीज़ का? क्या उसका ध्येय घटिया है, दूषित है? साहित्य साहित्य के लिए है, स्वान्तः सुखाय है, पर क्या ध्येय की साधना स्वान्तः सुखाय नहीं है? लक्ष्य एक विशेष प्रभाव नहीं

> होना चाहिए, लक्ष्य होना चाहिए केवल सौंदर्य, क्योंकि प्रभाव की खोज में सौंदर्य ओझल हो जाएगा। पर क्यों? सौंदर्य देखकर ही तो इतर वस्तु को उसमें ढलने की प्रेरणा मिल सकती है? लोक-कल्याण की भावना से अलग सौंदर्य क्या हो भी सकता है? एकाएक उसे शशि का प्रश्न याद आया, 'साहित्य का मोह करोगे कि उद्देश्य का?' मोह वह किसी का नहीं करेगा, क्योंकि जब तक दृष्टि उद्देश्य को विमल और निष्काम एकाग्रता से देखती रहेगी, तब तक एक निष्कलुष सौंदर्य को ही देखेगी, जब निष्ठा नहीं रहेगी तब यह भी कहाँ कहा जा सकेगा कि उद्देश्य स्पष्ट है? (शेखर: एक जीवनी भाग दो 121)

'नदी के द्वीप' उपन्यास में युंग का अन्तर्मुखी सिद्धांत भुवन के माध्यम से सिखाई पड़ता है, जब वह रेखा के प्रति अपने प्रेम से डर अनुभव करता है,

> ...और वह? क्यों रेखा की ओर से ही सोच रहा है, क्यों नहीं अपनी ओर से सोचता? वह-वह क्या चाहता है, क्या देना चाहता है, क्या वह रेखा को चाहता है? प्यार करता है? नकारात्मक उत्तर उसके भीतर से नहीं उठता, लेकिन क्यों नहीं सहज स्वीकारी उत्तर आता, क्यों वह स्तब्धता है... सुन्दर से सुन्दरतम...चरम अनुभूति... लेकिन तुम में अगर सौंदर्य की चरम अनुभूति है, भुवन, तो डर कैसा? डर केवल सुन्दर में अविश्वास है। (नदी के द्वीप 40)

> हमें क्यों नहीं कुछ? जो हमारे भीतर नहीं है वह हम बाहर कैसे दे सकते हैं- कैसे देना चाह सकते हैं? खुली, निखरी हुई, स्निग्ध, हँसती धूप-मैं बाहर उसकी कल्पना करती हूँ तो वह मेरे भीतर भी खिल आती है और मैं सोच सकती हूँ कि मैं उसे औरों को दे सकती हूँ। नहीं तो- कितना ठंडा अँधेरा होता है उसके भीतर, जिसे मरना है और सिवा मरने के और कुछ नहीं करना है। (अपने-अपने अजनबी 6)

अजय शर्मा के उपन्यास 'चेहरा और परछाई', 'खुली हुई खिड़की', 'नौं दिशाएँ' और 'शहर पर लगी आँखें' में युंग का समस्त चेतना और वैयक्तिक चेतना सिद्धांत दिखाई पड़ता है। जब विपिन नाम का पात्र मुम्बई में कुछ बनने के लिए आने वाले हर नौजवान को अपनी राहू-केतु की दशाओं में उलझाकर उनको वापस घर भेजने की पूर्ण कोशिश करता रहता है ताकि वह डरकर वहाँ से वापस अपने माता-पिता के पास चले जाएं। 'खुली हुई खिड़की' उपन्यास में अमिता पात्र अपने पति की मृत्यु के पश्चात अपने आपको हीन समझती है क्योंकि पति के जाने के बाद एक-एक रिश्ता उससे छूटता जाता है। 'नौं दिशाएँ' उपन्यास में रजनी अपने पति संजीव को अपने वश में करने के चक्र में अपनी गृहस्थी को ही बिगाड़ बैठती है। डॉक्टर पात्र के समझाने के पश्चात वह हीनता का भाव अनुभव करती है।

> ...मैं तो इसलिए कहता हूँ कि यहाँ आने वाला हर नया स्ट्रगलर मेरी बातें सुनकर दहशत में आ जाए और अपने घर लौट जाए, क्योंकि घर छोड़ने का ग़म कुछ समय के बाद हर चीज़ के ऊपर हावी होने लगता है।...हो सकता है कि मेरी चोट से माँ-बाप वापस मिल जाएँ। (चेहरा और परछाई 38)

> धीरे-धीरे रिश्तों के प्रति मेरा मोहभँग होने लगा। मुझे लगा कि एक ही इन्सान के ज़िन्दा रहने से सभी रिश्ते कायम हैं। सभी एक-दूसरे के साथ मिलकर एक कड़ी में बँधे हैं, जो मिलकर एक चेन का रूप धारण किए हुए हैं। अचानक एक कड़ी निकलने से चेन का वजूद खत्म हो जाता है। मुझे लगता है कि हर रिश्ते की गरिमा कम हो गई है। (खुली हुई खिड़की 98)

> …देखिए भाभी जी, आपने शिकंजे को इतनी ज़ोर से कसा आखिर वह शिकंजा ही टूट गया। आपका समझाया हुआ किस अर्थ आया? आपकी चालाकी किस काम आई? मुझे लगता है कि चालाकी में एवं होशियारी

> में एक हल्की सी लकीर होती है जिसे पहचानने की जरूरत होती है। आप जरूरत होती है। आप ज़रूरत से ज्यादा चालाक बन गई जिससे आपका घर बिखर गया। अगर आप ज़रा-सी होशियारी से काम लेतीं तो हो सकता है ये दिन जो आज आप देख रही हैं देखने को न नसीब होते। (नौं दिशाएँ 90)

> अरे भाई, यह तो दुनिया का दस्तूर है कि हर बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। देखा नहीं हमारे इराक का क्या हाल है। जिस तरफ नज़र घुमाकर देखो, विदेशी कम्पनियाँ काम करती नज़र आ रही हैं। रही बात तेल की तो वह तेल ही हमारी जान का दुश्मन बन गया है। पूरी दुनिया की नज़रें इराक पर टिकी हुई हैं। तरह-तरह के जाल बिछाने में बड़ी ताकतें कभी नहीं चूकती। खून-पसीना हम लोग बहाएँगे, उस पर लगे फल कोई खाएगा। (शहर पर लगी आँखें 15)

'अकाश का सच' उपन्यास देखा जाए तो पत्रकारिता में आजकल चल रहे सच को बयान करता है किन्तु कुछेक पात्रों के माध्यम से युंग के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत अन्तर्मुखी व्यक्तित्व भी सामने आता है जब एक पत्रकार अपनी माँ की ज़िन्दगी के बारे में बताता हुआ कहता है,

> मैंने अपने कानों से माँ को यह कहते हुए सुना था, 'हे भगवान! तुम्हें साक्षी मानकर कहती हूँ कि ज़िन्दगी में ऐसा पति किसी दुश्मन को भी न देना और ऐसा बाप...। मुझे बल देना कि इस जन्म में इसका हर जुल्म बर्दाश्त कर सकूं और अगले जन्म में न... भगवन न... मुझे क्षमा करना। (अकाश का सच 71)

'बसरा की गलियाँ' और 'काल-कथा' उपन्यास में युंग का समस्त चेतना का सिद्धांत युद्ध के माध्यम से दिखाई पड़ता है कि किस प्रकार युद्ध एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के खिलाफ कर देता है जिसमें सिर्फ आम आदमी ही पीसता हुआ दिखाई पड़ता है।

> ...युद्ध में वंश बदल जाते हैं, पीढ़ियाँ बदल जाती हैं। यहाँ तक कि नस्लें और कौमें भी बदल जाती हैं। सच बताऊँ तो कभी-कभार मुझे लगता है कि मैं इराक में रहता हूँ तो इराकी हूँ, लेकिन मेरा बाप कहाँ का था, पता नहीं। कभी अपने चेहरे को गौर से निहारता हूँ तो लगता है कि मेरा चेहरा किसी एशियन से मिलता है। जब अपने रंग और भूरे बालों को देखता हूँ तो कुछ और ही पाता हूँ। इसलिए मेरा मानना है हम सब उस अल्लाह के बंदे हैं और कर्म करना हमारा फर्ज है। कभी जरूरत पड़े तो धर्म के नाम पर नहीं, इंसानियत के नाम पर शहीद होना चाहिए। (बसरा की गलियाँ 68)

'काल-कथा' उपन्यास में डॉक्टर पात्र अपने मौहल्ले में होने वाली जीव हत्या पर लोगों को सचेत करते हुए युंग के समस्त चेतना सिद्धांत को प्रतिपादित करते दिखाई पड़ते हैं। 'कागद कलम न लिखणहार' उपन्यास में सम्पादक किस प्रकार अपने स्वार्थ के लिए लोगों का इस्तेमाल करते है, लेखक उनके माध्यम से समस्त चेतना के सिद्धांत को दर्शाते हुए दिखाई पड़ते हैं।

> ...इंसान अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए मासूम जानवरों की बलि दे देता है। उसका बस चले तो शायद इंसान को कभी न छोड़े।...पुजारी जी मुझे नहीं लगता कि कोई भी भगवान किसी की बलि देने पर खुश होते होंगे। यह तो जीव हत्या है और आप पर मुकदमा दायर हो सकता है। फिर वैसे भी इन बेजुबान मेमनों ने आपका क्या बिगाड़ा है? न किसी को काटते हैं और न ही किसी को कुछ कहते हैं। शायद इसीलिए आप इनकी बलि देते हैं। अगर कहते होते, तो आपको पास फटकने भी न देते। शेर को हाथ लगाकर दिखाइए। यह नइंसाफी है। भगवान ऐसा करने पर कभी खुश नहीं हो सकते। (काल-कथा 15)

> स्साला लड़कीबाज और दारूबाज तो है ही। मैं तो आपसे हमेशा कहता था कि ऐसे लोगों का कोई ईमान नहीं होता और यह लोग भरोसा करने के काबिल नहीं होते। ये लोग विश्वास के पात्र भी नहीं होते। ये लो आज सारी बाते एक ही बार में साबित हो गई। (कागद कलम न लिखणहार 67)

'वॉयस्स इन द सिटी' उपन्यास में मनीषा पात्र के माध्यम से कलत्ता शहर युंग के वैयक्तिक चेतना के सिद्धांत को दर्शाता है कि किस प्रकार भीड़ भरे शहर में रह रहे लोगों की ज़िन्दगी व्यतीत होती है।

> I am so tired of it, this crowd. In Calcutta is everywhere. Deceptively, it is a quite crowd-passive, but distressed. Till there is reason for anger and then a sullen yellow flame of bitterness and sarcasm starts up and it is vicious and mordant...This boil erupts, every now and then, now that the weather is so hot, the heart so parched. (Voices In The City 118)

'क्रॉय द पीकॉक' उपन्यास में माया और गौतम पति पत्नी के रूप में नखुश दिखाई पड़ते है। माया युंग के वैयक्तिक चेतना के सिद्धांत को दर्शाती है। 'क्लियर लाइट ऑफ डे' उपन्यास में बिम पात्र अपने भाई राजा के द्वारा उनको छोड़कर शादी कर दूसरी जगह रहने पर, दिल्ली की लड़कियाँ क्या चाहती है उसके बारे में युंग द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत अन्तर्मुखी सिद्धांत को दर्शाता है। 'फॉयर ऑन द माउटेन' उपन्यास में नंदा कौल पात्र के माध्यम से एक औरत का अकेले रहना समाज को किस प्रकार खटकता है उसके बारे में समस्त चेतना को दर्शाता है कि किस प्रकार एक अकेली औरत को समाज को खुश करने के लिए क्या-क्या करना पड़ता है। किन्तु नंदा कौल पात्र इसकी निखेदी करते हुए दिखाई पड़ती है।

> We belonged to two different worlds; his seemed the earth that I loved so, scented with jasmine, colored with liquor, resounding with poetry and warmed by amiability. It was mine that was hell. (Cry, the Peacock 102)

> The wives come sometimes but soon go back to their families in disgust. Women like change, you know…the wives wanted the new life, they wanted to be modern women. I think they wanted to move into their own separate homes, in New Delhi, and cut their hair short and give card parties, or open boutiques or learn modeling. They can't stand our sort of Old Delhi life- the way the Misras vegetate here in the bosom of the family. (Clear Light of Day 230)

> When a woman lives alone, her house should be extremely dilapidated, the mud wall should be falling to pieces, and if there is a pond, it should be overgrown with water plants. It is not essential that the garden be covered with sage brush, but weeds should be growing through the sand in patches, for this gives the place a poignantly desolate look. I greatly dislike a woman's house when it is clear she has scurried about with a knowing look on her face, arranging everything just as it should be, and when the gate is kept tightly shut. (Fire on the Mountain 29)

'इन कस्टडी' उपन्यास में बिम पात्र के माध्यम से समाज और वैयक्तिक चेतना का सिद्धांत दिखाई पड़ता है। जहाँ लड़कों को ही पिता के अगले स्थान पर देखा जाता है किन्तु असलियत में लड़के अपनी ज़िम्मेदारियों से भागकर सिर्फ अपने स्वार्था का जीवन व्यतीत करना चाहते है। उनके मुकाबले लड़कियाँ पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाती हैं।

> Social conditioning definitely has a big role to play in their desire to dominate. Right from the very beginning, the patriarchal society, he is brought up in, implants an inherent sense of superiority and gender bias in the men. (In Custody 9)

'वेयर शैल वी गो इन दिस सम्मर' उपन्यास में मनीषा पात्र के माध्यम से युंग के अन्तर्मुखी सिद्धांत को प्रतिपादित सिद्धांत दर्शाता है कि किस प्रकार व्यक्ति अन्तरात्मा से नखुश होते हुए भी इस समाज की दिखावे की ज़िन्दगी को जीना पड़ता है।

> This was all there is to life, that life would continue thus, inside this small enclosed area, with these few characters, churning around and then past her, leaving her always n this grey, dull-lit, empty shell. (Where Shall We go in this summer? 36)

'बॉय-बॉय ब्लैक बर्ड' उपन्यास में युंग के अन्तर्मुखी सिद्धांत को देखा जा सकता है। जहाँ देसी और विदेशी पत्नियों के बारे में दो मित्र आपस में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए दिखाई पड़ते हैं। वहीं दूसरी ओर 'बॉम्गार्टनर बम्बे' उपन्यास में मुस्लिम समाज समस्त चेतना सिद्धांत को दर्शाता है। जहाँ हिन्दु और मुस्लिम लोगों के बारे बताया गया है कि लोग किस प्रकार धर्म के नाम पर इंसानियत भूलकर अपने इष्ट को खुश करने में लगे हुए हैं। अगर गलती से किसी एक धर्म का व्यक्ति दूसरे धर्म के व्यक्ति के साथ गर्मा-गर्मी करे तो खून की नदियाँ बहाने में भी गुरेज नहीं किया जाता।

> Two Indian, two English women frozen in the stances of players on the stages who had not been told what to do next. Somewhere in a locked closet, a slab of marble like a black grave stone awaiting and engraving a grave, a bunch of flowers. (Bye-Bye, Blackbird 188)

> Naturally the area around the mosque was considered the 'Muslim' area, and the rest 'Hindu'. This was not strictly so and there were certainly no boundaries or demarcations….so that pigs were generally kept out of the vicinity of the mosque and cows never slaughtered near a temple. Once a year, during the Mohurram procession of tazias through the city, police sprang up everywhere with batons, sweating with a sense of responsibility and heightened tension, intent on keeping the processions away from the temples and from hordes of homeless cows of from groups of gaily colored citizens who unfortunately often celebrated Holi with packets of powdered colors and buckets of colored water on the same day as that of the ritual mourning. If these clashed, as happened from time to time, knives flashed, batons failed and blood ran. For a while tension was high, the newspapers- both in Hindi and Urdu- were filled with guarded reports and fulsome editorials on India's secularity while overnight news sheets appeared with less guarded reports laced with threats and accusations. (Baumgartner's Bombay 21)

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय में तुलनात्मक मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। वैसे तो पूर्ण शोधकार्य ही मनोवैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन पर अधारारित है। इस अध्याय में फ्रायड, एडलर और युंग द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को विश्लेषित कर अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यासों में समान्यता और असमान्यता को देखा गया है। तीनों लेखकों की जिन कृतियों में मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं को शोधकार्य के अनुरूप देखा गया, उन्हीं के आधार पर इनकी तुलना की गई है।

सबसे पहले अगर फ्रायड की बात करें तो फ्रायड ने काम के अतिरिक्त कई सारे- काम, अकेलापन, विस्थापन, कुंठा, प्रतीकीकरण, तादात्मय, चेतन-अवचेतन इत्यादि मनोवैज्ञानिक सिद्धांत दिए किन्तु फ्रायड को काम के सिद्धांत का प्रतिपादिक अधिक माना जाता है। लेखकों के उपन्यासों में इनमें से कई फ्रायड के सिद्धांत देखे गए। अगर अज्ञेय की बात करें तो अज्ञेय के दो उपन्यासओं 'शेखर: एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' में फ्रायड के काम का सिद्धांत तो सीधे-सीधे ही परिलक्षित होता है। तीसरे उपन्यास में भी काम का सिद्धांत दिखाई पड़ता है किन्तु थोड़ा कम लेकिन वहाँ अकेलापन और कुंठा ज्यादा दिखाई देती है। वहीं अजय शर्मा के उपन्यासों में काम का सिद्धांत बहुत कम दिखाई पड़ता है। 'बसरा की गलियाँ', 'खुली हुई खिड़की', 'नौं दिशाएँ' और 'काल-कथा' उपन्यास में कहीं-कहीं

एडलर के सिद्धांतों की बात करें तो इन्होंने आत्म-सम्मान और हीनता के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। अज्ञेय के उपन्यासों को देखा जाए तो 'शेखर: एक जीवनी', नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' में एडलर के हीनता और आत्म-सम्मान के सिद्धांत को भी देखा जा सकता है। जैसे कि फ्रायड ने भी कहा था कि यदि व्यक्ति के काम की इच्छापूर्ति नहीं हो पाती तो वह अपने आपको समाज में हीन भाव से देखता है। जिसे एडलर ने आगे चलकर प्रतिपादित किया। शेखर, रेखा, योके पात्र हीन भावना के कहीं-न-कहीं शिकार दिखाई पड़ते हैं। अजय शर्मा के उपन्यासों को बात करें तो उनके पहले उपन्यास 'चेहरा और परछाई' से लेकर 'समन्दर और सफ़ेद गुलाब' तक पात्र काम सिद्धांत से ज्यादा हीन भावना के शिकार हुए दिखाई पड़ते हैं। वहीं दूसरी ओर अनीता देसाई के उपन्यासों के पात्र भी अज्ञेय के पात्रों की तरह काम और हीन भावना के शिकार ज्यादा दिखाई पड़ते हैं। दोनों के नारी और पुरुष पात्र लगभग एक जैसी ही भावनाओं के शिकार दिखाई देते हैं। किन्तु कई स्थानों पर बिल्कुल भिन्न भी दिखाई देते हैं।

कार्ल गुस्ताव युंग ने वैयक्तिक चेतना, समस्त चेतना और अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। युंग का मानना है कि व्यक्ति के

व्यक्तित्व के दो पहलु होते हैं अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी और इन्हीं के अनुसार अपना व्यवहार लोगों और समाज के सामने प्रस्तुत करता है। यदि व्यक्ति फ्रायड के काम सिद्धांत जैसा अपना अन्तर्मुखी व्यवहार रखता है तो व्यक्ति बाहर से जितना मर्जी सुलझा हुआ दिखाई पड़े एक-न-एक दिन वह अपना अन्तर्मुखी व्यवहार जाने अनजाने समाज के सामने ले ही आता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि व्यक्ति के अन्दर की भावनाएँ अशुद्ध हैं तो वह बाहर से जितना मर्ज़ी अपने आप को शुद्ध विचारों वाला दिखाने का प्रयत्न करे, वह उसमें नकामयाब ही रहेगा। लेखकों के पात्र भी ऐसी कुछ परिस्थितियों से झूझते हुए दिखाई पड़ते हैं। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के पात्र अपनी परिस्थितियों के अनुसार और कभी-कभी प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आप को ढालने का प्रयत्न करते हुए दिखाई पड़ते हैं किन्तु ज्यादातर पात्र असफल ही होते हैं। यदि हम युंग के वैयक्ति चेतना और समस्त चेतना सिद्धांत की बात करें तो लेखकों ने पात्रों के माध्यम से समय-समय पर यह दर्शाया है कि पाठक पात्रों के माध्यम से समकालीन परिस्थितियों को जान और समझ सकें। अजय शर्मा के उपन्यासों की बात करें तो लगभग उनके सभी उपन्यास युंग के इस सिद्धांत से ही प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास तीनों मनोविश्लेषणवादी फ्रायड, एडलर और युंग के सिद्धांतों को देखा जा सकता है। यदि कहें कि ऐसा कहना मुश्किल है तो ऐसा बिल्कुल भी नहीं है क्योंकि तीनों मनोविश्लेषणवादियों के सिद्धांत एक दूसरे सिद्धांतों के आधार पर ही निर्मित होते हैं। फिर भी कहा जा सकता है कि अज्ञेय और अनीता देसाई के उपन्यास ज्यादातर फ्रायड और अजय शर्मा के उपन्यास युंग और कहीं-कहीं फ्रायड के सिद्धांतों से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। किन्तु इसका यह भी आश्य नहीं है कि लेखक सिर्फ किसी एक विद्वान के सिद्धांत से पूर्णतः प्रभावित हैं।

उपसंहार

प्रस्तुत शोधकार्य 'अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा-साहित्य का मनोवैज्ञानिक चिन्तन: एक तुलनात्मक अध्ययन' है। एक मनोवैज्ञानिक शोध होने और तुलनात्मक शोध होने के नाते इस शोध प्रबन्ध के पूर्ण करने के लिए पाँच उद्देश्यों को निश्चित किया गया। जिनके आधार पर सैद्धांतिक पृष्ठभूमि तैयार कर एक विषयानुक्रमणिका को तैयार किया गया। जिसके अन्तर्गत आगमन पद्धति का प्रयोग करते हुए पहला अध्याय सैद्धांतिक पृष्ठभूमि को रखा गया क्योंकि मनोवैज्ञानिक सिद्धांत और उसके बिन्दुओं को अच्छी तरह से समझना और देखना अतिआवश्यक था। जिसके अन्तर्गत मनोविज्ञान का अर्थ, परिभाषाएँ, इतिहास, सम्प्रदाय और मनोविज्ञान की सम्पूर्ण अवधारणा को देखा गया।

दूसरे अध्याय में तीनों लेखकों के उपन्यास साहित्य में सामान्य मनोविज्ञान का अध्ययन किया गया जिसके अन्तर्गत सामान्य मनोविज्ञान का अर्थ, परिभाषाएँ, सामान्य व्यक्तित्व के आधार, संवेदना, यथार्थ एवं आत्म-मूल्याँकन, प्रेम और समर्पण इत्यादि तत्वों को दर्शाया गया है। तीसरे अध्याय में तीनों लेखकों के उपन्यास साहित्य में असामान्य मनोविज्ञान के अर्थ, परिभाषाएँ, असामान्य व्यक्तित्व के लक्षण, क्रोधाभास, ईर्ष्यायुक्त व्यक्तित्व, कुंठा, अन्तर्द्वन्द्व, अकेलापन इत्यादि तत्वों को दर्शाया गया है। चौथे अध्याय में लेखकों उपन्यास साहित्य में नारी मनोविज्ञान, नारी तत्व-प्रेम, त्याग एवं समर्पण इत्यादि गुणों और नारी द्वारा झेली जाने वाली सामाजिक समस्याओं को दर्शाया गया है। प्रस्तुत अध्याय में तीनों लेखकों के उपन्यास साहित्य में नारी मनोविज्ञान को विश्लेषित किया गया है। लेखकों ने अपने साहित्य में नारी के हर पक्ष का बहुत ही स्टीक ढंग से चित्रण किया है फिर चाहे वह पुरुष लेखक हैं या अनीता देसाई। तीनों लेखकों ने पुरुष और नारी पात्रों को पूर्णतः से विश्लेषित किया है। लेखकों ने अपने उपन्यास साहित्य में नारी-जीवन और सामाजिक जीवन से जुड़े कई पक्षों को पूरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। मूल्य सापेक्ष व्यवस्था के अंर्तगत नारी के स्वतंत्र

अस्तित्व की माँग भी की है और सामाजिक व्यवस्था के विकास में नारी की भूमिका की सराहना भी करते हैं। नारी के अन्तरंग का और युगीन परिवेश का सूक्ष्म परीक्षण करने, अनुभूतियों की ईमानदारी अभिव्यक्ति और अद्‌भुत कल्पना-शक्ति के सामर्थ्य के बल पर लेखकों ने उपन्यासों की रचना की है और अपनी सृजनधर्मिता का परिचय दिया है।

पाँचवें अध्याय में लेखकों के उपन्यास साहित्य और कृतियों पर किस तरह के सामाजिक वातावरण का प्रभाव रहा, उसको समाज मनोविज्ञान के माध्यम से दर्शाया गया है। समाज मनोविज्ञान के बिन्दुओं को आधार बनाकर इस शोध प्रबन्ध में लेखकों की कृतियों में देखा जा रहा है कि किस प्रकार लेखकों की लेखनी को समाज मनोविज्ञान ने प्रभावित किया है और किस हद तक कृत्तियों में समाहित हो पाया है। उपन्यासकार अपने समाज से हटकर या कटकर नहीं चल सकता। वे युग जीवन को अपने उपन्यासों में प्रतिबिंबित करता है। इसलिए युग जीवन को साथ लेकर चलता है। इस अध्याय में अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के कथा-साहित्य में समाज मनोविज्ञान के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया गया है।

अध्याय छह में लेखकों की कृतियों पर किस प्रकार मनोवैज्ञानिक प्रभाव होने पर अभिव्यंजना पक्ष में भिन्नता या साम्यता देखी गई, उसको दर्शाने का प्रयास किया गया है। जिसमें यह देखा गया है कि लेखकों ने किस प्रकार अपनी कृतियों में मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं को उजागर किया है। क्योंकि किसी मनोवैज्ञानिक शोध में कला पक्ष को नहीं देखा जाता किन्तु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मनोवैज्ञानिक होने के साथ-साथ एक तुलनात्मक अध्ययन भी है। इसलिए यहाँ लेखकों के देशकाल वातावरण, कथोपकथन शैलियाँ और शिल्पगत प्रयोगों का मनोवैज्ञानिक आधार को देखा गया है कि लेखकों ने अपनी मानसिकता से किस प्रकार के शब्दों और विचारों का चयन किया है। जिससे लेखकों और उनके समाजिक वातावरण और मनोविज्ञान को देखा जा सके। वैसे तो तुलनात्मक प्रबन्ध होने के नाते इसके हर अध्याय में तीनों लेखकों के मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं के आधार पर तुलना की ही गई है किन्तु फिर भी अध्याय सात विशेष रूप से तीनों लेखकों के उपन्यास साहित्य को तीन मनोवैज्ञानियों फ्रायड,

एडलर और युंग के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर तुलना की गई है। अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के पात्र अपनी परिस्थितियों के अनुसार और कभी-कभी प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आप को ढालने का प्रयत्न करते हुए दिखाई पड़ते हैं किन्तु ज्यादातर पात्र असफल ही होते हैं। यदि हम युंग के वैयक्ति चेतना और समस्त चेतना सिद्धांत की बात करें तो लेखकों ने पात्रों के माध्यम से समय-समय पर यह दर्शाया है कि पाठक पात्रों के माध्यम से समकालीन परिस्थितियों को जान और समझ सकें। अजय शर्मा के उपन्यासों की बात करें तो लगभग उनके सभी उपन्यास युंग के इस सिद्धांत से ही प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के उपन्यास तीनों मनोविश्लेषणवादी फ्रायड, एडलर और युंग के सिद्धांतों को देखा जा सकता है। यदि कहें कि ऐसा कहना मुश्किल है तो ऐसा बिल्कुल भी नहीं है क्योंकि तीनों मनोविश्लेषणवादियों के सिद्धांत एक दूसरे सिद्धांतों के आधार पर ही निर्मित होते हैं। फिर भी कहा जा सकता है कि अज्ञेय और अनीता देसाई के उपन्यास ज्यादातर फ्रायड और अजय शर्मा के उपन्यास युंग और कहीं-कहीं फ्रायड के सिद्धांतों से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। किन्तु इसका यह भी आश्य नहीं है कि लेखक सिर्फ किसी एक विद्वान के सिद्धांत से पूर्णतः प्रभावित हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का पहला उद्देश्य साहित्य, समाज तथा मनोविज्ञान के घनिष्ठ सम्बन्ध को प्रदर्शित करना। प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति देखा जाए तो पूर्ण शोध-प्रबन्ध में ही हो रही है किन्तु अध्याय पाँच में इसकी स्पष्ट पूर्ति को देखा जा सकता है। प्रत्येक विषय का अपना एक महत्त्व होता है किन्तु फिर भी आन्तरिक रूप से प्रत्येक विषय का दूसरे विषय के साथ अप्रत्यक्ष रूप से कोई न कोई सम्बन्ध बना रहता है। कोई भी व्यक्ति जब किसी विशेष विषय के बारे में अध्ययन करता है तो दूसरे विषयों से कट जाता है और उसे महसूस होता है कि अमुक विषय के बारे में उसे कोई जानकारी नही है। परन्तु वास्तव में अप्रत्यक्ष रूप से वह दो, तीन या इससे भी अधिक विषयों का अध्ययन कर रहा होता है। साहित्य के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। अक्सर साधारण जन से सम्बन्धित लोग हिन्दी विषय को केवल बोल-चाल या

सरकारी कार्यों की दफतरी भाषा के रूप में लेते हैं। साहित्य से सम्बन्धित कवि, लेखक या आलोचक वर्ग के लोग इसे अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम या इसे समाज के दर्शन का प्रतिबिम्ब मानते हैं। जबकि साहित्य में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए यथार्थता के साथ-साथ कल्पना का भी सहारा लेना पड़ता है। यथार्थता के चित्रण के लिए उसे लयबद्ध करने के लिए समाज में विचरित लोगों की भावनाओं को समझना पड़ता है, लोगों के व्यवहार को पढ़ना पड़ता है, लोगों की अनकही बातों को शब्दावली में पिरोना पड़ता है, लोगों के व्यवहार को समझ उसकी समीक्षा करनी पड़ती है, उसके व्यवहारिक कारणों को समाजिक असर से जोड़ना पड़ता है तथा अपनी कल्पनाओं भी पंख लगाने पड़ते हैं। इन सभी बातों से पता चलता है कि यह अप्रत्यक्ष रूप से मनोविज्ञान विषय तथा उसकी शाखाओं जैसे समान्य-मनोविज्ञान, असमान्य-मनोविज्ञान, समाज-मनोविज्ञान, शिक्षा-मनोविज्ञान इत्यादि का साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्धहै। इस शोध का मुख्य उद्देश्य ही यही है कि इस शोध के माध्यम से साहित्य, समाज एवं मनोविज्ञान का आपसी सम्बन्ध उदघाटित किया जा सके और इससे पूर्णतः करने का प्रयास किया गया है।

इस शोध-प्रबन्ध का दूसरा उद्देश्य मनोवैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित लेखन की सम्भावनाओं को स्पष्ट करना। इस उद्देश्य की भी पूर्ति पूर्ण शोध-प्रबन्ध में देखी जा सकती है क्योंकि शोध का मुख्य बिन्दु ही मनोवैज्ञानिक विचारधारा से जुड़ा हुआ है। आलोच्य तीनों लेखकों के कथा साहित्य को इन्हीं विचारधाराओं से प्रभावित हुए दर्शाना और मनोवैज्ञानिक विचारधारा के अनुरूप विश्लेषित किया गया है।

शोध का तीसरा उद्देश्य लेखकों के कथा साहित्य में छिपे मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं से अवगत कराना। इसी आधार पर शोध की विषयानुक्रमणिका भी तैयार की गई ताकि मनोविज्ञान के विभिन्न पक्षों का अध्ययन पूर्णतः किया जा सके। साहित्य में ऐसे अनेक बिन्दु हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध मनोविज्ञान से होता है। जैसे कहानी में जब हम किसी घटना को उठाते हैं तो हम उसमें किन्ही दो या तीन पात्रों के आपसी व्यवहार का क्रिया-कलाप किसी एक बिन्दु पर दिखाते हैं। उसमें हम पात्रों की मानसिक स्थिति,

उनकी बुद्धि, उनके आत्म, उनके भय, उनके सीखने या समझने की शक्ति इत्यादि को स्पष्ट कर रहें होते हैं। जब हम किसी सामाजिक घटना को कल्पना मिश्रित करके पेश करते हैं तो मुख्य रूप से हम उसमें सामाजिक मनोविज्ञान का चित्रण कर रहे होते हैं। कई बार किसी भी एक पात्र की मानसिक कुंठा या हताशा को मूल रूप बनाकर उसके व्यवहार का दूसरे पात्रों के साथ समन्वय बना देते हैं। वैसे तो आजकल प्रत्येक आधुनिक मनुष्य ऐसी कहानी या उपन्यास पढ़ते समय स्वयं को मुख्य पात्र के रूप में रखता है, क्योंकि आधुनिक दौर मानसिक परेशानी व द्वंद्व का दौर है, तो असल में हम पाठक के समक्ष मनोविश्लेषणात्मक स्थिति का प्रदर्शन कर रहे होते हैं। इसी प्रकार ढेरों ऐसे और भी बिन्दु हिन्दी साहित्य में भरपूर मात्रा में मौजूद हैं, जिनका विवरण सामान्य पाठक तक पहुँचाना शोध का उद्देश्य बना है।

शोध का चौथा उद्देश्य साहित्य में उद्धृत मनोविकारों को दूर करने के साधनों को स्पष्ट करना। इस उद्देश्य की पूर्ति तीसरे अध्याय असामान्य मनोविज्ञान के माध्यम से की गई है। क्योंकि पात्र अपने विकारों को असामान्य क्रिया विधियों के द्वारा ही व्यक्त करते हैं और यह होती क्यों हैं इसका भी कथा-साहित्य के माध्यम से पता लगाया गया है और दूर कैसे किया जा सकता है उसका भी समाधान दिया गया है। जैसे कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि साहित्य तो मानव-कल्याण हेतु उठाया एक ऐसा विशेष कदम है जो अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक यथार्थता तथा आदर्शवाद पेश करता आया है। जब भी किसी साहित्यकार ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि को ध्यान में रखते हुए अपनी कलम चलायी है तो पाठकगण को सदैव ही अपना अस्तित्व नज़र आया है और धीरे-धीरे ऐसी रचनाओं के गहन अध्ययन से उसके मनोविकारों का दूर होना कदाचित सम्भव है।

शोध का पाँचवाँ उद्देश्य स्वस्थ समाज-निर्माण एवं संस्कार का निर्देशन करना। इसकी पूर्ति तो पूर्ण शोध-प्रबन्ध को करके ही की गई है। कि किस प्रकार लेखक अपनी कृतियों के माध्यम से समाज को परिष्कृत करने की कोशिश लगातार करता रहता है। जैसे-जैसे समाज ने तरक्की की है, सुख-सुविधाओं का प्रचलन शुरू हुआ है वैसे ही

मानसिक परेशानियों का दौर भी चला है। आज व्यक्ति पदार्थवादी सोच के साथ पैसे कमाता हुआ सुख की आस करता है, किन्तु उतना ही दुखी होता है। उसकी शारीरिक व मानसिक परेशानियां बढ़ती जा रही है। ऐसे हालात में साहित्यिक दृष्टि से भावी लेखकों का यह फर्ज और कर्म बन जाता है कि वह अपनी सोच को मनोविश्लेषणात्मक बनाये और इसी सोच के साथ ही, ऐसे उद्देश्यों को ध्यान में रखकर इस प्रकार की रचना करें जिनके अध्ययन मात्र से जो पाठक वर्ग समाज में मनोविकारों से ग्रस्त हैं, उनको अपने विकारों के प्रति स्थिति स्पष्ट हो और उसके निवारण हेतु वह अग्रसर हों। लेखक भी अपनी भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ पाठक की मानसिक स्थिति पढ़े एवं एक अच्छे मार्ग-दर्शक के रूप में प्रस्तुत हों।

इस प्रकार के विषय अध्ययन से केवल एक विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किया गया है कि अज्ञेय, अजय शर्मा और अनीता देसाई के साहित्य में से मनोविज्ञान के प्रत्येक पहलू को खोज निकाला गया जिससे यह ज्ञात हुआ कि किस प्रकार उन्होंने व्यक्ति की तथा घटना की मानसिक स्थितियों को समझा और किस प्रकार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक कल्याण हेतु मानसिक स्थिति में सुधार लाने की कोशिश की। उन्होंने मानसिक द्वंद्व के किन-किन पहलूओं को उठाया है। वर्तमान समाज में किस प्रकार के विभिन्न व्यक्तियों ने अपने व्यवहार में क्या-क्या तथा किस प्रकार के बदलाव किए हैं, वह वर्तमान समाज में पूर्णतः प्रासंगिक पाए गए हैं इस प्रकार के व्यवहार को अगर आधार बनायें तो किस प्रकार के भावी साहित्य लेखन की सम्भावनाएँ हैं तथा समकालीन साहित्य में व्यक्ति का मन व व्यवहार प्रभावित होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

अज्ञेय, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. शेखर एक जीवनी भाग एक. राजकमल प्रकाशन, 2015.

---. अपने-अपने अजनबी. प्रगति प्रकाशन, 1961.

---. नदी के द्वीप. प्रगति प्रकाशन, 1952.

---. शेखर एक जीवनी भाग दो. राजकमल प्रकाशन, 2015.

देसाई, अनीता. इन कस्टडी. रेन्डम हाउस इंडिया, 2007.

---. क्लियर लाइट ऑफ डे. रेन्डम हाउस इंडिया, 2007.

---. जर्नी टू इथाका. रेन्डम हाउस इंडिया, 2009.

---. द आर्टिस्ट आफ डिसअपियरेंस. रेन्डम हाउस इंडिया, 2012.

---. द ज़िग्ज़ेग वे. रेन्डम हाउस इंडिया, 2004.

---. फायर ऑन द माऊटेन. रेन्डम हाउस इंडिया, 2008.

---. फॉस्टिंग, फीस्टिंग. रेन्डम हाउस इंडिया, 2008.

शर्मा, अजय. अकाश का सच. आस्था प्रकाशन, 2003.

---. कागद कलम न लिखणहार. आस्था प्रकाशन, 2016.

---. काल-कथा. आस्था प्रकाशन, 2006.

---. खुली हुई खिड़की. मनप्रीत प्रकाशन, 2002.

---. चेहरा परछाई. मनप्रीत प्रकाशन, 2001.

---. नौ दिशाएं. साहित्य सिलसिला प्रकाशन, 2011.

---. बसरा की गलियां. आस्था प्रकाशन, 2003.

---. भगवा. दीपक पब्लिशर्ज़, 2014.

---. शहर पर लगी आंखे. के.के पब्लिकेशन्स, 2010.

---. समंदर और सफ़ेद गुलाब. आस्था प्रकाशन, 2017.

सहायक ग्रन्थ

हिन्दी ग्रन्थ

अग्रवाल, पद्मा. मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियायें. मनोविज्ञान प्रकाशन, 1955.

अज्ञेय, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. आत्मनेपद. भारतीय ज्ञानपीठ, 1960.

---. इत्यलम. प्रतीक प्रकाशन, 1946.

उपाध्याय, देवराज. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान. साहित्य भवन प्राइवेट मिलिटेड, 1956.

एंगेल्स, फेड्रिक. परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति. पब्लिशर्स मास्को, 1948.

कपाड़िया, कुंदनिका. दिवारों के पार अकाश. साहित्य अकादमी, 1994.

गाँधी, महात्मा. विवाह समस्या अर्थात नारी जीवन. सरस्वती सदन, 1934.

गौड, गणेश दत्त. आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन. सरस्वती पुस्तक सदन, 1956.

जैन, अरविंद. औरत होने की सजा. विशाल पेपरबैक प्रकाशन, 1995.

जैन, जसबीर. फेमिनाइजिंग पालिटिकल डिसकोर्स वुमैन एंड द नावल इन इंडिया 1857-1907. रावल पब्लिकेशन, 1997.

जोशी, इलाचन्द्र. विश्लेषण. शारदा प्रकाशन, 1954.

तिवारी, रामकलप. मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ. अग्रवाल प्रकाशन, 2012.

दिनकर, रामधारी सिंह. साहित्य और समाज. लोकभारती प्रकाशन, 2007.

द्विवेदी, रमेश नंदन. आंदओलनों का समाजशास्त्र. वाराणसी प्रकाशन मंदिर, 1993.

धीर, कुलदीप सिंह. तुलनात्मक साहित्य-शास्त्र. पंजाबी युनिवर्सिटी, 1990.

नागेन्द्र, डॉ. विचार और अनुभूति. नेश्नल पब्लिशिंग हाउस, 1965.

---. डॉ. विचार और विश्लेषण. नेश्नल पब्लिशिंग हाउस, 1966.

नाहिद, किश्वर. वुमैन: मिथ एडं रीयलटीज. संग-ए-मील पब्लिकेशन, 1993.

नैयर, रेणुका. नारी के बदलते रूप. अभिषेक पब्लिकेशन, 1990.

पाडेण्य, रामप्रसाद. मनोविज्ञान का इतिहास. राजकमल प्रकाशन, 2012.

प्रभाकर, ओम. अज्ञेय का कथा सहित्य. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1966.

बोहरा, आशारानी. नारी शोषण आईने और आवास. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1982.

भण्डारी, चन्द्रराज. समाज मनोविज्ञान. सस्ता साहित्य मंडल, 1974.

भाटिया, हंसराज. असामान्य मनोविज्ञान. राजकमल प्रकाशन, 1959.

माथुर, एस.एस. समाज मनोविज्ञान. विनोद पुस्तक मन्दिर, 1972.

मारिस, पाम. लिट्रेचर एंड फेमिनिज्म एन इंट्रोडक्शन. ब्लेकवेल पब्लिशर्स, 1993.

मिश्र, ब्रह्मदेव. अज्ञेय और उनका उपन्यास संसार. लोकभारती प्रकाशन, 1992.

मिश्र, सरस्वती. भारतीय स्त्रियों की परिस्थिति. शारदा पब्लिकेशिंग हाउस, 1996.

मुकर्जी, रविन्द्र नाथ. समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा. लोकभारती प्रकाशन, 1997.

वाजपेयी, नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य. भारती भण्डार, 2013.

शर्मा, आचार्य ब्रह्मनारायण. हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन. नवयुग ग्रन्थागार, 1960.

शर्मा, रामनाथ. असामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा. केदारनाथ रामनाथ, 1980.

शर्मा, रेखा. कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान. मिलिंद प्रकाशन, 1995.

शुक्ल, उमा. भारतीय नारी अस्मिता की पहचान. लोकभारती प्रकाशन, 1994.

सिंह, अरूण कुमार. मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोधविधियाँ. मोतीलाल बनारसी दास, 2010.

सिंह, सतिन्दर. तुलनात्मक भारती साहित्य. गुरू नानक देव युनिवर्सिटी, 1990.

सिंहल, बैजनाथ. शोध स्वरूप एवं मानक व्यवहारिक कार्यविधि. वाणी प्रकाशन, 1999.

अँग्रेजी ग्रन्थ

Belliappa, Meena. Anita Desai: A study of her fiction. Writers Workshop Publication, 1971.

Bonner, Humbert. Social Psychology. Surasia Publishing House, 1953.

Dalmia, Yashodhar. Interview with Anita Desai. Times of India, April 29,1979.

Gopal, N.R. A critical study of the novels of Anita Desai. Atlantic Publishers & Distributtors, 2013.

Jain, Jasbir. Stairs to the Attic: The Novels of Anita Desai. Printwell Publishers, 1987.

Naik, M.K. A History of Indian English Literature. Saahitya Akademi, 1982.

Pandeya, P.K. Indian Woman Novelist. Prestige Books, 1991.

Pathania, Usha. The Fiction of Anita Desai and Kamala Markandeya. Kanishka Publishing House, 1992.

Percy, Lubbock. The Craft of Fiction The English Novel. Pelican Book, 1965.

Rao, B. Ramchandra. The Novels of Mrs. Anita Desai: A study. Kalyani Publishers, 1977.

Rene, Wellek. Discriminations. Vikas Publications, 1970.

पत्र-पात्रिकाएँ

पाण्डेय, पद्माकर. नागरीप्रचारणी पत्रिका. त्रैमासिक, नागरीप्रचारणी सभा. अंक-3-4. अक्टूबर 2017 से मार्च 2018.

मडोस्कर, सुजाता. इकानामिक एंड पालिटिकल विकली वुमैन वर्क ऐंड हेल्थ एनइंटरकनेक्टेड वेवकेस आफ इग एंड कास्मेटिक इंडस्ट्री. समीक्षा ट्रस्ट पब्लिकेशन, 25-31 अक्टूबर1997.

सिंह, एम.पी. इकानामिक एंड पालिटिकल वीकली जेंडर ला एंड सेक्सुअल एसल्ट. समीक्षा ट्रस्ट पब्लिकेशन, 15-21मार्च, 1997)

सिंह, राजेन्द्र. आगमित. साहित्य-शोध वार्षिकी. रूपकंवल प्रकाशन. अंक-6. 2016.

कोश ग्रन्थ

www. Shabadkosh.com.

अग्रवाल, गिरिराजशरण. हिन्दी-अंग्रेजी कोश. डायमण्ड पब्लिकेशन, 2006.

बाहरी, हरदेव. पॉकेट हिन्दी शब्दकोश. राजपाल एण्ड सन्ज़, 2001.

मण्डल, विरेन्द्रनाथ. पॉकेट हिन्दी शब्दकोश. ईशान प्रकाशन, 2014.

राबत, हरिकृष्ण. समाजशास्त्र कोश अवधारणाएँ. राबत पब्लिकेशन, 1986.

वर्मा, रामचन्द्र. आदर्श हिन्दी शब्दकोश. भार्गव बुक डिपु, 1970.

परिशिष्ट

डॉ. अजय शर्मा के साथ एक साक्षात्कार

प्रश्न1. सबसे पहले आपने पंजाबी भाषा में लिखा, फिर एक के बाद एक हिन्दी उपन्यास ऐसा क्यों और कैसे ?

उत्तर: पंजाबी साहित्य में साहित्यिक दोस्त होने के नाते हम पंजाबी भाषा में गोष्ठियों का प्रबंध करते थे जिनमें हमेशा यह बात रहती थी कि हमारी पंजाबी की रचना को कोई हिन्दी में अनुवाद करे क्योंकि पंजाबी का क्षेत्र तो पंजाब तक ही रहेगा उस के बाद उसको हिन्दी में अनुवाद करवाना पड़ता था उससे नाम सिर्फ अनुवादक का ही होता था लेखक का नहीं, क्योंकि मैं हिन्दी साईं दास सकूल में पढ़ा हुआ था इसलिए मेरी हिन्दी भाषा पर पकड़ अच्छी थी और इस के बाद फिर मैं 1990 में पत्रकारिता में जुड़ गया सभी कुछ composing, editing, writing computerized हो गया था और मुझे वह अच्छा लगा उस पर कार्य करना अच्छा लगने लगा फिर मेरा हिन्दी की तरफ झुकाव ज्यादा हो गया और thought process भी हिन्दी में ज्यादा अच्छा था उसके बाद फिर मेरा पहला उपन्यास 'चेहरा और पछाईं' आया पंजाबी के लेखक बोलते हैं कि अब हिन्दी में लिखना शुरू कर दिया है पंजाबी में भी लिखो पर मैं कहता हूँ कि अगर कहानी लिखूँगा तो पंजाबी में ही लिखूँगा परन्तु हिन्दी में अब उपन्यास लिखने का mind setup बन गया है तो उपन्यास सिर्फ हिन्दी में ही लिखूँगा।

प्रश्न 2. पंजाबी कहानी छोड़कर हिन्दी उपन्यास में आ गये फिर हिन्दी में कहानी क्यों नहीं ?

उत्तर: कहानी मैंने लिखी ही नही जब तक मेरे अंदर उपन्यास का setup बस उपन्यास ही लिखूँगा वैसे छोटी-छोटी कई कहानियाँ होती है जो उपन्यास में

सम्मिलित हो जाती हैं जसवंत सिंह विरदी कहते है कि जब एक लेखक कहानी लिखता है तो उसका सोचने का ढंग बिल्कुल कहानी की तरह ही बन जाता है यदि कोई कवित किखता है तो कवि की तरह अगर कोई उपन्यास लिखता है तो उपन्यास का plot ही mind में चलता है। इसी कारण 2001 मेरा पहला उपन्यास आया था जिस पर मैं 1997 से काम कर रहा था अब mind setup ही उपन्यास लिखने के लिए बन गया है तो उसी दिशा की ओर लिख रहा हूं हमारे एक अलोचक थे पंजाबी के वे अकसर यह कहते थे कि सौ कविताओं की रचना एक कहानी होती है और सौ कहानियों की रचना एक उपन्यास होता है क्योंकि उपन्यास को निभाना बहुत मुश्किल होता है।

प्रश्न3. लेखन की शुरूआत पंजाबी भाषा से करने के बाद आपने कभी दोबारा पंजाबी में लिखने का नहीं सोचा ?

उत्तर: जो विधा होती है वह अपनी भाषा खुद लेकर आती है और विधा भी अपने आप ही आ जाती है। पिछले साल मैंने पंजाबी में एक नाटक लिखा वो अपने आप ही पंजाबी में लिखा गया क्योंकि 'छल्ला मुड़ के नी आया' पंजाबी लोग ही जानते हैं। पंजाब में इसकी ज्यादा पहचान है इसलिए वह पंजाबी में लिखा गया।

प्रश्न4. आपके उपन्यासों के ज्यादत्तर पात्र मनोविज्ञानिक/ मानसिक पीड़ाओं से झूझते दिखाई देते हैं, यह एक चिक्तिसक होने के कारण है या कुछ और कारण?

उत्तर: पहले तो हम इंसान है और मन से ही सोचते हैं जो हम बाहर चीजें देखते हैं जो हमारे मन को दुखी या उद्वेलित करती है कि कोई बात ठीक है या ठीक नहीं है और एक पात्र उन चीज़ों को जीता है जिसके माध्यम से यह बाते

बाहर आती हैं। पीड़ा होती है जो लेखक बाहर निकालती है लोग कहते है कि हम enjoy करते है लेकिन यह enjoy नहीं होता एक पीड़ा होती जो लेखक पात्रों के माध्यम से निकालता है। enjoy तो तब होता है जब लोग बात करते हैं नहीं यह एक पीड़ा है रुदन है जो लेखक व्यक्त करता है।

जैसे मैने जब पढ़ाई की उसमें मनोविज्ञान बहुत आता जिसको मैंने बहुत ही गहराई से पड़ा था क्योंकि वह मुझे बहुत अच्छा लगता है कहीं न कहीं वो मेरे दिमाग में बैठा हुआ है और मैं समझता हूँ कि मनोविज्ञान के बिना पात्र ज्यादा समय टिक नहीं पाता। यही कारण कि मनोविज्ञान का जिन्होंने व्याखान किया है वह लेखक आज भी जिन्दा है जैसे मण्टो, अज्ञेय निर्मल वर्मा, धर्मवीत भारती आदि। जब मनोविज्ञान के साथ बात जुड़ती है तो पात्र उठता है और पढ़ने वाले को भी यही लगता है कि कहानी मेरे बारे ही कही जा रही है।

प्रश्न5. आपकी पीढ़ी की साहित्यिक दृष्टि और इस युवा पीढ़ी की साहित्यिक दृष्टिकोण में आप क्या अंतर महसूस करते हैं ?

उत्तर: जो मुझसे पहले के पंजाब में ज्ञान सिंह मान, मनमोहन सहगल जो मेरे समकालीन हैं वह धर्मपाल साहिल हैं जिन्होंने दो से चार उपन्यास लिखें हैं। मेरे बाद तो कोई है ही नहीं क्योंकि लोग साहित्य पड़ते ही नहीं लिखेंगे कहा से, किसी से कोई पुस्तक का नाम पूछ लो कोई गिनवा ही सकते। युनिवर्सिटी के प्रफैसरों ने साहित्य को नीचा किया है। आज कोई भी सेमीनार या गोष्ठी होती है तो लेखक को बुलाया ही नहीं जाता। आज के समय में कोई नहीं लेखक आ ही नहीं रहा। अखबार का संपादक होने के नाते, मेरे पास बहुत सी कहानियाँ आती है लेकिन उनमें कुछ ऐसी बात ही नहीं जिसको एक अच्छा साहित्य कहा जा सके।

प्रश्न6. देश/ समाज की वर्तमान परिस्थितियों में साहित्यकार का दायित्व क्या है ?

उत्तर: जब हमारा देश आज़ाद हुआ था तब हमारे सरोकार अलग थे तो लोगों ने उनको मुख्य रखकर बहुत कुछ लिखा तब हमारे सरोकार वैसे थे तो लोग वैसी ही रचनाएं लिख रहे थे। लेकिन अब समय ने कवरट ली है अब हमारे देश में खुशहाली आ गई है और हमारे सरोकार भी बदल गये हैं। आज अज़ादी की बात कोई नहीं करता। एक लेखक परिवर्तन नहीं ला सकता यह तो राजनीतिक लोग ही हैं जो बदलाव ला सकता है। एक लेखक कोई क्रांति नहीं ला सकता लेकिन एक लेखक सिर्फ दिये का काम करता है जो रोशनी देता है अब जिसने रोशनी लेनी है वह अपने आप ही ले लेता है। आज तो पाठक ही नहीं मिलता जो लिखता वह खुद ही पड़ता है या लेखक ही लेखक को पड़ता है। एक गाना सुबह आता है पूरी दुनिया में पता चल जाता है और मश्हुर हो जाता है लेकिन एक लेखक जो लिखता वह कहा चला जाता है कब आता है कुछ नहीं पता रहता लेखक को सिर्फ लेखक ही पड़ता है या जिसने डिग्री लेनी हो एम. फिल या पी, एच.डी वही पड़ता है।

प्रश्न7. 'आकाश का सच' और बाकी कई उपन्यासों में आपने कोई न कोई कठिनाई का सामना किया, इसके अलावा और भी कोई कठिनाईयां रहीं ?

उत्तर: वो एक system के खिलाफ था किसी एक आदमी के खिलाफ नहीं था। तब मैं अमर उजाला में नौकरी करता था और उन्होंने मुझे अपनी संस्था से निकाल दिया गया और दैनिक जागरण के मुझे घर से आकर ले गये। उन्हें लगा कि हमारे खिलाफ लिखा और इसको उन्होंने अपने फायदे के प्रयोग कर लिया। इसी के कारण मैंने अपने उपन्यास को छिपा कर रखना पड़ा। मेरे उपन्यासों में सिर्फ सरोकारों की बात करता हूँ कोई प्रेम कहानियों की नहीं।

प्रश्न8. साहित्य में जो निराशाजनक स्थिति चल रही है, उस पर आप क्या सोचते हैं?

उत्तर: यह तो सरकारें कर सकती है युनीवर्सिटी ही कर सकते है जिनको चाहिए कि अपने राज्य के स्तर तक लेखकों के साहित्य को आगे रखना चाहिए। लेखक को तो मौत के बाद ही ज्यादात्तर याद किया जाता है लेखन का जो process वह थोड़ा ज्यादा हो जाता है जिसकारण लेखक लोगों की दृष्टि में नहीं आ पाता। यह तो कॉलेज के प्रोफैसरों को चाहिए कि वह साहित्य को किस प्रकार बढ़ावा दे सकते है कैसे आज के युवाओं को प्रेरित कर सकते हैं।

प्रश्न9. नौकरी छोड़कर संघर्षमय जीवन अपनाया, ऐसा क्यों ?

उत्तर: जब मैं पढ़ाई करता था तो पढ़ने की आदत थी। घर की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थी कि अपने भावों को खुलकर व्यक्त नहीं कर पाते थे इसी के चलते मैंने लिखना शुरू किया। मुझे यह लगता था कि अखबार में जाकर एक लेखक बना जा सकता है उसमें जाकर कम्पयूटर पर लिखने की आदत पड़ी नए-नए विज़िन मिलते हैं। डॉक्टर के रूप में मुझे कुछ ही लोग जान पाते अब आप मेरे सामने बैठे हैं तो साहित्य के ज़रिए ही बैठे हैं। अर्थ को मैं कभी इतनी ज्यादा अहियमत नहीं देता।

प्रश्न10. आपके हर उपन्यास में नाम कमाने/ शौहरत कमाने की बात आती है क्या इसी के चलते लिखना प्रारंभ किया ?

उत्तर: अपने आप को संवारना कोई बुरी बात नहीं है। मैं यहीं चाहता हूँ कि मेरे उपन्यास पर एक-आध मूवी बन जाए तो लोगों तक मेरा साहित्य पहुंच जाए। जैसे चेतन भगत एक 3rd class लेखक है उसके उपन्यास पर A grade मूवी बन गई लोग ने उसको पहचाना शुरू कर दिया। जो मैं यह चाहता हूँ कि लोगों तक किसी न किसी तरह साहित्य पहुंचे यह सिर्फ साहित्य को फैलाने की कोशिश है शोहरत नहीं है।

प्रश्न11. आप अपनी लेखनी के माध्यम से समाज/ साहित्य को क्या संदेश देना चाहते हैं ?

उत्तर: बदलती हुई परिस्थिति के साथ हमेशा बदलना चाहिए हर चीज़ परिवर्तनशील है सृष्टि बदलती है उसके साथ ही बदलना चाहिए। एक कहावत है एक नदी पर अगर दोबारा जाओगे तो नदी भी वो नहीं रहती और आदमी भी पहले जैसा नही रहता। अगर हम 70 साल की आयु में जाकर भी प्रेम कविताएं ही लिखेंगे तो हमारा बौद्धिक विकास कहा हुआ। बौद्धिक विकास होना भी जरूरी है।

प्रश्न12. जब आप एक उपन्यास लिखते हैं, उस समय आपकी क्या मानसिक स्थिति रहती है ?

उत्तर: लिखते समय कुछ नहीं होता है मन में बस कलम चलती है। घटना और पात्र अपने आप अपने कार्य करते चलते हैं।

प्रश्न13. समाज के लिए आपका क्या सपना है ?

उत्तर: समाज के लिए जो मैं सपने देखता हूँ उन्हें मैं अपने उपन्यासों के माध्यम से निकाल ही लेता हूँ परन्तु समाज में एक बैद्धिक चेतना के देने का सपना जरूर है।